दो शब्द

भारत के धार्मिक साहित्य में अठारह महापुराणों के अतिरिक्त जिन उप पुराणों की गणना की जाती है, उन्हीं में से एक "कालिका पुराण" भी है। यद्यपि इसमें भी शिव पार्वती के चरित्र और देवी-माहात्म्य की वे ही घटनायें दी गई हैं, जो विभिन्न पुराणों में मिलती है, फिर भी इसमें कुछ अपनी विशेषता है। इसका प्रारम्भ कामदेव की उत्पत्ति से होता है, उसने सबसे पहले अपने निर्माता ब्रह्माजी पर ही मदनास्त्र चलाया, जिससे उनकी बड़ी विडम्बना हुई। फलस्वरूप उन्होंने कुपित होकर उसे भस्म कर दिया। इस प्रकार शिवजी से भी पहले ब्रह्माजी द्वारा "मदन-दहन" अभी तक किसी ग्रन्थ में हमारे देखने में नहीं आया।

इसी प्रकार "सती की कथा" और "दक्ष-यज्ञ" को भङ्ग करने का कथानक भी बहुत भिन्नता युक्त है। जैसा अन्यत्र लिखा है कि सती ने दक्ष के यज्ञ में जाकर वहीं के अग्नि कुण्ड में प्राण त्याग किया, वैसा "कालिका पुराण" में नहीं है। इसके अनुसार सती ने जब यह सुना कि कपाली कहकर दक्ष ने शिवजी को आमन्त्रित नहीं किया है, तभी क्रोधित होकर अपने निवास स्थान में प्राण त्याग दिये और यह देखकर शिवजी ने स्वयं जाकर यज्ञ भङ्ग किया। पार्वती के विवाह में सप्त ऋषियों का दूतत्व, बरात, विवाह-विधि आदि का कुछ वर्णन नहीं है, वरन् शिवजी स्वयं उसकी परीक्षा लेने आये और सन्तुष्ट होकर पाणि ग्रहण करके उसे साथ ले गये।

वाराह अवतार के चरित्र में उनके तीन पुत्रों तथा स्वयं उनका शरभ रूपी शङ्कर से युद्ध का वर्णन बड़ा अद्भुत है। दो ईश्वरीय विभूतियाँ मित्र-भाव रखते हुए जान-बूझकर ऐसा घोर संग्राम करें यह

कल्पना अनोखी ही कही जायगी। पर जगत् के हित के लिए वाराह भगवान् ने स्वय अपनी मृत्यु का आवाहन किया और शरभजी से युद्ध करके अपना अन्त करने को प्रेरित किया यह कल्पना भी महानता का प्रदर्शन करने वाली है। कहा गया है कि यज्ञ से देवगण सन्तुष्ट होते है और यज्ञ मे ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। यज्ञ के द्वारा ही पृथ्वी धारण की जाती है और यज्ञ ही प्रजा का रक्षण किया करता है। अन्न के द्वारा प्राणी जीवित रहा करते हैं और उस अन्न की उत्पत्ति मेघो के द्वारा होती है। वे मेघ यज्ञो से हुआ करते हैं। इसलिए यह सभी कुछ यज्ञ मे ही परिपूर्ण है। यह यज्ञ भगवान् शम्भु के द्वारा विदीर्ण किये हुए वराह के शरीर मे ही उत्पन्न हुआ था।"

भारतीय धर्म की मान्यता के अनुसार यह समस्त विश्व और उसके सचालन के निमित्त होने वाली विभिन्न घटनायें यज्ञ रूप ही हैं। जगत् के निर्माण और उसको जीवित-जाग्रत रखने के निमित्त सभी दैवी और प्राकृतिक प्रक्रियाएँ ईश्वर के यज्ञ वाराह रूप से ही उत्पन्न होती है, यह इस रूपक का सार है। इसलिए जो लोग वाराह को कोई भौतिक शूकर समझते है अथवा हास्य-विनोद के लिए उसे एक मल भक्षण करने वाला जीव बतलाकर अपनी अज्ञता का परिचय देते हैं, वे इन तथ्यों को शीघ्र हृदयगम न कर सकेंगे। पर "कालिका पुराण" के लेखक ने वाराह का अर्थ पृथ्वी के निर्माण करने वाले दैवी तत्व को ही बतलाया है। हिरण्याक्ष आदि की कथा की चर्चा उसमें कही नही मिलती।

वाराह और पृथ्वी के सयोग से उत्पन्न नरकासुर की कथा भी इसी पुराण मे विस्तार के साथ मिलती है। यद्यपि "भागवत महा-पुराण" मे "प्राग्ज्योतिषपुर" के इस नरेश का कुछ वर्णन आया है और यह भी लिखा है कि भगवान् कृष्ण ने इसको मारकर सोलह हजार राज कन्याओं का उद्धार किया था, पर इसका "इतिहास" आदि से अन्त तक कालिका पुराण मे ही मिलता है।

मत्स्य अवतार के सम्बन्ध मे कहा गया है कि पृथ्वी पर जल प्रलय होने का शाप महामुनि कपिल ने स्वायम्भुव को दिया था। उसमे तीनो लोको की रक्षा करने के लिये उन्होंने भगवान् विष्णु की आराधना की। उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने मत्स्य रूप धारण करके पृथ्वी की रक्षा का वचन दिया और एक बड़ी नाव बनाकर समस्त भौतिक पदार्थों के बीजो को उसमे रक्षित रखने की विधि बताई। उन्होंने कहा—

'हे मनुदेव ! जब तक जल का प्लावन रहे तब तक सुरक्षित रहने के उद्देश्य से आप एक ऐसी बड़ी नौका बनाइये जो दस योजन विस्तार वाली और तीस योजन चौड़ी होवे। वह तीस योजन ऊँची हो। जल प्लावन के समय उस नौका मे सब बीजो को, समस्त वेदो और सात ऋषियो को बिठाकर स्वयं भी विराजमान हो जायें। जल प्लावन होने पर मैं आपके पास आऊँगा और उस नाव को अपने सीग मे बाँधकर हिमालय के समीप ले आऊँगा। जल के सूखने पर आप उसी स्थान पर उतरकर फिर जीव सृष्टि की रचना का उपाय करिये।"

'जल प्रलय" की यह कथा बड़ी अद्भुत है, क्योंकि यह भारतीय पुराणो मे ही नहीं, ईसाइयो की बाइबिल और अन्य अनेक जातियो के प्राचीन साहित्य मे भी इसी से मिलते-जुलते रूप मे मिलती है। उन लोगों का इसकी सचाई पर पूरा विश्वास है, और कुछ वर्ष पहले हमने एक अङ्गरेजी मासिक पत्र मे एक लेख पढ़ा था कि काकेशस (रूस) के एक हिमाच्छादित पर्वत शिखर पर वह नाव मिल भी गई है। कुछ भी हो इससे इतना विदित होता है कि मत्स्य अवतार की कथा प्राचीन काल मे ही दूर-दूर तक फैल गई थी। साथ ही कुछ ऐतिहासिक प्रमाणो तथा वैज्ञानिक खोज द्वारा कई लेखकों ने यह भी अनुमान लगाया है कि कुछ हजार वर्ष पहले पृथ्वी पर सचमुच ऐसा जल प्लावन हुआ था जिसमे एक बड़ा भरापूरा देश नष्ट हो गया था। इसी को योरोप वाले 'नूह की प्रलय" कहते हैं। इन कई मजहबो के धर्म

ग्रंथों में वर्णित इस कथा का इतना अधिक मिल जाना एक महत्वपूर्ण बात ही है। "कालिका पुराण" के अनुसार प्रलय का समय समाप्त हो जाने पर पुनः सृष्टि रचना के सम्बन्ध में भगवान् ने आदेश दिया था—

"हे स्वायम्भुव मनु ! आप पृथ्वी में सब चीजों का सृजन कीजिये और यह पृथ्वी सभी ओर सस्यों से परिपूर्ण हो जावे। समस्त औषधियाँ वृक्ष, लता और वल्लियों का सभी ओर आप सुरोहण करें हे स्वायम्भुव ! यह महान् अन्न फलों को प्राप्त हो जायें तब आप दक्ष प्रजापति और सातों मुनियों के साथ यज्ञ के द्वारा भगवान् हरि की अर्चना करें। इसी यज्ञ द्वारा दक्ष सृष्टि रचना का विस्तार करें।"

यह तो सभी जानते हैं कि पुराणों में जो कथायें दी गई हैं उनका उद्देश्य सर्वसाधारण को धर्म, नीति, सदाचार आदि की शिक्षा देनी है। ये बातें धर्म शास्त्रों में भी कही गई हैं पर उस गम्भीर विषय को पढ़ने और समझने वाले थोड़े ही होते हैं। इसलिए प्रतिभाशाली मनीषियों ने उन तथ्यों का कथा कहानियों के रूप में ऐसा रोचक वर्णन किया जिसे अशिक्षित व्यक्ति भी मन लगाकर सुने और समझ सकें। इन कथानकों के सम्बन्ध में यह विवाद खड़ा करना कि ये यथार्थ हैं अथवा काल्पनिक व्यर्थ ही है। जन-समूह में जो दन्त कथायें और जन-श्रुतियाँ सैकड़ों-हजारों वर्षों से प्रचलित चली आई हैं, उन्हीं में से कुछ का समावेश पुराणों में कर दिया गया है। इसी आधार पर विद्वान लोग पौराणिक वर्णनों में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करते रहते हैं। इस तरह की ऐतिहासिक बातें चाहे जितनी विवादपूर्ण हों पर हम चाहें तो पुराणों की शिक्षाओं से कुछ लाभ अवश्य उठा सकते हैं।

इस विचार से हमने "कालिका पुराण" को अपने नियमानुसार संशोधित और सरल रूप में संग्रह करके प्रकाशित किया है। हमें आशा है कि पाठकों को इसमें बहुत-सी नवीन सामग्री प्राप्त होगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची



कालिका पुराण



।। काम प्रादुर्भाव वर्णन ।।

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीवविविक्तचित्तै ।
तद् व पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत् क्रमविलङ्घितभूर्भुव स्व ।।१
सा पातु व सकलयोगिजनस्य चित्ते-
ऽविज्ञातमिश्रतरणिर्यतिमुक्ति-हेतु ।
या चास्य जन्तुनिवहस्य विमोहिनीति
माया विभोर्वपुषि शुद्ध-बुद्धिहन्त्री ।।२
ईश्वर जगतामाद्य प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
नित्यज्ञानमय वक्ष्ये पुराण कालिकाह्वयम् ।।३
मार्कण्डेय मुनिश्रेष्ठ स्थित हिमधरान्तिके ।
मुनय परिपप्रच्छु प्रणम्य कमठादय ।।४
भगवन् सम्यगाख्यात सर्वशास्त्राणि तत्त्वत ।
वेदान् सर्वास्तिथा सागान् सारभूत प्रमथ्य च ।।५
सर्ववेदेषु शास्त्रेषु यो यो न सशयोऽभवत् ।
स स च्छिन्नस्त्वया ब्रह्मन् सवित्रेव तमश्चय ।।६
त्वं वातृकाश्रय भवन प्रसादाद्द्विजसत्तम ।
नि सशया वय जाता वेदे शास्त्रे च सर्वश ।।७

पूर्ण रूप मे एक ही म निष्ठा रखने वाले हृदय से समन्वित योगियो के द्वारा सासारिक भय और पीडा के विनाश करने के योग्य को प्राप्त करके वन्दना किये गये है ऐसे भगवान् हरि के दोनो चरण कमल क्रम से विलघित भूभुव स्व को प्रकट करते हुए सर्वदा आप सबकी रक्षा करें ॥ १ ॥ जो समस्त योगिजनो के चित्त मे अविद्या के अन्धकार को दूर हटाने के लिये सूर्य के समान हैं तथा यति गण की मुक्ति का कारण स्वरूप है—विवेक के जन्म मे शुद्ध—कुबुद्धि के हनन करने वाली है और इस जन्तुओ के समुदाय को विमोहित कर देने वाली है वह माया आपकी रक्षा करे ॥ २ ॥ समस्त जगतो के आदि काल मे विराजमान पुरुषोत्तम ईश्वर को जो नित्य ही ज्ञान से परिपूर्ण हैं प्रणाम करके मैं कालिका नाम वाले पुराण का कथन करूँगा ॥ ३ ॥ हिमवर के समीप मे विराजमान मुनियो मे परमाधिक श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि के चरणो मे प्रणिपात करके उनसे कमठ प्रभृति मुनिगण ने पूछा था ॥४॥ हे भगवन् ! आपने तात्त्विक रूप से समस्त शास्त्रो को और अङ्गो के सहित सभी वेदो का भली भाँति प्रमथन करके जो कुछ भी सारस्वरूप था वह सभी भली भाँति से वर्णन कर दिया है ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! समस्त वेदो मे और सभी शास्त्रो मे जो-जो भी हमको सशय हुआ था वही—वह आपने सूर्य के द्वारा अन्धकार के ही समान विनष्ट कर दिया है ॥ ६ ॥ हे द्विजो मे सर्वश्रेष्ठ ! जैवातृकाश्रय आपके प्रसाद अर्थात् अनुग्रह से हम सब प्रकार से वेदो और शास्त्रो मे सशय से रहित हो गये हैं अर्थात् अब हमको किसी मे कुछ भी सशय नही रहा है ॥७॥

कृत्यकृत्यया वय ब्रह्म त्वत्तोऽधीत्य समन्तत ।
सरहस्य धर्मशास्त्र यदवादि स्वयम्भुवा ॥८
भूतम्यच्छ्रोतुमिच्छामो हर काली पुरा यथा ।
मोहयामास यतिन सतीरूपेण चेश्वरम् ॥६
सर्वदा ध्याननिलय यमिन यतिना वरम्
सक्षाभयामास यय ससारविमुख हरम् ॥१०

मती वा कथमुत्पन्ना दक्षदारामु शोभना ।
कथ हरो मनश्चक्रे दारग्रहणकर्मणि ॥११
कथ वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा ।
हिमवत्तनया जाता भूयो वा कथमागता ॥१२
कमर्द्धंशरीर साहरत् स्मररिपो पुन ।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१३
नान्योऽस्ति सशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति ।
यथा जानीम विप्रेन्द्र तत् कुरुष्वैनदात्मवित ॥१४

हे ब्रह्मन् ! जो ब्रह्माजी ने कहा था वह रहस्य के सहित धर्मशास्त्र आपसे सब ओर से अध्ययन करके हम सब कृत-कृत्य अर्थात् सफल हो गये हैं ॥ ८ ॥ अब हम लोग पुन यह श्रवण करने की इच्छा करते हैं कि पुराने समय म काली देवी ने हरि प्रभु को जो परम यति और ईश्वर थे किस प्रकार म सती के स्वरूप म मोहित कर दिया था ॥६॥ जो भगवान् हर सदा ही ध्यान म मग्न रहा करते थे यम वाले और यतियो म परम श्रेष्ठ थे तथा ससार से पूर्णतया विमुख रहा करते थे मक्षोभित कर दिया था ॥ १० ॥ अथवा प्रजापति दक्ष की पत्नियो म परम शोभना सती किस रीति से समुत्पन्न हुई थी तथा पत्नी के पाणिग्रहण करने मे भगवान् शम्भु न अपना मन किया था ? ॥ ११ ॥ प्राचीन समय म किस कारण से तथा किस रीति स दक्ष प्रजापति के कोप से सती ने अपने देह का त्याग कर दिया था । अथवा फिर वही सती गिरिवर हिमवान् की पुत्री के रूप म कैसे समुत्पन्न हुई और यहाँ समागत हुई थी ? ॥ १२ ॥ फिर उस देवी ने भगवान् कामदेव के शत्रु श्री शिव का आधा शरीर आहृत कर लिया था ? हे द्विजश्रेष्ठ ! यह सभी कथा आप हमारे समक्ष मे विस्तार के साथ वर्णित कीजिए ॥ १३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! हम यह जिस प्रकार से जानते हैं कि आपके समान अन्य कोई भी सशयो का छेदन करने वाला नही है और भविष्य मे भी होगा सो यह अब आप आत्मवित् करने की कृपा कीजिए ॥ १४॥

शृणुध्व मुनय सर्वे गुह्याद् गुह्यतर मम ।
पुण्य शुभकर सम्यग् ज्ञागर्द ज्ञामद परम् ॥१५
एतद् ब्रह्मा पुरोवाच नारदाय महात्मने ।
पृष्टस्तेन तत सोऽपि वालखिल्येभ्य उक्तवान् ॥१६
वालखिल्या महात्मानस्तत आचक्षिरे पुन ।
यवक्रीताय मुनये स प्रोवाचासिताय च ॥१७
असितो मे समाचष्ट एतद्विस्तरतो द्विजा ।
अह व कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।
प्रणम्य परमात्मान चक्रपाणि जगत्पतिम् ॥१८
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सदसदव्यक्तिरूपिणे ।
स्थूलाय सूक्ष्मरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ॥१९
नित्याय नित्यज्ञानाय निर्विकाराय तेजसे ।
विद्याविद्यास्वरूपाय कालरूपाय वं नम ॥२०
निर्मलायोर्मिषट्कादिरहिताय विरागिणे ।
व्यापिने विश्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—आप समस्त मुनिगण अब श्रवण करिए जो कि मेरा गोपनीय मे भी अधिक गोपनीय है तथा परम पुण्य—शुभ करने वाला अच्छा ज्ञान प्रदान करने वाला तथा परम कामनाओ को पूर्ण करने वाला है ॥ १५ ॥ प्राचीन समय म ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले नारदजी से कहा था । इसके पश्चात् पूछे गये नारदजी ने भी वाल खिल्यों के लिये बताया था ॥ १६ ॥ उन महात्मा बाल खिल्यो ने यव क्रीत मुनि से कहा था और यवक्रीत मुनि ने असित नामक मुनि को यही बताया था ॥ १७ ॥ हे द्विजगणो ! उन असित मुनि ने विस्तार-पूर्वक मुझको बताया था मैं अब परम पुरातन कथा को आप सब लोगो का श्रवण कराऊँगा । इसके पूर्व म मैं इस जगत् के पति परमात्मा भगवान् चक्रपाणि प्रभु को प्रणिपात करता हूँ ॥१८॥ वे परमात्मा व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले हैं—सत् और असत् की व्यक्ति के रूप से सम

स्थित हैं उनका स्वरूप स्थूल है और सूक्ष्म रूप वाला भी है—वे विश्व के स्वरूप वाले देवा हैं—वे परमेश नित्य हैं और उनका स्वरूप नित्य है तथा उनका ज्ञान भी नित्य है—उनका तेज निर्विकार है—वे विद्या और अविद्या के स्वरूप वाले है ऐसे दान रूप उन परमात्मा के लिये नमस्कार है ॥१९—२०॥ परमेश्वर निर्मल हैं तथा उमिषट्क से रहित हैं—विरागी हैं—व्यापी और विश्वरूप वाले हैं तथा सृष्टि (सृजन) स्थिति (पालन) और अन्त (संहार) के करने वाले हैं उनके लिये प्रणाम हैं ॥ २१ ।

योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ वेदान्तान्तगचिन्तकैः ।
अन्तरन्त परं ज्योति स्वरूपं प्रणमामि तम् ॥२२
तमेवाराध्य भगवान् ब्रह्मा लोकपितामह ।
प्रजा ससर्ज सकला सुरासुरनरादिका ॥२३
सृष्ट्वा प्रजापतीन दक्षप्रमुखान् स यथाविधि ।
मरीचिमत्रि पुलह तथैवाङ्गिरस क्रतुम् ॥२४
पुलस्त्यञ्च वशिष्ठञ्च नारदञ्च प्रचेतसम् ।
भृगुञ्च मानसान पुत्रान यदा दश ससर्ज स ।
तदा तन्मनसो जाता चारुरूपा वरांगना ॥२५
नाम्ना सन्ध्येतिविख्याता सायसन्ध्या यजन्ति याम् ।
न तादृशी देवलोके न मर्त्ये न रसातले ।
कालत्रयेऽपि भविता सम्पूर्णगुणशालिनी ॥२६
निसर्गचारुनीलेन कचभारेण राजते ।
मयूरीव विचित्रेण वर्षासु द्विजसत्तमा ॥२७
आरक्तगौरमलिन माकर्णान्त तयालकैः ।
रेजे सुराधिपधनुश्चारुबालेन्दुसन्निभम् ॥२८

जिसका योगियों के द्वारा चिन्तन किया जाता है योगीजन वेदान्त अन्त पर्यन्त चिन्तन करने वाले हैं जो अन्तर—अन्तर में

ज्योति के स्वरूप है उन परमेश प्रभु के लिये प्रणाम करता हूँ ॥ २२ ॥ लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी ने उनकी ही समाराधना करके समस्त सुर—असुर और नर आदि की प्रजा का सृजन किया था ।२३। उन ब्रह्माजी ने दक्ष जिनमें प्रमुख थे ऐसे प्रजापतियों का सृजन करके मरीचि—अत्रि—पुलह—आङ्गिरस—क्रतु—पुलस्त्य—वसिष्ठ—नारद प्रचेतस—भृगु इन सब दश—दश मानस पुत्रों का उन्होंने सृजन किया था। उसी समय में उनके मानस से सुन्दर रूप वाले वराङ्गनाओं की समुत्पत्ति हुई थी ॥ २४--२५ ॥ वह नाम से सन्ध्या विख्यात हुई थी उसका नाम सन्ध्या का यजन किया करते है। उस जैसी अन्य कोई भी दूसरी वराङ्गना देवलोक मर्त्यलोक और रसातल में भी नहीं हुई थी। ऐसी समस्त गुण गणों की शोभा से सम्पन्न तीनों कालों में भी नहीं हुई है और होगी ॥ २६ ॥ वह स्वाभाविक सुन्दर और नीले केशों के भार से शोभित होती है। हे द्विज श्रेष्ठो ! वर्षा ऋतु में मय की ही भाँति विचित्र केशों के भार से शोभाशालिनी थी ॥ २७ ॥ आरक्त और मणिक तथा कर्णों पर्यन्त अलकों से इन्द्र के धनुष और बाल चन्द्र के सदृश शोभायमान थी ॥ २८ ॥

प्रफुल्लनीलनलिनश्यामल नयनद्वयम् ।
चकाशे चकितायास्तु कुरङ्ग्या सदृश चलम् ॥२९
निसर्ग-चंचल चारु भ्रूयुग्म श्रवणायतम् ।
मीनाङ्कुकोदण्डसम नील तस्या द्विजोत्तमा ॥३०
भ्रूमध्याधोनिम्नभागादायत-प्राशु-नासिका ।
लावण्यानि द्रवतीव ललाटासिलपुष्पवत् ॥३१
तद्वक्त्र शोणपद्माभ-पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
बिम्बाधरारुणिम्नाभीरेजे रागि-मनोहरम् ॥३२
सौन्दर्यलावण्यगुणैरापूर्ण वदन पुन ।
अभितश्चिबुक यातुमुद्यताविव तत्कुचौ ॥३३
राजीवकुट्मलाकारौ पीनोत्तु गौ निरन्तरौ ।

श्यामास्यौ तत्कुचौ विप्रा मुनीनामपि मोहनौ ॥३४
वलिभाजि क्षीणमध्य मुष्टिग्राह्यमिवाशुकम् ।
तन्मध्य दहशु सर्वे शक्तितुल्य मनोभुव ॥३५

विकसित नील कमल के समान श्याम वर्ण मे सयुत दोनो नेत्र चकित हिरनी के समान चञ्चल हैं और शोभित हो रहे थे ॥२६॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! कानो तक फैली हुई स्वाभाविक चञ्चलता से सयुत परम सुन्दर दोनो भौंहे थी जो मीनाक अर्थात् कामदेव के धनुष के सदृश नील थी ॥३०॥ दोनो भौंहो के मध्य भाग से नीचे निम्नभाग से विस्तृत और उन्नत नासिका थी जो मानो ललाट से तिल के पुष्प के ही समान लावण्यों को द्रवित कर रही थी ॥३१॥ उसका मुख रक्त कमल की आभा वाला और पूर्ण चन्द्र के तुल्य प्रभा से समन्वित था जो बिम्ब फल के सदृश अधरो की अरुणिमाओ से रागी और मनोहर शोभित हो रहा था ॥३२॥ सौ रूप और लावण्य के गुणो से परिपूर्ण मुख था । दोनो ओर से चिबुक (ठोडी) के समीप पहुँचने के लिये उसके दोनो कुच मानो समुद्यत हो रहे थे । तात्पर्यार्थ यह है कि उसके दोनो कुच ऊपर की ओर उठे हुए थे ॥३३॥ हे विप्रगणो ! उस सन्ध्या देवी के दोना स्तन राजीव (कमल) की कलिका के समान आकार वाले थे—पीन और उत्तुङ्ग निरन्तर रहने वाले थे । उन कुचो के मुख श्याम वर्ण के थे जो कि मुनियो के हृदय को भी मोहित करने वाले थे ॥३४॥ सभी लोगो ने कामदेव की शक्ति के तुल्य ही उस सन्ध्या के मध्यभाग को देखा था जिसमे वलयाँ पड रही थी तथा मध्य भाग ऐसा क्षीण था जैसे मुट्ठी मे ग्रहण करने के योग्य वस्त्र था ॥३५॥

तस्याश्चोरुयुग रेजे स्थूलोर्द्ध करभायतम् ।
आनमद्वारणकरप्रतिम मृदुमन्थरम् ॥३६
स्थलाम्बुजारुण पादयुग्म सत्पार्ष्णिराजनम् ।
अगुलीदलसकीर्ण कुसुमायुधवाणवत् ॥३७

ता चारदर्शना तन्वी तनुरोमावलीवृताम् ।
सस्वेदवदना दीर्घनयना चारुहासिनीम् ॥३८
चारवर्णपुष्मा कान्ता त्रिगम्भीरा षडुन्नताम् ।
दृष्ट्वा धाता समुत्थाय चिन्तयामास हृद्गतम् ॥३९
दक्षादयस्ते स्रष्टारो मरीच्याद्यास्तु मानसा ।
दध्यु समुत्सुका सर्वे ता दृष्ट्वा वरवर्णिनीम् ॥४०
कि कर्मास्या भवेत् सृष्टौ कस्य वा वरवर्णिनी ।
भविष्यतीति ते सर्वे चिन्तयामासुरुत्सुका ॥४१
एव चिन्तयतस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमा ।
मनस पुरुषो वल्गुराविर्भूतो विनिसृता ॥४२

उसके दोनो ऊरुओ का जोडा ऐसा शोभायमान हो रहा था जो ऊरुभाग म स्थूल था और करभके सदृश आयत (विस्तृत) था और थोडा झुका हुआ हाथी की सूँड के समान मृदु एव मन्थर था ॥३६॥ सत्पार्ष्णि से शोभित स्थल कमल के समान अरुण दोनो चरणो का जोडा था जो अगुलियो के दल से सकुल कुसुमायुध अर्थात् कामदेव के तुल्य ही दिखलाई दे रहा था ॥३७॥ उस सुन्दर दशन वाली—शरीर की रोमावलि स वृत्त—मुख पर जिसके पसीन की बूँद झलक रही थी—जो दीर्घ नयनो वाली—चारुहास स समन्वित—तन्वी अर्थात् कृश मध्यभाग वाली—जिसके दोनो कान परम सुन्दर थे—तीन स्थलो म गम्भीरता से युक्त तथा छै स्थानो म उन्नत उसको देखकर धाता उठकर हृद्गत का चिन्तन करने लगे थे ॥३८॥३९॥ वे सृजन करने वाले दक्ष प्रजापति आदि और मानस पुत्र मरीचि आदि सब उस वर वर्णिनी को देखकर समुत्सुक होकर चिन्तन करने लग थे ॥ ४० ॥ इस सृष्टि मे इसका क्या कर्म होगा अथवा यह किसकी वर वर्णिनी होगी—यही वे सभी बडी ही उत्सुकता से सोचन लग थे ॥४१ ॥ हे मुनि सत्तमो ! इस तरह से चिन्तन करते हुए उन ब्रह्मा जी के मन से वल्गु पुरुष आविर्भूत होकर विनिसृत हो गया था ॥४२॥

काञ्चनीचूर्णपीताभ पीनोरस्क सुनासिक ।
सुवृत्तोरुकटीजघो नीलवेष्टिकशर ।
लग्नभ्रू युगलो लोल पूर्णचन्द्रनिभानन ॥४३
कपाटविस्तीर्णहृदि रोमराजिविराजित ।
शुभ्रमातङ्गकरवत् पीननिस्तलवाहुक ।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भव ॥४४
क्षीणमध्यश्चारुदन्त प्रमत्तगजकन्धर ।
प्रफुल्लपद्मपत्राक्ष केशरघ्राणतर्पण ।
कम्बुग्रीवो मीनकेतु प्राशुर्मकरवाहन ॥४५
पञ्चपुष्पायुधो वेगी पुष्पकोदण्डमण्डित ।
कान्त कटाक्षपातेन भ्रामयन्नयनद्वयम् ॥४६
सुगन्धि मरुता भ्रान्त शृ गाररससेवितम् ।
त वीक्ष्य तादृश दक्षप्रमुखा मानसाश्च ते ॥४७
मरीच्याद्या दश ततो विस्मयाविष्टचेतस ।
औत्सुक्य परम जग्मुरापूर्वविकारिक मन ॥४८
स चापि वेधस वीक्ष्य स्रष्टार जगता पतिम् ।
प्रणम्य पुरुष प्राह विनयानतकन्धर ॥४९

वह पुरुष सुवर्ण के चूर्ण के समान पीली आभा से सयुत था—परिपुष्ट उसका वक्ष स्थल था—सुन्दर नासिका थी—सुन्दर सुडौल ऊरु जघाओ वाला था—नील वष्टित केशर वाला था—उसकी दोनो भौंहे जुडी हुई थी—चञ्चल और पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख से समन्वित था ॥४३॥ कपाट के तुल्य विशाल हृदय पर रोमावली से शोभित था—शुभ्र मातङ्ग की सूड के समान पीन तथा निस्तल बाहुओ स सयुत था—ईषत् रक्त हाथ—लोचन, मुख, पाद और करो के उद्भव वाला था ॥४४॥ उस पुरुष का मध्य भाग क्षीण अर्थात् कृश था—सुन्दर दन्तावली थी और वह मदमत्त हाथी के सदृश कन्धरा से समन्वित

था। विकसित कमल के दलों के समान उसके नेत्र थे तथा केशर घ्राण से तर्पण था—कम्बु के समान ग्रीवा से युक्त—मीन के केतु वाला—प्राशु और मकर वाहन था ।।४५।। पाँच पुष्पों के आयुधों धारा—वेग युक्त और पुष्पों के धनुष से विभूषित था। कटाक्षों के पात के द्वारा दोनों नेत्रों को भ्रमित करता हुआ परम कान्त था ।।४६।। सुगन्धित वायु से भ्रान्त और शृङ्गार रस से सेवित उस प्रकार के उस पुरुष को देखकर वे सब मानस पुत्र जिन दक्ष प्रजापति प्रमुख थे मरीचि आदि दश फिर विस्मय में आविष्ट मन वाले होते हुए अत्यधिक उत्सुकता को प्राप्त हुये थे और मन विकार को प्राप्त हो गया था ।।४७।। वह पुरुष भी जगतों के प्रति और सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्माजी का अवलोकन करके विनम्रता से नीचे की ओर अपनी कन्धरा को झुकाकर प्राणिपात करते हुये बोला ।।४८।।

किं करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मा स्तत्र नियोजय।
मा न्याय्ये पुरुषो यस्मादुचिते शोभते विधे ।।५०
अभिधान च यद्योग्य स्थान पत्नी च या मम।
तन्मे कुरुष्व लोकेश त्वं स्रष्टा जगतां यत ।।५१
एवं तस्य वचः श्रुत्वा पुरुषस्य [illegible]त्मनः।
क्षणं न किंचित् प्रोवाच स्वसृष्टावपि विस्मितः ।।५२
ततो मनः सुसमयभ्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम्।
उवाच पुरुषं ब्रह्मा तत्कर्मोद्देशमावहन् ।।५३
अनेन चारुरूपेण पुष्पवाणैश्च पञ्चभिः।
मोहयन् पुरुषांश्चीश्च कुरु सृष्टि सनातनीम् ।।५४
न देवो न च गन्धर्वो न किन्नर महोरगाः।
नासुरो न च दैत्यो वा न विद्याधर-राक्षसाः ।।५५
न यक्षा न पिशाचाश्च न भूता न विनायकाः।
न गुह्यका न वा सिद्धा न मनुष्या न पक्षिणः ।।५६

पुरुष ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं अब क्या कार्य करूँ ? जो भी आप कराना चाहते हो उसी कर्म में मुझे नियोजित कीजिए। हे विधे ! वह कर्म न्यायोचित होवे जिसके करने से शोभा होती है ॥ ५० ॥ हे लोकों के ईश ! क्योंकि आप तो जगतों के सृजन करने वाले हैं। अतएव जो भी योग्य अभिप्राय हो—स्थान हो और जो मेरी स्त्री हो वही मेरे लिये कीजिये ॥ ५१ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस महान् आत्मा वाले पुरुष के इस रीति वाले वचन का श्रवण करके अपनी की हुई सृष्टि में भी अत्यन्त विस्मित होकर उस क्षण तक कुछ भी ब्रह्माजी ने नहीं कहा था ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने मन को सुसंयमित करके और विस्मय का परित्याग करके उसके कर्म के उद्देश का आवहन करते हुए उस पुरुष से कहा था ॥५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—इस सुन्दर रूप के द्वारा और पाँच पुष्पों के बाणों के द्वारा पुरुषों तथा स्त्रियों को मोहित करते हुए इस सनातनी सृष्टि का सृजन करो ॥५४॥ न तो देव—न गन्धर्व—न किन्नर और महोरग न असुर—न दैत्य—न विद्याधर और न राक्षस—न यक्ष—न पिशाच—न भूत—न विनायक—न गुह्यक अथवा न सिद्ध और न मनुष्य तथा पक्षीगण ये सब तेरे शर के लक्ष्य नहीं होंगे ॥५५—५६॥

पशवो न मृगा. कीट-पतङ्गाजलजाश्च ये ।
न ते सर्वे भविष्यन्ति न लक्ष्या ये शरस्य ते ॥५७
अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तम ।
भविष्यामस्तव वशे किमन्य. प्राणधारिभि ॥५८
प्रच्छन्नरूपी जन्तूना प्रविशन् हृदय सदा ।
सुखहेतु स्वय भूत्वा कुरु सृष्टि सनातनीम् ॥५६
त्वत् पुष्पबाणस्य सदा मुख्य लक्ष्य मनोऽस्तु तत् ।
सर्वेषा प्राणिना नित्य मदमोदकरो भवान् ॥६०
इति ते कर्म कथित सृष्टि प्रावर्तक पुन ।
नामापि च वदिष्यामि यत्ते योग्य भविष्यति ॥६१

इत्युक्त्वाथ सुरश्रेष्ठो मानसाना मुखानि च ।
आलोक्य स्वासने पद्मे सूपविष्टोऽभवत् क्षणात् ॥६२

जो भी पशु—मृग—कीट—पतङ्ग और जल म उत्पन्न होने वाले जीव है वे सभी जो कि तेरे शर ने लक्ष्य होते हैं वे लक्ष्य नही होगे ॥ ५७॥ मैं अथवा वासुदेव स्थाणु अथवा पुरुषोत्तम ये सभी तेरे वश में हो जायेंगे अन्य प्राण धारियो की तो बात ही क्या है ॥५७–५८॥ प्रच्छन्न रूप वाला होकर सदा जन्तुओ के हृदय मे प्रवेश करते हुए स्वय सुख का हेतु बनकर सनातनी सृष्टि की रचना करो ॥ ५९ ॥ सदा ही तेरे पुष्पो के बाण का वह मन मुख्य लक्ष्य होवे । आप सभी प्राणियो के लिये नित्य ही मद और मोद के करने वाले हैं ॥ ६० ॥ यही तुम्हारे लिये कर्म मैंने कह दिया है जो कि पुन सृष्टि करने का प्रावर्त्तक है । अब मैं आपका नाम भी बतलाऊँगा जो कि आपके योग्य ही होगा ॥ ६१ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर यही कहकर सुरश्रेष्ठ मानसो के मुखो का अवलोकन करके क्षण भर म ही अपने पद्मासन पर उपविष्ट हो गये थे ॥६२॥



॥ ब्रह्मा मोह वर्णन ॥

ततस्ते मुनय सर्वे तदभिप्रायवेदिन ।
चक्रुस्तदुचित नाम मरीच्यत्रिमुखास्तदा ॥१
मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तान्तमन्यत ।
दक्षादयस्तु स्रष्टार स्थान पत्नीञ्च ते दद ॥२
ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखाद्विजा ।
ऊच सगतमेतस्मै पुरुषाय द्विजोत्तमा ॥३
यस्मात् प्रमथ्य चेतस्त्व जातोऽस्माक तथा विधे ।
तस्मान्मन्मथनाम्ना त्व लोके ख्यातो भविष्यसि ॥४

जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो नहि विद्यते ।
अतस्त्वं काम नाम्नापि ख्यातो भव मनोभव ॥५
मदनान्मदनाख्यस्त्वं शम्भोर्दर्पाच्च दर्पकः ।
तथा कन्दर्प नाम्नापि लोके ख्यातो भविष्यति ॥६
त्वदाशुगानां यद्वीर्यं तद्वीर्यं न भविष्यति ।
वैष्णवानाञ्च रौद्राणां ब्रह्मास्त्राणाञ्च तादृशम् ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उन के अभिप्राय के ज्ञान रखने वाले सब मुनिगण उस समय में उसका उचित मरीचि—अत्रि प्रमुखों के नाम रक्खा था ॥१॥ सृष्टि के सृजन करने वाले दक्ष प्रभृति ने मुख के अवलोकन से ही अन्य से वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने स्थान और पत्नियों को दे दिया था ।२। इसके उपरान्त मरीचि प्रमुख द्विजों के नामों का निश्चय करके हे द्विजोत्तमो! उस पुरुष के लिये सङ्गत कहा था ॥३॥ ऋषियों ने कहा—क्योंकि तुम हमारे विधाता के चित्त का प्रमथन करके समुत्पन्न हुए हो अतएव तुम मन्मथ नाम से ही लोक में विख्यात होओगे ॥४॥ जगतों में तुम काम रूप हो और ऐसा तुम्हारे समान अन्य कोई भी नहीं है अतएव हे मनोभव ! तुम काम नाम से भी हो जाओ ॥५॥ मदन करने से तुम मदन नाम वाले भी हो और दर्प से शम्भु भगवान् के दर्पक हो इसीलिये तुम लोक में कन्दर्प नाम से भी प्रसिद्ध होओगे । ॥६॥ तुम्हारे आशुगो अर्थात् बाणों का जो वीर्य अर्थात् पराक्रम है वह वैष्णवों का—रौद्रों का ब्रह्मास्त्रों का भी पराक्रम उस प्रकार का नहीं होगा ॥ ७ ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ब्रह्मलोके सनातने ।
तव स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापि भवान् यतः ।
किं वाचातिविशेषेण सामान्ये नास्ति ते समः ॥८
यत्र यत्र भवेत् प्राणी शाद्वलास्तरवोऽथवा ।
तत्र तत्र तव स्थानमस्त्वाब्रह्मसदोदयम् ॥९

दक्षोऽयं भवन: पत्नी स्वयं दास्यति शोभनाम् ।
आद्य: प्रजापतिर्यो हि यथेष्ट पुरुषोत्तम ॥१०
एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा ।
सन्ध्यानामेति विख्याता सर्वे लोके भविष्यति ॥११
ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग्जाता वराङ्गना ।
अत सन्ध्येति लोकेऽस्मिन्नस्या ख्यातिर्भविष्यति ॥१२
इत्युक्त्वा मुनय सर्वे तूष्णीं तस्थुर्द्विजोत्तमा. ।
अवेक्ष्य ब्रह्मवदन विनयावनता पुर. ॥१३
तत: कामोऽपि कोदण्डमादाय कुसुमोद्भवम् ।
उन्मादनेति विख्यात कान्ताभ्रू तुल्य-वेल्लितम् ॥१४

स्वर्ग मे—मर्त्यलोक मे—पाताल में और सनातन ब्रह्मलोक मे तुम्हारे सभी स्थान है क्योकि आप सर्व व्यापी हैं । अत्यधिक विशेष रूप से वचनो मे क्या कहा जावे सामान्य रूप मे आपके समान कोई भी नहीं है ॥८॥ आब्रह्म सदोदय मे जहाँ-जहाँ पर भी प्राणी हैं, शाद्वल हैं अथवा वृक्ष हैं वहाँ-वहाँ पर ही आपका स्थान है ॥९॥ यह दक्ष आपकी पत्नी को स्वय ही देगा जो कि परम शोभना है । हे पुरुषोत्तम ! जो यह आदि मे होने वाला यथेष्ट प्रजापति हैं ॥१०॥ और यह कन्या ब्रह्माजी के मन से समुत्पन्न शतरूपा है जो सन्ध्या—इस नाम से सभी लोक मे विख्यात होगी ॥११॥ क्योंकि ध्यान करते हुए ब्रह्माजी से भली भाँति यह वराङ्गना समुत्पन्न हुई है इसीलिये इस लोक मे सन्ध्या—इस नाम से इसकी ख्याति होगी ॥१२॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! यह कह कर सब मुनिगण चुप होकर सस्थित होगये थे । उनने ब्रह्माजी के मुख का अवेक्षण किया और उनके ही समक्ष मे विनय से अवनत होकर स्थित हो गये थे ॥१३॥ इसके अनन्तर कामदेव भी कुसुमो उद्भूत अपने कोदण्ड (धनुष) को ग्रहण करके कान्ता के भ्रूओं के सदृश वेल्लित वह धनुष था तथा वह उन्मादन—इस नाम से विख्यात हो गया था ॥ १४ ॥

कौमुमानि तथास्त्राणि पञ्चादाय द्विजोत्तमा ।
हर्षणं रोचनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा ॥१५
मारणञ्चेति सञ्ज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि ।
प्रच्छन्नरूपो तत्रैव चिन्तयामास निश्चयम् ॥१६
ब्रह्मणा मम यत्कार्यं समुद्दिष्टं सदातनम् ।
तदिहैव करिष्यामि मुनीनां सन्निधौ विधेः ॥१७
तिष्ठन्ति मुनयश्चात्र स्वयञ्चापि प्रजापतिः ।
एषा सन्ध्या वरस्त्री च दक्षोऽप्यत्र प्रजापतिः ॥१८
एते शरव्यमृता मे भविष्यन्त्यद्य निश्चयम् ।
सन्ध्यापि ब्रह्मणा प्रोक्तमिदानीमेव यद्वच ॥१९
अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशर्तिनः ।
किमन्यैर्जन्तुभिरिति तन्सार्थं करवाण्यहम् ॥२०

हे द्विजोत्तमो ! उसी भाँति पाँच कुसुमों से विनिर्मित अस्त्रों को ग्रहण किया था जिनके निम्नाङ्कित नाम हैं—हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मारण इन सज्ञा वाले वे बाण या अस्त्र हैं जो मुनियों के भी मन को मोह उत्पन्न कर देने वाले हैं। उस कामदेव ने जो कि प्रच्छन्न स्वरूप से संयुत था वहीं पर निश्चय के विषय में सोचने लगा था। ॥१५॥१६॥ ब्रह्माजी ने जो मुझे सदातन कार्य समुद्दिष्ट किया है उसे यहीं पर विधि की सन्निधि में तथा मुनियों की सन्निधि में कर डालूँगा ॥१७॥ और यहाँ पर मुनिगण सस्थित हैं तथा स्वयं प्रजापति भी हैं, यह वरस्त्री सन्ध्या उपस्थित है और प्रजापति दक्ष भी विद्यमान हैं ॥१८॥ ये सब आज मेरे शरव्य भूत अर्थात् निशान होंगे—यह निश्चित है। इसी समय में सन्ध्या भी लक्ष्य बनेगी—ब्रह्माजी ने जो वचन कहा था ॥१९॥ उन्होंने यही कहा था कि मैं—भगवान् विष्णु और योगिराज भगवान् शम्भु भी तुम्हारे अस्त्रों के वशवर्त्ती होंगे। अन्य साधारण जन्तुओं की तो बात ही क्या है—ऐसा जो कहा था सो उसे

मैं साधन करूँ । तात्पर्य यही है कि उस वचन को अब पुष्ट बना डालूँ ॥२०॥

इति सञ्चिन्त्यमनसा निश्चित्य च मनोभवः ।
पुष्पज्या पुष्पचापस्य योजयामास मार्गणं ॥२१
आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नत ।
चकार वलयाकार कामो धन्विवरस्तदा ॥२२
संहिते तेन कोदण्डे मारुताश्च सुगन्धय ।
ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठा सम्यगाह्लादकारिण ॥२३
ततस्तानथ धात्रादीन सर्वानेव च मानसान् ।
पृथक् पृथक् पुष्पशरैर्मोहयामास मोहन ॥२४
ततस्ते मुनय सर्वे मोहिताश्चतुराननः ।
मोहितो मनसा किञ्चिद्विकार प्रापुरादित ॥२५
सन्ध्या सर्वे निरीक्षन्त सविकारा मुहुर्मुहु ।
आसन् प्रवृद्धमदना स्त्री यस्मान्मदवर्द्धिनी ॥२६
तत सर्वान स मदनो मोहयित्वा पुन पुन ।
यथेन्द्रियविकारास्ते प्रापुस्तानकरोत्तथा ॥२७
उदीरितेन्द्रियो धाता वीक्षाञ्चक्रे यदाय ताम ।
तदैव ह्यूनपञ्चाशदभावा जाता शरीरत ॥२८

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—मनोभव (कामदेव) ने यह मन से सोचकर और निश्चय करके पुष्पों के धनुष की पुष्पों की ज्या (धनुष की डोरी) कर्णों के द्वारा योजित किया था ॥२१॥ उस समय में आलीढ स्थान को प्राप्त करके तथा अपने धनुष को खींच कर धनुष धारियों मे परम निपुण कामदेव यत्न पूर्वक उसे वलय के आकार वाला कर लिया था ॥२२॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उस कामदेव के द्वारा को दण्ड (धनुष) को संहित करने पर भली भाँति आह्लाद के उत्पन्न करने वाली परमाधिक सुगन्धित वायु बहन करने लगी थी ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर मोह कर देने वाले कामदेव ने उन धाता आदि को और सभी

मनुष्यों को पृथक्-पृथक पुष्पों के शरों से मोहित कर दिया था अर्थात् मोह में डाल दिया था। इसके उपरान्त सभी मुनिगण और चतुरानन (ब्रह्मा) भी मोहित हो गये थे और आदि में लेकर मन के द्वारा कुछ विकार को प्राप्त हो गये थे ॥२४—२५॥ सभी सन्ध्या को निरीक्षण करते हुए बारम्बार विकार युक्त मन वाले हो गये थे अर्थात् सबके मन में विकार उत्पन्न हो गया था। क्योंकि स्त्री तो मद के वर्द्धन करने वाली होती ही है सब बढ़े हुए मदन वाले अर्थात् अधिक सकाम हो गये थे ॥ २६ ॥ फिर उन मदन अर्थात् कामदेव ने पुनः-पुनः सबको मोहित कराके तथा उन सबको ऐसा कर दिया था कि वे सब इन्द्रिय के विकारों को जिस रीति से प्राप्त हो गये थे ॥ २७ ॥ जिस समय में उदीरित इन्द्रियों वाले धाता उसको देखा दी थी उसी समय में उनचास भाव शरीर से समुत्पन्न होगये थे ॥२८॥

बिव्वोकाद्यास्तया हावाश्तुः षष्टिकलास्तया ।
कन्दर्पशरविद्धायाः सन्ध्याया अभवन् द्विजाः ॥२९
सापि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कन्दर्पशरपातजान् ।
चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान् ॥३०
निसर्गसुन्दरी सन्ध्या तान् भावान् मदनोद्भवान् ।
कुर्वन्त्यतितरां रेजे स्वर्णदीव तनूर्मिभिः ॥३१
अथ भावयुता सन्ध्या वीक्षमाणः प्रजापतिः ।
घर्म्माम्भः पूरिततनुरभिलाषमथाकरोत् ॥३२
अहो ब्रह्मंस्तव कथं कामभावः समुद्गतः ।
दृष्ट्वा स्वतनयां नैतद्योग्यं वेदानुसारिणाम् ॥३३
यथा माता तथा जामियथा जामिस्तथा सुता ।
एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखोत्थितः ।
कथन्तु काममात्रेण तत्ते विस्मारितं विधे ॥३४
धैर्यं जगदिदं ब्रह्मन् समस्तं चतुरानन ।
कथं क्षुद्रेण कामेन तत्ते विघटितं विधे ॥३५

हे द्विजो ! विव्वोक आदि हाव तथा चौसठ कलाएँ कन्दर्प (कामदेव) के शरों से बिंधी हुई सन्ध्या के हो गये थे ॥ २९ ॥ उन सबके द्वारा देखी गयी वह भी कन्दर्प के शरों के पात से समुत्पन्न कटाक्ष आवरण आदिक भावों को बारम्बार करने लगी थी ॥ ३० ॥ स्वाभाविक रूप से परम सौन्दर्य शालिनी सन्ध्या मदन के द्वारा उद्भूत उन भावों को करती हुई तनु ऊर्मियों के द्वारा स्वर्ग की नदी (गङ्गा) की भाँति अत्यधिक शोभायमान हो रही थी ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर भावों से समन्वित उस सन्ध्या को देखते हुए प्रजापति धर्माम्भ अर्थात् पसीने से परिपूर्ण शरीर वाले होकर उन्होंने भी अभिलाषा की थी ॥ तात्पर्य यह है उनके शरीर में पसीना आ गया और उनकी भी इच्छा हुई थी ॥ ३२ ॥ ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! बड़े आश्चर्य की बात है आपको यह काम भाव कैसे उत्पन्न हो गया है जो कि अपनी पुत्री को ही देखकर काम के वशीभूत हो गये हैं। यह तो वेदों के अनुसरण करने वालों के लिए योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ आपके ही मुख से कहा हुआ वेदों के मार्ग का निश्चय है कि जैसी माता होती है वैसी ही जामि होती है और जैसी जामि होती है वैसी ही सुता हुआ करती है। हे विधे ! कामदेव के ही प्रभाव से आपने यह सब कैसे भुला दिया है ? ॥ ३४ ॥ हे विभ ! हे ब्रह्मन् ! हे चतुरानन ! यह समस्त जगत् धैर्य में है फिर कैसे इस क्षुद्र काम के द्वारा वह सब विघटित कर दिया है ? ॥ ३५ ॥

एकान्तयोगिन यस्मात् सर्वदा दिव्यदर्शना ।
कथ दक्षमरीच्याद्या लोलुपा स्त्रीषु मानसा ॥३६
कथ कामोऽपि मन्दात्मा प्राप्तकर्माधुनैव तु ।
युष्मान् शरव्यान् कृतवानकालज्ञोऽल्पचेतन ॥३७
धिगस्तु त मुनिश्रेष्ठ यस्य कान्ताजनो हठाद् ।
धैर्यमाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि तन्मन ॥३८

इसि तस्य वच. श्रुत्वा लोकेशो गिरिशस्य च ।
व्रीडया द्विगुणीभूतस्वेदार्द्रो ह्यभवत् क्षणात् ॥३६
ततो निगृह्यैन्द्रियकं विकारं चतुराननः ।
जिघृक्षुरपि तत्याज तां सन्ध्यां कामरूपिणीम् ॥४०
तच्छरीरात् घर्माम्भो यत् पपात द्विजोत्तमाः ।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो जाताः पितृगणास्ततः ॥४१
भिन्नाञ्जननिभाः सर्वे फुल्लराजीवलोचनाः ।
नितान्त-यतयः पुण्याः संसारविमुखाः पराः ॥४२

एकान्त योगी सर्वदा दिव्य दर्शन वाले किस कारण से और कैसे दक्ष मरीचि आदि मानस पुत्र स्त्रियों में लोलुप हो गये थे ? ।३६। मन्द आत्मा वाला अभी कर्म को प्राप्त करने को उद्यत हुआ कामदेव भी कैसा थोड़ी बुद्धि वाला है और समय को नहीं जानता है कि उसने आप लोगों को ही अपने शरों का लक्ष्य बना डाला है ॥ ३७ ॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! उसके लिए धिक्कार है जिसकी कान्ता गण हठ पूर्वक धैर्य का आकर्षण करके चञ्चलताओं में उसके मन को मज्जित कर दिया करती हैं ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उन गिरिश भगवान् के इस वचन का श्रवण करके लोकों के ईश लज्जा से एक ही क्षण में दुगुने पसीने से भीगे हुए ही गये थे । अर्थात् उनको द्विगुणित पसीना आ गया था ।३६। इसके उपरान्त चतुरानन ब्रह्माजी ने इन्द्रिय सम्बन्धी विकार को निगृहीत करके ग्रहण करने की इच्छा समन्वित होते हुए भी उस काम रूप वाली सन्ध्या का परित्याग कर दिया था ।।४०।। हे द्विजश्रेष्ठो ! उनके शरीर से जो पसीना गिरा था उससे अग्निष्वात्त बर्हिषद पितृगण समुत्पन्न हुए थे ।।४१।। ये सब भिन्न हुए अञ्जन के सदृश थे और विकसित कमल के समान इनके नेत्र थे। ये अत्यन्त अधिक सति-परम पवित्र तथा संसार से परमाधिक विमुख हुए थे ।४२।।

सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ता. प्रकीर्तिताः ।
षडशीतिसहस्राणि तथा बर्हिषदो द्विजाः ॥४३

घर्माम्भ पतित भूमौ यद्दक्षस्य शरीरत ।
समस्तगुणसम्पन्ना तस्माज्जाता वराङ्गना ॥४४
तन्वङ्गी तनुमध्या च तनुरोमावली शुभा ।
मृद्वङ्गी चारुदशना तप्तकाञ्चनसुप्रभा ॥४५
मरीचिप्रमुखै षड्भिर्निगृहीतेन्द्रियक्रिया ।
ऋते क्रतु वशिष्ठञ्च पुलस्त्याङ्गिरसौ तदा ॥४६
क्रत्वादीना चतुर्णाञ्च यो भूमौ निपपात ह ।
तत पितृगणा जाता अपरे द्विजसत्तमा ॥४७
सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिन ।
हविर्भुजस्तु ते सर्वे कव्यवाहा प्रकीर्तिता ॥४८
क्रतोस्तु सोमपा पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिन ।
आज्यपाख्या पुलस्त्यस्य हविष्मन्तोऽङ्गिर सुता ॥४९

अग्निस्वात्त सौसठ सहस्र कीर्त्तित किये गये हैं। हे द्विजगण! छियासी हजार बर्हिषद बताये गये है ॥ ४४ ॥ दक्ष के शरीर से जो घर्माम्भ अर्थात पसीना भूमि पर गिरा था उससे सम्पूर्ण गुण गणो मे सुसम्पन्न वराङ्गनायें उत्पन्न हुई थी ॥४४॥ वे वराङ्गनायें तन्वङ्गी क्षीण मध्यभाग वाली और परम शुभ शरीर की रोमावली से सयुत थी जिनका अङ्ग अत्यधिक कोमल था तथा परम सुन्दर दशन पक्तियाँ थी और तपे हुये सुवर्ण के ही तुल्य उनके शरीर की कान्ति थी ॥ ४५ ॥ मरीचि जिन मे प्रधान थे ऐसे छै मुनियो ने अपनी इन्द्रियो की क्रिया को निगृहीत कर लिया था। उस समय मे क्रतु—वसिष्ठ पुलस्त्य और अङ्गिरस के बिना क्रतु आदि चारो का जो जो प्रस्वेद भूमि पर गिरा था उसमे हे द्विज श्रेष्ठो ! दूसरे पितृगण समुत्पन्न हुए थे ॥४६॥४७॥ सोमप—आज्यप नाम से तथा अन्य सुकाली थे। वे सभी हविर्भुक् थे जो कव्य वाह प्रकीर्तित हुए थे ॥४८॥ सोमप जो थे वे क्रतु के पुत्र थे--सुकालिन वसिष्ठ मुनि के पुत्र हुये थे—जो आज्यप नामक थे

वे पुलस्त्य मुनि के पुत्र थे और हविष्मन्त अङ्गिरा मुनि के सुत हुये थे ॥४६॥

जातेषु तेषु विप्रेन्द्रा अग्निष्वात्तादिकेष्वथ ।
लोकाना पितृवर्गेषु कव्यवाहा. समन्तत. ॥५०
सर्वेषामेव भूताना ब्रह्मा भूत. पितामहः ।
सन्ध्या पितृप्रसूर्भूत्वा तदुद्देशाद्यतोऽभवत् ॥५१
अथ शङ्करवाक्येन लज्जित स पितामह ।
कन्दर्पाय चुकोपाशु भ्रूकुटीकुटिलाननः ॥५२
पूर्वंव तदभिप्राय विदित्वा सोऽपि मन्मथः ।
स्ववाणान् सञ्जहाराशु भीत. पशुपतेर्विधेः ॥५३
तत. क्रोधसमाविष्टो ब्रह्मा लोक-पितामह ।
यच्चकार द्विजेन्द्रास्तच्छृणुध्व सुसमाहिता. ॥५४

हे विप्रेन्द्रो ! उन अग्निष्वात्तादिक के उत्पन्न हो जाने पर इसके अनन्तर लोकों के पितृ वर्गों मे सब ओर कव्यवाह थे। समस्त प्राणियों के ब्रह्माजी ही पितामह हुए थे और सन्ध्या ही पितृ प्रसू हुई थी क्योंकि उसके ही उद्देश से हुआ था ॥५०॥५१॥ इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर के वचन से वह पितामय बहुत लज्जित हुए थे और शीघ्र ही कुटिल किए हुए मुख से सपुत ब्रह्माजी कामदेव के ऊपर अत्यन्त कुपित हो गये थे। ॥५२॥ वह कामदेव भी पहिले ही उनके अभिप्राय का ज्ञान प्राप्त करके उसने पशुपति विधि से डरे हुए ने शीघ्र ही अपने बाणो को समेट लिया था अर्थात् बाणों का छोड़ना बन्द कर दिया था ॥५३॥ हे द्विजेन्द्रो ! इसके अनन्तर लोकों के पिता मह ब्रह्माजी ने अत्यन्त क्रोध मे समविष्ट होकर जो कुछ भी किया था उसका आप लोग परम सावधान होकर अब श्रवण कीजिए ॥५४॥



॥ मदन दहन वर्णन ॥

ततः कोपसमाविष्टः पद्मयोनिर्जगत्पतिः ।
प्रजज्वालातिबलवद्दिधक्षुरिव पावकः ॥१
उवाच चेश्वरं कामो भवतः पुरतो यतः ।
पुष्पेषुभिर्मामभजत् तत्फलस्याप्नुयाद्धर ॥२
तव नेत्राग्निनिर्दग्धः कन्दर्पो दर्पमोहितः ।
भविष्यति महादेव कृत्वा कर्मातिदुष्करम् ॥३
इति वेधाः स्वयं कामं शशाप द्विजसत्तमा ।
समक्षं व्योमकेशस्य मुनीनाञ्च यतात्मनाम् ॥४
अथ भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात् त्यक्तमार्गणः ।
प्रादुर्बभूव प्रत्यक्षं शापं श्रुत्वातिदारुणम् ॥५
उवाच मेदं ब्रह्माण सदक्ष समरीचिकम् ।
तथ्यञ्च गद्गदं भीत्या भीतिर्हि गुणहानिकृत् ॥६

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त समस्त जगतों के पति पद्मयोनि ब्रह्माजी अत्यन्त बलवान् दाह करने वाले पावक (अग्नि) के ही समान क्रोध में समाविष्ट होकर प्रज्वलित हो गये थे ॥१॥ और उन्होने ईश्वर से कहा था कि जिस कारण से आपके ही समक्ष में कामदेव ने पुष्पो के बाणों से मुझे सेवित किया है अर्थात् मुझे अपने कुसुम बाणो का लक्ष्य बनाया हैं हे हर ! उसका फल अब आप प्राप्त करिये । ॥२॥ यह दर्प में विमोहित कामदेव आपके नेत्रो की अग्नि से निर्दग्ध होगा । हे महादेव ! क्योंकि इसने अत्यन्त दुष्कर कर्म किया था ॥३॥ हे द्विजों में परम श्रेष्ठो ! इसरीति से ब्रह्माजी ने भगवान् व्योम केश (शम्भु) के और यतात्मा मुनियो के समक्ष में स्वय ही कामदेव को शाप दिया था । इसके अनन्तर डरे हुए रति के पति कामदेव ने उसी क्षण में अपने बाणो को छोडना परित्यक्त कर दिया था । और इस परम दारुण शाप का श्रवण करके प्रत्यक्ष में ही प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट होगया

था ॥५। और फिर मरीचि आदि के सहित समवास्थित ब्रह्माजी से कहा था जो ब्रह्मा दक्ष के भी साथ वहाँ पर थे। वह कामदेव डर से अति गद् गद् होकर तथ्य वचन कहने लगा था। निश्चय ही यह भय तो गुणों की हानि को करने वाला होता है ॥६॥

ब्रह्मन् किमर्थं भवता शप्तोऽहमतिदारुणम् ।
अनागस्तव लोकेश न्यायमार्गानुसारिण ॥७
त्वयैवोक्तन्तु तन् कर्म यत्तु कुर्यामिह विभो ।
तत्र योग्यो न शापो यतो नान्यन्मया कृतम् ॥८
अहं विष्णुस्तथा शम्भु सर्वे त्वच्छरगोचरा ।
इति यद्भवता प्रोक्तं तन्मयापि परीक्षितम् ॥९
नापराधो ममास्त्यत्र ब्रह्मन् मयि निरागसि ।
दारुण शमयस्वेनं शापं मम जगत्पते ॥१०
इति तस्य वच श्रुत्वा विधाता जगता पति ।
प्रत्युवाच यतात्मानं मदनं सदय मुहु ॥११
आत्मजा मम सन्ध्येय यस्मादतनुसकाशत ।
लक्ष्यीकृतोऽहं भवता तत शापो मया कृत ॥१२
अधुना शान्तरोषोऽहं त्वां वदामि मनोभव ।
भवत शापशमन भविष्यति यथा तथा ॥१३
त्वं भस्म भूत्वा मदन भर्गलोचनवह्निना ।
तस्यैवानुग्रहात् पश्चाच्छरीर समवाप्स्यसि ॥१४
यदा हरो महादेव कुर्यादादारपरिग्रहम् ।
तदा स एव भवत शरीर प्रापयिष्यति ॥१५

कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी ! किसलिये मुझे अत्यन्त दारुण शाप दिया है। मैंने आपका कोई भी अपराध नहीं किया है। हे लोकों के स्वामिन् ! आप तो न्याय मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं ॥७॥ हे विभो ! मैं जो करता हूँ वह सभी आपके ही द्वारा कहा हुआ करता

हैं। वहाँ पर मुझे शाप देना उचित नहीं है क्योंकि मैंने अन्य कुछ भी कार्य नहीं किया है ॥८॥ आपने स्वयं ही मुझ से कहा था कि मैं तथा भगवान् विष्णु और भगवान शम्भु ये सभी तेरे शरों के गोचर है अर्थात् तेरे बाणों के लक्ष्य होंगे। यह जो कुछ भी आपने ही मुझसे कहा था। उसी आपके कथन की परीक्षा मैंने की थी। अर्थात् मैं ने जाँच की थी कि आपका वचन कहाँ तक सत्य है। हे ब्रह्माजी इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं है। हे जगत् के स्वामिन्! निरपराध मुझमें जो यह परम दारुण शाप दे दिया है अब इस शाप का आप शमन कीजिये ॥१०॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—समस्त जगतो के पति ब्रह्माजी ने उस कामदेव के इस वचन को सुनकर उस यतात्मा कामदेव से पुनः दया से से युक्त होकर यह प्रत्युत्तर दिया था ॥११॥ ब्रह्माजी ने कहा—यह सन्धया तो मेरी बेटी है क्योंकि इसके सकाश से ही आपने मुझको अपने बाणों का लक्ष्य बना लिया था। इसीं कारण से मैंने तुमको शाप दिया था ॥१२॥ इस समय में अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है। हे मनोभव अर्थात् कामदेव! अब मैं तुमसे कहता हूँ कि आपके शाप का जो मैंने दिया था जिस किसी भी तरह से शमन हो जायगा ॥१३॥ तू भगवान् शङ्कर के तीसरे नेत्र की आग्न से भस्मीभूत होकर भी फिर उनकी ही कृपा से पुन अपने शरीर की प्राप्ति कर लेगा ॥१४॥ जिस समय में भगवान् हर महादेव अपनी पत्नी का परिग्रह करेंगे उस समय में वे ही स्वयं तुम्हारे शरीर को प्राप्त करा देंगे ॥१५॥

एवमुक्त्वाथ मदनं ब्रह्मा लोकपितामहः।
अन्तर्दधे मुनीन्द्राणां मानसानाञ्च पश्यताम् ॥१६
तस्मिन्नन्तर्हिते शम्भु सर्वेषाञ्च विधातरि।
यथेष्टदेशं गतवान् ब्रह्मा मारुतरंहसा ॥१७
वेधस्यन्तर्हिते तस्मिन् गते शम्भौ निजास्पदम्।
दक्षः प्राहाथ कन्दर्पं पत्नीं तस्य निदर्शयन् ॥१८

मद्देहजेय कन्दर्प यद्रूप-गुणसयुता ।
एना गृह्णीष्व भार्यार्थं भवत सदृशी गुणै ॥१६
एपा तव महातेजा सर्वदा शहचारिणी ।
भविष्यति यथाकाम धर्मतो वशवर्तिनी ॥२०

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने कामदेव से इतने ही वचन कहकर मानस पुत्र समस्त मुनीन्द्रों के देखते हुये व अन्तर्हित होगये थे ॥१६॥ सबके विधाता उन ब्रह्माजी के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान् शम्भु भी वायु के समान वेग से अपने अभीष्ट देश को चले गये थे ॥ १७ ॥ उन ब्रह्माजी के अन्तर्हित हो जाने पर भगवान् शम्भु के भी अपने स्थान पर चले जाने के पश्चात् प्रजापति दक्ष उसकी पत्नी को निर्दार्शित हुए कामदेव से बोले— ॥ १८ ॥ दक्ष ने कहा—हे कामदेव ! यह मेरे देह से समुत्पन्न हुई मेरे ही रूप और गुणगण से समन्वित है यह आपके ही सदृश गुणों से युक्त है सो अब तुम इसको अपनी भार्या बनाने के लिये ग्रहण करलो ॥ १६ ॥ यह महान् तेज से युक्त सर्वदा आपके ही साथ चरण करने वाली और इच्छानुसार धर्म से वश में वर्त्तन करने वाली होगी ॥२०॥

इत्युक्त्वा प्रददौ दक्षो देहस्वेदाम्बुसम्भवाम् ।
कन्दर्पायाग्रत कृत्वा नाम कृत्वा रतीति ताम् ॥२१
ता वाक्ष्य मदनो रामा रत्याख्या सुमनोहराम् ।
आत्माशुगेन विद्धोऽसौ मुमोह रतिरञ्जित ॥२२
क्षणप्रभावदेकान्तगौरी मृगदृशो सदा ।
लोलापाग्यय तस्यैव मृगीव सदृशी वभौ ॥२३
तस्या भ्रू युगल वीक्ष्य सशय मदनोऽकरोत् ।
उन्मादकृन्मे कोदण्ड किं धात्रा स्यान्निवेशितम् ॥२४
कटाक्षाणामाशुगति दृष्ट्वा तस्या द्विजोत्तमा ।
आशुगत्व निजास्त्राणा श्रद्दधे न च चारुताम् ॥२५

तस्या स्वभावसुरभि धीरं श्वासानिलं तथा ।
आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयानिले ॥२६
पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा भ्रूलक्ष्मलक्षितम् ।
न निश्चिकाय मदनो भेदं तन्मुखचन्द्रयोः ॥२७
सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम् ।
रेजे चुचुकयुग्मेन भ्रमरेणेव सेवितम् ॥२८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—दक्ष प्रजापति ने यह कहकर अपनी देह के पसीने से उत्पन्न हुई उसको कामदेव के लिए उसके आगे करके दे दिया था और उसका नाम "रति" यह कहकर ही प्रदान किया था ॥ २१ ॥ कामदेव भी उस परम सुन्दरी रति नाम वाली वराङ्गना को देखकर उस रति में अत्यधिक अनुरक्त होकर अपने ही बाण के द्वारा विद्ध होकर मोह को प्राप्त हो गया था ॥ २२ ॥ क्षण मात्र में होने वाली प्रभा के ही समान वह एकान्त गौरी और मृगी के समान लोचनों वाली तथा चञ्चल अपाङ्गों से समन्वित मृगी की भाँति उसके ही तुल्य परम शोभित हुई थी ॥ २३ ॥ उस रति की दोनों भौंहों को देखकर कामदेव ने संशय किया था कि क्या विधाता ने मुझे उन्माद वाला बनाने के लिए यह कोदण्ड (धनुष) निर्माणित किया है ? ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उस रति के कटाक्षों की शीघ्र गमन करने वाली गति को देखकर अर्थात् शीघ्र ही हृदय को विद्ध कर देने वाली चाल को देखते हुए अपने अस्त्रों की शीघ्रगामिता और सुन्दरता पर उसकी श्रद्धा नहीं रह गयी थी। तात्पर्य यही है कि उसके (रति के) कटाक्षों की गति के सामने अपने बाणों की गति कामदेव को तुच्छ प्रतीत होने लग गयी थी ॥ २५ ॥ उस रति की स्वाभाविक रूप से सुगन्धित धीर श्वासों के वायु का आघ्राण करके कामदेव ने मलय पर्वत की गन्ध को लाने वाली वायु में श्रद्धा का त्याग कर दिया था। कथन का अभिप्राय यही है कि मलय मारुत भी उसके श्वासानिल के सामने हेय प्रतीत हो रही थी ॥ २६ ॥ पूर्णचन्द्र के समान भौंहों के चिन्ह से लक्षित उसके मुख

को देखकर कामदेव ने उसके मुख और चन्द्र मे किसी प्रकार के भेद का निश्चय नही किया था ॥ २७ ॥ उस रति के दोनो स्तनो का जोडा सुनहरी कमल की कलिका के जोडे के ही समान था। उन स्तनो के ऊपर जो कृष्ण वर्ण से युक्त चूचक थे (काली घुण्डियाँ) वे ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो कमल की कलिकाओ पर भ्रमर बैठे हुए रसपान कर रहे होंगे ॥२८॥

दृढपीनोन्नतघन-स्तनमध्याद्विलम्बिनीम् ।
आ नाभितो रोमराजि तन्वी चार्वायता शुभाम् ॥२९
ज्या पुष्पधनुष. काम• षट्पदावलिसम्भृताम् ।
विसस्मार च यस्मात्ता विगृह्यैना निरीक्षते ॥३०
गम्भीरनाभिरन्ध्रान्तश्चतुष्पार्श्वत्वगावृताम् ।
आननाब्जेक्षणद्वन्द्वमारक्तकमल यथा ॥३१
क्षीणामध्येन वपुषा निसर्गाष्टपदप्रभा ।
रत्नवेदी ददृशे कामेन द्विजसत्तमा: ॥३२
रम्भास्तम्भायतस्निग्ध तदुरुयुगल मृदु ।
विजशक्तिसम कामो वीक्षाञ्चक्रे मनोहरम् ॥३३
आरक्तपार्ष्णिपादाग्रप्रान्तभाग पदद्वयम् ।
अनुरागमय चित्र स्थित तस्या मनोभव ॥३४
तस्या. करयुग रक्तनखरै: किंशुकोपमै: ।
वृत्ताभिरङ्गुलिभिश्च सूक्ष्माग्राभिर्मनोहरम् ॥३५

अत्यन्त दृढ (कठोर) पीन (स्थूल) और उन्नत स्तनो के मध्य भाग से नीचे की ओर जाती हुई नाभि पर्यन्त रहने वाली—तन्वी सुन्दर—आयत और शुभ रोमो की पंक्ति को कामदेव ने भ्रमरो की पंक्ति रचना से सम्भृत (सयुत) पुष्प धनुष की ज्या (डोरी) को भी विस्मृत कर दिया था क्योंकि उसका ग्रहण करके इसको ही देखता रहता है ॥ ३० ॥ पुन उसके ही सुन्दर स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उसकी गम्भीर नाभि के रन्ध्र (छिद्र)

में अन्दर चारों ओर त्वचा से वह आवृत थी। उसका मुख कमल पर जो दो नेत्रों का जोडा था वह ऐसा प्रतीत होता था मानों थोड़ी लालिमा से युक्त कमल हो ॥ ३१ ॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! जिसका मध्य भाग क्षीण था ऐसे शरीर से वह रति निर्मग्न अष्टपद की प्रभा वाली थी। उसको कामदेव ने रत्नों द्वारा विरचित वेदी के ही समान देखा था।३२। उसके उरुओं का युगल अत्यन्त कोमल और कदली के स्तम्भ के समान आयत एवं स्निग्ध (चिकना) था। कामदेव ने उसको अपनी शक्ति के ही तुल्य मनोहर देखा था ॥ ३३ ॥ थोड़ी रक्तिमा से युक्त पार्ष्णि पादाग्र प्रान्त भाग से संयुत दोनों पदों के जोड़े को कामदेव ने उसमें स्थित अनुराग से परिपूर्ण चित्त देखा था ॥ ३४ ॥ उस रति के दोनों हाथों को जो ढाक के पुष्पों के समान लाल नाखूनों से युक्त थे और परम सूक्ष्म सुवृत्त अगुलियों से परम मनोहर थे देखा था ॥३५॥

इति दृष्ट्वा स्मरो मेने समास्त्रैर्द्विगुणीकृतै ।
मा मोहयितुमुतिद्यवना किमेषा द्विजसत्तमा ॥३६
तद्वहयुगल कान्त मृणालयुगलायतम् ।
मृदुस्निग्ध रराजातिकान्ति तोयप्रवाहवत् ॥३७
नीलनीरदसङ्काश केशपाशा मनोहर ।
चमरीवालभारवद्विभाति स्म स्मरप्रिय ॥३८
ता वीक्ष्य मदनो देवीं रतिमतिमनोहराम् ।
कान्तितोयौघसम्पूर्णा कुचवक्त्राब्जकुड्मलाम् ॥३९
वक्त्रपद्मा चारुबाहु-मृणालीशकलान्विताम् ।
भ्रू युग्मविभ्रमद्व्रात-तनूर्मिपरिराजिताम् ॥४०
कटाक्षपातभृङ्गौघा नेत्रनीलोत्पलान्विताम् ।
तनुलोमालिशैवाला मनोद्रुमविशातिनीम् ॥४१
निम्ननाभिह्रदा दक्षप्रालेयाद्रिसमुद्भवाम् ।
गङ्गामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचन ॥४२

उवाच स तदा दक्ष कामो मोदभरान्वित ।
विस्मृत्य शापञ्च तदा विधिदत्तं सुदारुणम् ॥४३

हे द्विज सत्तमो ! यह देखकर कामदेव ने यह मान लिया था कि मेरे अस्त्रा से द्विगुणित हुए अस्त्रों के द्वारा क्या यह मुझको मोहित करने के लिये उद्यत हो रही है ? ॥ ३६ ॥ उसकी दोनों बाहुओं का जोड़ा मृणाल के जोड़े के समान आयत अधिक सुन्दर था। वह अत्यन्त कान्ति मयुत जल के प्रवाह के समान मृदु और स्निग्ध शोभित हो रहा था ॥ ३७ ॥ उसका केशों का पाश अधिक मनोहर नील वर्ण वाले मेघ के सदृश था और कामदेव का प्रिय वह चमरी गौ के पूँछ के बालों के भार के समान विभात होता है ॥ ३८ ॥ उस अत्यधिक मनोहर रति देवी का कामदेव अवलोकन करके विकसित लोचनों वाला हो गया था। उसी रति की विशेष स्वरूप शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह रति देवी अपनी कान्ति रूपी जल ओघ (समूह) से सम्पूर्ण थी—वह अपने कुचों के मुख कमल की कलिका वाली थी—पद्म के सदृश मुख से समन्वित थी—सुन्दर बाहुरूपी मृणालीश (चन्द्र) की कला से संयुत थी—यह रति देवी दोनों भौंहों के युग्म के विभ्रमों के समूह से नर्मियों से परिराजित थी—वह कटाक्ष पातरूपी भ्रमरों के समुदाय वाली थी—यह नेत्ररूपी नील कमलों से समन्वित थी—वह शरीर की लोमालि के शैवाल से युक्त थी—वह मनरूपी द्रुमों के विपातन करने वाली थी—वह रति गम्भीर नाभिरूपी ह्रद से युक्त थी—वह दक्षरूपी हिमालय गिरि से समुत्पन्न हुई गङ्गा की भाँति महादेव की तरह उत्फुल्ल लोचन ने ग्रहण किया था ॥ ३६—४२ ॥ उस समय में मोद के भार से युत आनन वाले कामदेव ने विधाता के द्वारा दिये हुए सुदारुण शाप को भूल कर प्रजापति दक्ष से कहा था ॥ ४३ ॥

अनया सहचारिण्या सम्यक् सुन्दररूपया।
समर्थोमोहितुं शम्भुं किमन्यैर्जन्तुभिर्विभो ॥४४

यत्र यत्र मया लक्ष्यं क्रियते धनुषोऽनघ ।
तत्रानयापि चेष्टव्यं मायया रमणाह्वया ॥४५
यदा देवालयं यामि पृथिवीं वा रसातलम् ।
तदैषाप्यस्तु सध्रीची सर्वदा चारुहासिनी ॥४६
यथा पद्मालया विष्णोर्जलदानां यथा तडित् ।
तथा ममैषा भविता प्रजाध्यक्षसहायिनी ॥४७
इत्युक्त्वा मदनो देवीं रतिं जग्राह सोत्सुकः ।
सागरादुत्थितां लक्ष्मीं हृषीकेश इवोत्तमाम् ॥४८
रराज स तया सार्द्धं भिन्नपीतप्रभः स्मरः ।
जीमूत इव सन्ध्यायां सौदामिन्या मनोज्ञया ॥४९
इति रतिपतिरुच्चैर्मोदयुक्तो रतिं तां
हृदि परिजगृहे यो योगदर्शीव विद्याम् ।
रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य तोषञ्च लेभे
हरिमिव कमलोत्था पूर्णचन्द्रोपमास्या ॥५०

कामदेव ने कहा—हे विभो ! सभी भाँति परमाधिक स्वरूप लावण्य से समन्वित इस सहधारिणी के द्वारा मैं भगवान् शम्भु को मोहित करने की क्रिया में समर्थ हो सकूँगा फिर अन्य जन्तुओं से क्या प्रयोजन है ॥ ४४ ॥ हे अनघ अर्थात् निष्पाप ! जहाँ-जहाँ पर मेरे द्वारा धनुष का लक्ष्य किया जाता है वहीं-वहीं पर इसके द्वारा भी रमण नामक माया से चेष्टा की जायगी ॥ ४५ ॥ जिस समय में मैं देवों के आलय अर्थात् स्वर्ग में जाता हूँ अथवा पृथिवी में या रसातल में गमन किया करता हूँ उसी समय में यह सध्रीची भी सर्वदा चारु हास वाली साथ करेगी । जिस प्रकार से लक्ष्मी के साथ गमन करने वाली होती है और मेघ के साथ विद्युत रहा करती है उसी भाँति यह मेरी प्रजाध्यक्ष सहायिनी होगी ॥ ४६—४७ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—कामदेव ने इस रीति से यह कह कर रति देवी को बहुत ही उत्सुकता के सहित

होकर ग्रहण किया था जिस प्रकार से सागर से समुत्थित उत्तमा लक्ष्मी को भगवान् हृषीकेश ने ग्रहण कर लिया था ॥४८॥ भिन्न पीत प्रभा वाला कामदेव उस रति के साथ शोभित हुआ था जिस प्रकार से सन्ध्या के समय में परम मनोहर सौदामिनी के साथ मेघ की शोभा हुआ करती है ॥४६॥ इस रीति से बहुत ही अधिक मोद से युक्त रति का पति कामदेव ने उस रति को अपने हृदय में लिया जो योगदर्शी के ही समान परिग्रहण किया था। रति ने भी परम श्रेष्ठ पति को को प्राप्त करके परमाधिक सन्तोष को प्राप्त किया था अर्थात् अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई थी। कमल से समुत्पन्ना पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली लक्ष्मी भगवान् हरि को प्राप्त करके जैसे सन्तुष्ट हो गयी थी ॥५०॥



॥ वसन्त आगमन वर्णन ॥

ततः प्रभृति धातापि यदैवान्तर्हितः पुरा ।
चिन्तयामास सततं शम्भुवाक्यविषादितः ॥१
कान्ताभिलाषामात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत् ।
मुनीनां पुरतः कस्मात् स दारान् संग्रहीष्यति ॥२
का वा भविन्नी तज्जाया का च तन्मनसि स्थिता ।
योगमार्गमवष्टभ्यः तस्य मोहं करिष्यति ॥३
मन्मथोऽपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने ।
नितान्तयोगी रामाणां नामापि सहते न सः ॥४
अगृहीतेषु दारेषु हरेण कथमादितः ।
मध्येऽन्ते च भवेत् सृष्टिस्तद्वशो न न्यकारितः ॥५
केचिद्भविष्यन्ति भुवि मया वाध्या महाबलाः ।
केचिद्विष्णोर्वारणीयाः केचिच्छम्भोरुपायतः ॥६

संसारविमुखे शम्भौ तथैकान्तविरागिणि ।
अस्मादृते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशयः ॥७

महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—तभी से लेकर ब्रह्माजी भी जिस समय में ही पहिले अन्तर्हित हुये थे वे शम्भु भगवान् के वाक्य रूपी विष से अर्दित अर्थात् परिपीड़ित होकर चिन्तन किया करते थे ॥१॥ भगवान् शम्भु ने मेरी केवल कान्ता के प्रति अभिलाषा को ही देख कर मुझे बुरा कह दिया था वही शम्भु अब मुनिगणों के ही समक्ष म दाराओं को किस तरह से ग्रहण करेंगे ॥२॥ अथवा कौन सी नारी उन शम्भु की पत्नी होगी । और कौन सी नारी है जो उनके मन म ध्यान बनाकर अवस्थित हो रही है जो योग के मार्ग का अवष्टम्भ करके उसके मोह को करेगी ॥३॥ उनके मोहन करने म कामदेव भी समर्थ नहीं हो सकेगा । वे तो नितान्त योगी हैं वे वराङ्गनाओं के नाम को भी सहन नहीं किया करते हैं ॥४॥ मध्य और अन्त म सृष्टि होती है उनका वध अन्य कारित नहीं है अर्थात् अन्य किसी के भी द्वारा नहीं किया जा सकता है ॥५॥ इस भूमण्डल में कोई ऐसे होवें जो महान् बलवान् मेरे द्वारा वाध्य होवें । कुछ भगवान् विष्णु के वारणीय है और उपाय से कुछ शम्भु के हैं ॥६॥ इस सांसारिक भोगों के सुखों से विमुख तथा एकान्त विरागी भगवान् शम्भु के विषय में इससे अन्य कोई भी कर्म नहीं करेगा—इसमें संशय नहीं है ॥७॥

चिन्तयन्निति लोकेशो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
पुनर्ददर्श भूमिष्ठान् दक्षादीन् वियति स्थितः ॥८
रतिद्वितीयं मदनं मोदयुक्तं निरीक्ष्य च ।
पुनस्तत्र गतः प्राह सान्त्वयन् पुष्पसायकम् ॥९
अनया सहचारिण्या राजसे त्वं मनोभव ।
एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम् ॥१०
यथा श्रिया हृषीकेशो यथा तेन हरिप्रिया ।
क्षणदा विधुना युक्ता तया युक्तो यथा विधुः ॥११

तथैव युवयोः शोभा दाम्पत्यञ्च पुरस्कृतम् ।
अतस्त्वं जगतः केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि ॥१२
जगद्धिताय वत्स त्वं मोहयस्व पिनाकिनम् ।
यथा सुखमना शम्भुः कुर्य्याद्दारपरिग्रहम् ॥१३
विजने स्निग्धदेशे च पर्वतेषु सरित्सु च ।
यत्र यत्र प्रयातीशस्तत्र तत्रानया सह ॥१४

लोकों के पितामह लोकेश ब्रह्माजी वहीं चिन्तन करते हुए वियद् अर्थात् आकाश में स्थित होते हुए उन्होंने भूमि में स्थित दक्ष आदि को पुत्र आदि को देखा था ॥८॥ रति के साथ मोह से समन्वित कामदेव को देखकर ब्रह्माजी फिर वहाँ पर गये और कामदेव को सान्त्वना देते हुए उससे बोले ॥९॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे मनोभव अर्थात् कामदेव ! आप इस अपनी सहचारिणी पत्नी रति के साथ में शोभायमान हो रहे हैं और यह भी आप पति के साथ संयुत होकर अत्यधिक शोभित हो रही है ॥१०॥ जिस रीति से लक्ष्मी देवी से भगवान् हृषीकेश और जिस प्रकार से हरिप्रिया उन भगवान् विष्णु से शोभायुक्त होती है । जैसे चन्द्रमा से रात्रि और निशा से चन्द्र युक्त शोभायमान होता है ठीक उसी भाँति आप दोनों की शोभा होती है और आपका दाम्पत्य पुरस्कृत होता है । अतएव आप जगत् के केतु हैं और विश्व केतु हो जायेंगे । ॥११॥१२॥ हे वत्स ! अब तुम इस समस्त जगत् के हित सम्पादन करने के लिये पिनाकधारी भगवान् शम्भु को मोहित करदो जिससे सुख के मनवाले भगवान् शम्भु दारा का परिग्रह कर लेवें ॥१३॥ किसी भी विजन देश में—स्निग्ध प्रदेश में—पर्वतों पर और सरिताओं में जहाँ-जहाँ पर ईश गमन करें वहाँ-वहाँ पर ही इनके साथ उनको मोह युक्त कर दो ॥१४॥

मोहयस्व यतात्मानं वनिताविमुखं हरम् ।
त्वदृते विद्यते नान्यः कश्चिदस्य विमोहकः ॥१५

भूते हरे सानुरागे भवतोऽपि मनोभव ।
शापोपशान्तिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु ॥१६
सानुरागो वरारोहां यदोच्छति मनोभव ।
तदा तवोपभोगाय स त्वां सम्भावयिष्यति ॥१७
तस्माज्जगद्धिताय त्वं यतस्व हरमोहने ।
शिवस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम् ॥१८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
उवाच मन्मथस्तथ्यं ब्रह्माणं जगतो हितम् ॥१९
करिष्येऽहं तव विभो वचनाच्छम्भुमोहनम् ।
किन्तु योषिन्महास्त्रं मे तत्र कान्तां प्रभो सृज ॥२०
मया सम्मोहिते शम्भौ यया तस्यानुमोहनम् ।
कार्यं मनोरमा रामा तां निदेशय लोकभृत् ॥२१
तामहं नहि पश्यामि यया तस्यानुमोहनम् ।
कर्त्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं तथा कुरु ॥२२

इस वनिता से विमुख भगवान् हर को जो कि पूर्णतया संयत आत्मा वाले हैं मोहित कर दो। तुम्हारे बिना अर्थात् केवल तुमको छोड़कर अन्य कोई भी इन भगवान् शम्भु को विमोहित करने वाला त्रिभुवन में नहीं है ॥१५॥ हे मनोभव! भगवान् हर के सानुराग हो जाने पर अर्थात् दाम्पत्य जीवन के सुखभोगों के अभिलाषी होने पर आपके शाप की भी उपशान्ति हो जायगी। इस कारण से आप इस समय में अपना ही हित करो ॥१६॥ हे कामदेव! अनुराग से युक्त होकर जब शम्भु वरारोहा की इच्छा करें तो उस अवसर पर तुम्हारे उपभोग के लिये वे तुमको सम्भावित अवश्य ही करेंगे ॥१७॥ इसलिये जगत् की भलाई करने के लिये तुम भगवान् हर के मोहन करने के कर्म में पूर्ण यत्न करो। महेश्वर को मोहित करके आप शिव के केतु हो जाओ ॥१८॥ मार्कण्डेय मुनिवर ने कहा—परमात्मा ब्रह्माजी के इस

वचन का श्रवण करके कामदेव ने ब्रह्माजी से जगत् का हितकर जो तथ्य था वह कहा था—कामदेव ने कहा—हे विभो ! मैं आपकी आज्ञा वचन से अवश्य ही शम्भु का मोहन करूँगा किन्तु हे प्रभो ! योषित् रूपी महान अस्त्र जो है उस कान्ता को मेरे लिये आप सृजित कर दीजिये ॥१९॥२०॥ मेरे द्वारा शम्भु के सम्मोहित करने पर जिसके द्वारा उसका अनुमोहन करना चाहिये हे लोकभृद ! उस परम रमणीय रामा का आप निदेशन कीजिये ॥२१॥ उस प्रकार की रामा को मैं नहीं देख रहा हूँ जिसके द्वारा उन का अनुमोहन होवे। अब हे धाता ! कर्त्तव्य यही है कि उसमें कुछ उसी तरह का उपाय करें ॥२२॥

एवं वादिनि कन्दर्पे धाता लोकपितामह ।
कुर्यां सन्मोहनी योषामिति चिन्ता जगाम ह ॥२३
चिन्ताविष्टस्य तस्याथ निःश्वासो यो विनिःसृत ।
तस्माद्वसन्त सजात पुष्पव्रातविभूषित ॥२४
चूताङ्कुरान् मुकुलितान् बिभ्रद्भ्रमरसहतिम् ।
किंशुकान् सारसान् रेजे प्रफुल्ल इव पादप ॥२५
शोणराजीवसकाश फुल्लतामरसेक्षण ।
सन्ध्योदिताखण्डशशिप्रतिमास्य सुनासिक ॥२६
शङ्खवच्छ्रवणावर्त श्यामकुञ्चितमूर्द्धज ।
सन्ध्यांशुमालिसदृश-कुण्डलद्वयमण्डित ॥२७
प्रमत्तमातङ्गगतिर्विस्तीर्णहृदयस्तन ।
पीनस्थूलायतभुज कठोरकरयुग्मक ॥२८

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—कामदेव के इस प्रकार से बोलने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने यही चिन्ता की थी कि मुझे ऐसी सम्मोहनी योषा (नारी) करनी चाहिये ॥२३॥ इस चिन्ता में समाविष्ट उन ब्रह्माजी के जो इसके अनन्तर निःश्वास विनिःसृत हुआ था उसी से वसन्त ने जन्म धारण किया था जो कि पुष्पों के समुदाय से विभूषित

था ॥२४॥ भ्रमरों की संहति (समूह) को धारण करने वाले मुकुलित आम्र के अंकुरों को—सरस किंशुकों (ढाक के पुष्प) को साथ लिये हुये प्रफुल्लित पादप (वृक्ष) की भाँति शोभित हुआ था ॥२५॥ उसी वसन्त की स्वरूप—शोभा का वर्णन करते हुये कहा जाता है कि वह रक्त कमल के सदृशाया तथा विकसित तामरस के समान उसके नेत्र थे—सन्ध्या की वेला में उदीयमान अखण्ड चन्द्रमा के समान उसका मुख था और उसकी परम सुन्दर नासिका थी ॥२६॥ शख के सदृश श्रवणों के आवर्त्त वाला था तथा श्याम वर्ण के कुञ्चित (घुँघराले) केशों से शोभित था सन्ध्या के समय में अंशुमाली के तुल्य दोनों कुण्डलों से विभूषित था ॥ २७ ॥ उसको गति मदमस्त हाथी के समान थी और उसका वक्ष स्थल विस्तीर्ण था तथा पीन स्थूल और आयत भुजाओं से सयुत था एव उसके दोनों करों का जोड़ा अतीव कठोर था ॥२८॥

सुवृत्तोरुकटीजघ कम्बुग्रीवोन्नतांसक ।
गूढजत्रु पीनवक्षा सम्पूर्ण. सर्वलक्षणं ॥२६
तादृशेऽस्य समुत्पन्ने सम्पूर्णे कुसुमाकरे ।
ववौ वायु. स-सुरभि. पादपा अपि पुष्पिता. ॥३०
पिकाश्च नेदु शतश पञ्चम मधुरस्वरा ।
प्रफुल्लपद्मा अभवन् सरस्य पुष्टपुष्करा. ॥३१
तमुत्पन्नमवेक्ष्याथ तथा तादृसमुत्तमम् ।
हिरण्यगर्भो मदन जगाद मधुरं वच ॥३२
एष मन्मथ ते मित्रं सदा सहचरो भवेत् ।
आनुकूल्यं तव कृते सर्वदैव करिष्यति ॥३३
यथाग्ने श्वसनो मित्र सर्वत्रोपकरोति च ।
तथायं नवनो मित्र सदा त्वामनुयास्यति ॥३४
वशनेरन्तहेतुत्वाद्वसन्ताख्यो भवत्वयम् ।
गयानुगमन कर्म तथा लोकानुरञ्जनम् ॥३५

उसके उरु—कटि और जघायें सुवृत्त अर्थात् सुडौल थे—उसकी ग्रीवा कम्बु के तुल्य थी एव उसकी नासिका उन्नत थी—वह गूढ जत्रुओं वाला—स्थूल वक्ष स्थल से युक्त था। इस रीति से समस्त लक्षणों से वह सर्वाङ्ग सम्पूर्ण था ॥२६॥ उसके अनन्तर उस प्रकार के सम्पूर्ण कुसुमाकर (वसन्त) के समुत्पन्न हो जाने पर सुगन्ध से संयुत वायु वहन करने लगी और सभी वृक्ष पुष्पित हो गये थे ॥३०॥ कोयलें मधुर स्वरों से समन्वित होती हुई सैकडों बार पञ्चम स्वर में बोलने लगी थी—विकसित कमलों वाली सरोवरें पुष्पयुग्मों से युक्त हो गयी थी ॥३१॥ इसके अनन्तर हिरण्य गर्भ अर्थात् ब्रह्माजी उस प्रकार के अतीव उत्तम उसको समुत्पन्न हुआ देखकर कामदेव से मधुर वचन बोले ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे कामदेव ! यह आपका मित्र उत्पन्न होकर समुपस्थित है जो कि सर्वदा ही तुम्हारे ही साथ सञ्चरण करने वाला रहेगा और यह तुम्हारे लिये सर्वदा ही अनुकूलता का व्यवहार करेगा ॥३३॥ जिस रीति से अग्नि का मित्र वायु है जो उसका सभी जगह पर उपकार किया करता है उसी भाँति यह आपका मित्र है जो सदा ही आपका ही अनुगमन करेगा ॥ ३४ ॥ वसति के अन्त का हेतु होने से ही यह वसन्त नाम वाला होयगा। इसका धर्म यही है कि सदा आपका अनुगमन करे तथा लोकों का अनुरञ्जन किया करे ॥३५॥

असौ वसन्त शृंगारो वसन्ते मलयानिल ।
भवन्तु सुहृदो भावा सदा त्वद्वशवर्तिन ॥३६
विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतु षष्टिकलास्तथा ।
कुर्वन्तु रत्या सौहृद्य सुहृदस्ते यथा तव ॥३७
एभि सहचरं काम वसन्तप्रमुखैर्भवान् ।
अनया सहचारिण्या त्वद्युक्तपरिवारया ॥३८
मोहयस्व महादेव कुरु सृष्टि सनातनीम् ।

यथेष्टदेश गच्छ त्व सर्वे सहचरैर्वृत ।
अह ता भावयिष्यामि यो हर मोहयिष्यति ॥३६
एवमुक्तोऽथ मदन सुरज्येष्ठेन हर्षित ।
जगाम सगणस्तत्र सपत्न्यनुचरस्तदा ॥४०
दक्ष प्रणम्य तान् सर्वान् मानसानभिवाद्य च ।
यत्रास्ति शम्भुर्गतवास्थान मन्मथस्तदा ॥४१
तस्मिन् गते सानुचरेऽथ मन्मथे
शृंगारभावादियुते द्विजोत्तमा ।
प्रोवाच दक्ष मधुर पितामह
साद्धं मरीच्यत्रिमुखैर्मुनीश्वर ॥४२

यह वसन्त शृङ्गार है और वसन्त मे मलयानिल वहन किया करता है। आपके वश मे ही वर्त्तन करने वाले भाव सदा सुहृद होवें। ॥ ३६ ॥ बिब्बोक आदि हाव तथा चौंसठ कलाऐं जिस प्रकार से आपके सुहृद हैं वैसे ही रति देवी के भी सौहार्द भाव को करेंगे अथवा किया करे ॥ ३७ ॥ हे कामदेव ! अब आप इन सहचरो के साथ जिनमे वसन्त प्रधान है और तुम्हारे ही उपयुक्त परिवार स्वरूपा इस सहचारिणी रति के साथ मिलकर अब महादेव को मोहित करो और सनातनी सृष्टि की रचना कर डालो। इन समस्त सहचरो के साथ जो भी इष्ट हो उसी देश मे चले जाओ मैं उसको भावित करूँगा जो हरि को मोहित कर देगी ॥ ३८ ॥ इस रीति से सुरो मे सबसे बड़े ब्रह्माजी के द्वारा कहे गये कामदेव परम हर्षित होकर अपने गणो के सहित तथा पत्नी और अनुचरों के साथ उस समय मे वहाँ पर चला गया था ।४०। इसके पश्चात् दक्ष का तथा समस्त मानस पुत्रो को अभिवादन करके उस समय मे कामदेव वहाँ पर चला गया था जहाँ पर भगवान् शम्भु है ॥ ४१ ॥ उन अनुचरो के सहित कामदेव के चले जाने पर जो कि शृङ्गार भाव आदि से संयुत था हे द्विजोत्तमो ! पितामह ने दक्ष

प्रजापति से मरीचि—अत्रि प्रमुख मुनीश्वरों के साथ में कहा था ॥ ४२ ॥



॥ काली स्तुति वर्णन ॥

अथ ब्रह्मा तदोवाच दक्षाय सुमहात्मने ।
मरीचिप्रमुखेभ्यश्च वचनञ्चेदमञ्जसा ॥१
भविनी शम्भुपत्नी का का त सम्मोहयिष्यति ।
इति सञ्चिन्तयन् कान्ता न स्थिरीकर्तुमुत्सहे ॥२
विष्णुमायामृते दक्ष महामाया जगन्मयीम् ।
नान्या तन्मोहकर्त्री स्यात् सन्ध्यासाविष्णुमामृते ॥३
तस्मादहं विष्णुमाया योगनिद्रा जगत्प्रसूम् ।
स्तौमि सा चारुरूपेण शङ्करं मोहयिष्यति ॥४
भवास्तु दक्ष तामेव यजता विश्वरूपिणीम् ।
यथा तव सुता भूत्वा हरजाया भविष्यति ॥५
एवं वचनमाकर्ण्य ब्रह्मण परमात्मन ।
उवाच दक्ष स्त्रष्टारं मरीच्यादिभिरीरितं ॥६
यथात्थ भगवस्तथ्य त्वं लोकेश जगद्धितम् ।
नत् करिष्यामहे सम्यग् यथा स्यात्तन्मनोहरा ॥७
तथा तथा भविष्यामि यथा मम सुता स्वयम् ।
विष्णुमाया भवेत् पत्नी भूत्वा शम्भोर्महात्मन ॥८

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उस समय में ब्रह्माजी ने सुमहान् आत्मा वाले दक्ष के लिए और मरीचि प्रमुख मुनियों से अञ्जसा यह वचन कहा था ॥१॥ ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम्भु की पत्नी होने वाली कौन है और उनको मोहित कर देगी ?—इसी का चिन्तन करते हुए उन्होंने शिव की कान्ता के विषय में स्थिर करने का

उत्साह नहीं किया था ॥ २ ॥ हे दक्ष जगन्मयी—महामाया—विष्णु की माया के बिना तथा सन्ध्या—सावित्री और उमा के अतिरिक्त अन्य कोई भी उनका सम्मोहन कर देने वाली नहीं है ॥३॥ इसी कारण से मैं इस जगत् को प्रसूत करने वाली भगवान् विष्णु की माया योग निद्रा का स्तवन करता हूँ क्योंकि वही अपने सुन्दरतम स्वरूप से भगवान् शङ्कर को मोहित करेगी ॥४॥ हे दक्ष ! आप तो उसी विश्व के स्वरूप वाली का यजन करो जिसके करने से वह आपकी पुत्री होकर भगवान् हरि की पत्नी होगी ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार के परमात्मा ब्रह्माजी के वचन का श्रवण करके मरीचि आदि के द्वारा ईरित दक्ष ने सृजन करने वाले ब्रह्माजी से कहा था ॥ ६ ॥ दक्ष प्रजापति ने कहा—हे लोकों के ईश ! हे भगवन् ! जो परम तथ्य और जगत् का हितकर कहा है वह मैं भली भाँति करूँगा जिससे उसके मन को हरण करने वाली समुत्पन्न हो जावे ॥ ७ ॥ मैं ठीक उसी भाँति का हो जाऊँगा जिस-जिस प्रकार से मेरी पुत्री स्वयं ही महात्मा शम्भु की पत्नी होकर विष्णु की माया हो जावे ॥८॥

एवमेवेति तैरुक्त्वा मरीचिप्रमुखैस्तदा ।
यष्टुं दक्षः समारेभे महामाया जगन्मयीम् ॥६
क्षीरादादुत्तरतीरस्यस्तां कृत्वा हृदयस्थिताम् ।
तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोऽम्बिकाम् ॥१०
दीव्यवर्षेण दक्षोऽपि सहस्राणां त्रयं समा ।
तपश्चचार नियतः सयतात्मा दृढव्रतः ॥११
मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक् ।
एवं निनाय तत्कालं चिन्तयंस्तां जगन्मयीम् ॥१२
गते दक्षे तपः कर्तुं ब्रह्मा सर्वजगत्पतिः ।
जगाम मन्दराभ्याशं पुण्यात्पुण्यतरं वरम् ॥१३
तत्र गत्वा जगद्धात्रीं विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
तुष्टाव पञ्चभिरर्थ्याभिरेनां शतं समाः ॥१४

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस वेला में मरीचि जिन में प्रमुख थे उन सभी ऋषियों ने इसी प्रकार होवे यही कहा था फिर प्रजापति दक्ष ने जगत् से परिपूर्ण महामाया का अभ्यर्थन करना आरम्भ कर दिया था ।।६।। क्षीरोद के उत्तर में नीर में स्थित होकर उस देवी को अपने हृदय में विराजमान करके अर्थात् उसका अपने मन में पूर्णतया ध्यान करके प्रत्यक्ष रूप से अम्बिका के अवलोकन करने के लिए तपस्या का समाचरण करने के लिये आरम्भ कर दिया था ।।१०।। नियत होकर संयत आत्मा वाले और सुदृढ़ व्रत में संयुत होते हुए तप किया था। उस तप करने के समय में आरम्भ में केवल वायु का आहार फिर बिना आहार किये हुए और जल का ही केवल आहार तथा पत्तों का आहार करने वाला वह दक्ष रहा था। उस तप करने के समय को उस जगन्मयी उमका चिन्तन करते हुए ही व्यतीत किया था ।। ११, १२ ।। दक्ष को तप करने के लिये चले जाने पर समस्त जगत् के पति ब्रह्माजी परम पवित्र से भी पवित्र तम परम श्रेष्ठ मन्दराचल के समीप में चला गया था। वहाँ पहुँच कर जगत् के धात्री जगन्मयी विष्णु माया का वचनों के द्वारा और अर्घ्यों से एक तान होकर सौ वर्ष तक स्तवन किया था ।।१३—१४।।

विद्याविद्यात्मिका शुद्धा निरालम्बा निराकुलाम् ।
स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं स्थूलाणीयस्वरूपिणीम् ।।१५
यस्या उदेति च जगत्प्रधानाद्य जगत्परम् ।
यस्यास्तदपभूता त्वा स्तौमि निद्रा सनातनीम् ।।१६
त्वं चितिः परमानन्दा परमात्मस्वरूपिणी ।
शक्तिस्त्वं सर्वभूताना त्वं सर्वेषां च भावनी ।।१७
त्वं सावित्री जगद्धात्री त्वं सन्ध्या त्वं रतिर्धृतिः ।
त्वं हि ज्योतिः स्वरूपेण संसारस्य प्रकाशिनी ।।१८
तथा तमःस्वरूपेण च्छादयन्ती सदा जगत् ।
त्वमेव सृष्टिरूपेण संसारपरिपूरणी ।।१६

स्थितिरूपेण च हरेर्जगता च हितैषिणी ।
तथैवान्तस्वरूपेण जगतामन्तकारिणी ॥२०
त्व मेधा त्व महामाया त्व स्वधा पितृमोदिनी ।
त्व स्वाहा त्व नमस्कार-वषट्कारौ तथा स्मृतिः ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—विद्या और अविद्या के स्वरूप वाली—शुद्धा बिना आलम्ब वाली —निराकुला जगत् की धात्री और स्थूल और अणीय स्वरूप से समन्विता देवी का स्तवन करता हूँ ॥ १५ ॥ जिससे यह जगत् उदित होता है जो प्रधान नामक और जगत् से पर है। जिससे उसी के अगभूता सनातनी निद्रा आप हैं ऐसी आपका मैं स्तवन करता हूँ ॥ १६ ॥ आप परमानन्द स्वरूपा चिति है, आप परमात्मा के स्वरूप वाली हैं—आप समस्त प्राणियों की शक्ति हैं और आप सबको पावन करने वाली है ॥ १७॥ आप सावित्री हैं—आप इस जगत् की धात्री है—आप ही सन्ध्या, रति और धृति है और आप ही ज्योति के स्वरूप के द्वारा इस ससार के प्रकाश करने वाली है ॥ १८ ॥ तथा आप अपने तम के स्वरूप से सदा ही इस जगत् का छादन करती हुई स्थित रहा करती हैं। आप ही सृष्टि के सृजन के स्वरूप से इस ससार को परिपूर्ण करने वाली है ॥ १९॥ आप मेधा हैं—आप महामाया हैं—आप पितृगणों मोह देने वाली स्वधा हैं—आप स्वाहा है तथा नमस्कार और वषट्कार एवं स्मृति है॥२०-२१॥

त्व पुष्टिस्त्व धृतिर्मैत्री करुणा मुदिता तथा ।
त्वमेव लज्जा त्व शान्तिस्त्व कान्तिर्जगदीश्वरी ॥२२
महामाया त्वच स्वाहा स्वधा च पितृदेवता ।
या सृष्टिशक्तिरस्माक स्थितिशक्तिश्च या हरे ॥२३
अन्तशक्तिस्त्वयेशानी सा त्व शक्ति सनातनि ॥२४
एका त्व द्विविधा भूत्वा मोक्षससारधारिणी ।
विद्याविद्यास्वरूपेण स्वप्रकाशाप्रकाशन ॥२५

त्व नित्या त्वमनित्या च त्व चराचरमोहिनी ।
त्व नित्या त्वमनित्या च त्व चराचरमोहिनी ।
त्व सन्धिनी सर्वयोग सागोपागविभाविनो ॥३२
चिन्ता कीर्तिर्यतोना त्व त्व तदष्टागसयुता ।
त्व खड्गिनी शूलिनी च चक्रिणी घोररूपिणी ॥३३
त्वमीश्वरी जनाना त्व सर्वानुग्रहकारिणी ।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्व विश्वयोनिरयोनिजा ।
अनन्ता सर्वजगतस्त्वमेवंकान्तकारिणी ॥३४
नितान्तनिर्मला त्व हि तामसोति च गोयसे ।
त्व हिसा त्वमहिसा च त्व काली चतुरानना ॥३५

जो मूर्त्ति वितता मवधरित्री और क्षिति का धारण करती हुई है, हे विश्वम्भरे ! वह लोक मे मदा शक्ति और भूति का प्रदान करने वाली आप ही है ॥ २९ ॥ आप लक्ष्मी —चेतना शान्ति और सनातनी पुष्टि हैं । आप काल रात्रि हैं—आप मुक्ति है आप शान्ति—प्रज्ञा और स्मृति है ॥ ३० ॥ हे मुक्ति और मोक्ष के प्रदान करने वाली ! आप इस ससार रूपी महान् सागर स उत्तरण करन के लिये तरणी अर्थात् नौका स्वरूपा है । आप प्रसन्न हृदय ! आप समस्त जगतो की गति एव मति है जो सदा ही रहा करती है ॥ ३१ ॥ आप नित्या हैं और आप चराचरों को मोहित करने वाली अनित्या भी है । आप सब योगो के साङ्गोपाङ्ग विभावना करने वाली सन्धिनी है । आप यतियो की चिन्ता और कीर्ति है और आप ही उनके आठ अङ्गो से समन्विता है । आप खड्गिनी, शूलिनी चक्रिणी और घोर रूप वाली है ॥३२—३३॥ आप जनो की ईश्वरी है —आप सब पर अनुग्रह करने वाली है । आप इस विश्व की आदि है, आप अनादि है अर्थात् आप ऐसी है जिनका कोई आदि है ही नही । आप इस विश्व की योनि है अर्थात् विश्व के उत्पन्न करने वाली है और आप स्वयं अयोनिजा है अर्थात् आपके समुत्पन्न

करने वाला कोई नहीं है। आप अनन्ता हैं अर्थात् ऐसी हैं जिनका कोई अन्त ही नहीं है। आप सब जगतों की एकान्तकारिणी हैं अर्थात् समस्त जगतों की रचना करने वाली हैं ॥३४॥ आप नितान्त निर्मला हैं और आपको तामसी—ऐसा माया जाता है। आप हिंसा और अहिंसा हैं तथा आप चार मुखों से संयुत वाली हैं ॥३५॥

त्वं परा सर्वजननी दमनी दामिनी तथा।
त्वय्येव लीयते विश्वं भाति तत्त्वंतद्विभर्ति च ॥३६
त्वं सृष्टिहीना त्वं सृष्टिस्त्वमकर्णापि सश्रुतिः।
तपस्विनी पाणिपादहीना त्वं नितरां प्रहा ॥३७
त्वं द्यौस्त्वमापस्त्वं ज्योतिर्वायुस्त्वं च नभो मनः।
अहंकारोऽपि जगतामष्टधा प्रकृतिः कृतिः ॥३८
जगन्नाभिर्नीरूपधारिणी नालिकापरा।
परापरात्मिका शुद्धा माया मोहानिकारिणी ॥३९
कारणं कार्यभूतञ्च सत्यं शान्तं शिवाशिवे।
रूपाणि तव विश्वार्थे रागशुक्लकलानि च ॥४०
नितान्त ह्रस्वा दीर्घा च नितान्ताणुबृहत्तनुः।
सूक्ष्माप्यखिललोकस्य व्यापिनी त्वं जगन्मयी ॥४१
मानहीना विमानाति-विमानोन्मानसम्भवा।
यदृष्टिव्यष्टिसम्भोगरामादिगलिताश्रया।
तत्ते महिम्नि तद्रूप तव भ्रान्त्यादिकं च यत् ॥४२

आप सबसे परा जननी है तथा आप दामिनी हैं। आप ही में यह विश्व लय होता है और विभात होता है। आप तत्त्व स्वरूपा हैं तथा सबको विभरण किया करती हैं ॥ ३६ ॥ आप सृष्टि से हीन है—आप सृष्टि है। आप कर्ण रहित होती हुई भी श्रुति सम्पन्ना हैं। आप तपस्विनी हैं तथा कर चरणों से रहित है, आप नितरा महान् हैं।३७। आप द्यौ हैं—आप जल हैं—आप ही ज्योति तथा वायु हैं। आप नभ—

मन और अहङ्कार भी हैं । आप जगतो की आठ प्रकार की प्रकृति तथा कृति है ॥ ३८॥ आप जगत् की नाभि और परा मेरु रूपधारिणी है । आप परानानिकट है । आप परायणात्मिका अर्थात् पर और अपर स्वरूप वाली है । आप शुद्धा—माया और अति मोह के करने वाली हैं ।३९। आप कारण और कार्यभूत हैं । हे शिवाशिवे ! आप सत्य और शान्त हैं । आपके रूप विश्व के अर्थ में राग, वृक्ष और फल हैं । ४० ॥ आप नितान्त छोटी और दीर्घ है । आपका स्वरूप नितान्त अणु और वृहद् है । आप सूक्ष्मा होती हुई भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त रहने वाली हैं—आप जगत् से परिपूर्णा हैं ॥ ४१ ॥ आप मात्र से हीन—विमाता—अति विमाता और उन्मान से समुद्भूता हैं । आप ऐसी है जो अष्टि—व्यष्टि—सम्भोग और राग आदि से गर्वित आशय वाली रहती है । वह आपकी महिमा में आपकी जो भ्रान्ति आदिक हैं वह आपका ही स्वरूप है ॥४२॥

इष्टानिष्टाविपाकज्ञा यथेष्टानिष्टकारणम् ।
सर्गादिमध्यान्तमय निम्न रूप तथैव च ॥४३
विचाराष्टाङ्गयोगेन सम्पाद्यव मुहुर्मुहु ।
यत्र स्थिरीक्रियते तत्त्वा तत्ते रूप सनातनम् ॥४४
माताविनाशे सुख दु ख ज्ञानाज्ञाने लयान्वयौ ।
उपाधिस्त्वया भ्रान्तिभूतिस्त्वा जगत पते ॥४५
यस्या प्रभावा नो वक्तु शक्नोति भवनत्रये ।
तस्यैव सम्मोहकरी सा त्वा किं स्तवये मया ॥४६
योगनिद्रा महानिद्रा मोहनिद्रा जगन्मयी ।
विष्णुमाया च प्रकृति कस्त्वा स्तुत्या विभावयेत् ॥४७
मम विष्णो शम्भ्य या वपुर्धात्मारिमका ।
तस्या प्रभाव यो वक्तु गुणान् वेत्तु च क्षम ॥४८
प्रधान करणज्योतिस्वरूपानन्दगोचरा ।
स्वैव जगन्मयरूपैवा वाग्गोचरा ॥४९

प्रसीद सर्वजगतां जननी स्त्रीस्वरूपिणी ।
विश्वरूपिणि विश्वेशे प्रसीद त्वं सनातनि ॥५०

आप इष्ट और अनिष्ट के विपाक के ज्ञान रखने वाली है और यथेष्ट तथा अनिष्ट का कारण है। आपमध्यादि—मध्य तथा अन्त में परिपूर्ण हैं और उसी भाँति आपका रूप नित्य है ॥४३॥ विचार आठ अङ्गों वाले योग में वारम्वार इस प्रकार से सम्पादन करके जो तत्व स्थिर किया जाता है वह ही आपका सनातन रूप है ॥४४॥ वाच्य और अवाच्य में सुख तथा दुःख—ज्ञान और अज्ञान—लय और अलय—उपताप और शान्ति आपही जगत् के स्वामी की हैं ॥४५॥ जिसके प्रभाव को तीनों लोकों में कोई भी कहने की शक्ति नहीं रखता है अर्थात् किसी के द्वारा भी प्रभाव नहीं कहा जा सकता है वह आप उसका भी सम्मोहन करने वाली हैं ऐसी आपका मेरे द्वारा क्या स्तवन किया जा सकता है ॥४६॥ आप योग निद्रा—महानिद्रा—मोहनिद्रा—जगन्मयी—विष्णुमाया और प्रकृति है ऐसी आपको कौन स्तुति के द्वारा विभावित करे ॥४७॥ जो मेरे—विष्णु भगवान् और शङ्कर भगवान् के वपु के ग्रहण करने की स्वरूप वाली है उसके प्रभाव का कथन करने को और गुणगण का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् कोई भी ऐसी क्षमता नहीं रखता है ॥४८॥ प्रकाश करण ज्योति स्वरूप के अन्तर में गोचर होने वाली आप ही जङ्गम में स्थैय रूपा एक वाह्य गोचर है ॥४९॥ समस्त जगतों की जननी स्त्री रूप वाली आप प्रसन्न होइये। हे विश्व रूपिणि ? हे विश्वेशे ! हे सनातनि ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये ॥५०॥

एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा विरिञ्चिना ।
आविर्बभूव प्रत्यक्ष ब्रह्मणः परमात्मनः ॥५१
स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपोत्तुङ्गा चतुर्भुजा ।
सिंहस्था खड्गनीलाब्जहस्ता मुक्तकचोत्करा ॥५२

समक्षमथ ता वीक्ष्य स्रष्टा सर्वजगद्गुरु ।
भक्त्या विनम्रतु गासस्तुष्टाव च ननाम च ॥५३
नमो नमस्ते जगत प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपे स्थितिसर्गरूपे ।
चराचराणां भवती च शक्ति सनातनी सर्वविमोहनीति ॥५४
या श्री सदा केशवमूर्तिमाया विश्वम्भरा या सकल बिभर्ति ।
ह्रीर्योगिनी या महिता मनोज्ञा सा त्व नमस्ते परमात्मसारे ॥५५
यामादिपूर्वे हृदि योगिनो या विभावयन्ति प्रमितिप्रतीताम् ।
प्रकाशशुद्धादियुता विरागा सा त्व हि विद्या विविधावलम्बा॥५६

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—खरञ्जि (ब्रह्मा) के द्वारा इस प्रकार से स्तवन की हुई वह योग निद्रा परमात्मा ब्रह्मा के सामने आविर्भूत (प्रकट) होगयी थी ॥५१॥ उस प्रकट हुई देवी योग निद्रा का स्वरूप का अब वर्णन किया जाता है वह स्निग्ध अञ्जन की क्रान्ति के समान द्युति वाली थी—उसका स्वरूप परम सुन्दर था—वह उन्नत थी—और उसकी चार भजायें थी। वह सिंह के ऊपर सवार थी—उसके हाथों मे खड्ग और नील कमल था—उसके केश पाश खुले हुये थे ।५२। सृष्टि के सृजन करने वाले जगत् गुरु ब्रह्माजी ने अपने समक्ष मे समुपस्थित उस देवी का अवलोकन करके उन्होने अपने उन्नत कन्धो को विनम्र करते हुए ही भक्ति के भाव से उन देवी की स्तवन किया और प्रणिपात किया था ॥५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे जगद् की प्रवृत्ति और निवृत्ति के रूप वाली ! हे स्थिति और सर्ग (रचना) के स्वरूप से समन्विते ! आपके चरणार विन्दो मे मेरा बारम्बार नमस्कार है। चर और अचरो की आप शक्ति हैं—आप सनातनी और सबका विमोहन करने वाली है ॥५४॥ जो श्री सदा ही भगवान् केशव की मूर्त्ति की माया हैं—जो विश्वम्भरा हैं और सबका बिभरण किया करती है—जो ह्री योगिनी महिता और मनोज्ञा हैं वह आप ऐसी है हे परमात्म सारे ! आपको मेरा नमस्कार है ॥५५॥ हे यामादि पूर्वे ! जिसको योगिजन

अपने हृदय में प्रमिति के द्वारा प्रतीत का विभावन किया करते हैं वह आप प्रकाश शुद्ध आदि में मयुता है—वह आप राग रहिता है। आप निश्चित रूप में विविध (अनेक) अवलम्बा काली विद्या हैं ॥५६॥

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं त्वं बिभ्रती कालमयं जगन्ति ।
विकारबीजं प्रकरोषि नित्यं प्रत्नानि स्थूलान्यथ मध्यमानि ॥५७
सत्त्वं रजोऽथो तम इत्यभीप्सा विकारहीना समवस्थितिर्या ।
सा त्वं गुणानां जगदेकहेतुर्बाह्यान्तराले भवनीव याति ॥५८
अशेषजगतां बीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि ।
जगद्धिताय जगतां विष्णुमाये नमोऽस्तु ते ॥५९
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य काली लोकविमोहिनी ।
ब्रह्माणमूचे जगतां स्रष्टारं घनशब्दवत् ॥६०
ब्रह्मन् किमर्थं भवता स्तुताहमवधारय ।
उच्यतां यदभीष्टोऽस्ति तच्छीघ्रं पुरतो मम ॥६१
प्रत्यक्षं मयि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता ।
तस्मात्ते वाञ्छितं ब्रूहि यत् करिष्यामि भाविना ॥६२

आप कूटस्थ—अव्यक्त—अचिन्त्य रूप कालमय का धारण करने वाली हैं अर्थात् स्मरण करती हुई हैं तात्पर्य यह है जगतों का निर्माण करने वाली हैं। आप नित्य विकार बीज को करती हैं जो प्रकट है, स्थूल हैं और मध्यम हैं ॥५७॥ सत्त्व—रज और तमोगुण इनके विकारों से आप हीन हैं और जो समवस्थिति रूपा है। वह आप गुणों की जगदेक हेतु हैं—बाहिर और अन्तराल में भवनों की भाँति गमन किया करती हैं ॥५८॥ हे अशेष जगतों की बीज ! हे ज्ञेय (जानने के योग्य) और ज्ञान के स्वरूप वाली ! हे जगत् की विष्णु माये ! जगत् के हित स्वरूपा आपके लिए नमस्कार है ॥५९॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उनके इस तरह की स्तुति सुनकर लोकों के विमोहन करने वाली काली

ने मेघ की गर्जना के समान अर्थात् अजीव गम्भीर ध्वनि से जगतों के सृजन करने वाले ब्रह्माजी से बोली ॥६०॥ देवी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने जिस प्रयोजन का सम्पादन करने के लिये मेरी स्तुति की है। इसका अवधारण करो और बतलाओ जो भी अभीष्ट होवे—यह मेरे सामने शीघ्र ही कहो ॥६१॥ मेरे प्रत्यक्ष हो जाने पर कार्य की सिद्धि निश्चित ही होती है। इस कारण से आप अपना जो मनोऽभिलषित हो उसे शीघ्र ही कहो जिसको मैं भाविता कर दूँगी ॥६२॥

एकश्चरति भूतेशो न द्वितीया समीहते ।
त मोहय यथा दारान् स्वय स च जिघृक्षति ॥६३
त्वदृते नस्य नो काचिद् भविष्यति मनोहरा ।
तस्मात्त्वमेकरूपेण भवस्य भव मोहनी ॥६४
यथा धृतशरीरा त्व लक्ष्मीरूपेण केशवम् ।
आमोदयसि विश्वस्य हितार्थं तथा कुरु ॥६५
कान्ताभिलाषमात्र मे निनिन्द वृषभध्वज ।
स्थ पुन स वनिता स्वेच्छया सग्रहीष्यति ॥६६
हरेऽगृहीतकान्ते तु कथ सृष्टि प्रवर्तते ।
आद्यन्तमध्यहेतौ च तस्मिञ्छम्भौविरागिणि ॥६७
इति चिन्तापरो नाह त्वदन्य शरणन्त्विह ।
लब्धवास्तेन विश्वस्य हितायैतत् कुरुस्व मे ॥६८
न विष्णुरस्य मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभव ।
न चाप्यह जगन्मातस्तस्मात् त्व मोहयेश्वरम् ॥६९
कीर्तिस्त्व सर्वभूताना यथा त्व ह्रीर्यतात्मनाम् ।
यथा विष्णो प्रिये का त्व तथा सन्मोहयेश्वरम् ॥७०
अथ ब्रह्माणमाभाष्य काली योगमयी पुन ।
यदुवाच महाभागास्तच्छृण्वन्तु द्विजोत्तमा ॥७१

ब्रह्माजी ने कहा—भूतों के ईश भगवान् शम्भु एक ही अर्थात् अकेले ही विचरण किया करते है और दूसरी अर्थात् जाया की इच्छा ही

नहीं रखते है। आप उनको मोहित करदो और वह स्वय ही दारा ग्रहण कर लेवे ॥६३॥ आपके बिना अर्थात् आपको छोडकर उनके मन को हरण करने वाली कोई भी नहीं होगी। इस कारण से आप ही एक स्वरूप से भगवान् शम्भु को मोहन करने वाली हो जाओ ॥६४॥ जिस प्रकार से आप लक्ष्मी के स्वरूप मे शरीर धारण करने वाली होकर भगवान् केशव को आमोदित किया करती हैं विश्व के हित सम्पादन करने के लिये उसी भाँति इनको करिये ॥६५॥ वृषभध्वज शम्भु मेरी कान्ता की अभिलाषा मात्र को ही बुरा कहते थे फिर किस रीति से वे वनिता को अपनी ही इच्छा से ग्रहण करेंगे ॥६६॥ कान्ता के ग्रहण न करने वाले हरके होने पर यह सृष्टि कैसे प्रवृत्त होगी आदि—अन्त और मध्य मे हेतु स्वरूप उन शम्भु के विरागी होने पर यह कैसे हो सकेगा ॥६७॥ इस चिन्ता मे मग्न मैं हू आप से अन्य मेरा यहाँ पर रक्षक कोई नही है। वह मैंने प्राप्त कर लिया है अतएव विश्व की भलाई के लिए आप यह करिये जो कि मेरा ही एक कार्य है ॥ ६८ ॥ इनके मोह करने के लिये न तो विष्णु समर्थ हैं और न लक्ष्मी तथा कामदेव ही समर्थ हैं। हे जगत् की माता ! मैं भी उनको मोहित करने की क्षमता नही रखता हूँ। इस कारण से आप ही महेश्वर को मोहित करिये। समस्त भूतो की कीर्ति है वैसे ही आप यतात्माओ की—हो हैं। जिस प्रकार से भगवान् विष्णु की एक प्रिया है वैसे ही आप महेश्वर की होवे ॥६६॥७०॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर काली देवी ने ब्रह्माजी से वह वर उस योगमयी ने फिर जो कहा था हे द्विजोत्तमो ! हे महाभाग वालो ! उसका श्रवण करिये ॥७१॥

ꣿ

॥ योग निद्रा स्तुति ॥

यदुक्त भवता ब्रह्मन् समस्त सत्यमेव तत् ।
मदृते मोहयित्रीह शङ्करस्य न विद्यते ॥१
हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी ।
भविष्यतीति तत् सत्य भवता प्रतिपादितम् ॥२
मयापि च महान् यत्नो विहितेऽस्य जगत्पते ।
त्वद्वाक्याद्द्विगुणो मेऽद्य प्रयत्नोऽभूत्सुनिर्भरः ॥३
अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम् ।
हरः करिष्यत्यवशः स्वयमेव विमोहितः ॥४
चार्वीं मूर्तिमहं धृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी ।
भविष्यामि महाभाग यथा विष्णोर्हरिप्रिया ॥५
यथा सोऽपि ममैवेह वशवर्ती सदा भवेत् ।
तथा चाहं करिष्यामि यत्नतरंजनं हरम् ॥६
प्रतिसर्गादि मध्य तमहं शम्भुं निराकुलम् ।
स्त्रीरूपेणानुयास्यामि विशेषेणान्यतो विधे ॥७

देवी ने कहा—हे ब्रह्माजी ! आपने जो भी कहा था वह सम्पूर्ण सत्य ही है । मेरे बिना यहाँ पर शङ्कर को मोहित करने वाली कोई अन्य नहीं है ॥१॥ भगवान् हर के द्वारा के न ग्रहण करने पर यह सनातनी सृष्टि नहीं होगी—यह तो आपने सर्वथा सत्य प्रतिपादित किया है ॥२॥ मेरे द्वारा भी इस जगत् के पति का महान् यत्न है । आपके वाक्य से आज दुगुना सुनिर्भर प्रयत्न हुआ था ॥३॥ मैं उस प्रकार से यत्न करूँगी कि भगवान् हर अवश होकर स्वयं ही विमोहित होकर दारा का परिग्रह करेंगे ॥४॥ परम सुन्दर मूर्ति बनाकर मैं उसकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी हे महाभाग ! जिस तरह से भगवान् विष्णु की वशवर्तिनी हरिप्रिया रहा करती है ॥५॥ जिस तरह से यह भी यहाँ पर मेरे ही सदा वशवर्ती हो जावे । और मैं उसी तरह से करूँगी और

हर को अपना वशवर्त्ती बना लूँगी जैसे अन्य साधारण जन को वश में किया जाता है ॥६॥ प्रतिसर्ग के आदि—मध्य उन निरङ्कुश शम्भु का हृदय है। विशेष रूप से अन्यन स्त्री रूप से उनके समीप में जाऊँगी ॥ ७ ॥

उत्पन्ना दक्षजायाया चारुरूपेण शङ्करम् ।
अहं समाजयिष्यामि प्रतिसर्गं पितामह ॥८
ततस्तु योगनिद्रां मां विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
शङ्करीति वदिष्यन्ति रुद्राणीति दिवौकसः ॥९
उत्पन्नमात्रं सततं मोहये प्राणिनं यथा ।
तथा सन्मोहयिष्यामि शङ्करं प्रमथाधिपम् ॥१०
यथान्यजन्तुर्वनितो वर्तते वनितावशे ।
ततोऽप्यति हरो वामावशवर्ती भविष्यति ॥११
विभिद्य भुवनाधीता लीना स्वहृदयान्तरे ।
या विद्याऽञ्च महादेवो मोहान् प्रतिग्रहीष्यति ॥१२
इति तस्मै समाभाष्य ब्रह्मणं द्विजसत्तमा ।
वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्ट्रा तत्रैवान्तर्दधे तत ॥१३
तस्यामन्तर्हितायान्तु धाता लोक-पितामहः ।
जगाम तत्र भगवान् स्थितो यत्र मनोभवः ॥१४

हे पितामह ! दक्ष प्रजापति की स्त्री में बहुत ही सुन्दर स्वरूप में उत्पन्न हुई प्रतिसर्ग समाजित हाऊँगी इसके अनन्तर देवगण जगत्मयी विष्णुमाया मुझको रुद्राणी—शङ्करी—इस नाम से कहेंगे ॥ ८, ९ ॥ उत्पन्न मात्र ही निरन्तर जिस प्रकार से प्राणी को मोहित करूँ ठीक उसी भाँति से प्रमथों के स्वामी भगवान् शङ्कर को सम्मोहित कर लूँगी ॥ १० ॥ भूमण्डल में जैसे अन्य साधारण जन वनिता के वश में हो जाया करता है उससे भी अधिक भगवान् शम्भु मेरे वश में वर्त्तन करने वाले हो जायँगे ॥ ११ ॥ विभेदन करके अपने हृदय

म लीन और भुवनाधीन जिस विद्या को महादेव मोह से प्रतिग्रहण कर लेंगे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजसत्तमो ! इस प्रकार से ब्रह्माजी से कहकर जगत् के स्रष्टा के द्वारा वीक्ष्यमाण होती हुई वह देवी फिर वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गई थी ॥ १३ ॥ इसके अन्तर्ध्यान होने पर लोकों के पितामह धाता वहाँ पर गये थे जहाँ पर भगवान् कामदेव सस्थित थे ॥१४॥

मुदितोऽत्यर्थमभवन्महामायावच स्मरन् ।
कृतकृत्य तदात्मान मेने च मुनिपु गवा ॥१५
अथ दृष्ट्वा महात्मान विरञ्चि मदनस्तथा ।
गच्छन्त हसयानन चाभ्युत्तस्थौ त्वरान्वित ॥१६
आसन्न तमयासाद्य हर्षोत्फुल्लविलोचन ।
ववन्दे सर्वलोकेश मोदयुक्त मनोभव ॥१७
अथाह भगवान् धाता गत्या मधुरगद्गदम् ।
मदन मोदयन् सूचन यद् देव्या विष्णुमायया ॥१८
यदाह वाम शवस्य मोहने त्व पुरा वच ।
अनुमाहननाम्नी सा ता सृजेति मनाभव ॥१९
सर्वं गतत्वा दया योगनिद्रा जगन्मयी ।
गस्ताहन मनसा मया मन्दरवन्दरे ॥२०
स्वयमेव तया वत्स प्रत्यक्षीभूतया मम ।
तुष्टयाङीकृत शम्भुर्मोहनीया मयति वो ॥२१
तया च दक्षभवने स समुत्पन्नया हर ।
मोहिनीयस्तु न चिरादिति सत्य मनोभव ॥२२

समन्वित होकर उनके लिये अभ्युत्थान किया था ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उन ब्रह्माजी को अपने समीप में आते हुए प्राप्त करके परम हर्ष से विकसित लोचनों वाले कामदेव ने मोह से युक्त समस्त लोकों के स्वामी ब्रह्माजी का अभिवादन किया था ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने प्रीति से मधुर और गद्गद् वचनों से कामदेव को हर्षित करते हुए जो विष्णु मायादेवी ने कहा था वही कहा था ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! जो आपने पहिले शम्भु के मोहन करने के विषय में वचन कहा था कि आप अनुमोदन करने वाली जो भी हो उसकी सृजन करें ॥ १९ ॥ हे कामदेव ! उसी कार्य को सम्पादित करने के लिये मैंने जगन्मयी योगनिद्रा देवी का मन्दारवन की कन्दरा में एक मात्र मन के द्वारा संस्तवन किया था ॥२०॥ हे वत्स ! वह स्वयं ही मेरे सामने प्रत्यक्ष हुई थी और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने यह स्वीकार कर लिया था कि मेरे द्वारा शम्भु का मोहन किया जायगा हे कामदेव ! दक्ष प्रजापति के भवन में समुत्पन्न हुई उसके द्वारा शम्भु मोहन का कर्म किया ही जायगा और यह शीघ्र ही उनको मोहित किया जायगा—यह सर्वथा सत्य है ॥२१।२२॥

ब्रह्मन् का योगनिद्रेति विख्याता या जगन्मयी ।
कथं तस्या हरो वश्यः कार्यस्तपसि सन्धिन ॥२३
किम्प्रभावाश्च सा देवी का वा सा कुत्र संस्थिता ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो लोकपितामह ॥२४
यस्य त्यक्तसमाधेस्तु न क्षणं दृष्टिगोचरे ।
शक्नुमोऽपि वयं स्थातुं तं कस्मात् सा विमोहयेत् ॥२५
ज्वलदग्निप्रकाशाक्षं जटाराजिकरालिनम् ।
शूलिनं वीक्ष्य कः स्थातुं ब्रह्मन् शक्नोति तत्पुरः ॥२६
तस्य तादृक्स्वरूपस्य सम्यक् मोहनवाञ्छया ।
मयाप्यूपेन ता श्रोतुमहमिच्छामि तत्त्वतः ॥२७

कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी ? जो कि जगन्मयी है वह कौन है जो योग निद्रा—इस नाम से विख्यात हुई है। जो शङ्कर सदा ही तप में संस्थित रहा करते हैं वे उसके द्वारा कैसे वश्य होंगे ? ॥२३॥ उस देवी का क्या प्रभाव है—वह देवी कौन सी है और वहाँ किस स्थान में स्थित रहा करती है ? हे लोक पितामह ! यह सभी कुछ मैं आपके मुख कमल से श्रवण करने की इच्छा करता हूँ ॥२४॥ जो अपनी समाधि का त्याग करके एक क्षण मात्र भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ करते हैं। उनके समक्ष में हम भी स्थित नहीं हो सकते हैं यह फिर उनको कैसे मोहित करेगी ? ॥२५॥ हे ब्रह्माजी ! उनके नेत्र जलती हुई अग्नि के प्रकाश के समान हैं तथा वे जटा जूट के समुदाय से विकराल स्वरूप वाले हैं। ऐसे त्रिशूलधारी शिव को देखकर उनके सामने कौन सी क्षमता है जो कि स्थित हो सके ॥२६॥ उस शम्भु का उस प्रकार का स्वरूप है। उनको मोहित करने की इच्छा से मैंने भी स्वीकार किया था। अब मैं उस देवी के विषय में तात्त्विक रूप से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ ॥२७॥

मनोभवस्य वचनं श्रुत्वाथ चतुराननः ।
विवक्षुरपि तद्वाक्यं श्रुत्वानुत्साहकारणम् ॥२८
शर्वस्य मोहने ब्रह्मा चिन्ताविष्टो भवन्नहि ।
समर्थो मोहयितुमिति निशश्वास मुहुर्मुहुः ॥२९
निःश्वासमारुतात्तस्य नानारूपा महाबलाः ।
जाता गणा लोलजिह्वा लोलश्चाति भयंकराः ॥३०
तुरगवदना केचित् केचिद्गजमुखास्तथा ।
सिंहव्याघ्रमुखाश्चान्ये श्वखराह्वराननाः ॥३१
ऋक्षमार्जारवदना शरभास्या शुकाननाः ।
प्लवगोमायुवक्त्राश्च सरीसृपमुखाः परे ॥३२
गोरूपा गोमुखाः केचिदाथा पक्षिमुखाः परे ।
महादीर्घा महाह्रस्वा महास्थूला महाकृशाः ॥३३

पिंगाक्षा विरालाक्षाश्च त्र्यक्षैकाक्षा महोदराः ।
एककर्णास्त्रिकर्णाश्च चतुष्कर्णास्तथा परे ॥३४
एककर्णा महाकर्णा बहुकर्णा विकर्णकाः ।
दीर्घाक्षाः स्थूलनेत्राश्च सूक्ष्मनेत्रा विदृष्टयः ॥३५

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने कामदेव के वचन को सुनकर बोलने की इच्छा वाला होकर भी अनुत्साह के कारण स्वरूप उसके वाक्य का श्रवण कर भगवान् शङ्कर के मोहन करने में चिन्ता से समाविष्ट होते हुए कि मैं शङ्कर को मोहित करने में समर्थ नहीं हूँ—इस रीति से उन ब्रह्माजी ने बार-बार निःश्वास लिया था। अर्थात् चिन्ता से श्वास छोड़ा था ॥ २८, २९ ॥ उनकी निःश्वास की वायु से अनेक रूपों वाले महा बलवान् चञ्चल जिह्वा वाले अतीव भयङ्कर और अत्यन्त चञ्चल गण समुत्पन्न हो गये थे ॥ ३० ॥ उन गणों में कुछ तो घोड़े के समान मुख वाले थे तथा कुछ हाथी के मुख जैसे मुखों वाले थे। अन्य सिंह तथा बाघ के मुख के सदृश मुखों वाले थे। कोई-कोई कुत्ता—सूअर और ऊँटा के समान मुखों वाले थे।३१। कुछ गण रीछ और मार्जार के जैसे मुखों से संयुत थे तो कोई-कोई शरभ तथा शुक के मुखों वाले थे। कुछ प्लव और गो मायु मुख के सदृश मुख वाले थे। तथा कोई सरी सृप के मुख के समान मुखों से समन्वित थे ॥ ३२ ॥ कुछ उन गणों में गो रूप थे तो कुछ गाय के समान मुखों से संयुत थे। कोई-कोई पक्षी के सदृश मुखों से संयुत थे। कुछ बहुत विशाल तो कुछ बहुत ही छोटे शरीर वाले थे। कोई-कोई महान् स्थूल थे तो कुछ बहुत ही कृश थे ॥ ३३ ॥ इन गणों के अनेकानेक स्वरूप बताये जा रहे हैं—कुछ पीली आँखों वाले—कुछ बिड़ाल के तुल्य नेत्रों वाले तो कुछ त्र्यक्षैकाक्ष थे और कोई २ महान् उदर से युक्त थे। कुछ एक कान वाले—कुछ तीन कानों वाले तथा दूसरे चार कानों से युक्त थे ॥ ३४ ॥ स्थूल कानों वाले—महान् कानों वाले—

बहुत कानो वाले और कुछ तीन कानो वाले थे। उनमे कुछ बडी आँखों वाले तो कुछ स्थूल नेत्रों से सयुत थे। कुछ सूक्ष्म लोचनो वाले और कुछ तीन दृष्टियो से समन्वित थे ॥३५॥

चतुष्पादाः पञ्चपादास्त्रिपादैकपदास्य ।
ह्रस्वपादा दीर्घपादा स्थूलपादा महापदाः ॥३६
एकहस्ताश्चतुर्हस्ता द्विहस्तास्त्रिशयास्तथा ।
विहस्ताश्च विरूपाक्षः गोधिकाकृतय परे ॥३७
मनुष्याकृतयः केचिच्छुशुमारमुखास्तथा ।
क्रौञ्चाकारा वकाकारा हंससारसरूपिण ।
तथैव मद्गुकुरर-कंककाकमुखास्तथा ॥३८
अर्द्धनीला अर्द्धरक्ता कपिला. पिंगलास्तथा ।
नीला शुक्लास्तथा पीता हरिताश्चित्ररूपिण ॥३९
आवादयन्त ते शखान् पटहान् परिवादिन ।
मृदङ्गान् डिंडिमाश्चैव योमुखान् पणवास्तथा ॥४०
सर्वे जटाभि पिंगाभिस्तु गाभिश्च करालिता ।
निरन्तराभिर्विप्रेन्द्रा गणा स्यन्दनगामिन ॥४१
शूलहस्ता पाशहस्ता खड्गहस्ता धनुर्द्धरा ।
शक्त्यकुशगदावाण-पट्टिशप्रासपाणय ॥४२

उन गणो को कोई २ चार पैरो वाले—कुछ पाँच पैरो से युक्त—कोई तीन चरणो वाले तो कुछ एक ही पद वाले थे। कुछ के बहुत छोटे पैर थे—कुछ लम्बे पैरो वाले थे—कुछ के पैर बहुत स्थूल थे तो कुछ महान् पदो से सयुत थे ॥३६॥ कोई २ एक हाथ वाले—कुछ चार हाथो से युक्त—कोई दो हाथो वाले तो कोई तीन करो वाले थे। कुछ के हाथ थे ही नहीं तो विरूपाक्ष थे तथा कुछ गोधिका की आकृतियों वाले थे ॥३७॥ उनमे कुछ मानवीय आकृति से युक्त थे कोई २ शुशुमार के मुख के समान मुखो वाले थे। कोई क्रौञ्च के आकार वाले थे तो कुछ बगुला के आकार वाले एवं कुछ हंस और सारस के रूप

वाले थे। कुछ मुद्गर—वक और धाक के तुल्य मुखो वाले थे ॥ ३८ ॥ अब उन गणो के वर्ण बताये जाते है—उनमे कुछ आधे नीले—आधे लाल—कपिल तथा कुछ—पिंगल वर्ण वाले थे। नील—शुक्ल—पीत—हरित और चित्र वर्ण वाले थे ॥३९॥ वे गण शंखो को घण्टो को बजा रहे थे तथा कुछ परिवादी थे। कुछ मृदङ्ग—डिमडिम—गो मुख तथा पणवो को बजाने वाले थ ॥४०॥ वे सभी गण पीली और उन्नत जटाओ से मयुत अत्यधिक कराल थे। हे द्विजेन्द्रो! वे सभी गण स्पन्दन (रथ) के द्वारा गमन करने वाले थे। के द्वारा गमन करने वाले थे ॥४१॥ उनम कुछ हाथो मे शूल लिये हुये थे तो कुछ पाश—खड्ग और धनुष करो मे ग्रहण किये हुये थे। कुछ शक्ति—अकुश—गदा—वाण—पट्टिश तथा प्रास अपने करो मे लिये हुये थे ॥ ४२ ॥

नानायुधा महानादं कुर्वन्तस्ते महाबला ।
मारय च्छेदयेत्यूचुं ब्रह्मण पुरतो गता ॥४३
तेषान्तु वदता यत्र मारय छेदयेत्युत ।
योगनिद्रा प्रभावात् स विधिर्वक्तु प्रचक्रमे ॥४४
अथ ब्रह्माणमाभाष्य तान् दृष्ट्वा मदनो गणान् ।
उवाच वारयन् वक्तु गणानामग्रत स्मर ॥४५
कि कर्म ते करिष्यन्ति कुत्र स्थास्यन्ति वा विधे ।
किन्नामधेया एते वा तत्रैनान् विनियोजय ॥४६
नियोज्यैतान्निजे कृत्ये स्थान दत्त्वा नाम च ।
धृत्वा पश्चात् महामायाप्रभाव कथयस्व मे ॥४७
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य सर्वलोकपितामह ।
गणान् ममदनानाह तेषा कर्मादिक दिशन् ॥४८

उन गणो के पास अनेक प्रकार के आयुध थे और महा बलवान् थे वश भारी शोर करने वाले थे। वे मार डालो—छेद डालो—ऐसा कहने वाले थे और ब्रह्माजी के सामने स्थित हो गये थे ॥४३॥ वे जहाँ

पर मार डालो—छेद डालो—ऐसा बोलने वाले थे योगनिद्रा के प्रभाव से अब विधाता ने कहना आरम्भ किया था ॥४४॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी से कह कर कामदेव ने उन गणो का अवलोकन करके गणो के आगे स्थित होते हुए वारण करते हुए बोलना आरम्भ किया था ॥४५॥ कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी ! ये आपका क्या कर्म करेंगे अथवा कहाँ पर सस्थित होगे अर्थात् रहेंगे ? इनके क्या-क्या नाम हैं ? वही पर इनका आप विनियोजन कीजिये ॥४६॥ अपने कार्य मे इनका नियोजन करके इनको स्थान देकर इनका नाम रखिये। यह सब कुछ करके इसके पश्चात् महामाया का जो भी कुछ प्रभाव हो उसे मुझे बतलाइए। ॥४७॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त समस्त लोको के पितामह ब्रह्माजी ने उस कामदेव के वचन को सुन कर उनके कार्य आदि के विषय मे आदेश देते हुए कामदेव के साहत उन गणो से कहा ॥४८॥

एत उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदस्तराम् ।
मुहुर्मुहुरतोऽमीषा नाम मारेति जायताम् ॥४९
मारात्मकरशादप्येते मारा सन्तु च नामत ।
सदा विघ्न करिष्यन्ति जन्तूनाञ्च विनार्चनम् ॥५०
तवानुगमन कर्म मुख्यमेषा मनोभव ।
यत्र यत्र भवान् याता स्वकर्मार्थी यदा यदा ।
गन्तारस्तत्र यत्रैते साहाय्याय तदा तदा ॥५१
चित्तोद्भ्रान्ति करिष्यन्ति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम् ।
ज्ञानिना ज्ञानमार्गञ्च विघ्नयिष्यन्ति सर्वद। ॥५२
यथा सासारिक कर्म सर्वे कुर्वन्ति जन्तव ।
तथाचैते करिष्यन्ति सविघ्नमपि सर्वत ॥५३
इमे स्थास्यन्ति सर्वत्र वेगिन कामरूपिण ।
त्वमेवैषा गणध्यक्ष पचयज्ञाशभोगिन ।
नित्यक्रियावता तोय-भोगिनो वै भवन्त्विति ॥५४

ब्रह्माजी ने कहा—ये सब उत्पन्न होने के साथ ही निरन्तर "मार डालो"—यह बहुत बार बोले थे। बारम्बार इससे यही वचन कहे गये थे अतएव नाम 'मार'—यह होवे ॥४६॥ मारात्मक होने से ये नाम से भी मार ही होवे। बिना अर्चना के ये सदा ही जन्तुओं के लिये विघ्न ही किया करेंगे ॥५०॥ हे कामदेव ! इन गणों का प्रधान कर्म तुम्हारा ही अनुगमन करना होगा। जिस-जिस समय में जब—जब भी आप अपने कार्य के सम्पादन करने के लिये जाँयगे वही-वही पर भी उसी-उसी समय में तुम्हारी सहायता के लिये ये गण जाने वाले होंगे ॥५१॥ तुम्हारे अस्त्र के वश वर्ती ज्ञानियों के चित्त की उद्भ्रान्ति करेंगे और सर्वदा ज्ञान के मार्ग को विघ्न उत्पन्न करेंगे ॥५२॥ जिस प्रकार से सब जन्तुगण सांसारिक कर्म किया करते हैं ठीक उसी भाँति ये गण भी सब ओर से विघ्नों के सहित को भी करेंगे ॥५३॥ ये सभी जगह पर काम रूप वाले और वेग से समन्वित स्थित होंगे। आप ही इन सबके गणाध्यक्ष हैं। य पञ्च यज्ञों के अ ग भोगी और नित्य क्रिया वालों के लोप भोगी होवें ॥५४॥

इति श्रुत्वा तु ते सर्वे मदनं सविधि तत ।
परिवार्य यथाकाम तस्थु. श्रुत्वा निजा गतिम् ॥५५
तेषां वर्णयितु शक्यो भुवि कि मुनिसत्तमा ।
माहात्म्यञ्च प्रभावञ्च ते तप.शालिनो यत ॥५६
तेषां जाया न तनया नि समीहा- सदैव हि ।
न्यासिनोऽपि महात्मान सर्वे त ऊर्द्ध्वरेतस- ॥५७
ततो ब्रह्मा प्रसन्न स माहात्म्य मदनाय च ।
गदितु योगनिद्राया सम्यक् समुपचक्रमे ॥५८
अव्यक्तव्यक्तरूपेण रज सत्त्वतमोगुणै. ।
सविभज्य यार्थ कुरुते विष्णुमायेति सोच्यते ॥५६-
या निम्नान्तस्यलाम्भस्या जगदण्डकपालतः ।
विभज्य पुरुष याति योगनिद्रेति सोच्यते ॥६

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वे सब यह श्रवण करके ब्रह्माजी के सहित कामदेव को परिवादित करके इच्छानुसार अपनी गति को मुन कर समवस्थित होगये थे ॥५५॥ हे मुनि सत्तमो ! उनके विषय म क्या वर्णन किया जा सकता है उनके माहात्म्य और प्रभाव का क्या वर्णन किया जावे क्योंकि वे सब तप शाली थे ॥५६॥ उनके न तो जाया थी और न कोई सन्तति ही थी वे तो सदा ही ममीहा से रहित थे। वे न्यासी होते हुए भी महान् आत्माओं वाले थे और वे सभी ऊर्ध्व रेता पुरुष थे ॥५७॥ इसके अनन्तर वे ब्रह्माजी परम प्रसन्न होते हुए योगनिद्रा का माहात्म्य कामदेव को कहने के लिये भली भाँति से उपक्रम करने वाले हुए थे ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—रजोगुण—सत्त्वगुण और तमोगुणों के द्वारा जो अव्यक्त और व्यक्त रूप से सविभाजन करके अर्थ को किया करती है वही विष्णु माया—इस नाम से कही जाया करती है ॥५९॥ जो निम्न स्थल वाले जल मे स्थित होती हुई जगदण्ड कपाल मे विभाजन करके पुरुष के समीप गमन किया करती है वह योग निद्रा—इस नाम से पुकारी जाया करती है ॥६०॥

मन्त्रान्तर्भावनपरा परमानन्दरूपिणी।
योगिना सत्त्वविश्रान्त सा निगद्या जगन्मयी ॥६१
गर्भान्तर्ज्ञानसम्पन्न प्रेरित सूतिमारुतै ।
उत्पन्न ज्ञानरहित कुरुते या निरन्तरम् ॥६२
पूर्वातिपूर्व सन्घातु सस्कारेण नियोज्य च।
आहारादौ ततो मोह ममत्व ज्ञानसशयम् ॥६३
क्रोधोपरोधलोभेषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुन पुन ।
पश्चात् कामे नियोज्याशु चिन्तायुक्तमहर्निशम् ॥६४
आमोदयुक्त व्यसनासक्त जन्तु करोति या।
महामायेति सा प्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी ॥६५
अहकारादि ससक्त सृष्टिप्रभवभाविनी।

उत्पत्तिरितिलोकै सा कथ्यतेऽनन्तरूपिणी ॥६६

मन्त्रों के अन्नभावन म परायणा और परमाधिक आनन्द के स्वरूप वाली जो योगियो सत्व विद्या का अन्त है वही जगन्मयी—इस नाम म कहने के योग्य होती है ॥६१॥ गर्भ के अन्दर रहन वाले को ज्ञान से सम्पन्न (तात्पर्य यह है कि जब-तक यह जीवात्मा माता के गर्भ मे रहता है तब तक अपने आपको पूर्ण ज्ञान रहा करता है) और प्रसव की वायु से प्रेरित होता हुआ जब यह जन्म धारण कर लेता है तो वह सभी ज्ञान को भूल कर ज्ञान रहित हो जाया करता है ऐसा जो निरन्तर ही किया करती है ॥६२॥ पूर्व से भी पूर्व का सन्धान करने के लिये संस्कार से नियोजन करके आहार आदि मे फिर मोह—ममत्वभाव और ज्ञान म मशय को करती है तथा क्रोध—उपरोध और क्षोभ मे बार बार क्षिप्त कर—करके पीछे काम म नियोजित शीघ्र ही चिन्ता से युक्त करती है जो चिन्ता रात दिन रहा करती है जो इस जन्तु को आमोद से युक्त और व्यसनो म आसक्त किया करती है वही महामाया—इस नाम से कही गयी है इसी से यह जगत् की स्वामिनी है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ॥ ६४ ॥ अहङ्कार आदि मे ससक्त सृष्टि के प्रभव को करने वाली उत्पत्ति है—यही लोको के द्वारा वह अनन्त स्वरूप वाली कही जाया करती है ॥६६॥

उत्पन्नमकुर बीजाद् यथापो मेघसम्भवा ।
प्ररोहयति सा जन्तूस्तथोत्पन्नान् प्ररोहयेत् ॥६७
सा शक्ति सृष्टिरूपा च सर्वेषा ख्यातिरीश्वरी ।
क्षमा क्षमावन्त्रा नित्य करुणा सा दयावताम् ॥६८
नित्या सा नित्यरूपेण जगद्गर्भे प्रकाशते ।
ज्योति स्वरूपेण परा व्यक्ताव्यक्तप्रकाशिनी ॥६९
सा योगिना मुक्तिहेतुर्विद्यारूपेण वैष्णवी ।
सासारिकाणा ससारबन्धहेतु विपर्यया ॥७०

लक्ष्मीरूपेण कृष्णस्य द्वितीया सुमनोहरा ।
त्रयीरूपेण कण्ठस्था सदा मम मनोभव ॥७१
सर्वत्रस्था सर्वगा दिव्यमूर्ति-
नित्या देवी सर्वरूपा पराख्या ।
कृष्णादीना सर्वदा मोहयित्री
सा स्त्रीरूपे सर्वजन्तो' समन्तात् ॥७२

बीज से समुत्पन्न हुये अङ्कुर को मेघो से समुद्भूत जल जिस प्रकार से प्ररोहित किया करता है ठीक उसी भाँति वह भी जन्तुओ को जो उत्पन्न होगये हैं प्ररोहित किया करती है ॥६७॥ वह शक्ति सृष्टि के स्वरूप वाली है और सबकी ईश्वरी ख्याति है जो क्षमाधारी हैं उनकी क्षमा है तथा जो दया वाले हैं उनकी (करुणा) दया है ॥६८॥ वह नित्य स्वरूप से नित्या है और इस जगत् के गर्भ मे प्रकाशित हुआ करती है । वह ज्योति के स्वरूप मे व्यक्त और अव्यक्त का प्रकाश करने वाली परा है ॥६९॥ वह योगाभ्यासियो की मुक्ति का हेतु है और विद्या के रूप वाली वैष्णवी है । जो सांसारिक पुरुष हैं उनको ससार के बन्धन हेतु का विपर्यया है ॥७०॥ लक्ष्मी के रूप मे वह भगवान् कृष्ण द्वितीया अर्द्धाङ्गिनी परम मनोहरा है । हे कामदेव ! त्रयी अर्थात् वेद त्रयी के रूप से सदा मेरे कठ मे सस्थिता है ॥७१॥ वह सभी जगह पर स्थित रहने वाली और सब जगह गमन करने वाली है । वह दिव्य मूर्ति से समन्विता है—नित्या देवी सबके स्वरूप वाली और परा—इस नाम वाली है । वह कृष्ण आदि का सर्वदा सम्मोहन करने वाली है और स्त्री के स्वरूप से सभी ओर सभी जन्तुओं को मोहन करने वाली है ॥ ७२ ॥

—·x·—

।। मदन वाक्य वर्णन ।।

अथ ब्रह्मा महामाया-स्वरूप प्रतिपाद्य च ।
मदनाय पुन प्राह युक्तासौ हरमोहने ।।१
विष्णुमाया महादेवो यथा दारपरिग्रहम् ।
करिष्यति तथा कर्तुं मगोकार पुराकरोत् ।।२
सावश्य दक्षतनया भूत्वा शम्भोर्महात्मन ।
भविष्यति द्वितीयेति स्वयमेवावदत् स्मर ।।३
त्वमेभि स्वगणै सार्द्धं रत्या च मधुना सह ।
यथेच्छति तथा दारान् ग्रहीतु कुरु शकर ।।४
शम्भौ गृहीतदारे तु कृतकृत्या वय स्मर ।
अविच्छिन्ना सृष्टिरिय भविष्यति न सशय ।।५
तथाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठा लोकेशाय मनोभव ।
मधुर यत् कृत तेन महादेवस्य मोहने ।।६

मार्कण्डेय मुनि कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने महामाया के स्वरूप का प्रतिपादन करके कामदेव से उन्होंने फिर कहा था कि यह भगवान् शङ्कर के सम्मोहन करने म युक्त है ।।१।। ब्रह्माजी ने कहा—विष्णु माया ने पहिले ही यह स्वीकार कर लिया है जैसे महादेव दारा का परिग्रह करेंगे । वह ऐसा करना अङ्गीकार कर चुकी हैं ।।२।। हे कामदेव ! उनने स्वय ही ऐसा कहा था कि वह अवश्य ही प्रजापति दक्ष की पुत्री के रूप म जन्म धारण करके महात्मा शम्भु की द्वितीया अर्थात् पत्नी हो जायगी ।।३।। तुम भी इन गणों के साथ सहयोग करके तथा अपनी पत्नी रति और अपने सखा वसन्त के साथ मिलकर वैसा ही कर्म करो जिससे भगवान् शम्भु दाराओं का ग्रहण करने की इच्छा कर लेवें ।। ४ ।। भगवान शकर के द्वारा दारा के ग्रहण किये जाने पर हम कृत कृत्य अर्थात् सफल हो जाँयगे और फिर यह सृष्टि अविच्छिन्न अर्थात् बीच में न टूटने वाली हो जायगी—इसमें लेशमात्र भी

का अवसर ही नहीं है ॥ ५ ॥ श्री मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठो ! कामदेव ने लोकों के ईश ब्रह्माजी से उसी भाँति मधुरता पूर्वक कहा जो भी कुछ महादेवजी को मोहित करने के लिये उसने किया था ॥ ६ ॥

शृणु ब्रह्मन् यथास्माभिः क्रियते हरमोहने ।
प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा तस्य मदनगतो मम ॥७
यदा समाधिमाश्रित्य स्थितः शम्भुर्जितेन्द्रियः ।
तदा सुगन्धिवातेन शीतलेन विवेकिना ।
तं वीजयामि लोकेश नित्यं मोहनकारिणा ॥८
स्वसायकांस्तथा पञ्च समादाय शरासनम् ।
भ्रमामि तस्य सविधे मोहयंस्तद्गणानहम् ॥९
सिद्धद्वन्द्वानहं तत्र रमयामि दिवानिशम् ।
भावा हावाश्च ते सर्वे प्रविशन्ति च तत्पुरे ॥१०
यदि प्रविष्टः सविधे शम्भोः प्राणी पितामह ।
स वा न कुरुते द्वन्द्वं भावं तत्र मुहुर्मुहुः ॥११
मम प्रवेशमात्रेण तथा स्युः सवर्जन्तवः ।
न शम्भुनृपस्तस्य मानसी विक्रिया गतो ॥१२
यदाहि भवतः प्रश्नं स याति प्रमथाधिपः ।
मम गत्वा तदैवाहं सरति समधुविधे ॥१३
यदा सः प्रयाति यदा वा नाटयश्वरम् ।
पंञ्चाम वा यदा याति तत्र गच्छाम्यहं सदा ॥१४

कामदेव ने कहा—हे ब्रह्माजी ! आप अब श्रवण कीजिए जो भी कुछ हमारे द्वारा महादेव जी के मोहन करने में किया जा रहा है—उनके परोक्ष में अथवा प्रत्यक्ष में जो भी किया जा रहा है उस सबका वर्णन आप श्रवण कीजिए ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप मेरा सारा वृत्तान्त सुनो ही जिस समय में समाधि का समाश्रय ग्रहण करके

स्थित हुए थे उसी समय म विशुद्ध वेग वाले अर्थात् सुमन्द और सुगन्धित तथा शीतल वायु के द्वारा हे लोकेश ! जो कि नित्य ही मोहन के करने वाली है उससे उन शम्भु को जीजित करूँगा ॥८॥ कि अपने शरासन का ग्रहण करके अपने वर्ण मामको (बाणो) को मैं उनके गणो को मोहित करते हुए उनके समीप मे भ्रमित करूँगा ॥९॥ मैं वहाँ पर सिद्धो के द्वन्द्वो को अहर्निश रमण कराता हूँ और उनमें निश्चय ही हाव और भाव सब प्रवेश किया करते हैं ॥१०॥ हे पितामह ! यदि शम्भु के समीप मे प्रविष्ट होने पर कौन सा प्राणी बारम्बार वहाँ पर भाव को नहीं किया करता है ॥११॥ मेरे केवल प्रवेश के होने ही से सभी जीव-जन्तु उस प्रकार के हो जाया करते हैं न तो भगवान् शम्भु और न उनका वृषभ मानसिक विकार को प्राप्त हुये थे ॥१२॥ निश्चय ही जिस समय मे वे प्रमथाधिप आपके प्रस्थ का गमन करते हैं तो उसी समय मे मैं वहीं पर हे पद्मजो ! अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त के साथ चला जाऊँगा ॥१३॥ यदि वह मेरु पर चले जाते हैं और अथवा जिस समय मे नारकेश्वर मे पहुँच जाते हैं या कैलास गिरि पर गमन करते हैं तो उस समय मे मैं भी वहीं पर चला जाऊँगा ॥१४॥

यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तिष्ठति वै क्षणम् ।
ततस्तस्य पुरश्चक्रमिथुनं योजयाम्यहम् ॥१५
तच्चक्रयुगलं ब्रह्मन् हावभावयुतं मुहु ।
नानाभावेन कुरुते दाम्पत्य-क्रममुत्तमम् ॥१६
नीलकण्ठानपि मुहु मजायानपि तत्पुर ।
सम्मोहयामि सविधे मृगानन्यांश्च पक्षिण. ॥१७
विचित्रभावमासाद्य यदा प्रकुरुते रतिम् ।
मयूरमिथुनं वीक्ष्य तत्तदा को नचोन्मुख ॥१८
मृगाश्च तत् पुरस्ताच्च स्वजायाभिस्त्व
अकुर्वन रुचिरं भावं तस्य पार्श्वे ॥१९

अपश्यन् विवरं नास्य कदाचिदपि मच्छरः ।
निपात्य स यदा देहे यन्मया सर्वलोकधृत् ॥२०
बहुधा निश्चितं ज्ञातं रामासंगादृते हरम् ।
अलं च सम्मोहयितुं ससहायोऽपि निष्कलम् ॥२१

जिस अवसर पर भगवान हर अपनी समाधि का परित्याग करके एक क्षण को भी स्थित होते हैं तो फिर मैं उनके ही आगे चक्रवाक के दम्पति को योजित कर दूँगा ॥१५॥ हे ब्रह्माजी ! वह चक्रवाक का जोड़ा बार बार हाव—भाव से संयुत अनेक प्रकार के भाव से उत्तम दाम्पत्य के क्रम को करेगा ॥१६॥ उनके आगे फिर जाया के सहित नील कण्ठों को भी समीप ही में मैं सम्मोहित करूँगा और समीप में ही मृगों को तथा अन्य पक्षियों को भी मोह युक्त कर डालूँगा ॥१७॥ ये सब जिस समय में एक अति अद्भुत भाव को प्राप्त करके परस्पर में में रति सुख का उपभोग करेंगे तथा मयूरों के जोड़े को देखकर कौन सा प्राणी है जो उस समय में उत्सुकता से रहित बना रहे अर्थात् कोई भी चेतन नहीं है जिसे उत्सुकता न हो ॥१८॥ और उनके ही आगे मृग अपनी प्रणायिनियों के साथ उत्सुकता वाले हो जाते हैं और उनके पार्श्व में तथा समीप में अतीव रुचिर भाव करते हैं तो मेरा शर कदाचित् भी इनके विवर को नहीं देखता है। जिस समय में वह देह में गिराया जाता है जो कि मेरे ही द्वारा फेंका जाया करता है आपतो सभी लोकों के धारण करने वाले हैं अर्थात् यह सभी कुछ का ज्ञान रखते हैं ॥१९॥ ॥२०॥ प्रायः यह निश्चित ही ज्ञात होना चाहिये कि रामा के सङ्ग के बिना हर को मैं ससहाय भी निष्कल सम्मोहित करने के लिये समर्थ एवं पर्याप्त हूँ और वह सफल हो है ॥२१॥

मधुश्च कुरुतें कर्म यद्यत्तस्य विमोहनें ।
तच्छृणुष्व महाभाग नित्यं तस्योचितं पुनः ॥२२
चम्पकान् केशरानाम्रान् करुणान् पाटलांस्तथा ।
नागकेशर पुन्नागान् किंशुकान् केतकान् धवान् ॥२३

माधवीर्मल्लिका पर्णधारान् कुरुवकास्तथा ।
उत्फुल्लयति तत्तस्य यत्र तिष्ठति वै हर ॥२४
सरास्युत्फुल्लपद्मानि वीजयन् मलयानिलै ।
सुगन्धाक्रनवान् यत्नादत्तीव शकराश्रमम् ॥२५
लता सर्वा सुमनस फुल्लपादसचयान् ।
वृक्षान् रुचिरभावेन वेष्टयन्ति स्म तत्र वै ॥२६
तान् वृक्षाश्चारुपुष्पौघास्तं सुगन्धि समीरणं ।
दृष्ट्वा कामवश यातो न नत्र मुनिरप्युत ॥२७
तद्गणा अपि लोकेश नानाभावं नुशोभनै ।
वसन्ति स्म सुपा सिद्धा ये ये चातितपोधना ॥२८

मेरा मित्र मधु अर्थात् वसन्त तो जो—जो भी उनके विमोहन की क्रिया करते थे कार्य होगे वह किया ही करता है। हे महाभाग ! जा नित्य ही उसके लिये उचित है उसका पुन आप श्रवण कीजिये ॥ २२ ॥ जहाँ पर भी भगवान् शङ्कर स्थित होकर रहेंगे वहीं पर वह वसन्त मेरा मित्र चम्पकों को—केशरों को—आम्रों को—वरुणों को—पाटलो को—नाग केसर पुन्नागो को—किंशुको को—धनो को—माधवी को—मल्लिका को—पर्णधारों को—कुरवकों को इन सबको वह विकसित कर दिया करता है ॥ २३, २४ ॥ समस्त सरोवर ऐसे कर देता है कि उनमें कमल पूर्ण विकसित हो जाया करते हैं और वह मलय की ओर से आवाहन करने वाली परमाधिक सुगन्धित वायु से वीजन करते हुए यत्नपूर्वक भगवान् शङ्कर के आश्रम को सुगन्धित कर देगा ॥ २५ ॥ वहाँ पर सभी लताएँ खिले हुए पुष्पों से समन्वित हो जायँगी। और समस्त वृक्षों का समुदाय विकसित हो जायगा। वे लताएँ परम रुचिर भाव से दाम्पत्य प्रणय को प्रकट करती हुई वहाँ पर वृक्षों को वेष्टित करेंगी अर्थात् वृक्षों से लिपट जायँगी ॥ २६ ॥ पुष्पों के ओघ वाले उन वृक्षों को उन सुगन्धित समीरणों में संयुत देखकर वहाँ पर मुनि भी

कामकला के वश म आ जाया करत है जो अपनी इन्द्रियो का दमन किये हुए हैं ॥ २७ ॥ हे लोको के स्वामिन् अनेक परम शोभन भावो के द्वारा उनके गण—सुर और सिद्ध तथा परम तपस्वी गण भी जो—जो भी दमनशील है व सभी वश मे आ जाया करते हैं ॥२८॥

न तस्य पुनरस्माभिर्द्दष्ट मोहस्य कारणम् ।
भावमात्र न कुरुते कामोत्थमपि शकर ॥२६
इति सर्वमह दृष्ट्वा ज्ञात्वा च हरभावनाम् ।
विमुखोऽह शम्भुमोहान्नियत मायया विना ॥३०
इदानी त्वद्वच श्रुत्वा योगनिद्रोदित पुन ।
तस्या प्रभाव श्रुत्वाथ गणान दृष्ट्वा सहायवान् ॥३१
मया शम्भोर्विमोहाय क्रियते मुहुरुद्यम ।
भवानपि त्रिलोकेश योगनिद्रा द्रुत पुन ।
भवेद् यथा शम्भुजाया तथैव विदधात्वियम् ॥३२
यमाना नियमानाञ्च प्राणायामस्य नित्यश ।
आसनस्य महेशस्य प्रत्याहारस्य गोचरे ॥३३
ध्यानस्य धारणयाश्च समाधेर्विघ्नसम्भवम् ।
मन्ये कर्तु न शक्य स्यादपि मारशतैरपि ॥३४
तथाप्यय मारगण करोतु हरस्य योगागविकारविघ्नम् ।
यदेव शक्य क्रिमुवा समर्थ समक्षमन्यस्य न कर्तु मोज ।३५

उनके आग हमने मोह का कोई भी कारण नही देखा है। भगवान् शङ्कर तो काम से उत्थित केवल भाव को भी नही किया करते हैं ॥ २६ ॥ यह सभी कुछ मैंने देखकर और भगवान् शङ्कर की भावना का ज्ञान प्राप्त करके मैं तो शम्भु को मोहित करने की क्रिया से विमुख हो गया हूँ । यह नियत ही है कि बिना माया के यह काय कभी भी नही हो सकता है ॥ ३० ॥ इतना तो मैं सब कुछ कर चुका हू किन्तु शम्भु के मोहन के कार्य म मैं विफल ही रहा हूँ किन्तु अब पुन आपके

वचनादेश को श्रवण करके जो योगनिद्रा के द्वारा उदित है। उस योग-निद्रा का प्रभाव सुनकर तथा गणो को सायक सहित देखकर मेरे द्वारा शङ्कर के विमोहन करने के लिये फिर एक बार उद्यम किया जाता है। कृपा कर आपको हे विश्वेश ! योगनिद्रा को पुन शीघ्र ही जिस प्रकार से वह शम्भु की जाया (पत्नी) हो जावे वैसा ही कीजिए। ।। ३१, ३२ ।। शम्भु में यम—नियम और नित्य ही होने वाले प्राणायाम तथा महेश में आसन और गोचर म प्रत्याहार—ध्यान— धारणा और समाधि म विघ्नो का सम्भव होगा मैं तो यह मानता हूं कि मैं तो क्या मुझ जैसे सैकडो के द्वारा भी नही किया जा सकता है ।।३३, ३४।। तो भी यह कामदव के गण भगवान् शङ्कर के योग के यम-नियमादि उपर्युक्त अङ्गो मे विकार रूपी विघ्न कर। जो भी किया जा सके अधिक क्या कहा जावे इनक समक्ष म वोज करने मे समर्थ नही होता है। ३५ ।।

— ✿ —

।। सती की उत्पत्ति ।।

ततो ब्रह्मापि मदनमुवाचेद वच पुन ।
निश्चित्य योगनिद्राया स्मृत्वा वाक्य तपोधना ।।१
अवश्य शम्भुपत्नी सा योगनिद्रा भविष्यति ।
यथाशक्ति भवास्तत्र करोत्वस्या सहायताम् ।।२
गच्छ त्व स्वगणं सार्द्ध यत्र तिष्ठति शकर ।
द्रुत मनोभव त्व च तत् स्थान मधुना सह ।।३
रात्रिन्दिवस्य तुर्यांश जगन्मोहय नित्यश ।
भागत्रय शम्भुपार्श्वे तिष्ठ सार्द्ध गणं सदा ।।४
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।
शम्भो सकाश मदनो गतवान् सगणस्तदा ।।५

एतस्मिन्नन्तरे दक्षश्चिर काल तपोरत ।
नियमैबहुभिर्देवीमाराधयत सुव्रत ॥६
ततो नियमयुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तमा ।
योगनिद्रा पूजयत प्रत्यक्षमभवच्छिवा ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने भी पुन कामदेव से यह वचन कहा था। हे तपोधनो ! ब्रह्माजी ने योगनिद्रा के वाक्य का स्मरण करके और निश्चय करके ही यह कहा था ॥ १ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—यह योगनिद्रा अवश्य ही भगवान् शम्भु की पत्नी होगी। जितनी भी आपकी शक्ति हो उसी के अनुसार आप भी इस योगनिद्रा की सहायता करिये ॥ २ ॥ आप अब अपने गणो के साथ ही वहीं पर चले जाइए जहाँ पर भगवान शङ्कर समवस्थित हैं। हे काम देव ! आप भी अपने सखा बसन्त के साथ वहाँ पर शीघ्र ही गमन करिये जिस स्थान पर शम्भु विराजमान है और अहर्निश के चतुर्थ भाग मे नित्य ही जगत् का मोहन करो और शेष तीन भाग म गणो के साथ सदा भगवान शम्भु के समीप संस्थित रहो ॥ ३ ४ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना कहकर लोको के स्वामी ब्रह्माजी वहीं पर अतर्धान हो गये थ और कामदेव अपने गणो के सहित उसी समय मे भगवान् शम्भु के समीप मे चला गया था ॥ ५ ॥ इसी बीच मे प्रजापति दक्ष चिरकाल तक तपस्या मे रत होता हुआ बहुत प्रकार के नियमो से सुन्दर व्रतधारी होकर देवी की समाराधना मे निरत हो गया था। ॥ ६ ॥ हे मुनि सत्तमो ! फिर नियमो मे युक्त और योगनिद्रा देवी का यजन करने वाले दक्ष प्रजापति के समक्ष मे चण्डिका देवी प्रत्यक्ष हुई थी ॥ ७ ॥

तत प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा विष्णुमाया जगन्मयीम् ।
कृतकृत्यमथात्मान मेने दक्ष प्रजापति ॥८
सिंहस्था कालिका कृष्णा पीनोत्तु गपयोधराम् ।
चतुर्भुजा चारुवक्त्रा नीलोत्पलधरा शुभाम् ॥९

वरदाभयदा खड्गहस्ता सर्वगुणान्विताम् ।
आरक्तनयना चारुमुक्तकेशी मनोहराम् ॥१०
दृष्ट्वा दक्षोऽथ तुष्टाव महामाया प्रजापति ।
प्रीत्या परमया युक्तो विनयाननकन्धरः ॥११
आनन्दरूपिणी देवी जगदानन्दकारिणीम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा ता स्तौमि लक्ष्मी हरे शुभाम् ॥१२
सत्त्वोद्रेकप्रकाशेन यज्ज्योतिस्तत्त्वमुत्तमम् ।
स्वप्रकाश जगद्धाम तत्तवाश महेश्वरि ॥१३
रजोगुणातिरेकेण यत् कामस्य प्रकाशनम् ।
रागस्वरूप मध्यस्थं तत्तेऽशारा जगन्मयि ॥१४

इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष ने प्रत्यक्ष रूप से जगन्मयी विष्णु-माया का दर्शन प्राप्त करके अपने आपको कृतकृत्य अर्थात् पूर्णतया सफल मानने लगा था ॥८॥ अब भगवती के स्वरूप का वर्णन किया जाता है कि वह देवी कालिका परम स्निग्ध—कृष्ण वर्ण से मधुरा—पीन (स्थूल) और उन्नत स्तनों वाली थी। उसकी चार भुजाऐं थी तथा परमाधिक सुन्दर उसका मुख था और नील वसन को धारण करने वाली परम शुभ थी ॥९॥ वरदान तथा अभयदान देने वाली—हाथ में खड्ग धारण करती हुई सभी गुणों से समन्विता थी। उसके नयन थोड़ी रक्तिमा लिये हुए थे और सुन्दर और खुले हुए केशों वाली थी एवं परम मनोहर थी ॥१०॥ प्रजापति दक्ष ने उनका दर्शन प्राप्त करके परम प्रीति से युक्त होकर विनम्रता से अवनत कन्धों वाले ने इस देवी की स्तुति की थी ॥११॥ दक्ष ने कहा—आनन्द के स्वरूप वाली और सम्पूर्ण जगत् का आनन्द करने वाली सृष्टि पालन और संहार के स्वरूप से संयुत—परम शुभा भगवान् हरि की लक्ष्मी देवी का मैं स्तवन करता हूँ ॥१२॥ हे महेश्वरि ! सत्त्व गुण के उद्रेक के प्रकाश से जो उत्तम ज्योति का तत्त्व है जो स्व प्रकाश जगत् का धाम है वह आपका

ही अश है ॥१३॥ रजोगुण की अधिकता से जो काम का प्रकाशन है वह हे जगन्मयि ! मध्य में स्थित राग के स्वरूप वाला आपके ही अश का अ श है ॥१४॥

तमोगुणातिरेकेण यद्यन्मोहप्रकाशनम् ।
आच्छादन चेतनाना तत्ते चाशाशगोचरम् ॥१५
परा परात्मिका शुद्धा निर्मला लोकमोहिनी ।
त्व त्रिरूपा त्रयी कीर्त्तिर्वार्त्तास्य जगतो गतिः ॥१६
विभर्ति माधवो धात्री यया मूर्त्या निजोत्थया ।
सा मूर्त्तिस्तव सर्वेषा जगतामुपकारिणी ॥१७
महानुभावा त्व विश्वशक्ति सूक्ष्मापराजिता ।
यदूर्द्धाधोनिरोधेन व्यज्यते पवने परम् ॥१८
तज्ज्योतिस्तव मात्रार्थे सात्त्विक भावसन्मतम् ।
यद्योगिनो निरालम्ब निष्फल निर्मल परम् ॥१९
आलम्बयन्ति तत्तत्त्व त्वदन्तर्गोचरन्तु तत् ।
या प्रसिद्धा च कूटस्था सुप्रसिद्धाति निर्मला ॥२०
सा ज्ञप्तिस्त्वन्निष्प्रपञ्चा प्रपञ्चापि प्रकाशिका ।
त्व विद्या त्वमविद्या च त्वमालम्ब्या निराश्रया ।
प्रपञ्चरूपा जगतामादिशक्तिस्त्वमीश्वरी ॥२१

तमोगुण के अतिरक से जो मोह का प्रकाशन है जो कि चेतनो का आच्छादन करने वाला है वह भी आपके अ शाश का गोचर है ॥१५॥ आप परा है और परास्वरूप वाली है—आप परम शुद्धा हैं—निर्मला हैं और लोकों का मोहन करने वाली हैं । आप तीन रूपों वाली—त्रयी (वेदत्रयी)—कीर्त्ति—वार्त्ता और इस जगत् की गति है ॥ १६ ॥ जिस निजोत्थ मूर्ति के द्वारा माधव धात्री का विभरण करते हैं वह आपकी ही मूर्ति है जो समस्त जगतो के उपकार करने वाली है ॥१७॥ आप महान् अनुभावों वाली सूक्ष्मा और अपराजिता विश्व की शक्ति हैं ज

ऊर्ध्व और अध के निरोध के द्वारा पवना से पर का व्यक्तीकरण किया जाता है ॥१८॥ वह ज्योति आपके भावाभाव में भाव में मन सात्विक है जिसका योगीजन विना आलम्ब वाली—निष्कल—परम निर्मल आलम्बन किया करते हैं वह तत्व आपके ही अन्तर गोचर है। जो प्रसिद्धा—कूटस्था—अति प्रसिद्धा और निर्मला है ॥१९॥२०॥ वह ज्ञप्ति आपकी निष्प्रपञ्चा और प्रपञ्चा प्रकाशिका है आप विद्या हैं और आप अविद्या हैं आप आत्मवा हैं और विना आश्रय वाली हैं। आप प्रपञ्च रूप से संयुत जगतो की आदि शक्ति हैं और आप ईश्वरी हैं ॥२१॥

ब्रह्मकण्ठालया शुद्धा वाग्वाणी या प्रगीयते।
वेदप्रकाशनपरा सा त्वं विश्व प्रकाशिनी ॥२२
त्वमग्निस्त्वं तथा स्वाहा त्वं स्वधा पितृभिः सह।
त्वं नभस्त्वं कालरूपा त्वं काष्ठा त्वं वहिः स्थिता ॥२३
त्वमचिन्त्या त्वमव्यक्ता तथानिर्देश्यरूपिणी।
त्वं कालरात्रिस्त्वं शान्ता त्वमेव प्रकृतिः परा ॥२४
यस्याः ससारलोकानां परित्राणाय यद्वहि।
रूपं जानन्ति धात्राद्यास्तत्त्वा ज्ञास्यन्ति कं पराम् ॥२५
प्रसीद भगवत्यम्बे प्रसीद योगरूपिणि।
प्रसीद घोररूपे त्वं जगन्मयि नमोऽस्तु ते ॥२६
इति स्तुता महामाया दक्षेण प्रयतात्मना।
उवाच दक्ष जानापि स्वयं तस्येप्सितं द्विज ॥२७

जो ब्रह्माजी के कण्ठ के आलय वाली और शुद्धा वाग्वाणी गायी जाती है वह वेदों के प्रकाशन में परायणा तथा विश्व का प्रकाशित करने वाली आप ही हैं ॥२२॥ आप अग्नि हैं तथा स्वाहा हैं। आप पितृगणों के साथ स्वधा हैं। आप नभ हैं और आप काल रूपा हैं आप दिशायें हैं और आप बाहर स्थिता हैं ॥२३॥ आप चिन्तन करने के अयोग्या हैं—आप अव्यक्त हैं तथा आप आपका रूप अनिर्देश्य है। आपही काल

राशि हैं और आप ही परम शान्त परा प्रकृति हैं ॥२४॥ जिसका संहार और लोको के परित्राण के लिए जो रूप बाहिर धात्राद्य आपको जानते है अन्यथा परा आपको कौन जानेगा ॥२५॥ हे भगवति ! आप प्रसन्न होइए—हे अम्बे ! हे योग रूपिणि ! आप प्रसन्न होइए। हे घोर रूपे ! आप प्रसन्न होइए। हे जगन्मयि ! आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥२६॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस रीति से प्रयत आत्मा वाले दक्ष के द्वारा स्तुति की गयी महा माया हे द्विजो ! दक्ष से बोली यद्यपि उस दक्ष के अभीष्ट को स्वय जानती हुई भी थी तथापि देवी ने उससे पूछा था ॥२७॥

तुष्टाहं दक्ष भवतो मद्भक्त्या ह्यनया भृशम् ।
वरं वृणीष्व चाभीष्टं तत्ते दास्यामि तत् स्वयम् ॥२८
नियमेन तपोभिश्च स्तुतिभिस्ते प्रजापते ।
अतीव तुष्टा दास्येऽहं वरं वरय वाञ्छितम् ॥२९
जगन्मयि महामाये यदि त्वं वरदा मम ।
तदा मम सुता भूत्वा हरजाया भवाधुना ॥३०
ममैष न वरो देवि केवलं जगतामपि ।
लोकेशस्य तथा विष्णोः शिवस्यापि प्रजेश्वरि ॥३१
अहं तव सुता भूत्वा त्वज्जायायां समुद्भवा ।
हरजाया भविष्यामि न चिरात्तु प्रजापते ॥३२
यदा भवान्मयि पुनर्भवेन्मन्दादरस्तदा ।
देहं त्यक्ष्यामि सपदि सुखिन्यप्यथ वेतरा ॥३३
एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते ।
अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया ॥३४
तथा सम्मोहयिष्यामि महादेवं प्रजापते ।
प्रतिसर्गं यथा मोहं सम्प्राप्स्यति निराकुलम् ॥३५

भगवती ने कहा—हे दक्ष ! अत्यधिक इस मेरी भक्ति से मैं आपसे परम प्रसन्न हूँ। अब तुम वरदान का वरण करलो जो भी

आपका अभीप्सित हो वह मैं स्वयं ही तुझे दे दूँगी ॥ २८ ॥ हे प्रजापते ! आपके नियम से—तप से और आपकी स्तुतियों से मैं बहुत ही अधिक प्रसन्न हो गयी हूँ। आप वरदान का वरण करो मैं उसी वर को दे दूँगी ॥ २९ ॥ दक्ष ने कहा—हे जगन्मयि ! हे महामाये ! यदि आप मुझे वरदान देने वाली हैं तो आप ही स्वयं मेरी पुत्री होकर भगवान् शङ्कर की अब पत्नी बन जाइये ॥ ३० ॥ हे देवि ! यह वर केवल मेरा ही नहीं है अपितु समस्त जगतों का है। हे प्रजेश्वरि ! यह वर लोकों के ईश ब्रह्माजी का है तथा भगवान् विष्णु का है और भगवान् शिव का भी है ॥ ३१ ॥ देवी ने कहा—हे प्रजापते ! मैं आपकी पुत्री होकर आपकी जाया (पत्नी) में जन्म धारण करने वाली होऊँगी तथा भगवान् शंकर की पत्नी हो जाऊँगी और इसमें विलम्ब नहीं होगा शीघ्र ही होऊँगी ॥ ३२ ॥ जिस समय में आप फिर मेरे विषय में मन्द आदर वाले हो जाओगे तब मैं सुखिनी भी अथवा तुरन्त ही अपने देह का त्याग कर दूँगी ॥ ३३ ॥ हे प्रजापते ! यह वर प्रतिसर्ग में आपको दे दिया है कि मैं आपकी सुता होकर भगवान् हरि की प्रिया होऊँगी ॥ ३४ ॥ हे प्रजापते ! मैं महादेव को उस प्रकार से सम्मोहित करूँगी कि वे प्रतिसर्ग में निराकुल मोह को सम्प्राप्त करेंगे ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा महामाया दक्षं मुख्यं प्रजापतिम् ।
अन्तर्दधे ततो देवी सम्यग् दक्षस्य पश्यतः ॥३६
अन्तर्हिताया मायाया दक्षोऽपि निजमाश्रमम् ।
जगाम लेभे च मुदं भविष्यति मुतेति सा ॥३७
अथ चक्रे प्रजोत्पादं विना स्त्रीसंगमेन च ।
संकल्पाविर्भवाभ्यान्तु मनसा चिन्तनेन च ॥३८
तत्र ये तनया जाता बहुशो द्विजसत्तमाः ।
ते नारदोपदेशेन भ्रमन्ति पृथिवीमिमाम् ॥३९

पुन पुन सुता ये ये तस्य जाता सहस्रश ।
ते सर्वे भ्रातृपदवी ययुर्नारद वाक्यत ॥४०
पृथिव्या सृष्टिकर्तार सर्वे यूय द्विजोत्तमा ।
पश्यध्व पृथिवी कृत्स्नामुपान्तप्रान्तमायताम् ॥४१
इति नारदवाक्येन नोदिता दक्षपुत्रका ।
अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्त पृथिवीमिमाम् ॥४२

मार्कण्डेय मुनि ने कहा— इस प्रकार से मध्य प्रजापति दक्ष ! महामाया ने कहकर इसके उपरान्त वह देवी भली भाँति दक्ष के देखते देखते ही वही पर अन्तर्हित हो गई थी ॥ ३६ ॥ उस महामाया अन्तर्धान हो जाने पर प्रजापति दक्ष भी अपने आश्रम को चले गये औ उन्होंने परम आनन्द प्राप्त किया था कि वह महा माया उनकी पुत्री होकर जन्म धारण करेगी ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर बिना ही स्त्री। सङ्गम के उन्होंने प्रजा का उत्पादन किया था । सङ्कल्प— आविर्भाव के द्वारा तथा मन से और चिन्तन के द्वारा ही प्रजोत्पादन किया था ॥ ३८ ॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! वहा पर उनके बहुत—से पुत्र समुत्पन्न हुये और वे सब देवर्षि नारदजी के उपदेश से इस पृथ्वी पर भ्रमण किया करते हैं ॥ ३९ ॥ बार बार जो पुत्र उनके उत्पन्न हुए थे वे सभी अपने भाइयो के ही मार्ग पर नारदजी के वचन से चले गये थे॥४०॥ हे द्विजोत्तमो ! आप लोग सभी पृथिवी मण्डल मे सृष्टि के करने वाले हैं । इस सम्पूर्ण पृथिवी उपान्त-प्रान्त म आयत देखो ॥ ४१ ॥ यही देवर्षि नारदजी का वाक्य था । जिसके द्वारा दक्ष के पुत्र प्रेरित किये गये थे वे आज तक भी इस पृथिवी पर भ्रमण करते हुए वही वापिस हैं ॥ ४२ ॥

तत समुत्पादयितु प्रजा मैथुनसम्भवा ।
उपयेमे वीरणस्य तनया दक्ष ईप्सिताम् ॥४३
वीरिणी नाम तस्यास्तु असक्नीत्यपि सत्तमा ।
तस्या प्रथम सकल्पो यदा भूत प्रजापते ॥४४

सद्योजाता महामाया तदा तस्यां द्विजोत्तमाः ।
तस्यां तु जातमात्रायां सुप्रीतोऽभून् प्रजापतिः ।
संवैपेति तदा मेने तां दृष्ट्वा तेजसोज्ज्वलाम् ॥४५
बभूव पुष्टवृष्टिश्च मेघाश्च ववृपुर्ज्जलम् ।
दिशः शान्तास्तदा तस्यां जातायाञ्च समुद्गताः ॥४६
अवादयन्तस्त्रिदशाः शुभवाद्यं वियद्गताः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्तास्तस्यां सत्या नरोत्तमाः ॥४७
वीरिण्या लक्षितो दक्षस्ता दृष्ट्वा जगदीश्वरीम् ।
विष्णुमायां महामाया तोषयामास भक्तितः ॥४८

इसके अनन्तर मैथुन से समुत्पन्न होने वाली प्रजा का सम्पादन करने के लिये प्रजापति दक्ष ने वीरण की पुत्री के साथ विवाह किया था जो कि परम ईप्सित कन्या थी ॥४३॥ हे सत्तमो ! उसका नाम वीरणी था और असिक्नी यह भी था। उसमें जब प्रजापति का प्रथम सङ्कल्प हुआ। हे द्विजोत्तमो ! उस समय में उसमें सद्योजाता महामाया हुई। उसके जन्म होते ही प्रजापति अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। उसको तेज से उज्ज्वला देखकर उस समय में उसने (दक्ष ने) यह यही है—

या प्रोच्यते विष्णुमाया ता नमामि सनातनीम ॥४९
यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तत् पुराकरोत् ।
स्थितिञ्च विष्णुरकरोद्यन्नियोगाज्जगत्पति ॥५०
शम्भुरन्त ततो देवी त्वा नमामि महीयसीम् ।
विकाररहिता शुद्धामप्रमेया प्रभावतीम् ।
प्रमाणमानमेयाख्या प्रणमामि सुखात्मिकाम् ॥५१
यस्त्वा विचिन्तयेद्देवी विद्याविद्यात्मिकां पराम् ।
तस्य भोगश्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता ॥५२
यस्त्वा प्रत्यक्षतो देवी सकृत पश्यति पावनीम् ।
तस्यावश्य भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिकाम् ॥५३
योगनिद्रे महामाये विष्णमाये जगन्मयि ।
या प्रमाणार्थसम्पन्ना चेतना सा तवात्मिका ॥५४
ये स्तुवन्ति जगन्मातर्भवतीमम्बिकेति च ।
जगन्मयीति मायेति सर्वं तेषा भविष्यति ॥५५

दक्ष प्रजापति ने कहा था – शिवा—शान्ता—महामाया—योगनिद्रा—जगन्मयी जो विष्णु माया कही जाती है उस सनातनी देवी के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥ जिसके द्वारा धाता (ब्रह्मा) इस जगत् की सृष्टि का सृजन करने के कार्य में नियुक्त किया गया था और पहिले उस सृष्टि की रचना उसने की थी और भगवान विष्णु ने उस सृष्टि की स्थिति अर्थात् परिपालन किया था। जिसके नियोग से जगत् के पति शम्भु ने अन्त अर्थात् सृष्टि का संहार किया था। उसी महीयसी देवी आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप विकारों से रहित हैं—शुद्ध हैं—अप्रमेया अर्थात् प्रमाण करने के योग्य हैं—प्रभा वाली हैं—आप प्रमाण मान मेय नाम वाली और सुख स्वरूपिणी हैं ऐसी आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५०, ५१ ॥ जो पुरुष देवी आपका चिन्तन करे औ आप विद्या अविद्या के स्वरूप वाली परा हैं उस पुरुष के मुक्ति का

भोग्य और मुक्ति सदा ही करतल में स्थित रहा करती है ।। ५२ ।। जो पुरुष आप देवी का प्रत्यक्ष रूप से परम पावनी का एक बार भी दर्शन प्राप्त कर लेता है उस पुरुष की अवश्य ही मुक्ति हो जाया करती है जो कि विद्या—अविद्या की प्रकाशिका है ।५ ।है योगनिद्रे ! हे महामाये! हे जगन्मयी ! हे विष्णुमाये ! जो प्रमाणार्थ सम्पन्ना चेतना है वह तेरे ही स्वरूप वाली है ।। ५४ ।। हे जगन्मात ! जो पुरुष आपको अम्बिका कह कर स्तवन किया करते है, जो जगन्मयी और माया—इन नामों का उच्चारण करके आपकी स्तुति किया करते है उनका सभी कुछ अभीष्ट सम्पन्न हो जाया करता है ।।५५।।

इति स्तुता जगन्माता दक्षेण सुमहात्मना ।
तथोवाच तदा दक्ष यथा माता शृणोति न ।।५६
सम्मोह्य सर्व तत्रस्थं यथा दक्षः शृणोति तत् ।
नान्यः शृणोति च तथा माययाह तदाम्बिका ।।५७
अहमाराधिता पूर्वं यदर्थं मुनिसत्तम ।
ईप्सितं तव सिद्धं तदवधारय साम्प्रतम् ।।५८
एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षञ्च निजमायया ।
अस्थाय शैशवं भाव जनन्यन्ते रुरोद सा ।।५९
ततस्तां वीरिणी यत्नात् सुसंस्कृत्य यथोचितम् ।
शिशुपालेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ ।।६०
पालिता साथ वीरिण्या दक्षेण सुमहात्मना ।
ववृधे शुक्लपक्षस्य निशानाथो यथान्वहम् ।।६१
तस्यान्तु सद्गुणा सर्वे विवशुद्धिजसत्तमा ।
शैशवेऽपि यथा चन्द्रे कला सर्वा मनोहरा ।।६२
रेमे सा निजभावेन सखीमध्यगता यदा ।
तदा लिखति भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहुः ।।६३

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—सुमहान् आत्मा वाले दक्ष के द्वारा

इस रीति से स्तुति की गयी जगन्माता उस अवसर पर उसी भाँति दक्ष प्रजापति से बोली जैसे माता सुनती ही नही हो ॥५६॥ वहाँ पर स्थित सबको सम्मोहित करके जिस तरह से दक्ष वह सुनता है उस प्रकार अन्य माया से नही श्रवण करता है उस समय मे अम्बिका ने कहा ।५७। देवी ने कहा —हे मुनि सत्तम! जिसके लिये पूर्व मे मेरी आराधना की थी वह आपका अभीष्ट कार्य सिद्ध हो गया है—यह अब अवधारण कीजिए ।५८। मार्कण्डेय मुनिने कहा—इस प्रकार से कहकर उस समय मे देवीने अपनी माया से दक्ष को समझाया था और फिर वह शैशव भाव मे समास्थित होकर जननी के समीप रोदन करने लगी थी ॥५९॥ इसके अनन्तर बीरणी ने बड़ो ही यत्न से यथोचित रूप से सुसस्कार करके शिशु के पालन की विधि से उसको स्तन आदि को दिया था अर्थात् स्तन का दुग्ध पिलाया था ॥६०॥ इसके अनन्तर बीरणी के द्वारा वह पालित की गयी थी तथा महात्मा दक्ष के द्वारा शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा जिस तरह से प्रतिदिन वृद्धि वाला हुआ करता उसी भाँति वह बडी की गयी थी। ॥६१॥ हे द्विज श्रेष्ठो! उस देवी मे सब सद्गुणो ने प्रवेश कर लिया था। जिस तरह से चन्द्रमा मे शैशव मे भी समस्त मनोहर कलायें प्रवेश किया करती है ॥६२॥ वह निजभाव से जिस समय मे सखियो के मध्य गमन करके रमण करती थी अर्थात् अपने मन का रञ्जन किया करती थी उस समय मे प्रतिदिन भ॰ २ भर्ग की प्रतिमा को लिखता है ॥६३॥

यदा गायति गीतानि त ा वाल्योचितानि सा ।
उग्र स्याणु हर रुद्र सस्मार स्मरमानसा ॥६४
सस्याश्चक्र नाम दक्ष सतीति द्विजसत्तमा ।
प्रशस्तायाः सर्वगुणं सत्त्वादपि नयादपि ॥६५
ववृधे दक्षवीरिण्योः प्रत्यह करणातुला ।
तस्या बाल्येऽपि भक्ताया तयोनित्य मुहुर्मुहु ॥६६

वह जिस समय में गीतों का गान करती है जो कि बचपन के लिये समुचित थे उस समय मे स्मर मानसा वह उग्र—स्थाणु—हर और रुद्र—इन नामों का स्मरण किया करती थी। स्मर मानसा—इसका तात्पर्य है काम वासना को मन मे धारण करने वाली ॥६४॥ हे द्विज सत्तमो! दक्ष प्रजापति ने उस बालिका स्वरूप में स्थित देवी का 'सती'—यह नाम रक्खा था। जो कि समस्त गुणों के द्वारा सत्व से भी और नय से भी परम प्रशस्ता थी ॥६५॥ दक्ष और वीरणी दोनो की प्रतिदिन अनुपम करुणा बढ़ रही थी। उन दोनों दक्ष और वीरणी की करुणा की वृद्धि का कारण यही था कि वह सती बचपन मे ही परम भक्ता थी अतएव उन दोनो की बारम्बार नित्य करुणा की वृद्धि हो रही थी ॥६६॥ हे नरोत्तमो! वह समस्त परम सुन्दर गुणो से समाक्रान्त थी और सदा ही नय शालिनी थी अतएव उसने (सती ने) अपने माता-पिता को परमाधिक तोष दिया था। अर्थात् वे अतीव सन्तुष्ट थे इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि उस सती को अपने पिता दक्ष के पार्श्व मे समय स्थित हुई को ब्रह्मा—नारद इन दोनो ने देखा था जो कि इस भूमण्डल मे परम शुभा और रत्न भूता थी ॥६६॥ ॥६७॥६८॥

सर्वकान्त गुणाकान्ता सदा सा नयशालिनी।
तोषयामास पितरौ नित्यं नित्यं नरोत्तमा. ॥६७
अथैकदा पितुः पार्श्वे तिष्ठन्ती तां सतीं विधिः।
नारदश्च ददर्शाथ रत्नभूतां क्षितौ शुभाम् ॥६८
सापि तौ वीक्ष्य मुदिता विनयावनता तदा।
प्रणनाम सती देवं ब्रह्माणमथ नारदम् ॥६९
प्रणामान्ते सती वीक्ष्य विनायावनता विधिः।
नारदश्च तयैवाशीर्वादमेतमुवाच ह ॥७०
त्वामेव यः कामयते य त्वं कामयसे पतिम्।
तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ॥७१

यो ऽन्यान्या जगृह नापि गृह्णाति न ग्रहीष्यति ।
जाया स ते पतिर्भूयादन यसदृश शुभे ॥७२
इत्युक्त्वा सुचिर तौ तु स्थित्वा दक्षाश्रये पन ।
विसष्टौ तन सयातौ स्वस्थान द्विजसत्तमा ॥७३

वह सती भी उन दोनो का दशन प्राप्त करके सुप्रम न हुई थी और उस समय मे विनम्रता से अवनत हो गयी थी । इसके अन तर उस सती ने देव ब्रह्माजी को और देवर्षि नारदजी को प्रणाम किया था ॥६९॥ प्रणाम करने के अन्त म ब्रह्माजी ने उस सती को विनय मे अवनत अर्थात् नीचे की ओर झुकी हुई देखकर और नारद जी न भी उसका अवनत स्वरूप का दर्शन किया था । तब नारदजी ने उस सती को यह आशीर्वाद कहा था ॥७०॥ जो तुम्हारी प्राप्ति की कामना करता है और जिसको तुम अपना पति बनाने की कामना किया करती हो उन सर्वश—जगदीश्वर देव को अपने प त क स्वरूप मे प्राप्त करो ॥७१॥ जो अन्य किसी भी नारी को ग्रहण करने वाले नही हुये थ और न ग्रहण करते है तथा अन्य जाया को ग्रहण करेग भी नही । हे शुभे ! वही आपके पति होवें जो अनन्य सदृश हैं अर्थात् जिनके सरीखा अन्य कोई भी नही है ॥७२॥ इतना कहकर वे दोनो (ब्रह्मा और नारद) फिर दक्ष प्रजापति के आश्रम म स्थित होकर हे द्विज सत्तमो ! उस दक्ष के द्वारा विदा किये गय थ और वे दोनो अपने स्थान म चले गय थ ॥७३॥

—:o:—

॥ हरानुनयो वर्णन ॥

वारय व्यतीत्य सा गाप यौवन शोभन तत ।
अतीव रूपेणाङ्गेन सर्वाङ्गसुमनोहरा ॥१
सा वीक्ष्य दक्षो लोकेश प्रोदभना तदैव स्त्रियाम् ।

चिन्तयामास भर्गाय कथं दास्य इमां सुताम् ॥२
अथ सापि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम् ।
आराधयामास च तं गृहे मातुरनुज्ञया ॥३
आश्विने नन्दकाख्याया लवणे सगुडोदने ।
पूजयित्वा हरं पश्चाद्वन्दे सा निनाय तम् ॥४
कार्तिकस्य चतुर्दश्यां सापूपैः पायसैर्हरम् ।
समाकीर्णे समाराध्य सस्मार परमेश्वरम् ॥५
कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे सतिलैः सयवोदनैः ।
पूजयित्वा हरं नील निनाय दिवसं पुनः ॥६
पौषे तु कृष्णसप्तम्यां कृत्वा जागरणं निशि ।
अपूजयच्छिवं प्रातः कृसरान्नेन सा सती ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उन सती देवी ने अपना बचपन व्यतीत करके वह फिर परमाधिक शोभन यौवन को प्राप्त हो गयी थी और अत्यधिक रूप लावण्य से सुसम्पन्न अपने अङ्ग से बहुत मस्त अङ्गों के द्वारा सुमनोहर अर्थात् बहुत ही अधिक मन को हरण करने वाली सुन्दरी थी ॥१॥ दक्ष प्रजापति ने जो लोकों का ईश था उस सती को देखा था कि वह प्रोद्भिन्न अन्तवय में संस्थित है अर्थात् यौवन में सुसम्पन्न पूर्ण युवती हो गई है तब उसने यह चिन्ता की थी कि इस अपनी पुत्री को भर्ग के लिये किस प्रकार से प्रदान करूँ ॥२॥ इसके अनन्तर वह सती भी प्रतिदिन स्वयं ही भगवान् शम्भु को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली हो गयी थी। उस सती ने अपनी माता की आज्ञा से भगवान् शम्भु की समाराधना की थी जो अपने घर में स्थित होकर की गयी थी ॥३॥ आश्विन मास में नन्द नाख्या में गुड़ और ओदन के सहित लवणा में हर का यजन करके इसके पश्चात् उसने वन्दना की थी। उसने उन्हें प्राप्त किया था। कार्तिक मास की चतुर्दशी तिथि में पूओं के सहित पायसा (खीर) से जो समाकीर्ण थे भगवान् हर की समा-

राधना करके फिर परमेश्वर प्रभु शम्भु का स्मरण किया था ॥४॥५॥ मार्गशीर्ष मास मे कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में तिलो के सहित यव और ओदना से भगवान् हर का पूजन करके फिर लीला के द्वारा दिवस को व्यतीत करती थी ॥६॥ पौष मास में कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के दिन में रात्रि मे जागरण करके प्रातःकाल मे शिव का उस सती ने कृसरान्न के द्वारा यजन किया था ॥ ७ ॥

माघस्य पौर्णमास्यान्तु कृत्वा जागरण निशि ।
आर्द्रवस्त्रा नदीतीरे ह्यकरोद्धरपूजनम् ॥८
नानाविधै फलै पुष्पै सम्यक् तत्कालसम्भवै ।
चकार नियताहार त मास हरमानसा ॥६
चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे तपस्यस्य विशेषत ।
कृत्वा जागरण देवं बिल्वपत्रैरपूजयत् ॥१०
चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां पालाशैं कुसुमै शिवम् ।
अपूजयद्दिवारात्रौ त स्मरन्ती निनाय तम् ॥११
वैशाखस्य तृतीयाया शुक्लाया सयवोदनै ।
पूजयित्वा हर देव ह्यमसि चरन्त्यनु ।
निनाय सा निराहारा स्मरन्ती वृषवाहनम् ॥१२
ज्येष्ठस्य पूर्णिमारात्रौ सम्पूज्य वृषवाहनम् ।
वसनैर्वृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय ताम् ॥१३
आषाढस्य चतुर्दश्या शुक्लाया कृत्तिवासस ।
वृहतीकुसुमै पूजा देवस्याकरि वै तया ॥१४

माघ मास की पौर्णमासी मे रात्रि मे जागरण करके गीले वस्त्र धारण करती हुई नदी के तट पर भगवान् हर का पूजन करती थी ॥८॥ उस पूरे मास मे भगवान् शम्भु में मन वाली ने नियत आहार किया था जो अनेक प्रकार के फलो और पुष्पो से ही किया गया था जो भी उस काल मे समुत्पन्न होने वाले थे ॥६॥ माघ मास में विशेष रूप से

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में रात्रि में जागरण करके देव का बिल्व यन्त्रों के द्वारा यजन किया करती थी ॥१०॥ चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में पलाश के पुष्पों से भगवान् शिव की पूजा की थी और दिन तथा रात में उन का स्मरण करते हुए उप्त को व्यतीत किया था। वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन में यवो के सहित ओदनों के द्वारा देव शम्भु का यजन करके द्रव्यों के द्वारा पूरे मास का अनुवरण किया करती थी। वृष गहन प्रभु का स्मरण करती हुई उस सती ने निराहार रहकर उस समय को व्यतीत किया था ॥११॥ १२॥ उसने निराहार ही रह कर ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में वृष गहन देव का यजन करके वसनों से और पुष्पों के द्वारा उसको पूर्ण किया था ॥१३॥ आषाढमास की चतुर्दशी तिथि में जोकि—शुक्ल पक्ष की थी कृत्ति वाला देव का वृहती के पुष्पों के द्वारा यजन करके उसने उसी भाँति किया था ॥१४॥

श्रावणस्य सिताष्टम्या चतुर्दश्याञ्च सा शिवम् ।
यज्ञोपवीतैर्वासोभि पवित्रैरप्यपूजयत् ॥१५
भाद्रे कृष्णत्रयोदश्या पुष्पैर्नानाविधै फलै ।
सपूज्याथ चतुर्दश्या चकार जलभोजनम् ॥१६
इति व्रत यदारब्ध पुरा सत्या तदैव तु ।
सावित्रीसहितो ब्रह्मा जगामाथ हरान्तिकम् ॥१७
वासुदेवोऽपि भगवान् सह लक्ष्म्या तदन्तिकम् ।
प्रस्था हिमवत शम्भु स्थितो यत्र गणै सह ॥१८
तौ तु दृष्ट्वा ब्रह्मकृष्णौ सस्त्रीकौ सगतौ हर ।
यथोचित समाभाष्य पप्रच्छागमन तयो ॥१९
तथाविधास्तु तान् दृष्ट्वा दाम्पत्यभावसयुतान् ।
काचिदीहाञ्च मनसा चक्रे दारपरिग्रहे ॥२०
अयागमनहेतु न कथयध्वञ्च तत्वत ।
किमर्थमागता यूय किं कार्य वोऽत्र विद्यते ॥२१

इति पृष्टोऽम्बकेण ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच च महादेवं विष्णुना परिचोदितः ॥२२

श्रावण मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि में दिन में और चतुर्दशी में उसने पवित्र यज्ञोपवीतों तथा वस्त्रों के द्वारा देव का पूजन किया था ॥ १५ ॥ भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में नाना भाँति के फलों तथा पुष्पों के द्वारा भली भाँति देवका भजन करके चतुर्दशी में जल का ही भोजन किया था ॥ १६ ॥ इस प्रकार से जो पूर्व में व्रत सती ने आरम्भ किया था उसी समय में सावित्री के सहित ब्रह्माजी भगवान् शम्भु के समीप में गये थे ॥ १७ ॥ भगवान् वासुदेव भी अपनी लक्ष्मी देवी के सहित उनके सन्निधि में गये थे । जहाँ पर भगवान् शम्भु हिमालय गिरि के प्रस्थ पर अपने गणों के सहित विराजमान थे ॥ १८ ॥ भगवान् शम्भु ने उन दोनों ब्रह्मा की ओर भगवान् कृष्ण को देखकर जो अपनी पत्नियों के साथ सङ्गत हुए वहाँ पर प्राप्त हुए थे जैसा भी समुचित शिष्टाचार था उसी के अनुसार उनसे सम्भाषण करके उनके यहाँ पर समागमन का कारण शङ्कर प्रभु ने पूछा था ॥ १९ ॥ उस प्रकार के उन दोनों का दर्शन करके जो दाम्पत्य भाव से सङ्गत थे शम्भु ने भी दारा के परिग्रह करने की इच्छा मन में की थी ॥ २० ॥ इसके उपरान्त तात्त्विक रूप से अपने आगमन का कारण कहिए कि आप लोग यहाँ पर किस प्रयोजन को सम्पादित किये जाने के लिये समागत हुए हैं और आपका यहाँ पर क्या कार्य है ? ॥ २१ ॥ इस रीति से भगवान् शम्भु के द्वारा पूछे गये वे दोनों में से लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर महादेवजी से कहा था ॥२२॥

यदर्थमागतावावां तच्छृणुस्व त्रिलोचन ।
विशेषश्च देवार्थं विश्वार्थञ्च वृषध्वज ॥२३
अहं सृष्टिरतः शम्भो स्थितिहेतुस्तथा हरिः ।
अन्तहेतुर्भवानस्य जगतः प्रतिसर्गकम् ॥२४

तत्कर्मणि सदैवाहं भवद्भ्यां सहितो ह्यलम् ।
हरिः स्थितावपि तथा मयालं भवता सह ।
त्वमन्तकरणे शक्तो विना नाव्यां भविष्यमि ॥२५
तस्मादन्योन्यकृत्येपु सर्वेषां वृषभध्वज ।
साहाय्यं नः सदा योग्यमन्यथा न जगद्भवेत् ॥२६
केचिद्भविष्यन्त्यसुरा मम वध्या महेश्वर ।
अपरे तु हरेर्वध्या भववोऽपि तयापरे ॥२७
केचित्तद्वीर्यजातस्य केचिन्मेऽशभवस्य वै ।
मायायाः केचिदपरे वध्याः स्युर्देववैरिणः ॥२८

ब्रह्माजी ने कहा—हे त्रिलोचन! जिस कार्य के सम्पादन कराने के लिये यहाँ पर हम दोनो ही आये हैं उसका अब आप श्रवण कीजिए। हे वृषभध्वज ! विशेष रूप से तो हम दोनो का आगमन देव अर्थात् आपके ही लिये है और सम्पूर्ण विश्व के लिए भी है ॥२३॥ हे शम्भो ! मैं तो केवल सृजन करने के ही कार्य मे निरत रहता हूँ और यह भगवान् हरि उस सृष्टि के पालन करने के कार्य में संलग्न रहा करते हैं और आप इस सृष्टि का संहार करने मे रत हुआ करते हैं यही प्रतिसर्ग में जगत् का कार्य होता रहता है ॥ २४ ॥ उस कर्म मे सदैव मैं आप दोनो के सहित समर्थ हूँ । यह हरि मेरे और आपके सहयोग मे पालन करने मे समर्थ हैं । आप संहार करने मे हम दोनो के सहयोग के बिना समर्थ नही होते हैं । इस कारण से हे वृषभध्वज ! परस्पर के कृत्यों में सभी की सहायता आवश्यक है। हमारी साहायता सदा योग्य ही है अन्यथा यह जगत् नहो होना है ॥ २५—२६ ॥ हे महेश्वर ! कुछ असुर हैं जो मेरे वध करने के योग्य हैं दूसरे हरि के वध्य होते हैं । तथा दूसरे ऐसे भी हैं जो आपके ही द्वारा वध करने के योग्य होते हैं ॥ २७ ॥ कुछ ऐसे हैं आपके वीर्य से समुत्पन्न होने वाले के द्वारा वध के योग्य हैं और मेरे अंश मे समुत्पन्न के द्वारा वध के लायक होते

हैं। दूसरे ऐसे हैं जो माया के द्वारा देवों के वैरी असुर वध के योग्य होते हैं ॥२८॥

योगयुक्तेत्वयि सदा रागद्वेषादिवर्जिते ।
दयामार्गैकनिरते न वध्या असुरास्तव ॥२९
अदाधितेषु तेष्वीश कथं सृष्टिस्तथा स्थितिः ।
अन्तश्च भविता युक्तं नित्यं नित्यं वृषध्वज ॥३०
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि न कार्याणि यदा हर ।
शरीरभेदमस्माकं मायायाश्च न युज्यते ॥३१
एकस्वरूपा हि वयं भिन्ना कार्यस्य भेदतः ।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः ॥३२
एकः एव त्रिधा भूत्वा वय भिन्न स्वरूपिणः ।
भूता महेश्वर इति तत्त्वं विद्धि सनातनम् ॥३३
मायापि भिन्नरूपेण कमलाख्या सरस्वती ।
सावित्री चाथ सन्ध्या च भूता कार्यस्य भेदतः ॥३४
प्रवृत्तेरनुरागस्य नारी मूल महेश्वर ।
रामापरिग्रहात् पश्चात् कामक्रोधादिकोद्भवः ॥३५

होते हैं। यदि कार्यों का भेद सिद्ध नहीं होता है तो यह रूपों का भेद भी प्रयोजन से रहित ही है ॥ ३२ ॥ वैसे एक ही दोनों रूपों में होकर हम विभिन्न स्वरूप वाले जाते हैं। हे महेश्वर ! यही सनातन अर्थात् सदा से चला आया तत्त्व है—इसको जान लीजिए ॥ ३३ ॥ यह माया भी भिन्न रूपों से कमला नाम वाली अर्थात् महालक्ष्मी—सरस्वती और सावित्री तथा सन्ध्या कार्यों के भेद से ही भिन्न हुई है ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर ! अनुराग की प्रवृत्ति का मूल नारी ही है। रागा के परिग्रह से ही पीछे काम—क्रोध आदि का उद्भव (जन्म) होता है ॥३५॥

अनुरागे तु सञ्जाते कामक्रोधादिदारुणे।
विरागहेतु यत्नेन शान्त्यन्तीह जन्तवः ॥३६
रागः प्रथम एव स्याद्रागवृक्षात् फलं महत् ।
तस्मात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽन्ततो भवेत् ॥३७
वैराग्यञ्च निवृत्तिश्च रागात् स्वाभाविकादपि ।
संसारविमुखे हेतुस्तत्त्वतश्च सदाशिव ॥३८
दया तत्र भवेन्नित्यं शान्तिश्चापि महेश्वर ।
अहिंसा च तपः शान्तिर्ज्ञानमार्गानुशासनम् ॥३९
त्वयि तावत्त्रयोर्निष्ठे विरागिणि दयायुते ।
अहिंसा च तथा शान्तिः सदा तव भविष्यति ॥४०
ततो सृष्टिविधौ यत्नस्तव तस्माद्विरंस्यति ।
सृष्टेन रूपेण यदन्तरं सर्वं कथितं तव ॥४१
तस्माद्विश्वहिताय त्वं देवानाञ्च कार्यतः ।
परिगृह्णीष्व भार्यार्थे वामामेकां सुशोभनाम् ॥४२
यथा पद्मालया विष्णोः सावित्री च यथा मम ।
तथा सहचरी शम्भोर्या स्यात्तां गृहाण सम्प्रति ॥४३

दारुण काम आदि के कारण स्वतः अनुराग के होने पर वहाँ पर जन्तुगण विराग के हेतु से यत्न पूर्वक शान्तन किया करते हैं

॥ ३६ ॥ अनुराग के वृक्ष से सङ्ग ही सर्व प्रथम महान् फल होता है। उसी सङ्ग से काम की समुत्पत्ति हुआ करती है– काम से क्रोध उत्पन्न होता है ॥ ३७ ॥ स्वाभाविक ज्ञान से भी वैराग्य और निवृत्ति होती है। ससार की विमुखता म सनातन हेतु असङ्ग ही होती है। हे महेश्वर ! यहाँ पर दया नित्य ही हुआ करती है अर्थात् जो ससार से विमुक्त है उसमे नित्य ही दया का होना आवश्यक है। और दया के साथ २ शान्ति भी होती है। अहिंसा और तप– शान्ति ज्ञान मार्ग का अनुसाधन है ॥ ३८ ॥ आपके तपोनिष्ठ—विसङ्गी अर्थात् सङ्ग रहित तथा दया से सयुत होने पर अहिंसा तथा शान्ति आपको सन्त ही होगी ॥ ४० ॥ फिर सुखोपभोग की विधि मे आपका यत्न किससे होगा ? इसके न करने पर जो-जो दोष हैं वे सभी आपको बतला दिये गये है ॥ ४१ ॥ हे जगत्पते ! इस कारण से आप विश्व के और देवो के हित के लिए भार्यार्थ मे एक परम शोभना वामा का परिग्रहण करें ॥४२॥ जिस प्रकार स लक्ष्मी भगवान् विष्णु कीपत्नी हैं और सावित्री मेरी पत्नी है उसी भाँति शम्भु की जो भी सहचारिणी होवे उसका अब ही आप परिग्रहण कीजिए ।४३।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मण पुरतो हरे ।
तदा जगाद लोकेश स्मितादिदतमुखो हर ॥४४
एवमेव यथात्थ त्व ब्रह्मन विश्वनिमित्तत ।
न स्वार्थत प्रवृत्तिर्मे सम्यग् ब्रह्मविचिन्तनात् ॥४५
तथापि यत्करिष्यामि तत्ते वक्ष्ये जगद्धितम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग युक्तमेव वचो मम ॥४६
या मे तेज समर्था स्याद्ग्रहीतुमिह भागश ।
ता निदेशय भार्यार्थे योगिनी कामरूपिणीम् ॥४७
योगयुक्ते मयि तथा योगिन्येव भविष्यति ।
कामासक्ते मयि पुनर्मोहिन्येव भविष्यन्ति ।
तां मे निदेशय ब्रह्मन् भार्यार्थे वरवर्णिनीम् ॥४८

यदक्षर वेदविदो निगदन्ति मनीषिण.।
ज्योति स्वरूप परम चिन्तयिष्ये सनातनम् ।।४६

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह से हरि के आगे ब्रह्माजी के वचन का श्रवण कर मन्द मुस्कराहट से शोभित मुख वाले हरि ने उस समय मे लोको के ईश ब्रह्माजी से कहा था ॥ ४४ ॥ ईश्वर ने कहा—जो आपने कहा है वह इसी प्रकार से तथ्य है। हे ब्रह्माजी! यह विश्व के ही निमित्त मे होना ही चाहिए किन्तु स्वार्थ से भली भांति ब्रह्म के विचिन्तन करने से मेरी प्रवृत्ति नही होती है ॥ ४५ ॥ तो भी वह मैं करूँगा जो जगत् की भलाई के लिये आप कहेंगे। सो हे महाभाग! आप श्रवण कीजिए जो मेरा परम युक्त वचन है ॥ ४६ ॥ जो मेरे तेज को सहन करने मे भागश समर्थ हो यहाँ पर भार्या के ग्रहण करने म उसी को आप बतलाइये जो योगिनी और कामरूपिणी दोनो ही होवे। ॥ ४७ ॥ जब मैं योग मे युक्त होऊँ उस अवसर उसी भांति वह भी योगिनी हो जावेगी और जिस समय में काम वासना में आसक्त होऊँ तो उस अवसर पर मोहिनी ही होवेगी। हे ब्रह्माजी! भार्या के लिए उसी को आप बतलाइये जो वर वर्णिनी होवे ॥ ४८ ॥ वेदो के ज्ञाता महामनीषीगण जो अक्षर को जानते हैं अर्थात् जिस अक्षर का ज्ञान रखते हैं उसी परम ज्योति के स्वरूप वाले को जो सनातन है मैं चिन्तन करूँगा ॥४६॥

तच्चिन्तायां सदा शक्तो ब्रह्मन् गच्छामि भावनाम्।
तत्र या विघ्नजननी न भवित्रीह सास्तु मे ॥५०
त्व वा विष्णुरह वापि परब्रह्मस्वरूपिण ।
अगभूना महाभाग योग्यं तदनुचिन्तनम् ॥५१
तच्चिन्तया विना नाह स्थास्यामि कमलासन।
तस्माज्जाया प्रादिशस्व मत्कर्मानुगतां सदा ॥५२
इति तस्य वच श्रुत्वा ब्रह्मा सर्वजगत्पति. ॥५३

सस्मित मोदितमना इद वचनमब्रवीन् ॥५३
अस्तीदृशो महादेव मार्गिता यादृशी त्वया ॥५४
दक्षस्य तनया याभूत् सतीनाम्नी सुशोभना ।
सैवेदृशी भवद्भार्या भविष्यति सुधीमती ॥५५
सा त्वदर्थं तपस्यन्ती तत्प्राप्ति प्रतिकामिनीम् ।
विद्धि त्वं देवदेवेश सर्वेष्वात्मसु वर्तसे ॥५६

हे ब्रह्माजी ! मैं उसी की चिन्ता में सदा भक्त होता हुआ भावना को गमन किया करता हूं अर्थात् भावना में निमग्न हो जाता हूँ। उस भावना में जो विघ्न डालने वाली हो वह मेरी होने वाली वामा न होवे।५०। हे महाभाग ! आप अथवा विष्णु भगवान् या मैं भी सब पर ब्रह्म के स्वरूप वाले है और एक दूसरे के अङ्गभूत हैं। जो योग्य हो उसका ही अनुचिन्तन करो ॥५१॥ हे कमलासन ! उसकी चिन्ता के बिना मैं स्थित नहीं रहूँगा। इस कारण से ऐसी ही जाया को बतलाइये जो सदा मेरे कर्म के ही अनुगत रहने वाली होवे ॥५२॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—सम्पूर्ण जगतो के स्वामी ब्रह्म जी ने यह उनके वचन का श्रवण कर स्मित के सहित प्रसन्न मन वाले ने यह वचन कहा—ब्रह्माजी ने कहा—हे महादेव ! जैसी आपने मार्गित की है वैसी ही एक है जो प्रजापति दक्ष की तनया (पुत्री) हुई है जिसका नाम 'सती' है और वह परम शोभना है। वह ही ऐसी सुधीमती आपकी भार्य्या होगी ॥ ५३—५५ ।. उसी को जो आपको पति के रूप मे प्राप्त करने के लिये तपस्या कर रही है। और वह आपकी प्राप्ति के लिए कामिनी है। उसको आप जान लीजिए। हे देवदेवेश्वर ! आप तो सभी आत्माओं मे वर्त्तमान रहने वाले हैं ॥५६॥

अथ ब्रह्मवचः शेषे भगवान् मधुसूदन ।
यदुक्त ब्रह्मणा सर्वं तत् कुरुष्वेत्युवाच सः ॥५७
करिष्य इति तेनोक्ते स्वेष्ट देश प्रजग्मतु ।
हरिर्ब्रह्मा च मुदितौ सावित्रीकमला-युतौ ॥५८

कामोऽपि वाक्यानि हरस्य श्रुत्वा चामोदयुक्तो रतिना समित्रः ।
शम्भुं समासाद्य विविक्तरूपी तस्थौ वसन्तं विनियोज्य शश्वत्॥५६

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्माजी के वचन के उपरान्त भगवान् मधुसूदन ने कहा जो कुछ भी ब्रह्माजी ने कहा है वह सब आप करिए ॥ ५७ ॥ उन शङ्कर प्रभु के द्वारा मैं वही करूँगा—ऐसा कहने पर वे दोनों (ब्रह्मा और विष्णु) अपने २ आश्रमों को चले गये थे । ब्रह्माजी और हरि भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए जो कि सावित्री और कमला से संयुत थे ॥ ५८ ॥ कामदेव भी महादेवजी के वचन का श्रवण करके अपने मित्र (वसन्त) के सहित और पत्नी रति के साथ में आमोद से युक्त होगया था । उसने विविक्त रूप वाला होकर शम्भु को प्राप्त कर निरन्तर वसन्त को विनियोजित कर वहीं पर स्थित होगया ॥५६॥

—×—

॥ सती से विवाह-प्रस्ताव ॥

अथ सत्या पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषितम् ।
आश्विने मासि देवेशं पूजयामास भक्तितः ॥१
इति नन्दाव्रते पूर्णे नवम्यां दिनभागतः ।
तस्यास्तु भक्तिनम्रायाः प्रत्यक्षमभवद्धरः ॥२
प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य सामोदहृदया सती ।
ववन्दे चरणौ तस्य लज्जयावनता नता ॥३
अथ प्राह महादेवः सतीं तद् व्रतधारिणीम् ।
तामिच्छन्नपि भार्यार्थं तस्याश्चर्यफलप्रदः ॥४
अनेन त्वद्व्रतेनाहं प्रीतोऽस्मि दक्षनन्दिनि ।
वरं वरय दास्यामि यस्तवाभिमतो भवेत् ॥५

जानन्नपीह तद्भाव महादेवो जगत्पतिः ।
ऊचेऽथ वरयस्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया ॥६
सापि त्रपासमाविष्टा नो वक्तु हृदये स्थितम् ।
शशाक बालाभीष्ट यत्लज्जयाच्छादित यत ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर सती ने पुन शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि म उपवास किया था और आश्विन मास मे देवेश्वर का भक्ति भाव से पूजन किया था ॥ १ ॥ इस तरह से इस नन्दा के व्रत के पूर्ण हो जाने पर नवमी तिथि मे दिन के भाग मे भक्ति भाव से परमाधिक विनम्र उस सती को भगवान् हर प्रत्यक्ष मे हो गये थे अर्थात् सती के समक्ष मे प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित हो गये थे ॥२॥ प्रत्यक्ष रूप मे हर का अवलोकन करके सती आनन्द युक्त हृदय वाली हो गयी थी। फिर उस सती ने लज्जा से अवनत होते हुए विनम्र होकर उनके चरणो मे प्रणाम किया था ॥३॥ इसके अनन्तर महादेवजी ने उस व्रत के धारण करने वाली सती से कहा था। शिव स्वय भार्या के लिए उसकी इच्छा करने वाले होते हुये भी उसके आश्चर्य के फल के प्रदान करने वाले हुये थे ॥४॥ ईश्वर ने कहा -हे दक्ष की पुत्रि ! आपके इस व्रत से परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब आप वरदान का वरण करलो जो भी आप को अभिमत होव ॥५॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—जगत के स्वामी महादेव उसके भाव को जानते हुए भी उस सती के वचनो के श्रवण करने की इच्छा स वरदान माँगलो —यह बोले थे ॥६॥ वह सती भी लज्जा से समाविष्टा होती हुई जो कुछ भी हृदय मे स्थित था उसके कहने म समर्थ न हो सकी थी। क्योंकि बाला का जो भी मनोर भीष्ट था वह लज्जा से समाच्छादित हो गया था अर्थात् लज्जा वश उस अभीप्सित को मन म ही रखकर कुछ भी न बोल सकी थी ॥७॥

एतस्मिन्नन्तरे काम साभिप्रय हर तदा ।
वामापरिग्रहे नेत्र-वक्तृव्यापारलिंगितम् ॥८

सम्प्राप्य विवरञ्चाप सन्दध्रे पुष्पहेतिना ।
हर्षणेनाथ वाणेन विव्याध हृदये हरम् ॥६
ततोऽसौ हर्षित शम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे सती मुहु ।
विस्मृत्य च पर ब्रह्मचिन्तन परमेश्वर ॥१०
सत पुनर्मोहने वाणनन मनोभव ।
विव्याध हर्षित शम्भर्मोहितश्च तदा भृशम् ॥११
तनो यदासौ मोहस्य हर्षस्य च द्विजोत्तमा ।
भाव व्यक्तीचकारेप माययापि विमोहित ॥१२
अथ त्रपा स्वा सस्तभ्य यदा प्राह हर सती ।
ममेष्ट देहि वरद वरमित्यर्थकारकम् ॥१३
तदा वाक्यस्यावसानमनपेक्ष्य वृषध्वज ।
भवस्व मम भार्येति प्राह दाक्षायणी मुहु ॥१४

इसी बीच म कामदेव उस समय म अभिप्राय के सहित हर को नेत्र मुख और व्यापार से चिन्हित प्राप्त करके विवर चाप का पुष्प हेति के द्वारा सन्धान करने वाला हो गया था । इसके अनन्तर हर्षण वाण के द्वारा उस (कामदेव ने) हरके हृदय बेधन किया था ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त हर्षित शम्भु ने फिर एक बार सती को देखा था । उस समय म परमेश्वर शिव ने पर ब्रह्म के चिन्तन को एक दम भुला ही दिया था ॥१०॥ फिर इस कामदेव न मोहन वाण के द्वारा भगवान् हर को वेधित किया था । तब हर्षित होकर शम्भु उस अवसर पर बहुत ही अधिक मोहित हो गये थे ॥११॥ हे द्विजोत्तमो ! जब इनने मोह और हर्ष को व्यक्त कर दिया था तो यह माया के द्वारा भी विमोहित हो गये थे ॥१२॥ इसके अनन्तर सती ने अपनी लज्जा को सस्तम्भित करके जिस समय म हर से वह बोली थी—हे वरद ! मेरे अभीष्ट वर—इस अर्थ के करने वाले का प्रदान करिये ॥१३॥ उस समय में सती के वाक्य के अवसान की प्रतीक्षा न करके ही वृषध्वज ने दाक्षायणी स पुन — मेरी भार्या हो जाओ'—यह कह दिया था ॥१४॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफलभावनम् ।
तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम् ॥१५
सकामस्य हरस्याग्रे तत्र सा चारुहासिनी ।
अकरोन्निजभावाश्च हावानपि द्विजोत्तमाः ॥१६
स्वस्य भावान् समादाय शृंगाराख्यो रसस्तदा ।
तयोर्विवेश विप्रेन्द्रा कलहो वा यथोचितम् ॥१७
हरस्य पुरतो रेजे स्निग्धभिन्नाञ्जनप्रभा ।
चन्द्राभ्यासेऽङ्कुलेखेव स्फटिकोज्ज्वलवर्ष्मणः ॥१८
अथ सा वमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहुः ।
पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृह्णीष्व जगत्पते ॥१९
एवं स्मितं वचो देवी यदोवाच सती तदा ।
मम भार्या भवेत्यूचे पुनः कामेन मोहितः ॥२०
अथैतद्वीक्ष्य मदनः मरतिः ससखो मुदा ।
युक्तो वभूव शम्भुश्च आत्मानञ्चाभ्यनन्दयत् ॥२१

हर के यह वचन सुनकर जो अभीष्ट के फल का भावन से युक्त था वह सती मनोगत वर की प्राप्ति करके परम प्रमुदित होती हुई मौन होकर स्थित होगयी थी ॥१५॥ हे द्विजोत्तमो ! काम वासना से समन्वित महादेव जी आगे वहाँ पर परम चारु हास वाली सती ने अपने हावों और भावों से किया था ॥१६॥ उस समय में अपने भावों का आदान करके शृङ्गार नामक रस ने उन दोनों में प्रवेश किया था । हे विप्रेन्द्रो ! अथवा यथोचित कलह हो गया था ॥१७॥ भगवान् हर के आगे स्निग्ध भिन्न अञ्जन की प्रभा के समान प्रभा वाली स्फटिक के समान उज्ज्वल वर्ष्म वाले हर के सामने चन्द्रमा के समीप में अङ्क लेखा की तरह राजित हुई थी ॥१८॥ इसके अनन्तर दाक्षायणी वह पुनः उन महादेवजी से बोली थी—हे जगत्पते ! मेरे पिता के सामने गोचर होकर मुझे ग्रहण कीजिये ॥१९॥ उस समय में देवी सती ने इस प्रकार से

जो स्मित युक्त वचन कहा था पुन कामदेव मे मोहित होते हुए "मेरी भार्या हो जाओ"—यह महादेव ने कहा था ।२०। इसके अनन्तर कामदेव ने यह देखकर रति के सहित और अपने मित्र वसन्त के साथ प्रसन्नता से युक्त हो गया था और निरन्तर अपने आप को अभिनन्दित किया था ॥२१॥

अथ दाक्षायणी शम्भु समाश्वास्य द्विजोत्तमा. ।
जगाम मातुरभ्यासं हर्षमोहसमन्विता ॥२२
हरोऽपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम् ।
दाक्षायणी विप्रलम्भदु खाद् ध्यानपरोऽभवत् ॥२३
विप्रलब्धोऽपि भूतेशो ब्रह्मवाक्यमथास्मरत् ।
जायापरिग्रहस्यार्थे यदुक्त पद्मयोनिना ॥२४
स्मृत्वैव ब्रह्मवाक्यस्य पुरा विश्वामतः परम् ।
चिन्तयामास मनसा ब्रह्माण वृषभध्वज ॥२५
अथ सचिन्त्यमानोऽसौ परमेष्ठी त्रिशूलिनः ।
पुरस्तात् प्राविशत्तूर्णमिष्टसिद्धिप्रचोदितः ॥२६
यत्रायं हिमवत्प्रस्थे विप्रलब्धो हरः स्थितः ।
सावित्री सहितो ब्रह्मा तत्रैव समुपस्थितः ॥२७
अथ त वीक्ष्य धातारं सावित्रीसहितं हर ।
सोत्सुको विप्रलब्धश्च सत्यर्थे तमुवाच ह ॥२८

हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर दाक्षायणी ने शम्भु को समाश्वासित करके हर्ष और मोह से समन्विता होती हुई वह सती माता के समीप में गयी थी ॥२२॥ भगवान् हर भी हिमालय के प्रस्थ मे प्रवेश करके जो कि उनका आश्रम था दाक्षायणी के विप्रलम्भ (वियोग) के दुःख से ध्यान मे परायण हो गये थे ॥२३॥ इसके उपरान्त विप्रलब्ध भी अर्थात् वियोग मे युक्त होते हुए भी उन्होंने ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण किया था जो कि जाया के परिग्रह के अर्थ मे पद्म योनि ने

(ब्रह्माजी ने) कहा था ॥२४॥ पहिले विश्राम से ब्रह्म वाक्य के पर का स्मरण करके ही वृषभध्वज ने मन से ब्रह्माजी का चिन्तन करने लगे थे ॥२५॥ इसके अनन्तर चिन्तन किये हुए वह परमेष्ठी (ब्रह्मा) त्रिशूली के आगे शीघ्र ही इष्ट की सिद्धि से प्रेरित हुए प्रविष्ट हुए थे।२६। जहाँ पर हिमालय के प्रस्थ में वह विप्रलब्ध (विधा भी) भगवान् शम्भु विराजमान थे। सावित्री के सहित ब्रह्माजी वहाँ पर ही समुपस्थित हो गये थे ॥२७॥ इस के उपरान्त भगवान् हर ने सावित्री के सहित धाता को देखकर बड़ी ही उत्सुकता के साथ विप्रलब्ध शम्भु सती के अर्थ में उनसे बोले ॥२८॥

ब्रह्मन विश्वार्थतो दारपरिग्रहकृतौ च यत् ।
त्वमात्थ तत्स्वार्थमिव प्रतिभाति ममाधुना ॥२९
अहमाराधितो भक्त्या दाक्षायण्यातिभक्तितः ।
तस्या वरमहं दातुं यदायातः प्रपूजितः ॥३०
तत्सकाशे तदा कामो मा विव्याध महेषुभिः ।
मायया मोहितश्चाहं तत्प्रतीकारमञ्जसा ।
न शक्त कर्तुं सभीतः पुराहं कमलासन ॥३१
तस्याश्च वाञ्छितं ब्रह्मन्नेतदेव मयेक्षितम् ।
मदहं स्या विभो भर्ता व्रतमक्तिमुदायुतः ॥३२
तस्मात्त्वं कुरु विश्वार्थे मदर्थे च प्रजापते ।
दक्षो यथा मामामन्त्र्य सुतां दाता तथा द्रुतम् ॥३३
गच्छ त्वं दक्षभवनं कथयस्व वचो मम ।
यथा सतीवियोगस्य भंगः स्यात् त्वं तथा कुरु ॥३४

ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी विश्व के अर्थ जो दारा के परिग्रह की कृति में आपने जो कहा था वह सब मुझे उस स्वार्थ की ही भाँति प्रतीत होता है ॥२९॥ अत्यन्त भक्ति से दाक्षायणी के द्वारा मेरी आराधना की गयी है। जिस समय में उसके द्वारा प्रपूजित मैं उसको वरदान

देने के लिए गया था। उसके समीप मे कामदेव ने मेरे दुओ से अर्थात् विशाल बाणो से वेध दिया था और मैं माया से मोहित हो गया था कि मैं उसका प्रतीकार शीघ्र ही करने मे असमर्थ हो गया हे कमलासन् ! मैं पहिले अधीन था ॥३०॥३१॥ हे ब्रह्माजी ! उस देवी का वाञ्छित मैंने यह भी देखा था हे विभो ! कि व्रत की भक्ति से प्रसन्नता से समन्वित मैं उसका भर्त्ता हो जाऊँ ॥३२॥ इससे हे प्रजापते ! अब आप विश्व के लिये और मेरे लिये ऐसा करें कि दक्ष प्रजापति मुझे आमन्त्रित करके अपनी पुत्री को प्रदान मुझे शीघ्र हो कर देवे। ॥३३॥ आप दक्ष के भवन में गमन कीजिए और मेरा वचन उनसे कहिए जिस प्रकार सती का वियोग भस्म हो जावे वैसा ही पुनः आप करें ॥३४॥

इत्युदीर्य महादेवः सकाशेऽस्य प्रजापतेः ।
सावित्री वीक्ष्य सत्यास्तु विप्रयोगो व्यवर्द्धत ॥३५
त समाभाष्य लोकेशः कृतकृत्यो मुदान्वितः ।
इदं जगाद जगतां हितं पथ्यं च धूर्ज्जटेः ॥३६
यदात्थ भगवञ्छम्भो तद्विश्वार्थं सुनिश्चितम् ।
नास्त्येव भवतः स्वार्थो ममापि वृषभध्वज ॥३७
सुताञ्च तुभ्यं दक्षस्तु स्वयमेव प्रदास्यति ।
अहञ्चापि वदिष्यामि त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः ॥३८
इत्युदीर्य महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जगाम दक्षनिलयं स्यन्दनेनातिवेगिना ॥३९
अथ दक्षोऽपि वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा सतीमुखात् ।
चिन्तयामास देयेयं मत्सुता शम्भवे कथम् ॥४०
आगतोऽपि महादेवः प्रसन्नः सञ्जगाम ह ।
पुनरेव कथं सोऽपि सुतार्थेऽत्यर्थमीप्सितः ॥४१
प्रस्थाप्यो वा मया तस्य दूतो निकटमञ्जसा ।
नैतद्योग्यं न गृह्णीयाद् यद्येना विभुरात्मने ॥४२

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इन प्रजापति के सकाश में महादेवजी ने यह इतना कहकर उन्होंने सावित्री का अवलोकन किया था तो उनको सती का विप्रयोग विशेष बढ गया था ॥३५॥ लोकों के ईश ब्रह्माजी ने उनसे सम्भाषण करके वे आनन्द से सयुत कृत कृत्य अर्थात् सफल हो गये थे और उन्होंने जगतो का हित तथा शिव का हितकर यह वचन कहा था ॥३६॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे वृषमध्वज ! हे भगवन् ! हे शम्भो ! जो आप कहते हैं उसमे विश्व का अर्थ तो सुनिश्चित ही है। इसमे आपका स्वार्थ नही है और न कोई मेरा स्वार्थ है ॥३७॥ दक्ष तो अपनी पुत्री को आपके लिए स्वय ही दे देगा। और मैं भी आपके वाक्य को उसके ही समक्ष मे कह दूगा ॥३८॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—लोक पितामह ब्रह्माजी ने यह महादेव जी से कहकर अतीव वेग वाले स्यन्दन के द्वारा वे दक्ष प्रजापति के निवास स्थान पर गये थे। ३६॥ इसके अनन्तर उधर दक्ष भी सम्पूर्ण वृत्तान्त सती के मुख से सुनकर यह चिंता कर रहा था कि यह मेरी पुत्री शम्भु को कैसे दे दी जावे ॥४०॥ आय हुये भी महादेव परम प्रसन्न होते हुए चले गये थे वह भी पुन ही सुता के लिए कैसे ईक्षित हैं ॥४१॥ अथवा मुझे उनके निकट शीघ्र ही कोई दूत भेजना चाहिए—यह योग्य नहीं है कि यदि विभु अपने लिये इसको न ग्रहण करे तो एक अनुचित ही बात होगी ॥४२॥

अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम् ।
मदीयतनयाभर्ता स्वयमेव यथा भवेत् ॥४३
तथैव पूजित सोऽपि वाञ्छन्त्यातिप्रयत्नत ।
शम्भुर्भवतु मद्दत्तयेव दत्तञ्च तेन तन् ॥४४
इति चिन्तयतस्तस्य दक्षदस्य पुरतो विधि. ।
उपस्थितो हृसरय सावित्रीसहितस्तदा ॥४५
त दृष्ट्वा वेधस दक्ष प्रणम्यावनम स्थित ।
आसनञ्च ददौ तस्मै समाभाष्य यथोचितम् ॥४६

ततस्त सर्वलोकेश तथागमनकारणम् ।
दक्ष पप्रच्छ विप्रेन्द्राश्चिन्ताविष्टोऽपि हर्षित ॥४७
तवात्रागमने हेतु कथयस्व जगद्गुरो ।
पुत्रस्नेहात् कार्यवशादथवाश्रममागत ॥४८
इति पृष्ट सुरश्रेष्ठो दक्षेण सुमहात्मना ।
प्रहसन्नब्रवीद्वाक्य मोदयस्त प्रजापतिम् ॥४९

अथवा उन्ही वृषभध्वज की पूजा करूँगा कि जिस तरह से वह स्वय ही मेरी पुत्री के स्वामी हो जावें ॥ ४३ ॥ वे भी उसी के द्वारा अत्यन्त प्रयत्न के साथ अतीव वाञ्छा करती हुई स पूजित हुए है । शम्भु मेरे भर्त्ता होवें और इस प्रकार से उनने उसे वर भी दिया है ॥४४॥ इस रीति से दक्ष चिन्तन कर रहे थे कि उसी समय मे ब्रह्माजी उसके आगे समुपस्थित हो गये । वे हसो के रथ मे साविनी के साथ ही विराजमान थे ॥ ४५ ॥ प्रजापति दक्ष ने ब्रह्माजी को देखकर उनका प्रणिपात किया था और वह विनम्र होकर स्थित हो गया था । उसने उनको आसन दिया था और यथोचित रीति से सम्भाषण किया था ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर उन सब लोको के ईश स वहाँ पर आगमन का कारण दक्ष ने पूछा था । हे विप्रेन्द्रो ! वह दक्ष चिन्ता से आविष्ट भी था किन्तु हर्षित हो रहा था ॥ ४७ ॥ दक्ष ने कहा—हे जगतो के गुरुवर ! यहाँ पर आपके आगमन का कारण बतलाइये ! आप पुत्र के स्नेह से अथवा किसी कार्य के वश से इस आश्रम म समागत हुए है ? ॥ ४८ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से महात्मा दक्ष के द्वारा पूछ गये सुरश्रेष्ठ (ब्रह्माजी) ने उस प्रजापति दक्ष को आनन्दित करते हुए हँसकर यह वाक्य कहा था ॥४९॥

शृणु दक्ष यदर्थ ते समीपमहमागत ।
तल्लोकस्य हित पथ्य भवतोऽपि तदीप्सितम् ॥५०
तव पुत्र्या समाराध्य महादेव जगत्पतिम् ।

यो वर प्रार्थित· सोऽद्य स्वयमेवागतो गृहम् ॥५१
शम्भुना तव पुत्र्यर्थे त्वत्सकाशमहं पुन· ।
प्रस्थापितोऽस्मि यत् कृत्य श्रेयस्तदवधारय ॥५२
वर दातु यदायातस्तावत्प्रभृति शकर ।
तत्सुताविप्रयोगेण न शर्म लभतेऽञ्जसा ॥५३
लब्धच्छिद्रोऽपि मदनो निचखान तदा भृशम् ।
सर्वै पुष्पकरैर्वाणैरेकदैव जगत्प्रभुम् ॥५४
स वाणविद्ध कामेन परित्यज्यात्मचिन्तनम् ।
सती विचिन्तयन्नास्ते व्याकुल· प्राकृतो यथा ॥५५
विस्मृत्य प्रस्तुता वाणी गणाग्रे विप्रयोगत ।
क्व सतीत्येव गिरिशो भाषतेऽन्यकृतावपि ॥५६

ब्रह्माजी ने कहा—हे दक्ष ! सुनिए जो कि मैं जिस तुम्हारे कार्य के लिए यहाँ पर समागत हुआ हूँ वह कार्य लोकों का हितकर है तथा पथ्य है और आपका भी अभीप्सित है ॥५०॥ तेरी पुत्री ने जगत् के पति महादेव की समाराधना करके जो वर प्राप्त करने की उनसे प्रार्थना की थी वह आज स्वयं ही गृह में समागत हुए हैं ॥५१॥ शम्भु ने आपकी पुत्री के लिए आपके समीप में मुझे पुन प्रस्थापित किया है जो कृत्य परम श्रेय है उसका अवधारण करिए ॥५२॥ जिस समय में वरदान देने को वे आये थे तभी से लेकर आपकी पुत्री के वियोग से शीघ्र ही कल्याण की प्राप्ति नहीं कर रहे हैं ॥५३॥ छिद्र को प्राप्त करने वाले कामदेव ने भी उस समय में अत्यधिक बेधन किया था उस जगत् के प्रभु का बेध सभी पुष्पकर बाणों से एक ही साथ किया था ॥५४॥ वह कामदेव के द्वारा बाणों से विद्ध होकर आत्मा का परिचिन्तन त्याग कर जैसे कोई सामान्य जन हो उसी भाँति अतीव व्याकुल होते हुए सती को ही चिन्ता करते हुए समवस्थित हैं ॥५५॥ वे प्रस्तुत वाणी को भुलाकर विप्रयोग से गणों के आगे अन्य कृति में भी गिरिश भी कहाँ है—यही बोला करते हैं ॥५६॥

मया यद्वाञ्छितं पूर्वं त्वया च मदनेन च ।
मरीच्याद्यै मुनिवरैस्तत् सिद्धमधुना सुत ॥५७
त्वत्पुत्र्याराधित शम्भु सोऽपि तस्या विचिन्तनात् ।
अनुमोदयितु प्रेप्सुर्वर्तत हिमवद्गिरौ ॥५८
यथा नानाविधैर्भावैः सत्या नन्दाव्रतेन च ।
शम्भुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती ॥५९
तस्मात्त्व दक्ष तनया शम्भ्वर्थे परिकल्पिताम् ।
तस्मै देह्यविलम्बेन तेन ते कृतकृत्यता ॥६०
अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम् ।
तस्मै त्वमेना सयच्छ तदर्थं परिकल्पिताम् ॥६१
एवमेवेति दक्षस्तमुवाच परमेष्ठिनम् ।
विधिश्च गतवास्तत्र गिरिशो यत्र सस्थित ॥६२
गते ब्रह्मणि दक्षोऽपि सदारस्तनयो मुदा ।
अभवत् पूर्णदेहस्तु पीयूषैरिव पूरित ॥६३

मैंने जो पूर्व म चाहा था और आपने तथा कामदेव न इच्छा की थी एव मरीचि आदि मुनिवरो न जिसकी इच्छा की थी हे पुत्र ! यह कार्य अब सिद्ध हो गया है ॥ ५७ ॥ आपकी पुत्री क द्वारा शम्भु की आराधना की गयी थी और व भी उस तुम्हारी पुत्री चिचिन्तन स हिम वद्गिरी म अनुमोदन करने क लिये प्रेप्सु अर्थात् इच्छुक हैं ॥५८॥ जिस प्रकार से अनेक प्रकार के भावो क द्वारा सती न नन्दा क व्रत स शम्भु की आराधना की थी ठीक उसी भाँति उनक द्वारा सती की आराधना की जा रही है ॥ ५९ ॥ इसलिय हे दक्ष ! शम्भु क लिए परिकल्पित अपनी पुत्री सती को बिना विलम्ब किय हुए उनको दे दो उसी स आपकी कृतकृत्यता अर्थात् सफलता है ॥ ६० ॥ मैं उनको नारद के द्वारा आपके आलय म ले आऊँगा । उसके लिये आप भी इस सती को जो कि उन्हीं के लिये परिकल्पित है दे दो ॥६१॥ मार्कण्डेय मुनि ने

कहा—दक्ष ने ऐसा ही होगा—यह दक्ष ने ब्रह्माजी से कहा था और ब्रह्माजी भी वहाँ से उसी स्थान पर चले गये थे जहाँ पर भगवान् शम्भु विराजमान थे ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजी के चले जाने पर दक्ष प्रजापति भी अपनी दारा और तनया के साथ आनन्द युक्त हो गया था और पीयूष से परिपूरित की ही भाँति पूर्ण देह वाला हो गया था ॥६३॥

अथ ब्रह्मापि मोदेन प्रसन्नः कमलासनः ।
आससाद महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम् ॥६४
तं वीक्ष्य लोकस्रष्टारमायान्तं वृषभध्वजः ।
मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहुः ॥६५
अथ दूरान्महादेवो लोकेशं सामसंयुतम् ।
उवाच मदनोन्माथः विधिं स स्मरमानसः ॥६६
किमवोचत् सुरश्रेष्ठ सत्यर्थे त्वत्सुतः स्वयम् ।
कथयस्व यथास्वान्तं मन्मथेन न दीर्यते ॥६७
बाधमानो विप्रयोगो मामेव च सतीमृते ।
अभिहन्ति सुरश्रेष्ठ त्यक्त्वान्यान् प्राणधारिणः ॥६८
सतीति सततं वेद्मि ब्रह्मन् कार्यान्तरेऽप्यहम् ।
सा यथा हि मया प्राप्या तद्विधत्स्व तथा द्रुतम् ॥६९
सत्यर्थे यन्ममसुतो वदति स्म वृषध्वज ।
तच्छृणुष्व निजं साध्यं सिद्धमित्यवधारय ॥७०

इसके अनन्तर कमलासन ब्रह्माजी भी मोद से प्रसन्न होकर महादेवजी के समीप में प्राप्त हो गये थे जो कि हिमालय पर्वत पर संस्थित थे ।६४। वृषभ ध्वज ने उन आते हुए लोकों के स्रष्टा को देखकर वे सती की प्राप्ति में बारम्बार मन में संशय कर रहे थे ॥६५॥ इसके अनन्तर दूर ही से साम से सामन्वित ब्रह्माजी को महादेवजी ने जो काम वासना को मस्म में धारण किए थे और कामदेव के द्वारा उन्मदित हो गए थे कहा था ॥६६॥ ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी ! आपके पुत्र

(दक्ष) ने सती के अर्थ में स्वयं क्या कहा था ? आप मुझे बतलाइए जिससे काम देव के द्वारा मेरा हृदय विदीर्ण न किया जावे ।।६७।। बाधमान विप्रयोग सती के बिना मुझको हनन कर रहा है हे सुरश्रेष्ठ ! यह कामदेव अन्य सब प्राणियों का त्याग कर मेरे ही पीछे पड़ा हुआ है ।।६८।। हे ब्रह्माजी ! निरन्तर मैं सती—यही जानता हूँ चाहे किसी दूसरे काम में भी क्यों न संलग्न रहूँ । वह सती जिस तरह से भी मुझे प्राप्त हो जावे वही आप शीघ्र ही करिए ।।६९।। ब्रह्माजी ने कहा—हे वृषभध्वज ! सती के अर्थ में जो मेरे पुत्र (दक्ष) ने कह दिया था उसको आप सुनिए और अपना साध्य सिद्ध हो गया—यही अवधारित कर लीजिए ।।७०।।

देया तस्मै मया पुत्री तदर्थे परिकल्पिता ।
ममापीष्टमिदं कर्म त्वद्वाक्यादधिकं पुनः ।।७१
मत्पुत्र्याराधितः शम्भुरेतदर्थं स्वयं पुनः ।
सोऽप्यन्विच्छति तां यस्मात्तस्माद्देया मया हरे ।।७२
शुभे लग्ने मुहूर्ते च समागच्छतु मेऽन्तिकम् ।
तदा दास्यामि तनयां भिक्षार्थे शम्भवे विधे ।।७३
इत्यवोचन्मुदा दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज ।
शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामनुयाचितुम् ।।७४
गमिष्ये भवता सार्द्धं नारदेन महात्मना ।
द्रुतमेव जगत्पूज्य तस्मात्त्वन्नारदं स्मर ।।७५
मरीच्यादीन् दश तथा मानसानपि सस्मर ।
तैः सार्द्धं दक्षनिलयं गमिष्येऽहं गणैः सह ।।७६
ततः स्मृतास्ते कमलासनेन सनारदा ब्रह्मसुता मनोजवाः ।
समागता यत्र हरो विधिश्च तत्रागताः काममवेत्य चिन्ताम् ।।७७

उसने कहा था कि मुझे मेरी पुत्री उन्हीं के लिये देने के योग्य है और उनके लिए ही वह परिकल्पिता है । यह कर्म तो मुझे भी

अभीष्ट था ही किन्तु अब आपके वाक्य से पुनः अधिक अभीप्सित हो गया है ॥ ७१ ॥ मेरी पुत्री के द्वारा शिव समाराधित किये गये हैं और इसी के लिये उसने स्वयं ही ऐसा किया है और वे शिव भी उसकी इच्छा करते हैं अर्थात् सती को भार्या के रूप में पाना चाहते हैं। इसी कारण से मुझे इसको हरि के ही लिये देना चाहिए। अर्थात् मैं उन्हीं को दूँगा ॥ ७२ ॥ वे शिव किसी शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न में मेरे समीप में आ जावें। हे ब्रह्माजी उसी समय में मैं भिक्षार्थ में शम्भु के लिए अपनी पुत्री सती को दे दूँगा ॥ ७३ ॥ हे वृषभध्वज ! दक्ष ने यही प्रसन्नता के साथ कहा था इसलिये आप किसी परम शुभ मुहूर्त में उस सती की अनुयाचना करने के लिये उन (दक्ष) के समीप में गमन कीजिए ॥ ७४ ॥ ईश्वर ने कहा—मैं आपके साथ तथा महात्मा नारद जी के साथ ही यहाँ गमन करूँगा। हे जगतों के द्वारा पूज्य ! इस कारण से आप शीघ्रातिशीघ्र ही नारदजी का स्मरण करिए ॥ ७५ ॥ मारीचि आदि दश मानसपुत्रों का भी स्मरण करिए उन सबके ही साथ में अपने गणों के सहित मैं दक्ष के निवास स्थान को जाऊँगा ॥ ७६ ॥ इसके अनन्तर कमलासन प्रभु के द्वारा के सब स्मरण किये गये थे जो मन के समान वेग वाले ब्रह्माजी के पुत्र नारद के ही सहित थे। वे सब द्वार और निधि जहाँ पर थे वहीं पर कामपूर्वक चिन्ता का ज्ञान करके आगत हो गये थे ॥७७॥



॥ तीनों देवों का एकत्व प्रतिपादन ॥

ततः समागताः सर्वे मानसाश्च सनारदाः ।
विधेः स्मरणमात्रेण वातेनेव त्रिनोदिताः ॥१
तैः सार्धं ब्रह्मणा शम्भुः सगणो दक्षमन्दिरम् ।
जगाम मोदयुक्तोऽथ काले तत्कर्मयोगिनि ॥२

गणा शङ्खाश्च पट्टान् डिण्डिमान्तूर्यवशकान् ।
वादयन्तो मुदायुक्ता अनुगच्छन्ति शंकरम् ॥३
केचित्ताल करतल कुर्वन्तोऽप्रितलम्वनम् ।
विमानरतिवेगं स्वैरनुयान्ति वृषध्वजम् ॥४
कोलाहलं प्रकुर्वन्तस्तथा नानाविधान् स्वान् ।
गणा ओकाकृतय शब्दयोगेन निर्ययुः ॥५
ततो देवा मुदा युक्ता गन्धर्वाप्सरसा गणाः ।
वाद्यं मोदस्तथा नृत्यैरन्वीयुर्वृषभध्वजम् ॥६
तेषां शब्देन विप्रेन्द्रा गन्धर्वाणां गणेयसाम् ।
गणानाञ्च दिशः सर्वा पूरिता च वसुन्धरा ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—फिर वहाँ पर देवर्षि नारदजी के सहित सभी मानस पुत्र समागत हो गये थे। ये सब ब्रह्माजी के द्वारा किये हुए केवल स्मरण से ही ध्यान के द्वारा विशेष प्रेरित जैसे होवें वैसे ही सब वहाँ समुपस्थित हो गये थे ॥ १ ॥ उनके साथ और ब्रह्माजी के साथ में अपने गणों को साथ में लेकर भगवान् शम्भु मोद से संयुत होते हुए दक्ष के निवास मन्दिर में गये थे। इसके अनन्तर उनके कर्म के योगी काल के आने पर गणों ने शंख—पटह—डिण्डिम—तूर्य वशों को वादित किया था और आनन्द से युक्त होते हुए वे सब शङ्कर का अनुगमन करते हैं ॥ २, ३ ॥ कुछ ताल बजा रहे थे और कोई करतलों के द्वारा अप्रितल की ध्वनि कर रहे थे। वे सब अपने अति वेग वाले विमानों के द्वारा वृषभध्वज का अनुगमन करते हैं ॥४॥ अनेक तरह की आकृतियों वाले गण भारी कोलाहल करते हुए तथा बहुत तरह की ध्वनि को करने वाले शब्दों के योग से ही वहाँ से अर्थात् शिव के आश्रम से निर्गत हुए थे ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त आनन्द से युक्त देव—गन्धर्व और अप्सराओं के गण बाजों के द्वारा मोद को करते हुए तथा नृत्यों से समन्वित हुए वृषभध्वज का अनुगमन कर रहे थे ॥ ६ ॥ हे

विप्रेन्द्रो ! गरीयान् गन्धर्वों के तथा गणों के उस शब्द से सब दिशाएं तथा समस्त वसुन्धरा परिपूरित होगये थे अर्थात् वह ध्वनि सर्वत्र फैल कर भर गई थी ॥७॥

कामोऽपि सगणः शम्भुं सशृङ्गाररसादिभिः ।
मोदयन् मोहयन् कायमन्वियाय स समक्षतः ॥८
हरे गच्छति भार्यार्थे तदानीं सकला सुराः ।
ब्रह्माद्याः स्वयमेवाशु वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् ॥९
दिशः सर्वाः सुप्रसन्ना बभूवुर्द्विजसत्तमाः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः पुष्पवृष्टिरजायत ॥१०
ववुर्वाताः सुरभयो वृक्षाश्चापि सुपुष्पिताः ।
बभूवुः प्राणिनः स्वस्था अस्वस्था येऽपि केचन ॥११
हंससारसवाश्चैवा नीलकण्ठश्च चातकाः ।
चक्रुश्चर्मधुरान् शब्दान् प्रेरयन्त इवेश्वरम् ॥१२
भुजगो व्याघ्रकृत्तिश्च जटा चन्द्रकला तथा ।
जगाम भूषणत्वञ्च तेनापि परिदीपितः ॥१३
ततः क्षणेन वलिना बलीवर्देन वेगिना ।
सन्नद्धानागदार्थश्च प्राप दक्षालयं हरः ॥१४

कामदेव भी अपने गणों से सहित शृङ्गार रस आदि से साथ समक्ष में काम को मोहित और मोदित करता हुआ अनुगत हुआ था। ॥८॥ भार्या के लिए भगवान् हर के गमन करने पर उस समय में समस्त सुर ब्रह्मा आदि स्वयं ही मनोहर वादन कर रहे थे ॥९॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! सभी दिशायें सुप्रसन्न हुई थीं। परम शान्त अग्नियाँ प्रज्वलित हो गयी थीं और आकाश से पुष्पों की वृष्टि हो रही थी। ॥१०॥ सुगन्धित वायु वहन कर रही थी और वृक्ष भी पुष्पों से समन्वित होगए थे। जो कोई भी अस्वस्थ भी थे वे भी सभी प्राणी स्वस्थ होगए थे ॥११॥ हंस और सारसों के समुदाय—नील कण्ठ और चातक ईश्वर

को प्रेरणा करते हुए के ही समान परम मधुर शब्दों को कर रहे थे ।॥१२॥ शिवजी भी भुजङ्ग (सर्प)—बाघम्बर—जटाजूट—चन्द्रकला भूषणता को प्राप्त हुए थे इन भूषणों से भी वे अधिक दीप्तित हो रहे थे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर एक ही क्षण में बलवान् और वेग वाले बलीवर्द (बैल) के द्वारा ब्रह्मा और नारद आदि के सहित शिव दक्ष के निवास स्थान पर प्राप्त हो गए थे ॥१४॥

ततो दक्षो महातेजा अभ्युत्थाय स्वयं हरम् ।
ब्रह्मादींश्चाददौ तेषामासनानि यथोचितम् ॥१५
कृत्वा यथोचितां तेषां पूजां पाद्यादिभिस्तथा ।
चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः ॥१६
ततः शुभे मुहूर्ते तु लग्ने च द्विजसत्तमाः ।
सतीं निजसुतां दक्षो ददौ हर्षेण शम्भवे ॥१७
उद्वाहविधिना सोऽपि पाणिं जग्राह हर्षितः ।
दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वजः ॥१८
ब्रह्माद्य नारदाद्याश्च मुनयः सामगीतिभिः ।
ऋचा यजुर्भिः सुधाव्यैस्तोषयामासुरीश्वरम् ॥१९
वाद्यं चक्रुर्गणाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पुष्पवृष्टिञ्च समृजुर्मेघा गगनसंगताः ॥२०
अथ शम्भुमुपागत्य गरुडेनातिवेगिना ।
सार्द्धं कमलया चेदमुवाच गरुडध्वजः ॥२१

इसके उपरान्त महान् तेजस्वी प्रजापति दक्ष ने स्वयं शिव का अभ्युत्थान करके ब्रह्म आदिक के लिए उनके जैसे भी उचित थे आसन दिए थे ॥१५॥ उसी भाँति अर्घ्य—पाद्य आदि से उन सबकी समुचित पूजा करके जैसी भी योग्य थी फिर दक्ष ने मानस मुनियों के साथ संविद किया था ॥१६॥ हे द्विज सत्तमो ! इसके उपरान्त शुभमुहूर्त और लग्न में प्रजापति दक्ष ने बड़े ही हर्ष से अपनी पुत्री सती को शम्भु

भगवान् के लिए प्रदान किया था ॥१७॥ उसने भी अर्थात् शम्भु ने भी उद्वाह की विधि से हर्षित होकर सती का परिग्रहण किया था। वृषभध्वज ने परम श्रेष्ठ तनु वाली दाक्षायणी उस समय में पाणि का ग्रहण किया ॥१८॥ ब्रह्मा और नारद आदि मुनियों ने सामवेद की मूर्नियों से—ऋचाओं से तथा मुख्याख्य यजुर्वेद के मन्त्रों से ईश्वर को तोषित किया था ॥१९॥ सब गणों ने वाद्यों का वादन किया था और अप्सराओं के गणों ने नृत्य किया था। आकाश में सङ्गत मेघों ने पुष्पों की वृष्टि की थी ॥२०॥ इसके अनन्तर भगवान् गरुड ध्वज कमला (लक्ष्मी) के साथ में अत्यन्त वेग वाले गरुड के द्वारा भगवान् शम्भु के समीप में उपस्थित होकर यह वचन बोले थे । २१॥

स्निग्धनीलाञ्जनश्याम शोभया शोभसे हर ।
दाक्षायण्या यथा चाहं प्रातिलोम्येन पद्मया ।।२२
कुरु त्वमनया सार्धं रक्षां देवस्य वा नृणाम् ॥२३
अनया सह ससारभारिणा मंगलं सदा ।
कुरु दस्यून् यथायोग्य हनिष्यसि च शंकर ।।२४
य एवैना साभिलाषो दृष्ट्वा श्रुत्वाथवा भवेत् ।
त हनिष्यसि भूतेश नात्र कार्या विचारणा ।।२५
एवमस्त्विति सर्वज्ञ प्रोवाच परमेश्वरम् ।
प्रहृष्टमानस प्रीत्या प्रसन्नवदनो द्विजा ॥२६
अथ ब्रह्मा तदा दृष्ट्वा दक्षजा चारुहासिनीम् ।
स्मराविष्टमना वक्त्रं वोक्षाचक्रे तदीयकम् ।।२७
मुहुर्मुहुस्तदा ब्रह्मा पश्यति स्म सतीमुखम् ।
तदेन्द्रियविकारञ्च प्राप्तवानश पुन ॥२८

श्री भगवान् ने कहा—हे हर ! आप जिस प्रकार से लक्ष्मी के साथ प्रातिलोम्य से शोभायमान होता हूँ ठीक उसी भाँति स्निग्ध नील अञ्जन के समान श्याम शोभा से समन्वित दाक्षायणी के साथ शोभा

को प्राप्त हो रहे हैं ॥२३॥ आप इस सती के साथ में विराजमान होकर देवों की अथवा मानवों की रक्षा करो। इस सती के साथ संसार सारे वालों का सदा मङ्गल करो। हे शङ्कर! यथा योग्य दस्युओं का हनन करोगे ॥२४॥ अभिलाषा के सहित जो ही इसको देखकर अथवा श्रवण करके होवेगा। हे भूतेश! उसका हनन करो। इसमें कुछ भी विचारणा नहीं है अर्थात् इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२५॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजो! प्रीति से प्रसन्न मुख वाले स्वयं प्रभु ने प्रहृष्ट मन वाले परमेश्वर से 'ऐसा ही होवे'—यह कहा था। ॥२६॥ इसके अनन्तर उस समय से ब्रह्माजी ने चारु (सुन्दर) हास वाली दक्ष की पुत्री सती का दर्शन करके कामदेव से आविष्ट मन वाले होते हुए उसके मुख को देखने लगे थे ॥२७॥ उस समय में ब्रह्माजी बारम्बार सती के मुख का अवलोकन किया था और फिर अवश होते हुए उस समय में इन्द्रियों के विकार को प्राप्त हुए थे ॥ २८ ॥

अथ तस्य पपाताशु तेजो भूमौ द्विजोत्तमाः ।
तज्जलद्दहनामास मुनीनां पुरतस्तदा ॥२९
ततस्तस्मात् समभवंस्तोयदाः शब्दसंयुताः ।
सम्वर्तश्च तथावर्तः पुष्करो द्रोण एव च ।
गर्जन्तश्चाथ मुञ्चन्तस्तोयानि द्विजसत्तमाः ॥३०
तैस्तु सञ्छादिते व्योम्नि तेषु गर्जत्सु शङ्कर ।
पश्यन् दाक्षायणीं देवी भृशं कामेन मोहितः ॥३१
मोहितोऽप्यथ कामेन तदा विष्णुवचः स्मरन् ।
इयेष हन्तुं ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शंकरः ॥३२
शम्भुनोद्यमिते शूले विधिं हन्तुं द्विजोत्तमाः ।
मरीचिनारदाद्यास्तु चक्रुर्हाहाकृतिं तदा ॥३३
दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य धावित ।
वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः ॥३४

अथाग्रे मोक्षितं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः ।
प्रत्युवाचाप्रियमिदं स्मारयन् वैष्णवीं गिरम् ॥३५

हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर उनका तेज शीघ्र ही भूमि पर गिर गया था जो कि मुनि के आगे उस समय में वह जल दहन की आभा वाला था ॥ २९ ॥ हे द्विज सत्तमो ! इसके उपरान्त उससे मेघ शब्द से संयुत हो गये थे। अब उन मुसज्जित मेघों के नाम बतलाये जाते हैं---सम्वर्त्त---आवर्त्त---पुष्कर---द्रोण गर्जना करते हुए और जलों को मोचित करने वाले थे ॥ ३१ ॥ उन मेघों के द्वारा आकाश के समाच्छादित हो जाने पर अर्थात् सर्वत्र आकाश मेघों के द्वारा घिरा हुआ हो जाने पर भगवान् शङ्कर काम वासना से मोहित होते हुए दाक्षायणी देवी को अतीव देखते हुए कामदेव के द्वारा मोहित होते हुए भी इसके उपरान्त उस समय में भगवान् विष्णु के वचन का स्मरण करते हुए शङ्कर ने शूल को उठाकर ब्रह्माजी का हनन करने की इच्छा की थी। ॥ ३१, ३२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! शम्भु के द्वारा ब्रह्माजी को मारने के लिये त्रिशूल के उद्यमित करने पर अर्थात् उठाये जाने पर मरीचि और नारद आदि सबने उस समय में हाहाकार करने लगे थे ॥ ३३ ॥ प्रजापति दक्ष ऐसा मत करो—ऐसा मत करो—यह कहते हुए शङ्कित होते हाथ को उठाकर शीघ्र ही आगे समागत होकर भूतेश्वर प्रभु का निवारित किया था। इसके उपरान्त उस समय में महेश्वर ने दक्ष को मिलित देखकर भगवान् विष्णु की वाणी का स्मरण दिखाते हुए यह प्रिय वचन बोला था ॥३४—३५॥

नारायणेन विप्रेन्द्र यदिदानीमुदीरितम् ।
मयाप्यङ्गीकृतं वर्तुं तदिहैव प्रजापते ॥३६
एनां य साभिलाषः सन् वीक्षते त हनिष्यमि ।
इति वाचन्तु सफलमेन हत्वा करोम्यहम् ॥३७
साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत् ।
अभवत्त्यक्ततेजास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥३८

तमेव वादिनं विष्णुः क्षिप्रं भूत्वा पुरःसरः ।
इदमूचे वारयंस्तं हन्तुं सर्वजगत्प्रभुः ॥३६
न हनिष्यसि भूतेश स्रष्टारं जगतां वरम् ।
अनेनैव सती भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता ॥४०
प्रजाः स्रष्टुमयं शम्भो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
अस्मिन् हते जगत्स्रष्टा नास्त्यन्यः प्राकृतोऽधुना ॥४१
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि करिष्यामः कथं पुनः ।
अनेनापि मया चैव भवता च समञ्जसम् ॥४२
एकस्मिन्निहतेऽस्मीषु कस्तत्कर्म करिष्यति ।
तस्मान्न वध्यो भवता विधाता वृषभध्वज ॥४३

ईश्वर ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! नारायण ने जो इस समय में कहा था। हे प्रजापते यह यहाँ पर ही मैंने भी अङ्गीकार किया था ॥ ३६ ॥ जो भी इस सती को कामवासना की अभिलाषा से युक्त होते हुए देखता है उसको आप मार डालेंगे। मैं इस वचन को इसका हनन करके सफल करता हूँ ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी ने अभिलाषा अर्थात् कामवासना की इच्छा से समन्वित होकर क्यों सती का अवलोकन किया था। वह तेज के त्याग करने वाला हो गये थे इसी से उसका मैं हनन करता हूँ क्योंकि ये अपराध (पाप) करने वाले हैं ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस रीति से बोलने वाले उनके आगे स्थित होकर भगवान् विष्णु ने बड़ी शीघ्रता की थी समस्त जगत् के प्रभु ने उनको मारने का निवारण करते हुए यह वचन कहा था—॥ ३६ ॥ श्री भगवान् ने कहा—हे भूतेश्वर ! जगतों के सृजन करने वाले और परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी का हनन नहीं करोगे क्योंकि इन्होंने ही आपकी भार्या के लिए सती की परिकल्पित किया था ॥४०॥ हे शम्भो ! यह चतुर्मुख (ब्रह्माजी) प्रजाओं के सृजन करने के लिये प्रादुर्भूत हुए थे। इनके मारे जाने पर जगत् का सृजन करने वाला अन्य कोई अब प्राकृत नहीं है ॥४१॥ फिर हम

किस तरह से सृजन—पालन और संहार के कर्मों को करेंगे क्योंकि इनके द्वारा मेरे आपके द्वारा ही समञ्जस ये कर्म हुआ करते हैं ॥४२॥ एक के निहित हो जाने पर इनमें कौन है जो उस कर्म को करेगा। हे वृषभध्वज ! इस कारण से आपके द्वारा विधाता वध करने के योग्य नहीं है ॥४३॥

प्रतिज्ञा पूरयिष्यामि हत्वैनं चतुराननम् ।
अहमेव प्रजाः स्रक्ष्ये स्थावराणि चराणि च ॥४४
अन्यं स्रक्ष्ये विधातारमथवाहं स्वतेजसा ।
स एव सृष्टिकर्ता स्यात् सर्वदा मदनुज्ञया ॥४५
हत्वैनं विधिमेवाहं प्रतिज्ञां पालयन् विभो ।
स्रष्टारमेकं स्रक्ष्यामि न वारय चतुर्भुज ॥४६
इति तस्य वचः श्रुत्वा गिरिशस्य चतुर्भुजः ।
स्मितप्रसन्नवदनः पुनर्मैवमितीरयन् ॥४७
इत्युवाचाभिवदनमीश्वरस्य द्विजोत्तमाः ॥४८
ततः पुनः शम्भुरूपे कथमात्मा विधिर्मम ।
लक्ष्यते भिन्न एवाय प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थितः ॥४९
अथ प्रहस्य भगवान् मुनीनां पुरतस्तदा ।
इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुडध्वज ॥५०

ईश्वर ने कहा—मैं इन चतुरानन ब्रह्मा को मार कर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूँगा। रही प्रजा सृजन की बात सो मैं अकेला ही प्रजाओं का जो भी स्थावर और जङ्गम हैं सृजन कर देगा ॥४४॥ मैं अन्य विधाता का सृजन कर दूँगा अथवा मैं ही अपने तेज से कर दूँगा और मेरे द्वारा निर्मित एवं सृजित विधाता सृष्टि के करने वाले होंगे जो सर्वदा मेरी अनुज्ञा से ही करेगा ॥४५॥ हे विभो ! मैं ही इनको मार कर अर्थात् ब्रह्मा का वध करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए हे चतुर्भुज ! एक सृजन करने वाले का सृजन करूँगा। आप मुझे

का ज्योतिर्मय का मेरा भाग आप दोनो है और मैं अंशक हूँ ॥५२॥ कौन तो आप हैं—कौन मैं हूँ—कौन ब्रह्मा है ये तीनो ही परमात्मा मेरे ही अ श है। सृजन—पालन और संहार के कारण ये भिन्न होते हैं ॥५३॥ आप अपनी आत्मा से ही अपने आपका चिन्तन करिए और आत्मा मे ही सत्त्व करो। ब्रह्मा—विष्णु और शम्भु को एकत्रित हुए ग्रहण करो ॥५४॥ जिस तरह मे एक ही धर्मी के शिर—ग्रीवा आदि के भेद से अङ्ग होते है। हे हर ! ठीक उसी भाँति मेरे एक के ही ये तीनों भाग हैं ॥५५॥ जो ज्योति सबसे उत्तम है, जो अपने और पराये प्रकाश रूप है—कूटस्थ—अव्यक्त और अनन्त रूप से युत हैं और नित्य है तथा दीर्घ आदि विशेषणों से हीन तथा वह पर है उसी रीति से हम तीनो भिन्न हैं ॥५६॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो विमोहित. ।
जानन् म चाप्यभिन्नत्व सद्विस्मृत्यान्यचिन्तनात् ॥५७
पुन. प्रपच्छ गोविन्दमनन्यत्व त्रिभेदिनाम् ।
ब्रह्मविष्णुत्र्यम्बकानामेकस्य च विशेषकम् ॥५८
ततो नारायण. पृष्ट. कथयामास शम्भवे ।
अनन्यत्व त्रिदेवानामेकत्वञ्च व्यदर्शयत् ॥५९
श्रुत्वा ततो विष्णुमुखाब्जकोशादनन्यता विष्णुविधीशतत्त्वे ।
दृष्ट्वा स्वरूप च जधान नेन विधि मूढ. पुष्पमधुप्रकाशकम् ॥६०

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उन भगवान् के इस वचन का श्रवण करके महादेव विमोहित हो गये थे। वह अभिन्नता का ज्ञान रखते हुए भी अन्य चिन्तन मे उस की विस्मृति होने से ही उनको अभिन्नता का ज्ञान नहीं रहा था ॥ ५७ ॥ उन्होंने फिर भी गोविन्द से त्रिभेदियों की अभिन्नता को पूछा था। ब्रह्मा—विष्णु और त्र्यम्बकों का और एक का विशेषक को पूछा था ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर पूछे गये नारायण ने शम्भु से कहा था और तीनो देवों का अनन्यता और एकता को प्रदर्शित

किया था ॥५६॥ इसके उपरान्त विष्णु भगवान् के मुख कमल के कोश से अनन्यता का श्रवण करके तथा विष्णु—विधि और ईश के तत्व में स्वरूप को देखकर मृड (शिव) ने पुष्प—मधु से प्रकाश विधाता इसको नहीं मारा था ॥६०॥

— × —

॥ तीनों देवों का अनन्यत्व ॥

अनन्यत्वं त्रिदेवानां यज्जगाद जनार्दनः ।
शम्भवे तद्वयं श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥१
एकत्वं दर्शयामास कथं वा गरुडध्वजः ।
तत् समाचक्ष्व विप्रेन्द्र परं कौतूहलं हि नः ॥२
शृणुध्वं मुनयो गुह्यं परमं प्रयतं परम् ।
त्रिदेवानामनन्यत्वं तथैवैकत्वदर्शनम् ॥३
हरेण पृष्टो गोविन्दस्तं समाभष्य सादरम् ।
इदमाह मुनिश्रेष्ठा अभिन्नप्रतिपादकम् ॥४
इदं तमोमयं सर्वमासीद्भुवनवर्जितम् ।
अप्रज्ञातमलक्ष्यञ्च प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥५
न दिवारात्रिभागोऽत्र नाकाशं न च काश्यपी ।
न ज्योतिर्न जलं वायुर्नान्यत् किंचन संस्थितम् ॥६
एकमासीत् परं ब्रह्म सूक्ष्मं नित्यमतीन्द्रियम् ।
अव्यक्तं ज्ञानरूपेण द्वंद्वहीनविशेषणम् ॥७

ऋषिगणों ने कहा—भगवान् जनार्दन ने तीनों देवों की जो अनन्यता को जो कहा था । हे द्विज सत्तम ! शम्भु के लिए उस द्वय के श्रवण करने की इच्छा रखते हैं ॥१॥ अथवा गरुड ध्वज ने कैसे एकत्व को दिखाया था । हे विप्रेन्द्र ! उसको बतलाइये । हमको बहुत ही अधिक कौतूहल है ॥२॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे मुनिगणो !

आप लोग श्रवण करिए यह तीनों देवों की अनन्यता अर्थात उनके एकत्व का दर्शन परम गोपनीय प्रपत और पद है ॥३॥ भगवान् हर ने भगवान् गोविन्द से पूछा था और बहुत ही आदर के साथ सम्भाषण करके ही पूछा था। हे मुनिश्रेष्ठो ! इन्होंने उनकी अभिन्नता का प्रतिपादन करने वाला यही कहा था ॥४॥ श्रीभगवान् ने कहा—यह सब भुवन वर्जित तमोमय अर्थात् तम से परिपूर्ण था यह अप्रज्ञात—अलक्ष्य और सभी ओर से प्रसुप्त के ही तुल्य था ॥५॥ यहाँ पर दिन-रात्रि का भाग नहीं है—न आकाश है और न क्षमारूपी ही है। न ज्योति है—न जल है और न वायु है अन्य किञ्चित सस्थित नहीं है। ॥ ६ ॥ परम ब्रह्म एक ही था जो सूक्ष्म—नित्य और इन्द्रियों की पहुँच से परे है—वह अव्यक्त है और ज्ञान रूप से द्वैत से हीन विशेषण है ॥७॥

प्रकृति पुरुषश्चैव नित्यौ द्वौ सर्वसहितौ ।
स्थित कालोऽपि भूतेश जगत्कारणमेककम् ॥८
यदेक परम ब्रह्म तत्स्वरूपात् परं हर ।
रूपत्रयमिद नित्य तस्यैव जगत पतेः ॥६
कालो नामापर रूपमनाद्यं तत्तु कारणम् ।
सर्वपामेव भूतानामवच्छेदेन सगत. ॥१०
ततस्तु स्वप्रकाशेन भास्वद्रूप प्रकाशते ।
पुरा सृष्ट्यर्थमतुल क्षोभयन् प्रकृति स्वयम् ॥११
सक्षुब्धायान्तु प्रकृतौ महत्तत्त्वमजायत ।
महत्तत्त्वात्तत पश्चादहकारस्त्रिधाभवत् ॥१२
अहकारे तु सजाते शब्दतन्मात्रतस्तत. ।
आकाशमसृजद्विष्णुरनन्त मूर्तिवर्जितम् ॥१३
ततस्तु रसतन्मात्रादप सृष्ट्वा महेश्वर ।
निराधार स्वय दध्रे तास्तदा निजमायया ॥१४

प्रकृति और पुरुष ये दोनों सब सहित नित्य हैं। हे मुनेश! काल भी स्थित है जो एक ही जगत् का कारण है ॥ ८ ॥ हे द्विज! जो एक परम ब्रह्म है वह स्वरूप में पर है उसी जगत के पति के यह तीनों रूप नित्य हैं ॥ ९ ॥ काल नाम वाला दूसरा रूप है जो अनाद्य है और वह तो कारण है वह सब भूतों का अवच्छेद से सगत होता है ॥ १० ॥ फिर वह अपने प्रकाश से भास्वद्रूप वाला प्रवर्तित होता है। पहिले सृष्टि की रचना करने के लिये अतुल रूप से स्वयं प्रकृति क्षोभ युत करता हुआ था ॥ ११ ॥ प्रकृति के सक्षुब्ध हो जाने पर महत्तत्व की उत्पत्ति हुई थी। पीछे महत्तत्व से तीन प्रकार का अहङ्कार समुत्पन्न हुआ था ॥ १२ ॥ अहङ्कार के समुत्पन्न होने पर शब्द तन्मात्रा में विष्णु ने आकाश का सृजन किया था जो आकाश अनन्त है और मूर्त्ति से रहित है अर्थात् आकाश की कोई भी मूर्त्ति नहीं है ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त महेश्वर ने रसतन्मात्रा से जल का सृजन किया था। उस समय में वह अपनी माया से निराकार ने स्वयं ही धारण किया था ॥१४॥

ततस्त्रिगुणसाम्येन सन्निःस्ता प्रकृति प्रभु ।
पुन सक्षोभयामास सृष्ट्यर्थ परमेश्वर ॥१५
तत सा प्रकृतिस्तासु बीज त्रिगुणभागवत् ।
अप्सु समर्जयामास जगद्बीज निराकुलम् ॥१६
तद्धि वृद्ध क्रमेणैव हैममण्डमभून्महत् ।
अग्राह्यपि समस्तास्ता गर्भ एव तदण्डकम् ॥१७
अप्सु स्थितासु हैमाण्डगर्भे विष्णुस्तदण्डकम् ।
स्वयेव मायया दध्रे ब्रह्माण्डमतुल पुन ॥१८
वारिणा वह्निभिश्चैव वायुभिर्नभसा तथा ।
वहिस्तदण्डव छन्न सर्वपार्श्व समन्तत ॥१९
सप्तसागरमानेन तथा नद्यादि मानत ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोय तदन्यत्तु वहिर्गतम् ॥२०

तदन्त स्वयमेवासौ विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपधृक् ।
देव वर्षभूषितर्वैव प्रविभेद तदण्डकम् ॥२१

इसके अनन्तर प्रभु ने तीनो गुणो की अर्थात् सत्व—रज—तम इनकी समता ने सस्थित प्रकृति को परमेश्वर ने पुन सृष्टि की रचना के लिये सक्षोभित किया था ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् उस प्रकृति न उन जलो मे त्रिगुण के भाग वाले निराकुल जगत् के बीज स्वरूप बीज को भली भाँति सृजन किया था ॥ १६ ॥ वही निश्चित रूप से क्रम से ही वृद्ध महान् सुवर्ण का अण्ड हुआ था । उस अण्ड ने गर्भ मे ही उस सम्पूर्ण जल को ग्रहण कर लिया था । और अण्ड के गर्भ मे जल के स्थित हो जाने पर भगवान् विष्णु ने उस अण्ड को आपकी ही माया से इस अतुल ब्रह्माण्ड को धारण कर लिया था । जल से—अग्नि से—वायु मे तथा नभ से वह अण्डक बाहिर सब पार्श्व मे और सभी ओर छन्न हो गया था ॥ १७—१९ ॥ सात सागरो के मान से जैसे नदी आदि के मान से ब्रह्माण्ड के अन्दर जल है उससे अन्य बहिर्गत है ॥२०॥ उसके अन्दर यह भगवान् विष्णु स्वय ही ब्रह्म के रूप के धारण करने वाले हैं । एक वर्ष तक निवास करके ही मैंने उस अड का भेदन किया था ॥२१॥

तस्मात् समभवन्मेरुरुल्बणमोऽस्मिन् महेश्वर ।
जरायु पर्वता जाता समुद्रा सप्त तज्जलात् ॥२२
तन्मध्ये गन्धतन्मात्रात् पृथिवी समजायत ।
ईश्वरेण प्रवृत्त्या च योजिता त्रिगुणात्मिका ॥२३
प्रागेव पर्वतादिभ्य समुत्पन्ना वसुन्धरा ।
ब्रह्माण्डखण्डसयोगाद्दृढा भूता तु मा भृशम् ॥२४
तस्यामेव स्थितो ब्रह्मा सर्वलोकगुरु स्वयम् ।
यदा ब्रह्माण्डमध्यस्थो ब्रह्मा व्यक्तो न चाभवत् ।
तदैव रूपतन्मात्रात्तेज सम्यगजायत ॥२५

अभवत्तदधोभाग पचवक्त्रश्चतुर्भुज ।
स्फटिकाभ्रसम शुक्ल स कायश्चन्द्रशेखर. ॥३१
इतस्ततो ब्राह्मकाये सृष्टिशक्ति न्ययोजयत् ।
स्वयमेवाभवत् स्रष्टा ब्रह्मरूपेण लोकभृत् ॥३२
स्थितिशक्ति निजा माया प्रकृत्याख्या न्ययोजयत् ।
महेशो वैष्णवे काये ज्ञानशक्ति निजा तया ॥३३
स्थितिकर्ताभवद्विष्णुरहमेव महेश्वर ॥३४
सर्वशक्तिनियोगेन सदा तद्रूपता मम ।
अन्तशक्ति तथाकाये शाम्भवे च न्ययोजयत् ॥३५

उसका जो उर्ध्वभाग था चतुर्मुख और चतुर्भुज हो गया था। पद्म केशर के समान औरङ्ग काया वाला ब्रह्म महेश्वर था। उसका जो मध्य भाग था वह नीले अङ्गो वाला—एक मुख से युक्त चार भुजाओं वाला था। शख—चक्र—गदा और पद्म हाथों मे लिये हुए वह काम वैष्णव था ॥ २६—३० ॥ उसका अधोभाग पाँच मुखो से समन्वित चार भुजाओ वाला था। वह स्फटिक के तुल्य शुक्ल था और वह काम चन्द्रशेखर था ॥ ३१॥ इधर-उधर ब्रह्म के कार्य मे सृष्टि की शक्ति नियोजित किया था और वह लोकभृत ब्रह्म के रूप से स्रष्टा हो गया था ॥ ३२ ॥ महेश ने वैष्णव काम मे अपनी ज्ञान की शक्ति को हे महेश्वर मैं ही स्थिति अर्थात् पालन का करने वाला विष्णु हो गया था ॥ ३३—३४ ॥ सर्व शक्तियो के नियोग से मेरी सदा ही तद्रूपता है तथा सहार करने की को शम्भु काम मे नियोजित किया था ॥३५॥

अन्तकर्ताभवच्छम्भु. स एव परमेश्वरः ।
ततस्त्रिषु शरीरेषु स्वयमेव प्रकाशते ॥३६
ज्ञानरूप पर ज्योतिरनादिर्भगवान् प्रभु. ।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणादेक एव महेश्वर ॥३७

मायाञ्च प्रकृति कालं पुरुषञ्च त्वय विभो ।
ज्ञाता त्व ध्यानयोगेन यस्माद्ध्यानपरो भव ॥४३
मायया मोहितो यस्मादधुना त्वम्मदीयया ।
ततो विस्मृत्य परञ्ज ज्योतिर्हि वनितारत ॥४४
अधुना कोपयुक्तस्त्व विस्मृत्यात्मानमात्मनि ।
या पृच्छसि प्रकृत्यादिरूपाणि प्रमथाधिप ॥४५
ततस्तत्र महादेव श्रुत्वा वाक्य सुनिश्चितम् ।
मुनीना पश्यता योगयुक्तो ध्यानपरोऽभवन् ॥४६
आसाद्य बन्ध पर्यंक निर्निमीलितलोचन ।
आत्मानञ्चिन्तयामास तदात्मनि महेश्वर. ॥४७
पर चिन्तयतस्तस्य शरीर विवभौ शुभम् ।
तेजोभिरुज्वल दृष्ट्वा नशेकुर्मुं नयस्तदा ॥४८
तत्क्षणात् ध्यानयुक्तश्च शम्भु स विष्णुमायया ।
परित्यक्तोऽति विवभौ तपस्तेजोभिज्ज्वल ॥४९

श्री भगवान् ने कहा—आप ही सदा ध्यान मे समवस्थित होकर परमेश्वर को देखा करते हैं जो आत्म मे आत्म स्वरूप है और वह ज्योति के रूप वाला सहस्रर है ॥४२॥ हे विभो ! माया को—प्रकृति को—काल को और पुरुष को आप स्वय जानने वाले हैं अब आप ध्यान का भोग करते हैं तो उसी के द्वारा ज्ञाता हैं इसीलिये आप ध्यान मे तत्पर हो जाइये ॥४३॥ क्योकि इस समय मे आप हमारी माया मे मोहित हो रहे है । इसी कारण से आप निश्चय ही पर ज्योति का विस्मरण करके वनिता म निरत हो रह है ॥४४॥ अब आप कोप से युक्त है अतएव आत्मा मे आत्मा को भूलकर हे प्रमथो के स्वामिन् ! प्रकृति के आदि रूप जिसको आप पूछ रहे हैं ॥४५॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—फिर तो वहाँ पर महादेव जी ने इस परम सुनिश्चित वाक्य का श्रवण करके समस्त मुनियो के देखते हुए ये योग मे युक्त हो कर ध्यान मे परायण

हो गये थे ॥४६॥ उस समय में पर्य्यङ्क बन्ध का समादन करके निर्निमीलित लोचनों वाले महेश्वर ने तब आत्मा में आत्मा का चिन्तन किया था ॥४७॥ परम पुरुष का चिन्तन करते हुए उनका शरीर बहुत अधिक कान्ति युक्त होकर चमक रहा था। तेज से उज्ज्वल उनको देखने के लिए उस समय में मुनिगण भी समर्थ नहीं हुए थे। उसी क्षण में जब वे शम्भु ध्यान में मग्न हो गए तो भगवान् विष्णु की माया ने भी उनका परित्याग कर दिया था उस समय में तप के तेज से अतीव उज्ज्वल वे कान्तिमान् होकर चमक रहे थे ॥४८॥

ये ये गणास्तदा तस्थु सेवया शंकरान्तिके ।
न तेऽपि वीक्षितुं शेकु शंकरं वा दिवाकरम् ॥५०
स्वमेव तदा विष्णु समाधिमनसो भृशम् ।
प्रविवेश शरीरान्तर्ज्योतीरूपेण धूर्जटे ॥५१
प्रविश्य तस्य जठरे यथा सृष्टिक्रम पुरा ।
तथैव दर्शयामास स्वयं नारायणोऽव्ययः ॥५२
न स्थूल न च सूक्ष्मञ्च न विशेषणगोचरम् ।
नित्यानन्दं निरानन्दमेकं शुद्धमतीन्द्रियम् ॥५३
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं निर्गुणं परमं पदम् ।
परमात्मगमानन्दं जगत्कारणकारणम् ॥५४
प्रथमं ददृशे शम्भुरात्मानं तनुस्वरूपिणम् ।
तत्र प्रविष्टमनसा बहिर्ज्ञानविवर्जित. ॥५५
तत्रैव रूपं प्रकृतिं सृष्टयर्थं भिन्नतां गताम् ।
ददर्श तस्यैवाभ्यासे पृथग्भूताभिवैष्विकाम् ॥५६

जो-जो भी गण उस अवसर पर सेवा करने के लिये शङ्कर के समीप में स्थित रहते थे वे सब भी उन शङ्कर अथवा दिवाकर के देखने में समर्थ नहीं हुए थे अर्थात् उन्हें नहीं देख सके थे ॥५०॥ उस काल में स्वयं ही भगवान् विष्णु समाधि में मन लगाने वाले शिव के शरीर

के अन्दर ज्योति के स्वरूप में प्रविष्ट हुए थे ॥५१॥ उन शङ्कर के उदर में प्रवेश करके जैसा पहिले सृष्टि का क्रम था ठीक उसी भाँति स्वयं अव्यय नारायण ने दिखा दिया था। वह न तो स्थूल है और न सूक्ष्म ही है—न विशेषण के गोचर है—वह नित्य आनन्द रूप है—निरानन्द है—एक है—शुद्ध है और इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है वह अदृश्य है और सब का द्रष्टा अर्थात् देखने वाला है—वह निर्गुण है—पर ब्रह्म है परमात्मा में गमन करने वाला आनन्द है और जगत के कारण का भी कारण है। सबमें प्रथम शम्भु ने तत्त्वरूपी आत्मा को देखा था। वहाँ पर प्रविष्ट हुए मन में बाहिर के ज्ञान से विवर्जित उसी के रूप प्रकृति को जो सृष्टि की रचना के लिये भिन्नता को प्राप्त हुई थी। उसी के समीप में एक उसको पृथक् भूल हुई की भाँति देखा था ॥५६॥

पुरुषांश्च ददर्शासौ यथैव वसतस्ततः ।
अग्नेरिव कणान् स्थूलादजस्रं द्विजसत्तमाः ॥५७
तदेव कालरूपेण भासते च मुहुर्मुहुः ।
सृष्टिस्थित्यन्तयोगानामवच्छेदेन कारणम् ॥५८
प्रकृतिं पुरुषश्चैव कालोऽपि च मुहुर्मुहुः ।
अभिन्नान् भासमानांश्च सर्गार्थे भिन्नतां गताम् ॥५९
पृथग्भूतानभिन्नांश्च ददृशे चन्द्रशेखरः ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥६०
सप्रधानस्वरूपेण कालरूपेण भासते ।
तथापुरुषरूपेण ससांरार्थं प्रवर्तते ॥६१

फिर इनने जिस रीति से वास कर रहे हो पुरुषों को देखा था। हे द्विज सत्तमो ! जैसे स्थूल अग्नि से कण से निरन्तर होवे। वह ही काल के रूप से बारम्बार भासित होता है सृष्टि—पालन और संहार के योगों का अवच्छेद से कारण है ॥५७॥५८॥ प्रकृति और पुरुष ही—काल भी जो अभिन्न थे और सर्ग के लिये भिन्नता को प्राप्त हुये भी

समान थे । इन सबको पृथक् भूत और अभिन्न चन्द्रशेखर प्रभु ने देखा था । एक ही ब्रह्म है जो द्वैत से रहित है और यहाँ पर कुछ भी नाना रूप वाला नहीं है ॥६०॥ वह ही प्रधान रूप से और काल के स्वरूप से भासमान होता है तथा पुरुष के रूप से संसार के लिए प्रवृत्त हुआ करता है ॥६१॥

भोगार्थं प्राणिनां स्वच्छन्दशरीरे च प्रवर्तते ।
सैव माया या प्रकृतिः सा मोहयति शङ्करम् ॥६२
हरिं तथा विरिञ्चिञ्च तथैवान्यजनुर्भवान् ।
मायाख्या प्रकृतिर्जाता जन्तुं सम्मोहयत्यपि ॥६३
सा स्त्रीरूपेण च सदा लक्ष्मीभूता हरेः प्रिया ।
सा सावित्री रतिः सन्ध्या या सती सैव वैरिणी ॥६४
बुद्धिरूपा स्वयं देवी चण्डिकेति च गीयते ।
इति स्वयं ददर्शाशु ध्यानमार्गगतो हरः ॥६५
महदादि प्रभेदेन तथा सृष्टिक्रमं स्वयम् ॥६६
दर्शयित्वा हरिः कालं प्रकृतिं पुरुषान्तया ।
तथान्यद्दर्शयामास तच्छरीरे द्विजोत्तमाः ॥६७

भोग करने के लिए निरन्तर वह प्राण धारियों के शरीर में प्रवर्तित होता है । वह ही माया या प्रकृति है जो शङ्कर भगवान् को मोहित करती है ॥६२॥ वह ही हरि को और ब्रह्माजी को मोह युक्त करती है । ठीक उसी भाँति से आप अन्य जन्म वाले हैं । माया के नाम वाली प्रकृति जात हुई और जन्तु को सम्मोहित भी किया करती है । वह सदा स्त्री के स्वरूप से लक्ष्मी भूता हुई हरि भगवान की प्रिया है । वह ही सावित्री—रति—सन्ध्या—सती और वैरिणी है ॥६४॥ वह देवी स्वयं बुद्धि के रूप वाली है जो चण्डिका —इस नाम से गान की जाया करती है—यह ध्यान के मार्ग में गमन किये हुए भगवान् हर ने शीघ्र स्वयं ही देखा था ॥६५॥ महत्तत्व आदि के भेद से फिर सृष्टि

के क्रम को स्वयं देखा था ॥६६॥ हरि भगवान् ने काल—प्रकृति तथा पुरुषों को दिखला कर हे द्विजोत्तमो ! उसी प्रकार से उनके शरीर को अन्य दिखलाया था ॥६७॥

—:×:—

॥ हरकोपोपशमने वर्णन ॥

ततो ब्रह्माण्डसंस्थानं दर्शयामास शम्भवे ।
वर्द्धे तोयराशिस्थ ब्रह्माण्डञ्च यथापुरा ॥१
तन्मध्ये पद्मगर्भाभ ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
ज्योती रूपं प्रकाशार्थं सृष्ट्यर्थंच पृथग्गतम् ॥२
शरीरिणञ्च ददृशे ब्रह्माण्डान्तर्गतं मुहु ।
चतुर्भुजं प्रकाशान्त ज्योतिर्भि. कमलासनम् ॥३
तत्रैव च त्रिधाभूत वपुर्ब्राह्मय ददर्श सः ।
ऊर्द्धमध्यान्तभागैश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥४
यथोर्धभागो वपुषो ब्रह्मत्वमगमत्तदा ।
मध्य यथा विष्णुभूत ददर्शान्त्यस्य शम्भुताम् ॥५
एकमेव शरीरन्तु त्रिधाभूतं मुहुर्मुहु ।
हरो ददर्श स्वे गर्भे तथा सर्वमिदं जगत् ॥६
कदाचिद्वैष्णवं काय ब्राह्मे काये लयं व्रजेत् ।
ब्राह्मं तथा वैष्णवे च शाम्भवे वैष्णवं तथा ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर हरि भगवान् ने शम्भु के लिये ब्रह्माण्ड का संस्थान दिखलाया था जिस प्रकार से पहिले ब्रह्माण्ड जो जल की राशि में स्थित होता हुआ बढ़ा था ॥१॥ उसके मध्य में पद्म गर्भ की आभा वाले जगत् के पति ब्रह्मा की जो ज्योति के रूप वाला प्रकाश के लिए और सृष्टि की रचना करने के लिये पृथक्

मेघाश्च चन्द्र सूर्यञ्च वृक्षान् वल्लीस्तृणानि च ।
सिद्धान् विद्याधरान् यक्षान् राक्षसान् किन्नरास्तथा॥१४

शम्भु का शरीर विष्णु के वपु में अथवा ब्रह्मा का वपु शम्भु के शरीर में लीनता को प्राप्त होता हुआ तथा बार-बार एकता को प्राप्त होने वाला शम्भु भगवान् ने देखा था । वामदेव भी भिन्नता को अप्राप्त पृथक्गत—परमात्मा में गमन करते हुए अर्थात् लीनता को प्राप्त होते हुये उसके वपु को स्वयं देखा था ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ शम्भु ने उसके मध्य में जल में वितत अर्थात् विस्तृत पृथ्वी को देखा था । जो महान् पर्वतों के सघातों से विरल और स्थगित है ॥१०॥ फिर उनने आदि से सर्ग की रचना करते हुए ब्रह्माजी को देखा था तथा अपने आपको पृथाभूत और गरुड पर आसने वाले विष्णु को देखा था ॥ ११ ॥ वहाँ पर ही प्रजापति दक्ष को और उसी भाँति अपने गणों को—मरीचि आदि दशों को—दैरिकी को—सती—सन्ध्या—रति—कन्दर्प—वसन्त के सहित शृङ्गार—हावो को—भावो को—मार्गों को—ऋषियों को—देवों को—गरुड गणों को देखा था ॥ १२ ॥ १३ ॥ मेघों को—चन्द्र—सूर्य वृक्षगण—वल्ली और तृण—सिद्ध—विद्याधर—यक्ष—राक्षस और किन्नरों को देखा था ॥१४॥

मानुषाश्च भुजगाश्च ग्राहान्मत्स्याश्च कच्छपान् ।
वल्कानिर्घातवेन्द्रश्च कृमिकीटपतङ्गकान् ॥१५
काञ्चिद्ददर्शवनिता द्वन्द्वभाव प्रकुर्वतीम् ।
उत्पन्नमुत्पद्यन्तच विपद्यन्तञ्च कञ्चन ॥१६
रमतो रमत काश्चित् काश्चिद्विसरतस्तथा ।
धावतश्चापराञ्छम्भोर्ददर्श परमेश्वर ॥१७
दिव्यार्तवारमारुह्ना माला चन्दनचर्चिता ।
क्रीडान्च षक्षिरे केचिच्छम्भुना क्रीडिता मुहु ॥१८
स्तुवन्त प्रस्तुवन्तश्च शम्भु विष्णुं तथा विधिम् ।

केचिद्ददर्शिरे तत्र मुनयश्च तपोधनाः ॥१९
तपांसि चरतः कश्चिन्नदीतीरे तपोवने।
स्वाध्यायवेदनिरताः पाठयन्तश्चैव केचन ॥२०
तथैव सागराः सप्त नद्यो देवसरांसि च।
तथैव पर्वतस्थोऽसौ ददृशे शम्भुना स्वयम् ॥२१

मनुष्यों का—भुजगों को—ग्राह—मत्स्य—कच्छप—उल्का निपात केतुओं का—कृमि कीट और पतङ्गों को देखा था। वहाँ पर किसी वनिता को देखा था जो द्वन्द्व भाव को कर रही थी। किसी को उत्पन्न—उत्पत्ति को प्राप्त होते हुए—विप्रयुक्त को देखा था॥ १५—१६॥ कुछ लोगों का हास विलास करते हुए और कुछ को विलाप करते हुए—तथा कुछ दौड़ लगाते हुओं को परमेश्वर ने देखा था जो कि शम्भु की ओर ही भाग रहे थे ॥१७॥ कुछ लोग दिव्य अलङ्कारों से सच्छन्न थे—कुछ माला और चन्दन से चर्चित हुए थे—कुछ लोग दीक्षा करते थे और कुछ पुनः शम्भु के साथ क्रीडित थे ॥१८॥ कुछ लोग स्तुति कर रहे थे—कुछ शम्भु का स्तवह करते हुए—विष्णु और ब्रह्मा का स्तवन करने वाले थे। उनके द्वारा कुछ मुनि और तपस्वी गण भी देखे गये थे। कुछ लोग नदी के तट पर तपोवन में तपस्या करते हुए देखे गये थे। कुछ लोग स्वाध्याय तथा वेदों में रत देखे गये थे और कुछ पढ़ाते हुए देखे गये थे। वहीं पर सात सागर—नदियाँ और देवसरोवर देखे गये थे। वहीं पर यह पर्वत पर स्थित थे—ऐसा स्वयं शम्भु के द्वारा देखा गया था॥ १९॥ २०॥ २१॥

मायालक्ष्मीस्वरूपेण हरिं सम्मोहयत्यलम्।
सतीरूपा तथात्मानं मोहयन्तीति शङ्करः ॥२२
सत्या सार्धं स्वयं रेमे कैलासे मेरुपर्वते।
मन्दरे देवविपिने शृङ्गाररससंवित ॥२३
सतीदेहं तथा त्यक्त्वा जाता हिमवतः सुता।

यथा प्राप पुनस्तान्तु यथा चैवान्धको हत ॥२४
कार्तिकेय समुत्पन्नो यथाहस्तारकाह्वयम् ।
तत्सर्वं विस्तरात् सम्यग् ददर्श वृषभध्वज ॥२५
हिरण्यकशिपुर्जघ्ने नरसिंहस्वरूपिणा ।
यथा हत कालनेमिर्हिरण्याक्षो यथा हत ॥२६
विष्णुना यादृश युद्ध दानवौघं पुराकृतम् ।
यथा ये ये च निहतास्तत्सर्वं दृष्टवान हर ॥२७
जगत्प्रपञ्चान् ब्रह्मादीन्नक्षत्रग्रहमानुषान् ।
सिद्धविद्याधरादींश्च दृष्ट्वा दृष्ट्वा पृथक् पृथक् ॥२८

यह महालक्ष्मी के स्वरूप से भगवान् हरि को पर्याप्त रूप से मोहित किया करती है। सती के स्वरूप वाली उसी भाँति आत्मा को अर्थात् अपने आप को मोहित करती हुई शङ्कर ने देखा था ॥२२॥ वे स्वयं सती के साथ मेरु पर्वत कैलास में रमण करते थे। तथा मन्दर म—देव विपिन में जो शृङ्गार रस से सेवित था ॥२३॥ वह देवी सती के स्वरूप का परित्याग करके हिमवान् की सुता होकर समुत्पन्न हुयी थी। जिस प्रकार से पुन उसने उस सती को प्राप्त किया था और जैसे अन्धक मारा गया था ॥२४॥ जैसे कार्तिकेय समुत्पन्न हुए और जिस तरह से तारक नाम वाले का हनन किया था—यह सब विस्तार पूर्वक भली भाँति वृषभध्वज ने देखा था ॥ २५ ॥ जिस रीति से नर सिंह के स्वरूप धारण करने वाले के द्वारा हिरण्यक शिपु मारा गया था और जिस प्रकार से हिरण्याक्ष और काले नेमि वध हुआ था तथा जैसे पहिले किया हुआ दानवों के समुदाय के साथ विष्णु भगवान् के द्वारा युद्ध हुआ था तथा जो जो भी वहाँ पर निहत हुये थे—यह सभी कुछ भगवान् हर ने देखा था ॥२६॥२७॥ जगत् के प्रपञ्च रूप ब्रह्मा आदि नक्षत्र—ग्रह और मनुष्य—सिद्ध और विद्याधर आदि को पृथक् २ देख कर ॥ २८ ॥

आत्मानं तान् संहरन्त ददृशे शम्भुरीश्वरः ।
संहारान्ते ददर्शासो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥२६
शून्यं समभवत्सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥३०
शून्ये जगति सर्वस्मिन् ब्रह्मा विष्णुशरीरगः ।
लीन शम्भुश्च तस्यैव शरीरं प्रविवेश ह ॥३१
एकमेव ददर्शासौ विष्णुमव्यक्तरूपिणम् ।
नान्यत्किंचिद्ददर्शासौ तदा विष्णुमृते हरः ॥३२
अथ विष्णुश्च ददृशे लयं त्व परमात्मनि ।
भासमानं परं तत्त्वे ज्योतीरूपे सनातने ॥३३
ततो ज्ञानमयं नित्यमानन्दं ब्रह्मणः परम् ।
केवलं ज्ञानगम्यञ्च ददर्शान्यन्न किंचन ॥३४
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च जगतः परमात्मनि ।
ददर्श स्वशरीरान्तः सर्गस्थित्यन्तसायमान् ॥३५

ईश्वर शम्भु ने उन सबका संहार करते अपने आपको देखा था। इनने फिर सहार के अन्त मे ब्रह्मा—विष्णु—महेश्वरो को देखा था ॥ २६ ॥ यह सम्पूर्ण चर और अचरो से समन्वित जगत् शून्य हो गया था ॥ ३० ॥ इस समस्त शून्य जगत् मे ब्रह्मा, विष्णु के शरीर मे गमन करने वाले तथा शम्भु लीन होते हुए उसी के शरीर मे प्रवेश कर गये थे ॥ ३१ ॥ इन्होने एक ही अव्यक्त रूप वाले विष्णु को देखा था और इनने अन्य कुछ भी नही देखा था जो उस समय मे विष्णु के बिना होवे ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर विष्णु भगवान् को देखा गया था। परमात्मा मे लय को प्राप्त—भासमान पर तत्त्व—सनातन ज्योति के रूप वाले परतत्त्वा देखे गये थे ॥३३॥ इसके अनन्तर ज्ञान से परिपूर्ण—नित्य—आनन्द मय—ब्रह्म से पर—केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य को देखा था और अन्य कुछ भी नही देखा था ॥३४॥ परमात्मा मे इस

जगत् का एकत्व और पृथक्त्व-अपने शरीर के अन्दर सर्ग-स्थित-और संयमों को देखा था ॥३५॥

प्रकाश परमात्मानं शान्तं नित्यमतीन्द्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म ददर्शान्यन्न किञ्चन ॥३६
को वा विष्णुर्हरः को वा को ब्रह्मा किमिदं जगत् ।
इति भेदो न जगृहे शम्भुना परमात्मनः ॥३७
एवं सम्पश्यतस्तस्य शरीराभ्यन्तराद्बहिः ।
निःसाराय मायादि प्रविवेश वृषध्वजम् ॥३८
अनन्यत्वं पृथक्त्वञ्च दर्शयित्वा जनार्दनः ।
शम्भवे तच्छरीरात्तु बहिर्भूतस्ततस्तो द्रुतम् ॥३९
अथ त्यक्तसमाधेस्तु हरस्य चलितात्मनः ।
सती मनो जगामाशु मोहितस्य च मायया ॥४०
ततो मुहुर्हरो वक्त्रं दाक्षायण्या मनोहरम् ।
प्रबुद्धकमलाकारं वीक्षाञ्चक्रे द्विजोत्तमाः ॥४१
ततो दक्षमरीच्यादीन् स्वगणान् कमलासनम् ।
विष्णुञ्च तत्र सावीक्ष्य शंकरो विस्मितोऽभवत् ॥४२
अथ तं विस्मयाविष्टं महादेवं वृषध्वजम् ।
स्मितप्रफुल्लवदनं हरमाह जनार्दनः ॥४३

प्रकाश रूप—शान्त—नित्य और इन्द्रियों की पहुँच से परे परमात्मा को देखा था कि ब्रह्म एक ही पर है। जो अद्वय अर्थात् द्वैत से रहित है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखा था ॥३६॥ कौन भगवान् विष्णु हैं—कौन ब्रह्मा है अथवा क्या यह जगत् है शम्भु के द्वारा परमात्मा का यह भेद ग्रहण नहीं किया गया था ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से देखते हुए उनके शरीर के अभ्यन्तर से बाहिर माया आदि निष्क्रान्त हुये थे और वृषभ ध्वज (शिव) में प्रवेश कर गये थे। ॥३८॥ जनार्दन प्रभु ने अनन्यत्व और पृथक्त्व दिखलाकर शम्भु के

लिए उसके शरीर में शीघ्र ही फिर बाहिर हो गये थे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त समाधि के परित्याग करने वाले चलित आत्मा से युक्त शिव का मन सती की ओर गया था जो विश्व माया से मोहित हो गये थे। ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तमो ! फिर भगवान् हरि ने दाक्षायणी के मनोहर और विकसित कमल के आकार वाले मुख को देखा था ॥ ४१ ॥ इस के आगे दक्ष मारीचि आदि मुनियों को—अपने गणों को—कमलासन (ब्रह्मा) को और भगवान् विष्णु को वहाँ पर देखकर भगवान् शङ्कर अत्यन्त विस्मित हो गये थे ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर विस्मय में समविष्ट स्मित (मन्द मुस्कराहट) से प्रफुल्लित मुख से संयुत वृषध्वज महादेव हर से भगवान् जनार्दन ने कहा ॥४३॥

यद्यत् पृष्टं त्वयैकत्वे भिन्नतायाञ्च शंकर ।
त्रयाणामथ देवानां तज्ज्ञातमधुना त्वया ॥४४
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालो माया निजान्तरे ।
त्वया ज्ञाता महादेव कीदृशास्ते च के पुनः ॥४५
एकं ब्रह्म सदा शान्त नित्यञ्च परम महत् ।
तत् कथं भिन्नतां जातं दृष्टं तत् क दृश त्वया ॥४६
इति पृष्टो भगवता भगवान् वृषभध्वजः ।
जगाद हरये तथ्यमेतद्वाक्यं द्विजोत्तमाः ॥४७

श्री भगवान् ने कहा—हे शङ्कर ! जो-जो भी आपने एकत्व में और भिन्नता में देखा है अब आपने तीनों देवों का स्वरूप जान लिया है ॥४४॥ आपने अपने अन्तर में प्रकृति—पुरुष—काल और माया को अच्छी तरह से जान लिया है। हे महादेव ! वे फिर किस प्रकार वाले हैं ? ॥४५॥ ब्रह्म एक ही है और वह सदा शान्त—नित्य—परम महत् है। वह किस तरह से भिन्नता को प्राप्त हुआ और कैसा है—यह आपने देख लिया है ॥४६॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस रीति भगवान् वृषभध्वज जब भगवान् विष्णु के द्वारा पूछे गये थे हे द्विजोत्तमो ! हर ने हरि के लिए यह तथ्य वचन कहा था ॥४७॥

एक शिव शान्तमनन्तमच्युत ब्रह्मास्ति तस्मान्नहि किंचिदीदृशम्।
तस्मादभिन्न मक्ल जगद्धरे कालादिरूपाणि च सृष्टिहेतु ॥४८
समस्तभूतप्रभव निरञ्जन वयञ्च तस्यैव सदाशर्म्पिण ।
सृष्टिस्थिति सयमन तदीरित रूपत्रय तस्य विभाति भेदत ॥४९
नाह न च त्व न हिरण्यगर्भो न कालरूप प्रकृति न चान्यत् ।
तत् प्रेरणा कर्तुं मल च किञ्चिद्विनापि रूप सदपोह तस्य ॥५०

इतितत्त्व त्वया प्रोक्त ज्ञातञ्च वृषभध्वज ।
तदशभूतास्तु वय ब्रह्मविष्णुपिनाकिन ॥५१
तस्मात् त्वया न वध्योऽय विरिञ्चिस्तत्व चेद्भवेत् ।
एकता विदिता शम्भो ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ॥५२
इति तस्य वच श्रुत्वा विष्णोरमिततेजस ।
न जघान महादेवो विधि दृष्ट्वाथ चकताम् ॥५३
इति व कथित विष्णुर्ययानन्यत्वमादिशत् ।
शम्भवे प्रस्तुत तद्व कथयामि पुनर्द्विजा ॥५४

ईश्वर ने कहा—एक शिव परम शान्त अनन्त—अच्युत ब्रह्म है और उनसे अन्य ऐसा कुछ भी नहीं है। उनसे अभिन्न सम्पूर्ण जगत् हरि के कला आदि के रूप से सृष्टि की रचना का हेतु होता है ॥४८॥ वह समस्त प्राणियों का प्रभव है और निरञ्जन है। और हम सब उसके ही सदा अंश स्वरूप वाले है। सृष्टि—स्थिति (पालन) और सयम व (सहार) उसके द्वारा कथित भेद से तीन रूप शोभित होते है ॥४८॥ न तो मैं—न आप और न हिरण्य गर्भ—न काल रूप—न प्रकृति और अन्य उसकी प्रेरणा करने के लिये समर्थ है। यहाँ पर कुछ रूप के बिना भी उसका सत् भी है ॥ ५० ॥ श्री भगवान् ने कहा—हे वृषभध्वज ! यह तत्त्व आपने कहा और जान लिया है। हम ब्रह्मा—विष्णु और पिनाकी (शिव) उसके अंशभूत ही हैं ॥ ५१ ॥ इस कारण से आपके द्वारा ब्रह्मा वध के योग्य नहीं है। यदि आपको एकता

विदित है जो कि हे शम्भो ! ब्रह्मा—विष्णु और पिनाकधारी शिव की होती है ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—अपरिमित तेज के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके महादेव जी ने सबकी एक स्वरूपता को देखकर ब्रह्मा का हनन नहीं किया था ॥५३॥ भगवान् विष्णु ने जिस रीति से एकता को आदिष्ट किया था वह सब मैंने आपको बतला दिया है । हे द्विजो! वह जो शम्भु के लिए प्रस्तुत है उसे पुन आपको बतलाता हूँ ॥ ५४ ॥



॥ शिव सती विहार वर्णन ॥

जलदेष्वथ गर्जत्सु महादेव सतीपति ।
विसृज्य विष्णुप्रभृति जगाम हिमवद्गिरिम् ॥१
आरोप्य वृषभे तुंगे सतीमामोदशालिनीम् ।
जगाम हिमवत्प्रस्थं रम्यं कुञ्जसमन्वितम् ॥२
अथ सा शंकराभ्यासे सुदती चारुहासिनी ।
विरेजे वृषभस्याति चन्द्रान्ते कालिकोपमा ॥३
वृषादयश्च ते सर्वे मरीच्याद्याश्च मानसा ।
दक्षोऽपि सर्वे मुदिता अभवन् ससुरासुरा ॥४
केचिद्वक्त्रान् वादयन्त कश्चित्तालान् मुखगना ।
केचिद्धास्य प्रकुर्वन्तो अनुजग्मुर्वृषध्वजम् ॥५
विसृष्टा अपि ब्रह्माद्या शम्भुना पुनरेव ते ।
अनुजग्मु कियद्दूर मुदा परमया युता ॥६
तत शम्भु समाभाष्य ब्रह्माद्या मानसाश्च ते ।
स्व स्व स्थान तदा जग्मु स्यन्दनैराशुगामिभि. ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर मेघों के गर्जन करने पर श्री महादेवजी सती के पति ने विष्णु भगवान् प्रभृति सबको विदा

करके अथवा त्याग करके वे हिमवान पर्वत राज पर चले गये थे ॥१॥ उस परमाधिक आमोद की शोभा वाली देवी सती को अपने अत्युन्नत वृषभ पर समारोपित कराके हिमालय के प्रस्थ को गमन किया था जिसमें परम रम्य कुञ्जों का समुदाय था । २ ॥ इसके उपरान्त वह सुन्दर दन्त—पंक्ति वाली चारु हास से समन्वित सती भगवान् शङ्कर के समीप में शोभायमान हुई थी वृषभ पर स्थित भी वह चन्द्र के मध्य में कालिका के समान ही थी ॥३॥ वे सब ब्रह्मा आदिक और मरीचि आदि मानस पुत्र—दक्ष प्रजापति भी सभी सुर और असुर परम प्रसन्न हुए थे अर्थात् उस अवसर पर सभी को अत्यन्त हर्ष हुआ था ॥ ४ ॥ जो सब भगवान् शङ्कर के साथ में गमन कर रहे थे उनमें कुछ तो शखों को बजा रहे थे और कुछ सुमङ्गल करने वाले तालों का वादन कर रहे थे। कुछ हास्य ही कर रहे थे। इसी रीति से सबने वृषभध्वज का अनुगमन किया था अर्थात् शिव के पीछे-पीछे गये थे ॥ ५ ॥ फिर ब्रह्मा आदिक थे वे भी सब शम्भु के द्वारा विदा कर दिये गये थे। वे सब परमाधिक आनन्द से कुछ दूर तक शिव के पीछे २ गये थे। ॥६॥ इसके उपरान्त ब्रह्मा आदि और मानस पुत्रों ने शम्भु के साथ सम्भाषण करके आवागमन करने वाले रथों के द्वारा समय में अपने २ आश्रमों को चले गये थे ॥७॥

देवाश्च सर्वे सिद्धाश्च तथैवाप्सरसा गणाः ।
यक्षविद्याधराद्याश्च ये ये तत्र समागताः ॥८
ते हरेण विसृष्टास्तु गतवन्तो निजास्पदम् ।
बभूवुरामोदयुताः कृतदारे वृषध्वजे ॥९
ततो हरः सस्वगणः सस्थानं प्राप्य मोदनम् ।
कैलासं तत्र वृषभादवतारयति प्रियाम् ॥१०
ततो विरूपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणी गणान् ।
स्वीयान् विसर्जयामास नन्द्यादीन् गिरिकन्दरात् ॥११

उवाच शम्भुस्तान् सर्वान् नन्द्यादीनतिसुनृतम् ।
यदाहं वः स्मराम्यत्र स्मरणाच्चलमानसाः ।
समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं भोस्तदा तदा ॥१२
इत्युक्ते वामदेवेन ते नन्दिभैरवादय- ।
महाकोपी-प्रपाताय जग्मुस्ते हिमवद्‌गिरौ ॥१३
ईश्वरोऽपि तया सार्धं तेषु यातेषु मोहित. ।
दाक्षायण्या चिरं रेमे रहस्यनुदिन भृशम् ॥१४

समस्त देवगण—सिद्ध और उसी भाँति अप्सराओं के समुदाय और जो-जो भी वहाँ पर यक्ष विद्याधर आदि समागत हुये थे वे सभी भगवान् हर के द्वारा विग्न किए हुए अपने निवास स्थानों को चले गये थे। तथा वृषभ ध्वज के दारा के ग्रहण करने पर सभी आमोद से समन्वित हुए थे ॥ ८ ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर भगवान् शिव अपने गणों के सहित आनन्द देने वाले संस्थान पर पहुँच कर जो कि कैलाश गिरि के नाम वाला था। वहाँ पर शिवने अपनी प्रिया को वृषभ से नीचे उतार लिया था ॥१०॥ फिर विरूपाक्ष प्रभु ने इस दाक्षायणी सती की प्राप्ति करके अपने गणों को जो नन्दी आदिक थे उस गिरि की कन्दरा से विदा कर दिया था ॥११॥ भगवान् शम्भु ने नन्दी आदि से बहुत ही मधुर वाणी से उन सबसे कहा था कि यहाँ पर जिस समय मैं भी मैं आप सबका स्मरण करूँ उसी समय से स्मरण से चल मानस वाले आप लोग मेरे समीप में तब-तब ही समागमन करेंगे ॥१२॥ इस प्रकार से वामदेव के द्वारा कथन करने पर वे नन्दी भैरव आदिक सब महा कोपी के प्रपात के लिये वे हिमवान् गिरि पर चले गये थे ॥१३॥ उन सबके चले जाने पर भगवान् ईश्वर भी उस सती के साथ मोहित होगये थे। हर भी एकान्त में प्रतिदिन उस दाक्षायणी के साथ चिरकाल पर्यन्त बहुत ही अधिक रमण करने वाले होगये थे अर्थात् विशेष रूप से रमण किया था ॥१४॥

कदाचिद् वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम् ।
मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने न्ययोजयत् ॥१५
कदाचिद्दर्पणे वक्त्रं वीक्षन्तीमात्मनः सतीम् ।
अनुगम्य हरो वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत् ॥१६
कदाचित् कुन्तलांस्तस्या उल्लाम्योल्लासमागतः ।
बध्नाति मोचयत्येवं शश्वत्सन्मार्जयत्यपि ॥१७
सरागौ चरणावस्या यावकेनोज्ज्वलेन च ।
निसर्गरक्तौ कुरुते सरागो वृषभध्वजः ॥१८
उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषां पुरतो मुहुः ।
तत्र कर्णे कथयत्यस्या हरो स्प्रष्टुं सदाननम् ॥१९
स दूरमपि गत्वासौ समागम्य प्रयत्नतः ।
अनुबध्नाति तामक्षि पृष्ठदेशेऽन्यमानसाम् ॥२०
अन्तर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वजः ।
तामालिलिंग भीरुया सा चकिता व्याकुलाभवत् ॥२१

किसी समय में वन से स्वाभाविक रूप से समुत्पन्न हुए पुष्पों का समाहरण करके उनकी एक अतीव मन को हरण करने वाली सुन्दर माला की रचना करके उन्होंने सती के हार के स्थान में नियोजित किया था ॥१५॥ किसी समय में दर्पण में अपने मुख का अवलोकन करने वाली सती का अनुगमन करके भगवान् शम्भु ने भी अपना मुख देखा था अर्थात् मुख को देखा करते थे ॥१६॥ किसी समय में उस सती के कुन्तलों को उल्लसित करके उल्लास में आये हुए शिव बाँधा करते थे तथा इसी प्रकार मोचन किया करते थे और बराबर उन केशों को काढ़ा भी करते थे अर्थात् कंघी से काढ़ते रहते थे ॥१७॥ अनुराग से निसर्ग हुए इस सती के स्वाभाविक लालिमा लिये हुए दोनों चरणों को उज्ज्वल यावक के द्वारा निसर्ग रक्त किया करते थे ॥१८॥ जो दूसरों के आगे भी बार-बार ऊँचे स्वर से कथन करने के योग्य बात होती थी उसको

भी भगवान् हर सती के मुख का स्पर्श करने के विचार से उनके कान में कहा करते थे ॥१६॥ विशेष दूर भी न जाकर यह शम्भु किसी समय में प्रयत्न पूर्वक समागत होकर पीछे के भाग में आकर अन्य मन वाली इस सती की आँखों को बन्द कर दिया करते थे ॥२०॥ वृषभध्वज अपनी माया से वहीं पर ही अन्तर्धान होकर उस सती का आलिङ्गन किया करते थे। वह भय से चकित होकर अधिक व्याकुल हो जाया करती थी ॥२१॥

तस्मिन् प्रविष्टे हिमवत्पर्वते वृषभध्वजे ।
कामोऽपि सह मित्रेण रत्या च प्रजगाम ह ॥२२
तस्मिन् प्रविष्टे कामे तु वसन्तः शंकरान्तिके ।
वितताम निजाः श्रीश्च वृक्षे तोये तथा भुवि ॥२३
सर्वे सुपुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याः सुपुष्पिताः ।
अम्भांसि फुल्लपद्मानि पद्मेषु भ्रमरास्तथा ॥२४
प्रविष्टे तत्र सुरतौ प्रववुर्मलयानिलाः ।
सुगन्धिपुष्पगन्धेन मोहितश्च पुरन्ध्रयः ॥२५
मुनीनामपि चेतांसि प्रमथ्य सुरभिस्तदा ।
स्मरः सारं समुदधे तत्रौघादाज्यवत्कृती ॥२६
सन्ध्यार्द्धचन्द्रसंकाशाः पलाशाश्च विरेजिरे ।
कामास्त्रवत्सुमनसः प्रमोदायाभवत् सदा ॥२७
वभुः पंकजपुष्पाणि सरःसु सकलं जनान् ।
सम्मोहयितुमुद्युक्ता सुमुखीवाम्बुदेवता ॥२८

उस हिमालय पर्वत में वृषभध्वज के प्रवेश किये जाने पर कामदेव भी अपने मित्र वसन्त के तथा अपनी पत्नी रति के साथ वहीं पर चला गया था ॥२२॥ उस कामदेव के प्रविष्ट हो जाने पर वसन्त ने भगवान् शङ्कर के समीप में अपनी शोभा का वृक्षों में—जल में और भूमि में विस्तार कर दिया था ॥२३॥ वहाँ पर सभी वृक्ष

संयुत होकर पुष्पित हो गये थे और अन्य लतायें भी पुष्पित हो गई थी। सब सरोवरों के जल खिले हुये कमलों से युक्त हो गये थे तथा उन कमलों पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे ।२४। वहाँ पर सुरभि के प्रविष्ट हो जाने पर मलय की ओर से आने वाली वायु बहन कर रही थी। सुवासित पुष्पों के साथ योग हो जाने से सुरभि-युक्त मोहित हो गई थी। ।।२५।। उस समय में उस सुरभि ने मुनियों के भी मनों का प्रमथन कर दिया था। तरु के समूह से युत के ही समान इनी कामदेव ने सार का समुद्धरण किया था ।।२६।। पलाश सन्ध्या काल में आधे चन्द्रमा के सदृश शोभित हुए थे। पुष्प कामदेव के अस्त्र के ही समान सदा प्रमोद के लिए हो गए थे ।।२७।। सरोवरों में कमल के पुष्प शोभित हो रहे थे जो सुमुखी अम्बु देवता के ही समान सब जनों को सम्मोहित करने करने के लिए उद्युक्त थे ।।२८।।

नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णप्रसूनकैः ।
बभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाः शङ्करान्तिके ।।२९
चम्पकास्तरवो हैमपुष्पत्वं प्रकटं मुहुः ।
कुर्वन्तः प्रचुरं पुष्पं सम्यग्रेजुस्तथास्फुटं ।।३०
प्रफुल्लपाटलापुष्पैर्दिशः स्युः पाटलाश्च ।
यथा तथा पुष्पितास्ते पाटलाख्या महीरुहाः ।।३१
नवमल्लीसुरभिर्गन्धेनोद्वास्य मारुतम् ।
सम्मोहयति चेतांसि भृशं कामिजने पुरा ।।३२
वासन्तीवासितास्तत्र वल्वजाः किल रेजिरे ।
तद्गन्धलुब्धभ्रमरा रतिमिश्रा मनोहराः ।।३३
चारु पावकवर्च्चस्वि शिखराश्चूतशाखिनः ।
बभुर्मदनबाणौघ-पर्यंकवदनावृताः ।।३४
अम्भांसि मलहीनानि रेजुः फुल्लकुशेशयैः ।
मुनीनामिव चेतांसि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमात् ।।३५

नाग केशर के वृक्ष स्वर्ण वर्ण वाले पुष्पों में शंकर के समीप में मदन (कामदेव) के केतु की आभा वाले परम सुन्दर शोभित हो रहे थे ।।२६।। चम्पक के वृक्ष बार-बार हेम पुष्पाव की अर्थात् सुनहले पुष्पों को प्रकट करते हुए विकसित प्रचुर पुष्पों से भली भाँति शोभायमान हुए थे ।।३०।। विकसित हुए अर्थात् खिले हुए पाटला के पुष्पों से दिशायें पाटलांशु हो गई थी । जिस किसी तरह से वे पाटल नाम वाले वृक्ष पुष्पित हो रहे थे ।। ३१ ।। लवङ्ग वल्ली की सुरभि गन्ध के द्वारा वायु को उद्भासित करके कामी जन में पूर्व चित्तों को बहुत ही अधिक सम्मोहित करती है ।।३२।। कामनी से वासित वल्वज शोभित हो रहे थे उनकी गन्ध से चालकी भ्रमर मनोहर रति मिश्र थे ।। ३३ ।। सुन्दर पावक के वर्चस वाले आम्र वृक्षों के शिखर कामदेव के बाणों के समूह से पर्यङ्क वदला कृत होते हुए शोभा युक्त थे ।। ३४ ।। सरोवर तथा जलाशयों का जल फूले हुए कमलों के द्वारा शोभित हुए थे जो प्रव्यक्त ज्योति के उद्गम से मुनि-गणों के चित्तों के ही तुल्य थे।।३५।।

तुषाराः सूर्यरश्मीना संगमादगमन् क्षयम् ।
ममत्वानीव विज्ञानशालिना हृदयात्तदा ।।३६
नि.शंकाः कोकिलाः शब्द तन्वते स्म सदाऽन्वहम् ।
प्राणिव्यधनपुष्पेषु पुष्पज्याशब्दवन् भृशम् ।।३७
चक्रुर्भ्रमरास्तत्र वनान्तर्गतपुष्पगा. ।
कान्तालीलावमुक्षोस्तु स्मरव्याधस्य शब्दवत् ।।३८
चन्द्रस्तुषारवद्भानुर्नचैला· सकला· कलाः ।
क्रमाद्बभार मोहाय जनाना कुमुदं भुवि ।।३९
प्रसन्नाः सह चन्द्रेण निस्तुषारास्तदाभवन् ।
विभावर्यः प्रियेणेव कामिन्यः सुमनोहरा. ।।४०
तस्मिन् काले महादेव· सह सत्या धरोत्तमे ।
रेमे च सुचिरं छन्नो निकुञ्जेषु दरीषु च ।।४१

सूर्य की किरणों के सङ्गम से तुषारक्षय को प्राप्त हो गये थे। उस समय में उन तुषारों का क्षय विज्ञान शाली पुरुषों के हृदय से ममत्व की ही भाँति हुआ था ॥३६॥ उस समय में प्रतिदिन कोयलें निःशङ्क होकर अपनी मधुर ध्वनि का विस्तार कर रही थी। जो प्राणिव्यञ्जन पुष्पों में बहुत ही अधिक पुष्पों की ज्या (धनुष की डोरी) के शब्द की ही भाँति था ॥३७॥ वहाँ पर भ्रमर वनों के अन्तर्गत पुष्पों में गमन करने वाले भ्रमर कान्ता की लीला की भूख वाले कामदेव रूपी व्याघ्र की ध्वनि की ही भाँति कूजन कर रहे थे ॥३८॥ चन्द्र तुषार की भाँति था और भानु सकल कलाओं वाला नहीं था। यह क्रम से जनों के मोह के लिये कुशलता पूर्वक इन कलाओं को धारण करता था ॥३९॥ उस समय में चन्द्रमा के साथ प्रसन्न और तुषार से रहित विभावरी मुमनोहर कामिनियाँ प्रिय के साथ की भाँति ही हो गयीं थी ॥४०॥ उस समय में महादेव उत्तम धरा में अथवा धरा में उत्तम में सती के साथ बहुत समय तक दरियों में और कुञ्जों में छन्न होकर रमण करते थे ॥४१॥



॥ हिमाद्रि निवास गमन ॥

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे।
जगदाद्रेः शिखरिण. प्रस्थयं वृषभध्वजम् ॥१
घनागमोऽयं सम्प्राप्तः काल परमदुःसह.।
अनेकवर्णमेघौस्थगिताम्बरदिक्चयः ॥२
विवान्ति वाता हृदयं दारयन्तोऽतिवेगिनः।
कदम्बरजसाधौतपाथोलेशादिवर्षिणः ॥३
मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुंचताम्। .

विद्युत्पताकिनास्तोयैः क्षुब्ध कस्य न मानसम् ॥४
न सूर्यो दृश्यते नापि मेघाच्छन्नो निशापतिः ।
दिवापि रात्रिवद्भाति विरहिव्यथाकरम् ॥५
मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनन्तः पवनोत्थिता ।
पतन्त इव लोकाना दृश्यन्ते मूर्ध्नि शङ्कर ॥६
वाताहता महावृक्षा नृत्यन्त इव चाम्बरे ।
दृश्यन्ते हर भीरूणां त्रासका कामुकप्रिया ॥७
स्निग्धनीलाञ्जनश्याममृदिरौघस्य पृष्ठतः ।
बलाकाराजि भात्युच्चैर्यमुनापूतफेनवत् ॥८

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर किसी समय म दक्ष की पुत्री सती ने जलदो के आगम में अद्रि (पर्वत) शिखरो के प्रस्थ मे समस्थित वृषभध्वज से बोली थी ॥१॥ सती ने कहा—मेघों के समागम का समय प्राप्त हो गया है । यह काल परम दुःसह होता है । अनेक वर्णों वाले मेघो के समुदाय से आकाश और दिशायें सब स्थगित अर्थात् छन्न हो गये हैं ॥२॥ अत्यन्त वेग वाली वायु हृदय को विदीर्ण करती हुई वहन करती है । जो वायु कदम्ब के पुष्पो के पराग से धौत पाथो-लेश आदि की वर्षा वाले हैं ॥३॥ विद्युत् की पताका वाले मेघों की ऊँची और तीव्र गर्जना से जो मेघ धारा मार भी मोचन कर रहे हैं जिससे मन क्षुब्ध नहीं होते हैं अर्थात् सभी के मन म क्षोभ उत्पन्न हो जाया करता है ॥४॥ इस समय म सूर्य दिखलाई नहीं देता है और मेघों से चन्द्रमा भी समाच्छन्न हो गया था । और इस समय में दिन भी रात्रि की भाँति प्रतीत होता है । यह समय विरोही जनों को बहुत ही व्यथा करने वाला है ॥५॥ हे मेघ एक जगह पे स्थित नहीं रहा करते है । ये गर्जन की ध्वनि करते हुए पवन से उत्थित अर्थात् प्रेरित एव चलायमान होते हैं । हे शङ्कर ! ये ऐसे प्रतीत होते हैं मानों लोगों के माथे पर गिर रहे हों ऐसे ही दिखाई दिया करते हैं ॥६॥ वायु से हत

हुए वृक्ष आकाश में नृत्य सा करते हुए दिखलाई दिया करते हैं। हे हर ! ये कामुक पुरुषों के ईप्सित हैं और भोक्ताओं को त्राण देने वाले हैं ॥७॥ स्निग्ध नील अञ्जन के समान श्याम मुदिरों के बीच में पीछे से बलाकाओं की पंक्ति यमुना के पृष्ठ फेन के ही समान शोभा देती है ॥८॥

क्षण क्षण चचलेय दृश्यते कालिका गता ।
अम्बुधाविव सन्दीप्त पावका वडवामुख ॥९
प्ररोहन्ति हि शस्यानि मन्दिरप्राङ्गणेष्वपि ।
किमन्यत्र विरूपाक्ष शस्योद्भूति वदाम्यहम् ॥१०
श्यामल राजते वृक्षविशदोऽय हिमाचल ।
मन्दराश्रमवृक्षौघपत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ॥११
कुसुमश्रीश्च कुटज भेजे मास्थाय किंशुकान् ।
उच्चावचा कलौ लक्ष्मीर्यथा सन्त्यज्य सज्जनान् ॥१२
मयूरा स्तनयित्नूना शब्देन हर्षिता मुहु ।
केकायन्ते प्रतिवन सतत वृष्टिसूचका ॥१३
मेघोन्मुखाना मधुरश्चातकाना स्वनो हर ।
श्रूयतामतिमत्ताना वृष्टिसन्निधिसूचक ॥१४

यह गत कालिका क्षण-क्षण में चञ्चल है ऐसी दिखलाई दिया करती हैं। जैसे सागर में सन्दीप्त वडवा मुख पावक होता है ॥ ९ ॥ मन्दिर के प्राङ्गणों में भी शस्य पुरूढ होते हैं। हे विरूपाक्ष ! अन्य स्थान में मैं शस्यों की उद्भूति (उत्पत्ति) को क्या बतलाऊँ ॥ १० ॥ श्यामल और राजत वृक्षों से यह हिमवान् विशद हो रहा है जिस तरह से मन्दर अचल के वृक्षों के समुदाय के पत्रों से क्षीर सागर होता है। ॥११॥ यह कुसुमों की श्री इसके कुटज का सेवन करती है। इसके अनन्तर उच्चावच किंशुकों का सेवन किया करती है जिस तरह से कलियुग में लक्ष्मी सज्जनों का त्याग कर दिया करती है ॥१२॥ मयूर

मेघों की ध्वनि से वार-बार परम हर्षित होते हैं और वे निरन्तर वृष्टि की सूचना देने वाले हर एक वन में अपनी वाणी को बोला करते हैं ॥ १३ ॥ हे हर ! अत्यन्त मत्त मेघों की ओर मुख किये हुए चातकों की ध्वनि का आप श्रवण करिए जो कि वृष्टि की समीपता की सूचना देने वाला है ॥१४॥

गगने शक्रचापेन कृतं साम्प्रतमास्पदम् ।
धारासार-शरैस्ताप भेत्तुं प्रति ययोद्‌गतः ॥१५
मेघानां पश्य मार्गेह दुर्नय करकोत्करः ।
यत्तारयत्यनुगतं मयूरं चातकं तथा ॥१६
शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम् ।
हंसा गच्छति गिरिश विदूरमपि मानसम् ॥१७
एतस्मिन् विषमे काले नीडं काकाश्च कोरकाः ।
कुर्वन्ति त्वं विना गेहात् कथं शान्तिमवाप्स्यसि ॥१८
महती बाधते भीतिर्मां मेघोत्था पिनाकधृक् ।
यतस्व तस्माद्वासाय मा चिरं वचनान्मम ॥१९
कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकोष्यामथ क्षितौ ।
तत्रोपयोग्यं त्वं वासं कुरुष्व वृषभध्वज ॥२०
एवमुक्तस्तदा शम्भुर्दाक्षायण्या तया सकृत् ।
इषज्जहास मौर्पस्यचन्द्ररश्मिसिताननः ॥२१
अथोवाच सतीं देवीं स्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः ।
महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन् परमेश्वरीम् ॥२२

इस समय में आकाश में इन्द्र के धनुष ने अपना स्थान बना लिया है अर्थात् इन्द्र धनुष दिखलाई देता है । जिस प्रकार से धारा के शरों से ताप का भेदन करने के लिये मानो यह उद्‌गत हुआ होवे ।१५। मेघों के अन्याय को देखिए जो कि करकों अर्थात् ओलों का उत्कट उसी भांति चातक और अनुगत मयूर को ताड़ित करता रहता है ।

॥१६॥ शिखी (मयूर) और सारङ्ग का पराभव भित्र से भी दुस्तर है गिरिश ! हंस बहुत दूर देश में स्थित मान सरोवर को गमन किया करते हैं ॥१७॥ इस विषय काल में कण्टक और कोरक अपने घोंसलों की की रचना किया करते हैं। आप बिना गेह के किस प्रकार से शान्ति को प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥ हे पिनाक धनुष के धारण करने वाले ! यह विशाल मेघों से उठी हुई भीति (डर) मुझको बाधा कर रही है। अतएव मेरे कहने से आप शीघ्र ही निवास स्थान के लिए यत्न करिए ॥ १६ ॥ हे वृषभध्वज ! कैलाश में अथवा हिमालय गिरि में—माहकोपी में या भूमि में आप अपने योग्य निवास स्थान को बनाइए।२०। उस दाक्षायणी के द्वारा एक बार ही इस प्रकार से कहे हुए शम्भु ने उस समय में थोड़ा हास किया था जो शम्भु अपने मस्तक में स्थित चन्द्रमा की रश्मियों सहित आनन (मुख) वाले थे ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले—सभी तत्त्वों के ज्ञान से सुसम्पन्न—मन्द मुस्कराहट से अपने होठों के सम्पुट का भेद न करने वाले शिव परमेश्वरी देवी को तुष्ट करते हुए उस देवी से बोले थे ॥२२॥

यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ।
मेघास्तत्र न गन्तार कदाचिदपि मत्प्रिये ॥२३
मेघा नितम्बपर्यन्त सचरन्ति महीभृत ।
सदा प्रालेयधाम्नस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ॥२४
कैलासस्य तथा देवी यावदामेखल घना. ।
सचरन्ति न गच्छन्ति तस्मादूर्ध्वं कदाचन ॥२५
सुमेरोर्वा गिरेरूर्ध्वं न गच्छन्ति बलाहका ।
जानुमूल समासाद्य पुष्करावर्तकादय ॥२६
एतेषु च गिरीन्द्रेषु यस्योपरि तवेहते ।
मन प्रिये निवासाय तमाचक्ष्व द्रुत मयि ॥२७

स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि सुवर्णपक्षानिलवृन्दैः ।
शकुन्तवर्गैर्मधुरस्वनैस्ते सदोपदेयानि गिरौ हिमोत्थे ॥२८

ईश्वर ने कहा—हे मनोहरे ! आपकी प्रीति के लिये जहाँ पर भी मुझे निवास करना चाहिये हे मेरी प्यारी ! वहाँ पर मेघ कभी भी गमन करने वाले नहीं होवें ॥२३॥ इस महीभृत् अर्थात् पर्वत के नितम्ब के समीप पर्यन्त ही मेघ सञ्चरण किया करते हैं। हे मनोहरे ! वर्षा ऋतु में भी इस प्रालेय के धाम गिरि के अन्दर सदा मेघों की गति वहीं तक है ॥२४॥ उसी भाँति कैलास की जहाँ तक मेखला है वहीं तक मेघ सञ्चरण करते हैं। उसके ऊपर वे कभी भी नहीं गमन किया करते हैं ॥२५॥ सुमेरु के वारिधि के ऊपर बलाहक (मेघ) नहीं आया करते हैं। पुष्कर और आवर्तक प्रभृति उसके जानुओं के मूल तक ही रहते हैं। ॥२६॥ इन गिरीन्द्रों पर जिसके भी ऊपर आपकी इच्छा हो। हे प्रिये ! जहाँ पर भी आपका मन हो वहीं आप मुझको शीघ्र ही बतला दीजिए। ॥२७॥ सदा हिमोत्थ गिरि में स्वेच्छा पूर्वक विहारों के द्वारा आपके कौतुक उपदेय हैं जहाँ पर सुवर्ण पक्षों के द्वारा अनिलों के वृन्दों से और मधुर ध्वनि वाले पक्षियों से तुम्हारे कौतुक होवें ॥२८॥

सिद्धाङ्गनास्ते मयिता सनातनीमिच्छन्त्य एवोपकृतिं सकौतुकाम् ।
स्वेच्छाविहारमणिकुट्टिमे गिरौ
कुर्वन्त्य एष्यन्ति फलादिदानकैः ॥२६
या देवकन्या गिरिकन्यकाश्च या नागकन्याश्च तुरङ्गमुख्यः ।
सर्वास्तु तास्ते सतत सहायता समाचरिष्यन्त्यनुमोदविभ्रमैः ॥३०
रूप तवेदमतुलं वदनं सुचारु हृष्ट्वना निजवपुर्निजकान्तिसंघम् ।
हेला निजे वपुषि रूपगुणेषु नित्य
कर्तारं इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः ॥३१
या मेनका पर्वतराजजाया रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके ।
सा चापि ते तत्र मनोनुमोद नित्यं करिष्यत्यथ सूचनाद्यैः ॥३२

पुरन्ध्रिवर्गैर्गिरिराजवन्द्यै प्रीतिं वितन्वद्भिरुदाररूपाम् ।
शिक्षा सदा ते स्वकुलोचितापि क र्यान्वहं प्रोतियुता गुणौघैः ॥३३
विचित्रकोकिलालापमोदकुञ्जगणावृतम् ।
सदा वसन्तप्रभवं गन्तुमिच्छसि किं प्रिये ॥३४
सर्वकाम प्रदैर्वृक्षै शाद्वलं कल्प सञ्ज्ञकं ।
सञ्छन्न यस्य कुसुमान्युपयोक्ष्यसि तत्र वै ॥३५

सिद्धो की अङ्गनाऐं आपके साथ सचिता की अर्थात् सनातनी सखी की भावना की इच्छा करने वाली होती हुई स्वेच्छा पूर्वक विहारों के द्वारा मणि कुट्टिम पर्वत पर कौतुक के सहित आपका उपचार करती हुई फल आदि दानो के सहित वहाँ पर आयेगी ॥२६॥ जो देवों की कन्याऐ है और जो गिरि की कन्याऐ हैं—जो तुरङ्ग मुखी नागो की कन्यकाऐ हैं वे सभी निरन्तर आपकी सहायता करती हुई अनुमोद के विभ्रमो के द्वारा समाचरण करेगी ॥३०॥ आपका यह अतुल अर्थात् ऐसा है जिसकी तुलना न हो, रूप है। आपका मुख परम सुन्दर है। अङ्कुला अपने शरीर की कान्ति के संघ को देखकर अपने वपु मे और रूप गुणो मे खेला करे गी इसमे निर्निमेष ईक्षण से चारु रूप वाली है। ॥३१॥ जो मैनका अप्सरा पर्वत राज की जाया के रूप और गुणो से तीनो लोको मे ख्याति वाली हुई थी वह भी सूचनाओ से आपके मन का अनुमोदन नित्य ही किया करेगी ॥३२॥ गिरि राज के द्वारा वन्दना करने के योग्य पुरन्ध्रि वर्गों के साथ उदार रूपा प्रीति का विस्तार करती हुई उनके द्वारा सदा अपने कुल के लिए उचिता भी गुणो के समुदायों से प्रीति से समन्वित प्रति दिन आपको शिक्षा करने के योग्य है ॥३३॥ हे प्रिये ! अतीव विचित्र कोमलो के सलाप और मोद से कुञ्जो के समुदाय से समावृत होने वाले और जहाँ पर और सदा ही वसन्त का प्रभाव विद्यमान रहता है क्या वहाँ आप गमन करना चाहती हैं? ॥३४॥ समस्त कामनाओ के प्रदान करने वाले वृक्षो से और कल्प सज्ञा

वाले शार्दूलों से जो समाच्छन्न है वहाँ पर जिसके कुसुमों का उपयोग करेंगी ॥३५॥

प्रशान्तश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ।
देवालयं महाभागे नानामृगगणैर्वृतम् ॥३६
स्फटिकस्वर्णवप्राद्यै राजतैश्च विराजितम् ।
मानसादिसरोवर्गैरभितः परिशोभितम् ॥३७
हिरण्मयै रत्ननालैः पङ्कजैर्मुकुलैर्वृतम् ।
शिशुमारैस्तथा शङ्खैः कच्छपैर्मकरैर्झषैः ।
निषेवितैर्मञ्जुलैश्च तथानीलोत्पलादिभिः ॥३८
देवीशतस्नानभवैः सर्वगन्धैश्च कुङ्कुमैः ।
विचित्रसुगन्धजलैरापूर्णैः स्वच्छकान्तिभिः ॥३९
शाद्वलैस्तरुभिस्तुङ्गैस्तीरस्थैरुपशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव शाखाग्रैर्व्यञ्जयन्तं स्वसम्भवम् ॥४०
कादम्बैः सारसैर्मत्तैश्चक्रवाकमशोभितैः ।
मधुरारावनिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ॥४१
वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
अग्नेः कौणपराजस्य मारुतस्य हरस्य च ॥४२
पुरीभिः शोभितशिखरं मेरुमुच्चं सुरालयम् ।
रम्भाशचीमेनकादिरम्भोरुगणसेवितम् ॥
किन्त्वमिच्छसि सर्वेषां सारभूतं महागिरिम् ॥४३

हे महाभागे ! जहाँ पर श्वापद गण परम प्रशान्त हैं—जो मुनि और यतियों से सेवित तथा समाकीर्ण है अनेक प्रकार के मृग गणों से समावृत है—ऐसा देवों का आलय है ॥३६॥ स्फटिक के वर्ण से युक्त वप्र आदि से और राजत (चाँदी के निर्मित) से विराजित है—जो मानस सरोवरों के वर्गों से चारों ओर परि शोभा वाला है ॥ ३७ ॥ जो हिरण्मय रत्नों के नाल वाले पङ्कजों तथा मुकुलों से आवृत है तथा

शिशुमार—शख—कच्छप—मकर—झषों के द्वारा निषेवित और मञ्जुल नीलोत्पल आदि में समन्वित है ॥ ३८ ॥ देवी के सैकड़ों स्नानों से सक्त सम्पूर्ण गन्धों वाले कुंकुमों से युक्त—विचित्र मालाओं के गन्ध से युक्त जलों से अपूर्ण एवं स्वच्छ कान्ति वाले शाद्वलों से—तरुओं से जो तीर पर स्थित थे उनसे उपशोभित—मानों नृत्य करते हुए शाखाओं के समुदायों से अपने सम्भव का व्यञ्जन करते हुए कादम्ब—सारस—मत्त चक्राङ्गों के ग्राम (समुदाय) से शोभित, मधुर ध्वनि करने वाले—मोद को करने वाले भ्रमर आदि से युक्त—इन्द्र—यम—कुबेर—वरुण की पुरियों से शोभान्वित देवों का आलय मेरु को जो उन्नत है जो रम्भा, शची मेन का आदि रम्भोत्तम सेवित है। क्या आप सबके सारभूत महा गिरि की इच्छा करती हैं ? ॥३६॥ ॥४०॥४१॥४२॥४३॥

तत्र देवीशतयुता साप्सरोगण सेविता ।
नित्य चरिष्यति शची तव योग्या सहायताम् ॥४४
अथवा मम कैलासमचलेन्द्र सदाश्रयम् ।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजितम् ॥४५
गगाजलौघग्रथित पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
दरीषु सानुषु सदा यक्षकन्याभिरोहितम् ॥४६
नानामृगगणैर्जुष्ट पद्माकरशतावृतम् ।
सर्वैर्गुणैश्च सदृश सुमेरोरिव सुन्दरि ॥४७
स्थानेष्वेतेषु यत्रास्ति तवान्न करणस्पृहा ।
तद्द्रुतं मे समाचक्ष्व वास कर्तास्मि तत्र ते ॥४८

वहाँ पर सैकड़ों देवियों से समन्वित अप्सरागणों के सहित सेवा की हुई शची (इन्द्राणी) आपके लिए समुचित सहायता का वहाँ पर समाचरण करेगी ॥४४॥ अथवा मेरे कैलास अचलों के शिरोमणि को जो सत्पुरुषों का आश्रय और जिसमें कुबेर की पुरी से परिराजित है

क्या ऐसे स्थान के प्राप्त करने की इच्छा करती हो ? ॥४५॥ हे सुन्दरि ! गङ्गाजल के ओघ से प्रपत—पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान प्रभा से संयुत—दरियों में और सानुओं में (शिखरों में) सदा यक्ष की कन्याओं से समोहित अनेक मृग गणों से समन्वित—सैकड़ों पद्माकरों से समावृत जो सभी गुणगणों से सुमेरु की तरह ही तुल्य है ॥४६॥ ॥४७॥ इन स्थानों में जहाँ पर भी आपके अन्तःकरण की स्पृहा हो उसे शीघ्र ही मुझको बतलादो वहाँ पर ही मैं आपका निवास स्थान बना दूँगा ॥४८॥

इतीरिते शंकरेण तदा दाक्षायणी शनैः ।
इदमाह महादेव श्लक्ष्णं स्वेच्छाप्रकाशकम् ॥४६
हिमाद्रावेव वसतिमहमिच्छे त्वया सह ।
न चिरात् कुरुवास त्वं तस्मिन्नेव महागिरौ ॥५०
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परमसोदितः ।
हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ ॥५१
सिद्धाङ्गनागणयुक्तमगम्यं मेघपक्षिभिः ।
जगाम शिखरं तुङ्गं मरीच वनराजितम् ॥५२

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से भगवान् शंकर के द्वारा कहने पर उस अवसर पर दाक्षायणी ने धीरे से महादेवजी से परम श्लक्ष्ण तथा अपनी इच्छा का प्रकाशित करने वाला यह वचन कहा था । ॥४६॥ सती ने कहा—इस हिमालय में ही मैं अपना निवास आपके साथ चाहती हूँ । आप शीघ्र ही इस महागिरि में ही निवास करिये॥५०॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उस देवी सती के वाक्य का श्रवण करके भगवान् शंकर परमाधिक प्रसन्न हुए और उस दाक्षायणी के साथ उन्नत जो हिमवान् की शिखर थी उस पर चले गये थे ॥५१॥ वह हिमालय का शिखर सिद्धों की अङ्गनाओं गणों से युक्त था और मेघ एवं पक्षियों के लिए भी अगम्य था । अर्थात् वहाँ पर मेघ तथा पक्षी

भी नहीं जा सकते थे। उसके परमोन्नत तथा मरीचवन म सुशोभित शिखर पर उन्होंने गमन किया था ॥५२॥

—:०:—

॥ सती देह त्याग वर्णन ॥

विचित्र कनकं रूप्यं शिखरं रत्नकर्बुरम् ।
बालार्कसदृशं तुङ्गं मासमाद सतीसख ॥१
स्फटिकाश्मलये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते ।
विचित्रपुष्पवल्लीभि सरसीभिश्च सयुते ।
प्रफुल्लतरुशाखाग्रगुञ्जद्भ्रमरभूषिते ॥२
पंकेरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ।
शोभिते चक्रवाकौघैः कादम्बैर्हंसमद्गुभि ॥३
प्रमत्तसारसं क्रौञ्चैर्नीलकण्ठैश्च शब्दिते ।
स्कोकिलस्वनमधुरं गमेविते ॥४
तुरगवदनैः सिद्धैरप्सरोभि सगुह्यकैः ।
विद्याधरीभिर्देवीभि किन्नरीभिर्विहारिते ।
पुरन्ध्रीभि पार्वतीभि कन्याभिश्च समन्विते ॥५
विपञ्चीतन्त्रिकामन्द्र मृदङ्गपटहस्वन ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैः सशोभिते ॥६
दीर्घोलताभिर्दिव्याभिर्गन्धिनीभि समावृते ।
ऊर्द्धप्रफुल्लकुसुमैर्निकुञ्जैरुपशोभिते ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वह कनका से रूपा से रत्न कर्बुर शिखर था। वह शिखर बाल सूर्य के समान उन्नत था। उस शिखर को सती तथा शिव न प्राप्त किया था ॥१॥ उसमे जो स्फटिक पाषाण [illegible] था और शाद्वल एव द्रुमो से राजित था विचित्र पुष्पो की

लताओं में तथा भगवान् ने नंयुत था, जिसमें प्रफुल्लित वृक्षों की शाखाओं की टहनियों पर गुञ्जार करते हुए भ्रमरों के द्वारा परम शोभा हो रही थी ॥२॥ विकसित कमलों के द्वारा तथा नील कमलों के समुदायों के द्वारा—चक्रवाकों समूहों से और कादम्ब हंसमद्गुणों से शोभित था ॥३॥ प्रमत्त सारस—क्रौञ्च और नीलकण्ठ इनसे भी शब्दायमान था। एवं पुंस्कोकिलों की मधुर ध्वनियों से तथा मृगों से सेवित था ।४। तुरङ्ग के समान मुखों वाले सिद्धों से अप्सराओं से और गुह्यकों से—विद्याधरों से—देवियों से तथा किन्नरों के द्वारा विहार किया हुआ था। पर्वतीय पुरन्ध्रियों से और कन्याओं से वह समन्वित है ॥५॥ विपञ्ची तन्त्रिका मन्द—मृदङ्ग—पटह की ध्वनियों से और नृत्य करती हुई कौतुक से समुदित अप्सराओं के द्वारा सुशोभित ॥६॥ देवी-दिव्य और गन्ध युक्त लताओं से समावृत—ऊर्ध्व प्रफुल्ल कुसुमों से तथा निकुञ्जों में शोभायमान स्थान है ॥७॥

शैलराजपुरस्यान्ते शिखरे वृषभध्वजः ।
सह मया चिरं रेमे एवम्भूते सुशोभने ॥८
तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शङ्करः ।
दश वर्षसहस्राणि रेमे सत्या समं मुदा ॥९
स कदाचित् ततस्थानात् कैलासं याति शङ्करः ।
कदाचिन्मेरुशिखरं देवदेवीवृतं पुरा ॥१०
दिक्पालानां तपोद्यानं वनानि वसुधातलम् ।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्र रेमे तेभ्यः सतीनखः ॥११
न जज्ञे स दिवारात्रं न ब्रह्मा न तपः शमम् ।
सत्याहितमनाः शम्भुः प्रीतिमेव चकार ह ॥१२
एकं महादेवमुखं सती पश्यति सर्वतः ।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाद्राक्षीत् सतीमुखम् ॥१३
एवमन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुहम् ।
वर्धयामासतुः शम्भुसत्यौ भावाम्बुसेचनैः ॥१४

शैलराज के पुर के समान में जो शिखर है उसमें वृषभध्वज ने इस प्रकार से समन्वित एवं सुशोभन में सती के साथ चिरकाल पर्यन्त रमण किया था ॥ ८ ॥ उस स्वर्ग के सदृश स्थान में भगवान् शङ्कर ने दिव्यमान से दश हजार वर्ष तक आनन्द सहित सती देवी के साथ रमण किया था ॥ ६ ॥ पहिले वह शङ्कर भगवान् किसी समय में उस स्थान से कैलास पर चले जाया करते हैं । किसी समय में देवों और देवियों से समावृत मेरु पर्वत की शिखर पर चले जाते हैं ॥ १० ॥ उसी भाँति दिक्पालों के उद्यान में—वनों में और वसुधा तल में जा जाकर पुनः वहाँ पर सती को साथ में लिये हुए उनमें रमण किया करते थे ।११। उन्होंने रात दिन को नहीं जाना था—न तो व ब्रह्म का चिन्तन करते थे—न तप और शम का ही समाचरण किया करते थे । सती के अन्दर आहित मन वाले शम्भु ने केवल प्रीति ही की थी ॥ १२ ॥ सती सभी ओर में केवल एक महादेवजी के ही मुख को देखा करती थी और महादेवजी भी निरन्तर सभी जगह में सर्वदा सती के ही मुख का अवलोकन किया करते थे ।१३। इस रीति से परस्पर में एक—दूसरे के समग्र से अनुराग रूपी वृक्ष को सती और शम्भु ने भावरूपी जल के सेचन के द्वारा वर्धित कर दिया था ।१४।

एतस्मिन्नन्तरे दक्षो जगतां हितकारकः ।
महायज्ञं समारेभे यष्टुं वै सर्वजीवनम् ॥१५
अष्टाशीति सहस्राणि यत्र जुह्वति ऋत्विजः ।
उद्गातारश्चतु षष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ।
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः ॥१६
अधिष्ठाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः ।
स्वयं तत्राभवद् ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ॥१७
तथैव सर्वदिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ।
उपतस्थे स्वयं यज्ञं स्वयं वेदी धराभवत् ॥१८

तनूनपादपि निजं चक्रे रूप सहस्रशः ।
हविषां ग्रहणायाशु तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे ॥१६
आमन्त्र्याशु मरीच्याद्याः पवित्रकरधारिणः ।
सर्वत्र सामिधेन्या ते ज्वालयामासुरर्चिषम् ॥२०
सप्तर्षयः सामगाथा कुर्वन्ति स्म पृथक् पृथक् ।
सान्दिशो विदिशः खञ्च पूरयन्त श्रुतिस्वरैः ॥२१

इसी बीच में भक्तों के हित को करने वाले प्रजापति दक्ष ने एक महान् यज्ञ के यजन करने का उपक्रम किया था जो कि सर्वजीवन था ।१४। जहाँ पर अट्ठासी हजार ऋत्विज हवन करते हैं । हे मुनियो ! उसमें चौंसठ हजार उद्गाता थे । उतने ही उसमें अध्वर्यु और नारद आदि होताजन थे ।१६। समस्त सप्तर्षियों के साथ विष्णु भगवान् स्वयं ही अधिष्ठाता हुए थे । ब्रह्माजी स्वयं वहाँ पर यज्ञों की विधियों के निदर्शक थे ।१७। उसी भाँति सब दिक्पाल उसके द्वारपाल और रक्षक थे वहाँ पर यज्ञ स्वयं उपस्थित हुआ था और धरा स्वयं वेदी हुई थी अर्थात् पृथ्वी ने ही स्वयं वेदी का स्वरूप धारण किया था तनूनपात् (अग्नि) ने भी अपना रूप सहस्रों प्रकार का बना लिया था । अग्नि ने उस यज्ञ के महोत्सव में हवियों के शीघ्र ग्रहण करने के लिये ही अपने अनेक स्वरूप धारण किये थे ॥१६॥ शीघ्र ही मरीचि आदि को आमन्त्रित करके जो पवित्रक के धारण करने वाले थे वहाँ पर बुलाया था और उन्होंने सामिधेनों से अग्नि को प्रज्वलित किया था ॥२०॥ सप्तर्षि गण पृथक्-पृथक् सामगाथा को करते थे जो कि श्रुतियों के स्वरों से पूर्वों को—दिशाओं को और विदिशाओं को एवं आकाश को पूरित कर रहे थे ॥२१॥

न वृतास्तत्र यागेषु दक्षेण सुमहात्मना ।
न केचिदपरो देवा न मनुष्या न पक्षिणः ।
नोद्भिदो न तृणं वापि पशवो न मृगास्तथा ॥२२

गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघानादित्यसाध्यर्षिगणान् सयक्षान् ।
सस्थावरान्नागवरान् समस्तान वव्रे स दक्ष सुमहाध्वरेषु ॥२३
कल्प मन्वन्तरयुग वर्ष मास दिवा-निशा ।
कला-काष्ठानिमेषाद्या वृता सर्व समागता ॥२४
महर्षिराजर्षिसुरर्षिसंघा नृपा सपुत्रा सचिव ससैन्य ।
वसुप्रमुख्या गणदेवता या सर्वा वृतास्तम गता मख तम् ॥२५
कीटा पतगा जलजाश्च सर्व सवानरा श्वापदविघ्नघोरा ।
मेघा सशैला सनदीसमुद्रा सरांसि वाप्यश्च गता वृतास्ते ॥२७
सर्वे स्वभाग हविषा जिघृक्षव क्रतु प्रजग्मुर्दृढयज्विनस्ते ।
पातालवासा असुरा समागता नागस्त्रियो देवसभा समस्ता ॥२८

महात्मा दक्ष ने वहाँ पर यज्ञ मे किन्ही को भी वृत नही किया था । न तो कोई ऋषिगण—न देवगण—न मनुष्य और न पक्षीगण—न उद्भिद—न तृण न पशु और न मृग ही वृत किये गये थे ॥ २२ ॥ उस दक्ष न सुमहाध्वरो मे गन्धर्व—विद्याधर—सिद्धो के समुदाय—आदित्य—साध्य—ऋषिगण—यक्ष—समस्त स्थावर नागवर वृत नही किया था ॥२३॥ कल्प—मन्वन्तर युग—वर्ष—मास—दिन—रात्रि—कला—काष्ठा—निमेष आदि सब वृत किये हुए वहाँ पर सब समागत हुए थे ॥ २४ ॥ उस दक्ष के द्वारा वृत किय हुए महर्षि—राजर्षि—सुरर्षि सघ—पुत्रो व साहित नृप—गण देवता य सब उस मख आगत हुए थ ॥२५॥ कीट—पतङ्ग—सब जल मे समुत्पन्न जीव—वानर—श्वापद—घोर विघ्न—मेघ—शैल—नदियाँ और समुद्र—सरोवर—वापी वृत हुए थे और सब गय थे ॥२७॥ सभी हविषा मे अपने भाग को ग्रहण करने की इच्छा वाले थे । वे दृढ यज्वीक्रतु म गमन करने वाले हुए थ । पाताल म निवास करन वाल असुर भी वहाँ पर समागत हुए थे । नागो की स्त्रियाँ और समस्त देवो की सभा आई थी ॥२८॥

जगद्वर्त्यस्ति यत्किञ्चिच्चेतनाचेतनं पुनः ।
सर्वं वृत्वा समारेभे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ॥२९
तस्मिन् यज्ञे वृतः शम्भुर्न दक्षेण महात्मना ।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ॥३०
कपालिभार्येति सती दयितापि सुता निजा ।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेण दोषदर्शिना ॥३१
श्रुत्वा सती तथा यज्ञं तातेनारब्धमुत्तमम् ।
कपालिभार्येति वृता नाहमित्यपि तत्त्वतः ॥३२
उच्चैश्चकोप दक्षाय रक्तनेत्रानना तदा ।
शापेन दक्षं दग्धुं च मनश्चक्रे तदा सती ॥३३
कोपाविष्टापि सा पूर्वसमयं स्मृतवत्यमुम् ।
सत्यमेति विनिश्चित्य न शशाप तदा सती ॥३४
फल शापेन मे पूर्वं सुहृद् समयः कृतः ।
अस्तीति मय्यवज्ञाया प्राणान् मोक्ष्ये ध्रुवं पुनः ॥३५

जो कुछ भी इस जगत् में वर्त्तमान रहने वाले थे चाहे चेतन हों या अचेतन होंवे सब में वरण करके इस सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ का समारम्भ किया था ॥२९॥ उस यज्ञ में महात्मा दक्ष ने भगवान् शम्भु का वरण नहीं किया था अर्थात् शम्भु को आमन्त्रण नहीं दिया था। शम्भु कपाल धारण करने वाले हैं अतएव उनमें यज्ञ में सम्मिलित होने की योग्यता ही नहीं है—ऐसा ही निश्चय करके शम्भु को निमन्त्रित नहीं किया गया था ॥३०॥ सती भी यद्यपि परमप्रिय अपनी पुत्री थी किन्तु क्योंकि वह भी कपाली शिव की भार्या है अतएव उनको भी वृत नहीं किया था क्योंकि यज्ञ में विषय में उनमें दोषों का विचार कर लिया था ॥३१॥ सती ने यह श्रवण करके कि पिताजी ने एक उत्तम यज्ञ करने का आरम्भ किया है किन्तु क्योंकि मैं कपालधारी की भार्या हूँ इसी लिये वास्तव में मुझको नहीं बुलाया गया है ॥३२। वह सती

अत्यन्त क्रोधित होगयी थी जो कि अपने पिता दक्ष के ही ऊपर उनको हुआ था। उस अवसर पर उनका मुख और नेत्र क्रोध में लाल हो गये थे। उसी समय में सती ने शाप के द्वारा दक्ष प्रजापति को दग्ध करने के लिये मनन किया था ॥३३॥ यद्यपि वह सती क्रोध में आविष्ट थी तो भी इस पूर्व समय का उसने स्मरण किया था। मनसे ऐसा निश्चय करके उस समय मे सती ने शाप नही दिया था ॥३४॥ शाप नही दिया जावे क्योंकि मैंने पहिले दृढ प्रतिज्ञा की है। मेरी अवज्ञा होने पर मैं फिर निश्चय ही अपने प्राणो का परित्याग कर दूँगी ॥३५॥

यदा स्तुताहं दक्षेण सुचिरं तनयार्थिना ।
तदैव समयो मेऽयं शापेनालंकरोमि तम् ॥३६
इति सञ्चिन्त्य सा देवी नित्यरूपमयात्मनः ।
सस्मारातुलमत्युग्रं निष्फल तु जगन्मयम् ॥३७
पूर्वरूप स्मरन्ती सा योगनिद्राह्वयं हरेः ।
एवं संचिन्तयामास मनसा दक्षजा तदा ॥३८
ब्रह्मणोदितदक्षेण यदर्थमहमीडिता ।
तत्किञ्चिदपि नोजात शंकरोऽपि न पुत्रवान् ॥३९
इदानीमेकमेवाभूत् कार्यं देवगणस्य च ।
यच्छंकरः सानुरागो मत्कृतेऽभूच्च योषिति ॥४०
मत्तो नान्या पुनः शम्भो राग वर्धयितुं पुनः ।
शक्ता न कापि भविता स नान्या संग्रहीष्यति ॥४१
तथाप्यहं तनुं त्यक्षे समयात् पूर्वयोजितात् ।
हिताय जगतां कुर्यां प्रादुर्भावं पुनर्गिरौ ॥४२

जिस समय मे दक्ष ने तनया की इच्छा वाला होते हुये बहुत समय तक मेरा स्तवन किया था उसी समय मे मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उसको शाप नही दूँगी ॥३६॥ इसके अनन्तर आपने नित्य स्वरूप का उस देवी ने चिन्तन करके अत्यन्त उग्र—निष्फल और जगद्

से परिपूर्ण का स्मरण किया था ॥३७॥ उस सती ने हरि की योग निद्रा नाम वाले पूर्व स्वरूप का स्मरण करती हुई उस समय में दक्ष की पुत्री ने मन के द्वारा इस प्रकार से चिन्तन किया था ॥३८॥ ब्रह्मा के द्वारा वदित दक्ष प्रजापति ने जिनके लिए मेरी स्तुति की थी वह कुछ भी नहीं जाना था और भगवान् शङ्कर भी पुत्रवान् नहीं हुए हैं। ॥३९॥ इस समय में दक्षण का एक ही कार्य सम्पन्न हुआ है कि भगवान् शङ्कर मेरे लिए स्त्री में अनुराग करने वाले हो गए थे ॥४०॥ मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी शम्भु के अनुराग की वृद्धि करने के लिये समर्थ नहीं थी और न कोई होगी क्योंकि अन्य किसी को भी शङ्कर ग्रहण ही नहीं करेंगे ॥४१॥ तो भी मैं पूर्व याचित समय से पूर्व ही अपने शरीर का त्याग कर दूँगी और जगत् की भलाई के लिए फिर गिरि अर्थात् हिमवान में अपना प्रादुर्भाव करूँगी ॥४२॥

पुरा हिमवतः प्रस्थे रम्ये देवगृहोपमे।
शम्भुः सार्धं मया रंस्यते सुचिरं प्रीतिसंयुतः ॥४३
तत्र या मेनका देवी चार्वंगी चरितव्रता।
सुशीला सा पुरस्त्रीणामुत्तमा पार्वतीगणे ॥४४
सा मां मातृवदाचष्ट सर्वकर्मसु सम्मतम्।
तस्या मेऽप्यनुरागोऽभूत् सा मे माता भविष्यति ॥४५
कन्याभिश्च पार्वतीभिश्च चारयन्तीडाम्यहं चिरम्।
कृत्वा कृत्वा मेनकायाः करिष्ये मोदमुत्तमम् ॥४६
पुनश्चाहं भविष्यामि शम्भोर्जायातिवल्लभा।
करिष्ये देवकार्याणि तदुपायादसंशयम् ॥४७
इति सचिन्तयन्ती सा पुनः कोपनमावृता।
जज्वाल दक्षतनया दक्षदारुणकर्मणा ॥४८
क्रोधरक्तेक्षणा तत्र तनुयष्टिस्तदा सती।
स्फोटव्यवार द्वाराणि सर्वाण्यावृत्य योगतः ॥४९

पूर्वकाल में हिमवान् के सुरम्य एवं देवों के गृह के सदृश प्रस्थ में शम्भु ने प्रीति से संयुत मेरे साथ रमण करने वो बहुत समय तक मुझसे प्रेम किया था ॥ ४३ ॥ वहाँ पर जो मेनका देवी है वह सुन्दर अङ्गों वाली और व्रत का समाचरण करने वाली है। वह परम सुशीला और पुर स्त्रियों में अत्युत्तमा है जो कि पार्वती के गण हैं उनमें श्रेष्ठ है ।४४। उसमे मेरे साथ एक माता की ही भाँति चेष्टा की थी जो कि सभी कर्मों में यथोचित थी। उसमें मेरा अनुराग हो गया था और वह अनुराग ऐसा ही था कि वही मेरी माता होगी ॥ ४५ ॥ पर्वतीय कन्याओं के साथ मैं बचपन की क्रीडाएँ चिर काल पर्यन्त कर करके मेनका की उत्तम प्रसन्नता को उत्पन्न करूँगी ॥४६॥ मैं फिर भगवान् शम्भु अत्यन्त प्यारी जाया (पत्नी) होऊँगी। फिर मैं उनके उपाय से बिना किसी संशय के देवों के कार्यों को करूँगी ॥४७॥ इस प्रकार से चिन्तन करते हुई वह फिर कोप से समावृत हो गयी थी। वह दक्ष की कन्या दक्ष प्रजापति के अति दारुण कर्म से प्रज्वलित होगयी थी। ॥४८॥ वहाँ पर क्रोध से लाल नेत्रों वाली उस समय में अपने शरीर को योग के द्वारा समस्त द्वारों को आवृत करके सन्तान स्फोटित कर दिया था ॥४९॥

तेन स्फोटेन महता तस्यास्तु प्राणवायव ।
निर्भिद्य दशमद्वारमात्मनस्ते बहिर्ययु ॥५०
त्यक्तप्राणान्तु तां दृष्ट्वा देवा सर्वेऽन्तरिक्षगा ।
हाहाकारं तदा चक्रु शोकव्याकुलितेक्षणा ॥५१
ततस्तु सत्या भगिनीसुता तां द्रष्टुमागता ।
पुनरेव शोकाद्विजया मृतां दृष्ट्वा सतीं मुहु ॥५२
हा सती क्व गतासीति हा सती तव किन्विदम् ।
हा मातृष्वसरित्युच्चैस्तदा शब्दो महानभूत् ॥५३
विप्रियश्रवणादेव प्राणास्त्यक्तास्त्वया सति ।
अहं कथन्नु जीवामि दृष्ट्वेदमृप्रियमिदम् ॥५४

पाणिना वदन सत्या मार्जयन्ती मुहुर्मुहु ।
करुण विलपन्तो स्म मुख जिघ्रति मा तदा ।।५५
सिञ्चन्ती नेत्रजैस्तोयै सत्या सा हृदय मुखम् ।
केशानुल्लास्य पाणिभ्यां वीक्षन्ती वदन मुहु ।।५६

इस महान् स्फोट से उस सती की प्राण वायु आत्मा के दशम द्वार का निर्भेदन करके वे बाहिर चली गयी थी ।।५०।। सब ऋषिगणा ने प्राणो का परित्याग करने वाली उसको देखकर आकाश म स्थित उन्होंने हा हा कार किया था और वे शोक से व्याकुलित नेत्रो वाले हो गये थे ।।५१।। इसके अनन्तर उस सती के वहिन की पुत्री वहाँ पर उस सती को देखने के लिय समागत हुई थी और उस सती को मृत दखकर शोक से पुन विजया ने रुदन किया था ।। ५२ ।। हा ! सती तुम कहाँ गयी ? हा ! सती, आप का यह क्या हुआ ? हा ! मौसी !—इस प्रकार का उस समय म महान् क्रन्दन का शब्द हो गया था ।।५३।। हे सति ! विप्रिय के श्रवण करने ही से तुम म अपने प्राणा का त्याग कर दिया है । अब मैं ऐसे सुदृढ विप्रिय को दखकर कैसे जीवित रहूँ । उस समय मे अपने हाथ से सती के मुख का बार-बार मार्जन करती हुई उसने करुणा पूर्वक विलाप करती हुई ने उस सती के मुख को सूँघा था ।।५४।।५५।। वह अपने नेत्रो से निकलते हुए जलो से उस सती के हृदय और मुख का सिञ्चन करती हुई हाथो स उसके केशो को उल्लासित करके बार-बार मुख को देख देख रही थी ।।५६।।

ऊर्द्धाय कम्पितशिरा शोकव्याकुलितेन्द्रिया ।
हृदय पञ्चशाखाभ्या विनिघ्नन्ती तथा शिर ।।५७
इद च वचन साश्रुकण्ठा सा विजयाब्रवीत् ।
श्रुत्वा ते मरण माता वीरिणी शोककर्षिता ।।५८
धारयन्ती कथ प्राणान् सद्यस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
स तथा निरनुक्रोश क्रूरकर्मा पिता तव ।।५९

प्रमीता भवती श्रुत्वा कथ धास्यति जीवितम् ।
विचिन्त्य नून कर्माणि स्वीयानि भवती प्रति ।
कृतानि स नृशसानि दक्ष शोकाकुलस्तदा ॥६०
यज्वा स च ज्ञानहीन कथ यज्ञे प्रवर्तते ।
नि श्रद्धस्त्यक्तबुद्धिश्च कथ वा स भवेत् क्रतौ ॥६१
हा मातर्देहि वचन रुदन्त्या बालवन्मम ।
भवत्या निर्दया शोकाद्ध्रियै शल्यसमानसून् ॥६२
त्व कि स्मरसि मे शम्भोर्विहितस्य कदाचन ।
तेनामर्ष वश प्राप्ता मातर्मा किन्न भाषसे ॥६३

ऊपर और नीचे की ओर कम्पित शिर वाली शोक से व्याकुल इन्द्रियों से समन्वित हुई पाँचो अगुलियो अपने वक्ष स्थल को और शिर को पीट रही थी ॥५७॥ उस विजया न अश्रुओ से युक्त कण्ठ वाली होती हुई यह वचन कहा था । माता वीरणी तेरे मरण का श्रवण करके शोक स कम्पित हो जायेंगी ॥५८॥ वह माता कैसे प्राणो को धारण करने वाली होगी । वह तो तुरन्त ही जीवन को त्याग देगी । उसके द्वारा क्रूर कर्म करने वाले आपके पिता निरनुक्रोश होगे आपको मृत सुनकर कैसे अपना जीवन धारण करेगा ॥५९॥ आपके प्रति निश्चय ही अपने कर्मो का विचिन्तन करके उस समय मे शोक से व्याकुल दक्ष ने ये बहुत ही क्रूर एव कठोर कर्म किए थे ॥६०॥ और ज्ञान मे हीन वह यजन करने वाला होकर कैसे क्रतु के करने म प्रवृत्त हो रहे हैं क्योकि वह श्रद्धा से रहित और बुद्धि का त्याग कर देने वाला है ॥६१॥ हा ! माता ! बालक की भाँति रुदन करती हुई मुझे कुछ उत्तर तो दो। भक्ति से दया शून्य मैं शोक स अपन शल्य के ही समान धारण कर रही हूँ ॥६२॥ हे माता ! क्या किसी समय म शम्भु के द्वारा विहित का स्मरण कर रही हो ? उससे अमर्ष के वश मे प्राप्त हुई मुझसे कुछ भी नही भाषण करती हो ॥६३॥

तदेव वचनं चक्षुर्मुखं सा नासिका तव ।
एतेषां क्व गता सर्वे विभ्रमा हसितं क्व च ॥६४
ननु ते विभ्रमैर्हीनं नेत्रयुग्मं सुनासिकम् ।
स्मितहीनं च वदनं दृष्ट्वा सोढा कथं हरः ॥६५
का सुधासम्मितं वाक्यं हराश्रमसमागतान् ।
सुनूतं त्वामृते मातर्वदिष्यति मुहुर्मुहुः ॥६६
श्रद्धावती बान्धवेषु पत्युर्भाववशानुगा ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा तत्समा का भविष्यति ॥६७
त्वदृते देवि देवेश शोकोपहतचेतनः ।
दुःखितात्मा निरुत्साहो निश्चेष्टश्च भविष्यति ॥६८
एवं तपस्वी भृशदुःखिता सती मृता समीक्ष्यातिशयं शुचाहता ।
पपात भूमौ विजया विराव वितन्वती चोर्ध्वभुजा प्रवेपती ॥६९

आपका वही वचन—चक्षु—मुख और नासिका ये सभी हैं। इन सबके सब विभ्रम इस समय में कहाँ चले गये हैं और आपका वह हसित भी कहाँ चला गया है ? ॥६४॥ हे भगवान् शम्भु आपके विभ्रमों से हीन सुन्दर नासिका से युक्त—नेत्रों से भी युग्म वाले—मन्द हास से रहित आपके मुख को देखकर कैसे सहन करेंगे ? ॥६५॥ हे माता ! आपके बिना हर के आश्रम में समागत हुओं को बार-बार सुधा के तुल्य सुनृत वाक्य को कौन कहेगी ? ॥६६॥ बान्धवों में श्रद्धा वाली और पति के भावों के वश में अनुगमन करने वाली—सुलक्षणों से पूर्ण उसके समान अब कौन होगी ॥६७॥ हे देवि ! अब आपके बिना देवेश्वर शम्भु शोक से उपहत चेतना वाले होकर दुःखित आत्मा से युक्त—निरुत्साह और चेष्टा रहित हो जायेंगे ॥६८॥ इस रीति से विशेष रूप से दुःखित होकर सती के प्रति विलाप करती हुई विजया सती को मृत देखकर अत्यधिक शोक में आहत हो गयी थी—ऊपर को ओर भुजाओं

वाली विशद क्रन्दन करती हुई कम्प से संयुत होती हुई भूमि पर गिर गयी थी ॥६६॥

— × —

॥ दक्ष यज्ञ-भङ्ग वर्णन ॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भु शोभने मानसे ह्रदे ।
समाप्य सन्ध्यामायात स्वमाश्रमपदं प्रति ॥१
आगच्छन्नेव सरावं विजयाया वृषध्वज ।
शुश्राव दारुणं तीव्रं चकितश्च ततोऽभवत् ॥२
तत उत्त्वा बलवता मनोमारुतरंहसा ।
स्वमाश्रमपदं शर्व आससाद त्वरान्वित ॥३
आसाद्य देवी दयिता तदा दाक्षायणी हर ।
मृता दृष्ट्वापि न जहौ मृतेऽतिप्रियभावत ॥४
ततो निरीक्ष्य वदनमामृज्य च पुन पुन ।
पप्रच्छ कस्मात् सुप्तासीत्येव दाक्षायणी मुहु ॥५
ततो भर्गवच श्रुत्वा तदा तद्भगिनी सुता ।
विजया प्राह निधनं दाक्षायण्या यथा तथा ॥६

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसी बीच मे भगवान् शम्भु परम शोभन मानस ह्रद मे सन्ध्या वन्दना को समाप्त करके आश्रम की ओर समा पात हुये थे ॥१॥ वृषभ ध्वज ने विजय के परम दारुण और तीव्र सराव अर्थात् रुदन की ध्वनि का आते हुए ही श्रवण किया था और फिर वे चकित हो गये थे ॥२॥ इसके अनन्तर भगवान् शम्भु बलवान् मन और मारुत के वेग से त्वरान्वित होकर शीघ्र ही अपने आश्रम के स्थान पर प्राप्त हो गये थे ॥३॥ उस समय मे हर ने प्यारी दाक्षायणी देवी को मृता देखकर भी अत्यधिक प्रिय भाव से मृत होने

पर भी त्याग नहीं किया था ।४। इसके उपरान्त मुख को देखकर और बार-बार आमृजन करके यह सोई हुई है—इसी प्रकार से दाक्षायणी ने बार-बार कैसे पूछा था ॥५॥ इसके उपरान्त भर्ग के वचन का श्रवण करके उसकी वहिन पुत्री विजया ने जिस जिस रीति से दाक्षायणी का निधन कहा था ॥ ६ ॥

दक्ष. क्रतु क्रतुं शम्भो देवान् सर्वान् सवासवान् ।
आजुहाव तथा दैत्यान् राक्षसान् सिद्धगुह्यकान् ॥७
ब्राह्मणानथ गोविन्दमिन्द्रादीनपि दिक्पतीन् ।
देवयोनिस्तथा सर्वान् साध्यविद्याधरादिकान् ॥८
नाहूतानि क्रतौ तेन यानि सत्त्वानि शंकर ।
तानि दक्षेण नो सन्ति समस्तभुवनेष्वपि ॥९
एव प्रवितत यज्ञ श्रुत्वैपा वचनान्मम ।
विमृष्यवत्यनाह्वाने हेतु शम्भोरथात्मनः ॥१०
चिन्तयाना तथाह ता सती ज्ञात्वा यथार्थतम् ।
उक्तवत्यस्मि भूतेश यज्ञानाह्वानकारणम् ॥११
शम्भुः कपाली तद्जाया तत्संसर्गाद्विगर्हिता ।
अत. शम्भु. सती चापि नाध्वरे मे मिलिष्यत ॥१२
इत्यनाह्ननहेतुमें श्रुतपूर्वः पुरा मुखात् ।
दक्षस्य वीरिणी श्वलक्ष्णा गदतस्तस्य मन्दिरे ॥१३
एतच्छ्रुत्वा मम वचः सा विवर्णमुखी क्षितौ ।
उपविष्टा न मा किंचिदुक्ता कोपपरायणा ॥१४

विजया ने कहा—हे शम्भो ! प्रजापति दक्ष ने यज्ञ करने के लिये इन्द्र के सहित सभी देवों को बुलाया था तथा दैत्यों को, राक्षसों को, सिद्धों को और गुह्यकों को भी बुलाया था ॥७॥ ब्राह्मणों को श्री गोविन्द को और इन्द्रादि दिक्पतियों को भी उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये बुलाया था। तथा देव योनि को और समस्त साध्य तथा

विद्याधरों को भी बुलाया था ॥८॥ हे शङ्कर ! जो सत्त्व थे उसने उनको आहूत नहीं किया था जो कि समस्त भुवनों में भी हैं ॥ ६ ॥ यह दाक्षायणी इस प्रकार से प्रवर्त्तित यज्ञ के विषय में श्रवण करके जो कि मेरे वचन से ही श्रवण किया था उसने भगवान् शम्भु का और अपने न बुलाने का हेतु के विषय में विचार किया था ॥१०॥ मैंने जैसा भी सुना था उसी के अनुसार चिन्ता करती हुई उसी सती का ज्ञान प्राप्त करके हे भूतेश मैंने ही यज्ञ में न बुलाने का कारण कहा था ॥ ११ ॥ वह कारण यही था कि दक्ष ने सोचा था कि भगवान् शम्भु कपाल के धारण करने वाले हैं और उनकी पत्नी भी उनके ही सङ्ग होने के कारण से विशेष गर्विता हो गयी है । अतएव शम्भु और सती भी मेरे यज्ञ में नहीं शामिल होंगे ॥१२॥ यही न बुलाने का हेतु मैंने पहिले ही अपनी पत्नी वैरिणी को उसके मन्दिर में बोलते हुए दक्ष के मुख से ही सुना था ।१३। यही मेरे वचन का श्रवण करके वह सती कान्तिहीन मुख वाली होकर भूमि में बैठ गई थी । वह कोप में परायण होती हुई मुझसे भी कुछ नहीं बोली थी ॥१४॥

बभूव वदनं तस्यास्तत्क्षणात् सरुष हर ।
भ्रुकुटीकुटिलं श्यामं यथा खं धूमकेतुना ॥१५
सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा स्फोटेन महता ततः ।
प्राणानुदसृजच्चैषा भित्वा मूर्द्धानमात्मनः ॥१६
इति श्रुत्वा वचस्तस्या विजयाया वृषध्वजः ।
अतीव कोपादुत्तस्थौ दिधक्षुरिव पावकः ॥१७
तस्य कोपपरीतस्य कर्णनासाक्षिवक्त्रतः ।
घोरा ज्वलन्त्यः कणिकाः सृजन्त्योऽग्नेर्महारवम् ।
तस्मात् विनिःसृता वह्न्यः कल्पान्तादित्यवर्चसः ॥१८
अथ तत्र जगामाशु दक्षो यत्र महातपाः ।
यज्ञघ्नके हरो गत्वा यज्ञवाटाद्बहिःस्थितः ॥१६

तं यज्ञं ददृशे भर्गः कोपेन महतावृतः ।
महाधनसमापन्नं पात्रयूपादिभिर्वृतम् ॥२०
हुताज्याहुतिसंवृद्धदीप्तवह्निविराजितम् ।
यथास्थानस्थितान् सर्वान् दिक्पालान् सायुधध्वजान् ॥२१

हे हर ! उसी क्षण में उसका मुख क्रोध में युक्त हो गया था और उसकी भृकुटियाँ टेढ़ी हो गई थीं तथा उसका मुख ऐसा श्याम पड़ गया था जैसा कि धूमकेतु से आकाश हो जाया करता है ॥ १५ ॥ वह थोड़ी ही देर तक ध्यान करके उसने महान् स्फोट से अपने मस्तक का भेदन करके अपने प्रिय प्राणों का उत्सर्जन कर दिया था अर्थात् मृत हो गई थी ॥ १६ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वृषभध्वज ने विजया से इन वचनों का श्रवण करके वे अत्यधिक रोष से प्रज्वलित अग्नि के ही भाँति उत्थित हो गये थे।१७। अत्यधिक कोप से आकुल उनके कानों—चक्षु—नासिका और मुख से अग्नि की महती ध्वालाओं का सृजन करती हुई परम घोर जलती हुई कणिकाएँ निकली थीं। कल्प के अन्त में आदित्य के वर्षण वाली बहुत सी उल्काएँ विनिःसृत हो गई थीं।१८। इसके अनन्तर वे शम्भु वहाँ पर बहुत ही शीघ्र चले गये थे जहाँ पर महान् तपस्वी दक्ष विद्यमान थे और यज्ञ कर रहे थे। भगवान् शम्भु वहाँ जाकर यज्ञ वाट के बाहिर ही स्थित हो गये थे ॥ १६ ॥ महान् कोप से आवृत होकर भर्ग ने उस यज्ञ का अवलोकन किया था जो महान् धन के वैभव से सुसम्पन्न था और पात्र तथा यूप आदि से युक्त था ॥ २० ॥ वह यज्ञ हवन किये हुए आज्य से वृद्धि युक्त था तथा दीप्त हुई वह्नि से विराजित हो रहा था। शम्भु ने समुचित स्थानों पर संस्थित आयुधों और ध्वजा से युक्त सब दिक्पालों को देखा था ॥२१॥

विधातारं तथा विष्णुं यज्ञमध्ये व्यवस्थितम् ।
ददर्श कुपितः शम्भुस्तान् दृष्ट्वावीव कोपतः ॥२२

भग सूर्य तथा सोम भार्याभि सह संवृतम् ।
सहस्राक्ष गौतम च पूर्वे भागे व्यवस्थितम् ॥२३
सनत्कुमारमत्रेय भार्गव विनतासुतम् ।
मरुद्गणास्तथा साध्यानाग्नेय जातवेदसम् ॥२४
काल च चित्रगुप्तञ्च कुम्भयोनिं सगालवम् ।
विश्वेदेवास्तथा सर्वान् क्व्यवाहादिकान् पितृन् ॥२५
अग्निष्वात्तादिकान् सर्वान् भूतग्राम चतुर्विधम् ।
भौम प्रेतगणान् सिद्धान् दक्षिणाशा व्यवस्थितान् ॥२६
रक्षांसि च पिशाचाश्च भूतानि मृगपक्षिण ।
क्रव्यादान् क्षुद्रजन्तू श्च तथा पुण्यजनेश्वरम् ॥२७
महर्षि मौद्गल राहु नैऋत्या किन्नरास्तथा ।
महोरगास्तथा नक्रान् मत्स्यान् ग्राहांश्च कच्छपान् ।
समुद्रान् सप्तसिन्धश्च नदीस्तीर्थानि गुह्यकान् ॥२८

उस यज्ञ के मध्य मे विधाता को और व्यवस्थित भगवान् विष्णु का भी अवलोकन किया था । उन सबको देखकर अतीव कोप से शम्भु कुपित हो गये थे ॥२२॥ अपनी-अपनी भार्याओ के सहित भग—सूर्य—सोम—सहस्राक्ष—गौ तम—पूर्व भाग मे अवस्थित सनत्कुमार—आत्रेय—भार्गव—विनता सुत—मरुद्गण—साध्य—आग्नेय जातवेग को देखा था ॥ २३—२४ ॥ काल —चित्रगुप्त—कुम्भयोनि—गालव—समस्त विश्वेदेवा—कव्य वाह आदि पितृगणो को देखा था । २५ ॥ समस्त अग्निष्वात्त आदिक को और चारो प्रकार के भूतग्राम को—भौम—प्रेतगणो को—दक्षिण दिशा मे अवस्थित सिद्धो को देखा था ॥ २६ ॥ वहाँ पर शम्भु ने राक्षसो को—पिशाचो को—भूतो को—मृग पक्षियो को—क्रव्यादो को—क्षुद्र जन्तुओ को तथा पुण्य जनेश्वर को देखा था ।२७। महर्षि मौद्गल को—नैऋत्य दिशा मे राहु को तथा किन्नरो को—महोरगो को—नक्रो को—मत्स्यो को—ग्राहो को—

कच्छपों को—सात समुद्रों को—सिन्धु को- नदियों को—तीर्थों को और गुह्यकों को देखा था ।२८।

मानसादि ह्रदान् सर्वान् गंगाजम्बूनदी तथा ।
कामं मधुं वसन्तं च वरुणञ्च सहानुगम् ॥२६
शनैश्चरं गिरीन् सर्वान् पश्चिमाशाव्यवस्थितान् ।
प्राणादिपचवायूश्च सगणञ्च समीरणम् ।
कल्पद्रुमान् हिमाद्रिञ्च कश्यपञ्च महामुनिम् ॥३०
वायव्यां कमलावात फलानि च कलानिधिम् ।
नानारत्नानि हैमानि मनुष्यान् पर्वतांस्तथा ॥३१
हिमाद्रिमुख्या यक्षाश्च स्थूणकर्णादयो बुधा ।
नलकुवेरेण सहितो यक्षराज्नरवाहन ॥३२
ध्रुवो धरश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनल ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च कोवेरी संस्थितानिमान् ॥३३
वृषध्वजं विना सर्वान् रुद्रान् जीव मनूंस्तथा ।
विविधान् बाहुजान् वैश्यान् शूद्रानपि समन्ततः ॥३४
ऐशान्यां विविधान्नानि व्रीहिनपि तिलानपि ।
ऐशानीपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान् ॥३५

मानस आदि सब—ह्रदों को—तथा गङ्गा जम्बू नदियों को—कामदेव को—मधु को—वसन्त को और अनुगों के सहित वरुण को देखा था ॥ २६ ॥ शनैश्चर को—समस्त पर्वतों को जो पश्चिम दिशा में व्यवस्थित थे । प्राणादि पाँचों वायुओं को और गणों के सहित समीरण को—कल्पद्रुमों को—हिमवान् पर्वत को और महामुनि कश्यप को देखा ॥३०॥ वायव्य दिशा में कमला वात को और फलों को तथा कला निधि को—अनेक रत्नों को—हैमों को—मनुष्यों को तथा पर्वतों को देखा था ॥३१॥ हिमाद्रि जिनमें प्रमुख था—और यक्ष—स्थूल कर्णादि बुध—नल कुबेर के सहित नरवाह यक्षराज—ध्रुव—धर और सोम—

विष्णु—अनिरुद्ध और अनल—प्रत्यूष—प्रभास इन सबको कौबेरी दिशा मे समवस्थित हुए देखा था ॥ ३८—३३ ॥ वृषभध्वज ने विना मस्तक रुद्रों को—जीव को तथा मनुष्यों को—विविध वाद्य मे सज्जित देखा था और सभी ओर शूद्रों को देखा था ॥३४॥ ऐशानी दिशा मे विविध भाँति के अन्नों को—व्रीहियों को—तिलों को भी देखा था। ऐशानी और पूर्व दिशा के मध्य मे संचित व्रतों मे संयुत ब्रह्मर्षियों को देखा था ।३५।

महर्षीश्चतुरो वेदान्वेदांगानि तथैव षट् ।
नैऋत्यपश्चिमान्तस्यमनन्तं श्वेतपर्वतम् ॥३६
काद्रवेयसहस्रेण सहिता सप्तभोगिनः ।
केतु तत्रैव कुष्माण्ड डाकिनीगणसयुक्तम् ॥३७
तथा जलधरानन्यान्नानावर्णान् सविद्युतान् ।
दिग्गजानपि तत्रस्थानैरावतमुखान् हर ॥३८
यथास्थानस्थितान सर्वानदिक्करिण्या च सयुतान् ।
तमेव दूरतो दृष्ट्वा यज्ञवाट महाधनम् ।
वीरभद्राह्वय तूर्णं प्रेषयामास त प्रति ॥३९
वीरभद्रोऽपि बहुभि सवृतो विविधैर्गणै ।
व्यध्वंसयत्ततो यज्ञ दक्षस्य सुमहात्मन ॥४०
विकुर्वन्त महायज्ञ वीरभद्र समीक्ष्य वै ।
वारयामास वैकुण्ठ सर्वदेवगणावृत ॥४१
त वार्यमाण दृष्ट्वैव क्रोधसंरक्तलोचन. ।
स्वय विवेश त यज्ञ ध्वसयामास चेश्वर ॥४२

चारों महर्षियों को— वेदों को और छै वेदो के अङ्गों को देखा था। नैऋत्य और पश्चिम दिशा के अन्त स्थित अनन्त श्वेत पर्वत को देखा था ॥ ३६ ॥ सहस्र का द्रवेय के सहित सात भोगियों को—वहाँ पर ही केतु को और डाकिनियो से समन्वित कुष्माण्ड को देखा था

। ३७ ।। तथा नाना वर्णों मयुर तथा विद्युत के सहित अन्य जलधरो को—वहाँ पर स्थित विमानो को जिन्म ऐरावत प्रमुख का भगवान् हर ने देखा था ।३८। यथा स्थान पर दिक् करिणी से समन्वित सबको देखा था। महान घन मे मयुत उस यज्ञ वार को दूर ही मे देखकर शिव ने वीरभद्र नामक गण को शाघ्र ही उसकी ओर प्रेषित किया था ।३६। यह वीरभद्र महागण भी बहुत स गनव गणा मवृत होता हुआ था। उसन महात्मा दक्ष क यज्ञ का शिर ध्वस कर दिया था ।४०। उस महान् यज्ञ के विध्वस करत हुए वीरभद्र का देखकर समस्त देवगणो से आवृतभगवान् वैकुण्ठ ने वारण कियाथा।४१। उनको निवारण करते हुए देखकर ही ईश्वर क लाचन क्रोध न लाल हा गय थ फिर ईश्वर स्वय ही उस महायज्ञ म प्रविष्ट हो गय थे और उस यज्ञ का ध्वस कर दिया था ॥४२॥

विशन्नमेव त यज्ञे प्रथम पुरतो भग ।
बाहू वितत्य भूतेशमाससाद त्वरान्वित ॥४३
तमागतमभिप्रेत्य भर्गोऽपि भृशरोषित ।
अगुल्यग्रप्रहारेण तस्य नेत्रे जघान ह ॥४४
हीननेत्र भग दृष्ट्वा विरूपाक्ष दिवाकर ।
स्पर्द्धमानस्तत सर्वमाससाद त्वरान्वित ॥४५
तत सूर्य महादेव पाणो धृत्वा करेण च ।
दूरीकृत्यातिकुपितो यज्ञमेवाभ्यधावत ॥४६
मार्तण्डश्च हसन् वेगाद्वितत्य विपुलौ भुजौ ।
एहि योत्स्ये त्वयेत्युक्त्वा तमग्रे प्रत्यवारयत् ॥४७
हसतस्तस्य सूर्यस्य क्रोधेन वृषभध्वज ।
दन्तान् करप्रहारेण शातयामास वक्त्रत ॥४८
विदन्त मिहिर दृष्ट्वा हीननेत्र भग तथा ।

सर्वे देवाश्च ऋषयो ये चान्ये तत्र दुद्रुवुः ।।४६

भग आगे ही उस यज्ञ मे प्रवेश करते हुए उनको सर्व प्रथम देखकर अपनी बाहुओ को फैला कर भग त्वरा से संयुत होकर भगवान् भूतेश के पास पहुँच गया ।।४३।। उसको सामने आते हुए देख कर भगवान् भर्ग भी अत्यन्त कुपित हो गये थे और अपनी अगुलि के अग्र-भाग के प्रहार से उन्होंने उस भग के नेत्रो का हनन कर दिया था ।४४। नेत्रो से हीन विरूपाक्ष भग को देखकर दिवाकर त्वरा से युक्त होते हुए स्पर्धा करने वाले होकर भगवान् शर्व के समीप मे आये थे ।।४५।। इसके उपरान्त महादेव ने सूर्य को करसे पकड कर हाथ से दूर हटाकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर उस यज्ञ की ओर ही धावमान हो गये थे । ।।४६।। और मार्त्तण्ड (सूर्य) हसते हुये बडे वेग के साथ दोनो बाहुओं को फैलाकर कहने लगा 'आओ, मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा—इतना कहकर सूर्य ने उन शिव को आगे चलकर पुन रोक दिया था ।।४७।। हसते हुये उस सूर्य के दांतो को वृषभध्वज ने क्रोध युत होकर हाथ के ही प्रहार से मुख से गिरा दिया था ।।४८।। इस प्रकार से सूर्य को बिना दांतो वाला तथा भग को हीन नेत्रो वाला देखकर समस्त देव गण—ऋषिलोग और जो भी वहाँ पर अन्य थे वे सब भाग गये थे ।।४६।।

विद्राव्य सर्वान् देवादीन् हर परमकोपन ।
मृगरूपेणाप्यास्त यज्ञमेवान्वपद्यत ।।५०
यज्ञोऽप्याकाशमार्गेण ब्रह्मस्थान विवेश ह ।
वृषध्वजोऽपि कुपितो ब्रह्मस्थान जगाम ह ।।५१
ब्रह्मण सदनाद् यज्ञो भीतो भर्गादथातरत् ।
यवनीयं सतीदेहं प्रविवेश स्वमायया ।।५२
भर्गोऽपि दक्षदुहितुर्मृ नाया निकटं गतः ।
अन्वगच्छत्तदा यज्ञं ददर्श च सतीशवम् ।।५३

मृतां दृष्ट्वा तदा देवीं हरो दाक्षायणीं सतीम् ।
विस्मृत्य यज्ञं तत्प्रान्ते स्थितो बाढं शुशोच ताम् ।।५४

बहुविधगुणवृन्दं चिन्तयञ्छूलपाणि-
र्ललितदशनपङ्क्तिं वक्त्रमब्जप्रकाशम् ।
अरुणदशनवस्त्रं भ्रूयुगं वीक्ष्य तस्या
खरतरपृथुशोकव्याकुलोऽसौ रुरोद ।।५५

भगवान् सब देवगण आदि को भगाकर परमाधिक कोप वाले होते हुए वे मृग के रूप में अपमान करते हुए उस यज्ञ को ही पकड़ने के लिये पीछे दौड़े थे ।।५०।। वह यज्ञ भी आकाश के मार्ग के द्वारा ब्रह्म स्थान में प्रवेश कर गया था । वृषध्वज भी उस के पीछे से कुपित होते हुए ब्रह्म स्थान को गमन कर गये थे ।।५१।। भर्ग से डरा हुआ यज्ञ ब्रह्मा के सदन से नीचे उतर आया था और अन्तर्हित होकर अपनी माया से सती के देह में प्रवेश कर कर लिया था ।।५२।। भगवान् भर्ग भी मृत हुई दक्ष की दुहिता के निकट चले गये थे उस समय में सब पीछे ही गये थे और वहाँ पर यज्ञ को तथा सती के शव का उन्होंने देख लिया था ।।५३।। उस समय में भगवान् हर ने दाक्षायणी देवी सती का मृता देखकर यज्ञ को भूल कर उसके समीप में स्थित होते हुए उन्होंने बहुत अधिक उस सती के विषय में शोक किया था ।।५४।। शूलपाणि भगवान् शम्भु ने अनेक प्रकार के सती के गुण गणों का चिंतन करते हुए उनदेवी सतीकी परमाधिक सुन्दर दाँतोंकी पंक्तियों—कमल के समान प्रकाशित मुख को—अरुण दशन वस्त्र उसकी दोनों भृकुटियों के जोड़ को देखकर बहुत ही तीव्रतर शोक में व्याकुल होकर यह शम्भु रुदन करने लगे थे ।।५५।।

❀❀❀

॥ विजया सखी के शोकोद्गार ॥

दाक्षायणीगुणगणान् गणयन् गोरङ्गस्तदा ।
विललापातिदुःखार्तो मनुजः प्राकृतो यथा ॥१
विलपन्तं तदा भर्गं विज्ञाय मकरध्वजः ।
रतीवसन्तसहित आससाद महेश्वरम् ॥२
स शुचातिपरिभ्रष्टं युगपत् स रतिपतिः ।
जघान पञ्चभिर्बाणैः रुदन्तं भ्रष्टचेतनम् ॥३
शोकाभिहतचित्तोऽपि स्मरबाणः समाकुलः ।
सङ्कीर्णभावमापन्नः शुशोच च मुमोह च ॥४
क्षणं भूमौ निपतति क्षणमुत्थाय धावति ।
क्षणं भ्रमति तत्रैव निमीलति विभुः पुनः ॥५
ध्यायन दाक्षायणी देवी हसमानं कदाचन ।
परिष्वजति भूमिष्ठा रसभावैरिव स्थिताम् ॥६
सती सतीति सततं नाम व्याहृत्य शंकरः ।
मानं त्यज वृथेत्येवमुक्त्वा स्पृशति पाणिना ॥७
पाणिनापरिमार्ज्यैनामलङ्कारान् यथास्थितान् ।
तस्या विश्लिष्य च पुनस्तत्रैवानुयुयोज च ॥८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस अवसर पर भगवान् शिव दाक्षायणी के गुणगणों का परिगणन करते हुए अत्यधिक दुःख से प्रपीड़ित होकर प्राकृत मनुष्य की ही भाँति शोकाकुल होगये थे ॥१॥ उस समय में विलाप करते हुए शिव को जानकर अर्थात् सती के वियोग में शम्भु को रुदन करते हुए देखकर कामदेव रति और वसन्त के सहित महेश्वर प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था ॥ २ ॥ उस रति के पति कामदेव ने शोक से अत्यन्त परिभ्रष्ट उन शम्भु को जो भ्रष्ट चेतना वाले और रुदन करने वाले थे एक ही साथ अपने पाँचों बाणों से प्रहार किया था ॥३॥ शोक के कारण अभिहत चित्त वाले भी शम्भु कामदेव के

बाणों के प्रहार से समाकुल होकर अत्यन्त ही सकीर्ण भाव का प्राप्त हो गये थे और उन्होंने बहुत शोक किया था और वे मोह को भी प्राप्त हो गये थे। अर्थात् शोक के वेग से वे मूर्च्छित होगये थे।४। वे एक क्षण में तो शोकाकुल होकर भूमि पर गिर जाया करते थे और एक क्षण ही में उठ कर दौड़ लगाते थे। एक ही क्षण में वे भ्रमण करने लगते थे अथवा चक्कर काटा करते थे। और फिर वे बिम वहीं पर अपने नेत्रों को निमीलित कर लिया करते थे ॥५॥ किसी समय में देवी दक्षायणी का ध्यान करते हुए हास करने वाले हो जाते थे अर्थात् खूब अधिक हँसते रहा करते थे। किसी समय में भूमि में लेटी हुई उस सती का आलिङ्गन किया करते थे मानो वह रस के भावों से युक्त ही स्थित होवे ॥६॥ भगवान् शङ्कर हे सती—हे सती !—इस प्रकार से निरन्तर सती के नाम का कथन करके ऐसा कहा करते थे—अब इस व्यर्थ में किये हुए मान का परित्याग कर दो—ऐसा कहकर अपने हाथ से उस सती के शव का स्पर्श किया करते थे ॥७॥ शम्भु भगवान् अपने हाथ से इस सती का परिमार्जन करके उसके यथा स्थित अलङ्कारों को विश्लेषित करते अर्थात् शरीर से दूर करके फिर उन अलङ्कारों को वहीं पर ही अर्थात् उस सती के मृत शरीर पर अनुयोजित किया करते थे। तात्पर्य यह है कि कभी तो आभूषणों को सती के मृत शव से दूर हटा लेते थे और उस सती को सजीव समझ कर आभूषणों को उसके अङ्गों में धारण कराया करते थे ॥८॥

एव कुर्वति भूतेशे मृता नोवाच किञ्चन ।
यदा सती तदा भर्गः शोकाद्गाढ रुरोद ह ॥९
रुदतस्तस्य पततो वाष्पान् वीक्ष्य तदा सुराः ।
ब्रह्मादयः परां चिन्ता जग्मुश्चिन्तापरायणाः ॥१०
वाष्पा पतन्तो भूमौ चेद्दहेयु पृथिवीमिमाम् ।
उपायस्तत्र कः कार्य इति ह्येति मुमुहुः ॥११

ततो विमृष्यते देवा ब्रह्माद्यास्तु शनैश्चरम् ।
तुष्टुवुर्मूढभर्गस्य वाष्पधारणकारणात् ॥१२
शनैश्चर महाभाग लोकानुग्रहकारक ।
मूलशक्तिसमुद्भूत नमस्ते सूर्यसम्भव ॥१३
नमस्ते शूलहस्ताय पाशहस्ताय धन्विने ।
तथा वरदहस्ताय तमश्छायात्मजाय ते ॥१४

भूतेश्वर भगवान् शम्भु के इस प्रकार से विलाप कलाप करने पर भी जिस समय मे वह मृत हुई सती ने कुछ भी नहीं उत्तर दिया था तो उस समय म भगवान् शिव मोन की उद्गाढता पूर्वक अत्यधिक रुदन करने लगे थे ।६। जब वे रुदन कर रहे थे तो उनके आसूं नीच गिर रहे थे । उस समय म देवगण ने उनको देखा था और वे ब्रह्मादिक देव खिन्ना मे परायण होते हुए अत्यधिक चिन्तातुर हो गये थे । ॥१०॥ भूमि पर गिरे हुए ये वाष्प अर्थात् आसू यदि इस पृथिवी का दाह कर देंगे तो वहा पर क्या उपाय करना करना चाहिए अर्थात् इन आसुओ के द्वारा पृथ्वी के दाह का क्या प्रतीकार होगा—इससे वे सभी हा हा कार करने लग गये थे ॥११॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवो ने शनैश्चर के साथ विचार किया था और उन्होने भगवान् शम्भु के जो मोह के वशीभूत हो गए थे वाष्पो को धारण करने के हेतु शनैश्चर का स्तवन किया था ॥१२॥ देवगण ने कहा—हे महान् भाग्य वाले ! हे शनैश्चर देव ! आपतो लोगो पर अनुग्रह करने वाले हैं । हे मूल शक्ति से समुत्पन्न होने वाले ! आपका जन्म तो सूर्यदेव मे ही हुआ है । आपके लिए हमारा नमस्कार समर्पित है।१३। हाथ मे शूल धारण करने वाले पाश को धारण करने वाले और धनुर्धारी आपका नमस्कार है आपका हस्त वरदान देने वाला और आप तम की छाया के आत्मज हैं—ऐसे आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥

नीलमेघ-प्रतीकाश भिन्नाञ्जनचयोपम ।

नमस्ते सर्व लोकाना प्राणधारणहेतवे ॥१५
गृध्रध्वज नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन् दृढम् ।
वाष्पेभ्य. शोकजेभ्यश्च पाहि भर्गस्य नः क्षितिम् ॥१६
यथा पुरा शत वर्षानवजग्राह वर्षणम् ।
भवानेव तु मेघेभ्यस्तया कुरु हराम्बुनि ॥१७
तव चापा ग्रह दृष्ट्वा मेघास्ते पुष्करादय ।
मुमुचु सतत वर्ष महेन्द्रस्य किलाज्ञया ॥१८
आकाश एव वर्षाम्भस्तत्सर्वं भवता पुरा ।
विनाशित यथा वाष्प तथा नाशय शूलिनः ॥१९
न त्वामृतेऽन्य शक्तोऽस्ति हरवाष्पनिवारणे ।
दहेत् सदेवगन्धर्वब्रह्मलोकान् सपर्वतान् ।
पृथिवी पतितो वाष्पस्तस्माद्धारय मायया ॥२०

हे नीले मेघ के सदृश ! आप पिसे हुए अन्जन के तुल्य हैं । समस्त लोकों के प्राणों के धारण करने म कारण स्वरूप आपके लिये प्रणाम है ॥१५॥ हे गृध्र राज ! आपको नमस्कार होवे । हे भगवन् ! आप दृढता पूर्वक प्रसन्न हो जाइये । भगवान् शम्भु के शोक से समुत्पन्न हुये वाष्पों (आँसुओं) से हमारी इस पृथ्वी की रक्षा करो ॥१६॥ जिस प्रकार से पुरातन समय मे वर्षों तक वृष्टि का अवरोध किया था और आप ही ने मेघो मे होने वाली वृष्टि को रोक दिया था अब उसी भाँति भगवान् हर के शोक से गिरे हुये वाष्पा के जल म भी कीजिये । अर्थात् इन आसुओं के जल को भी रोक दीजिये ॥१७॥ आपके द्वारा जलो का ग्रहण करना देखकर पुष्कर आदिक उन मेघो ने महेन्द्र की आज्ञा से निरन्तर वर्षा को छोड़ा था अर्थात् सतत वृष्टि करते रहे थे ॥१८॥ आपने पहिले पूर्व समय म उस सम्पूर्ण वर्षा के जल को आकाश ही मे विनष्ट कर दिया था अब उसी भाँति भगवान् शूली के आँसुओ के जल को भी नष्ट करने के लिये प्रयत्न अवश्य कीजिए ॥ १९ ॥ भगवान् शिव

के वाष्पों के निवारण करने के कार्य में अन्य कोई भी आपके बिना सामर्थ्य रखने वाला नहीं है। यह शिव के शोक से समुत्पन्न आँसुओं का जल देव गन्धर्वों के सहित तथा पर्वतों के सहित ब्रह्मलोकों का दाह कर देगा। ऐसी ही इन आंसुओं के जल में दाहक शक्ति विद्यमान है। यह वाष्पों का जल इस भू मण्डल में गिरा है इसलिये आप अपनी माया में इसको धारण करो ॥२०॥

इत्येवम्भाषणमाणेषु देवेषु मिहिरात्मज ।
प्रत्युवाच स तान् देवान्नातिहृष्टमना इव ॥२१
करिष्ये भवता कर्म यथाशक्ति सुरोत्तमा ।
तथा किन्नु विदध्व हि न मा वेत्ति यथा हर ॥२२
दुःखशोकाकुलस्यास्य समीपे वाष्पधारिण ।
कोपान्नश्येच्छरीरं मे नियतं नात्र संशय ॥२३
तस्माद् यथा मा भूतेशो न जानाति सतीपति ।
तथा कुरुध्व नेत्रेभ्यो हरलोतकधारिणम् ॥२४
ततो ब्रह्मादयो देवास्ते सर्वे शंकरान्तिकम् ।
गत्वा हर सन्मुमुहु सांसार्या योगमायया ॥२५
शनैश्चरोऽपि भूतेशमासाद्यान्तर्हितस्तदा ।
वाष्पवृष्टिं दुराधर्षामवजग्राह मायया ॥२६
यदा स नाशकद्वाष्पान् सन्धारयितुमर्कज ।
तदा महागिरौ क्षिप्ता वाष्पास्ते जलधारके ॥२७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—समस्त देवों द्वारा इस प्रकार से भाषण किये जाने पर सूर्य पुत्र शनैश्चर ने अत्यन्त प्रसन्न मन वाला होकर उन देवों को प्रत्युत्तर दिया था ॥२१॥ शनैश्चर ने कहा—हे सुरश्रेष्ठो ! अपनी शक्ति के अनुसार ही मैं आपका कार्य करूँगा किन्तु ऐसा ही होना चाहिए कि दाह करने वाले मुझको भगवान् शम्भु न जान सकें ॥२२॥ महान् दुःख और शोक से अतीव व्याकुल वाष्प-

लोकालोक पर्वत के समीप म जलधारा वाष्प वाल गिरि है जो पुष्कर द्वीप के पृष्ठ मे स्थित है। वह तोय सागर के पश्चिम में हैं ।२८। वह सब प्रमाण से मेरु पर्वत के सदृश है। उस समय मे असमर्थ शनैश्चर ने उस पर ही वाष्पो को विन्यस्त कर दिया था ॥ २६ ॥ वह पर्वत भी शम्भु के उन वाष्पो को धारण करने मे समर्थ नही हुआ था। उन वाष्पो के समुदायो से वह पर्वत विदीर्ण हो गया था और शीघ्र ही मध्य भाग म भग्न हो गया था ॥ ३० ॥ उन वाष्पों ने उस पर्वत का भेदन करके वे फिर तोय सागर मे प्रवेश कर गये थे। वे वाष्प अतीव खर थे कि वह सागर भी ग्रहण करने में समर्थ नही हुआ था ॥३१॥ इसके अनन्तर सागर को मध्य मे भेदन करके वे वाष्प सागर की पूर्व मे रहने वाली बेला पर समागत हो गये थे तथा स्पर्श मात्र से उन्होने उस वेला का भेदन कर दिया था ।।३२।। पुष्कर द्वीप के मध्य मे गमन करने वाले ने वाष्प बेला का भेदन करके वैतरणी नदी हो गये थे और पूर्व सागर मे गमन करने वाले हो गये थे ।३३। जलधार के भेद से और सागर के संसर्ग से कुछ सौम्यता को प्राप्त होकर फिर उन्होने पृथ्वी का भेदन नही किया था ।३४।

वैवस्वतपुरद्वारे योऽनद्वयविस्तृता ।
अद्यापि तिष्ठत्यपगा हरलोतकसम्भवा ।।३५
अथ शोकविमूढात्मा विलपन् वृषभध्वज ।
जगाम प्राच्यदेशास्तु स्कन्धे कृत्वा सतीशवम् ।।३६
उन्मत्तवद्गच्छतोऽस्य दृष्ट्वा भाव दिवौकस ।
ब्रह्माद्याश्चिन्तयामासु शवभ्रशनकर्मणि ।।३७
हरग्यात्रस्य सस्पर्शाच्छवो नाय विशीर्णताम् ।
गमिष्यमि मथ तस्मादस्य भ्रशो भविष्यति ।।३८
इति सञ्चिन्तयन्तते ब्रह्माविष्णुशनैश्चरा ।
सतीशवान्तर्विविशुरदृश्य। योगमायया ।।३६

प्रविश्याथ शव देवा खण्डशस्ते सतीशवम् ।
भूतले पातयामासु स्थाने स्थाने विशेषत ॥४०
देवीकूटे पादयुग्म प्रथम न्यपतत् क्षितौ ।
उड्डीयाने चोरुयुग्म हिताय जगता तत ॥४१

वैजयन्तपुर के द्वार म दो योजन पर्यन्त विस्तार वाली हरलो तक म सम्पूर्ण नहीं बाद भी स्थित हैं ॥ ३५॥ इसके अनन्तर शोक में विमूढ आत्मा वाले शम्भु विलाप करते हुए उन मृत सती के शव (मृत देह) को अपने कन्धे पर रखकर प्राच्य दिशा को चले गये थे ।३६। एक उन्मत्त की भाँति गमन करने वाले इन शङ्कर के शोक को देवगणों ने देखकर ब्रह्मा आदि देवगण शव के खण्डित होने के कर्म के विषय में चिन्ता करने लगे थे॥३७॥ भगवान शङ्कर के शरीर के स्पर्श म यह शव विशीर्णता को प्राप्त नहीं होगा फिर किस रीति म इन वृषभध्वज के कन्धे से इस शव का भ्रंश होगा ॥३८॥ यही चिन्तन करते हुए वे ब्रह्मा विष्णु और शनीश्वर योगमाया से अदृश्य होते हुए सती के शव के अन्दर प्रवेश कर गये थे ॥३९॥ देवों ने इसके उपरान्त सती के शव में अन्दर प्रवेश करके उन्होंने उस सती के शव के खण्ड-खण्ड कर दिये थे और विशेष रूप से स्थान-स्थान में उन खण्डों को भूतल में गिरा दिया था ॥४०॥ देवीकूट में दोनों चरणों को सबसे प्रथम भूमि में निपतित किया था । उड्डीयान में दोनों ऊरुओं के युगल को जगतों के हित के लिए भूमिपर उसने डाला था ।४१।

कामरूपे कामगिरौ न्यपतद्योनिमण्डलम् ।
तत्रैव न्यपतद्भूमौ पर्वते नाभिमण्डलम् ॥४२
जालन्धरे स्तनयुग स्वर्णहारविभूषितम् ।
अ शस्कन्धौ पूर्णगिरौ कामरूपा तत शिर ॥४३
यावद्भुव गतो भर्ग समादाय सतीशवम् ।
प्रान्तेषु याज्ञिको देशस्तावदेव प्रकीर्तित ॥४४

अन्ये शरीरावयवा लवश खण्डिता- सुरैः ।
आकाशगगामगमन् पवनेन समीरिताः ॥४५
यत्र यत्रापतन् सत्यास्तदापादादयो द्विजाः ।
तत्र तत्र महादेव- स्वय लिगस्वरूपधृक् ।
तस्थौ मोहसमायुक्तः सतीस्नेहवशानुगः ॥४६
ब्रह्मविष्णुशनिश्चापि सर्वे देवगणास्तथा ।
पूजयाञ्चक्रुरीशस्य प्रीत्या सत्या· पदादिकम् ॥४७

काम गिरि कामरूप मे योनि मण्डल गिरा था। और वहाँ पर ही पर्वत की भूमि मे सती के शव का नाभि मण्डल गिरा था ॥ ४२ ॥ जालन्धर मे सुवर्ण के हार से विभूषित स्तनो का जोडा गिरा था—पूर्ण गिरि मे अस और ग्रीवा पतित हुए और फिर काम रूप से शिर पतित हुआ था ॥४३॥ भगवान् शङ्कर जितने भूमि के भाग मे सती के शव को लेकर गये थे उतना ही प्राच्यो मे याज्ञिक देश कीर्त्तित हुआ था ॥४४॥ अन्य जो सती के शव के अवयव थे वे छोटे-छोटे टुकडो मे देवो के द्वारा खण्डित कर दिये गये थे। फिर वे सब वायु के द्वारा समीरित होते हुए आकाश गङ्गा मे चले गये थे ॥४५॥ हे द्विजो! जहाँ-जहाँ पर भी सती के पाद आदि पर्यन्त शरीर के अवयव गिरे थे वहाँ-वहाँ पर ही महादेव स्वय लिङ्ग के स्वरूप धारण करने वाले होगये थे। और वे मोह मे समायुक्त होकर सती के प्रति स्नेह के वशीभूत होकर स्थित हो गये थे।४६। ब्रह्मा-विष्णु और शनैश्चर ने भी समस्त देवगणो ने परम प्रीति के साथ सती के पद आदि शरीरावयवो की और ईश की पूजा की थी।४७।

देवीकूटे महादेवी महाभागेति गीयते ।
सतीपादयुगे लीना योगनिद्रा जगत्प्रभु. ॥४८
कात्यायनी घोड्डीयाने कामाख्या कामरूपिणी ।
पूर्णेश्वरी पूर्णगिरौ चण्डी जालन्धरे गिरौ ॥४९

पूर्वान्ते कामरूपस्य देवी दिक्करवासिनी ।
तथा ललितकान्तेति योगनिद्रा प्रगीयते ॥५०
यत्रैव पतितं सत्या शिरस्तत्र वृषध्वजः ।
उपविष्टः शिरो वीक्ष्य श्वसन्शोकपरायणः ॥५१
उपविष्टे हरे तत्र ब्रह्माद्यास्ते दिवौकसः ।
समीपमगमन्तस्य दूरतः सान्त्वयन् हरम् ॥५२
देवानागच्छतो दृष्ट्वा शोक-लज्जासमन्वितः ।
गत्वा शिलात्वं तत्रैव लिंगत्वं गतवान् हरः ॥५३
हरे लिंगत्वमापन्ने ब्रह्माद्यास्तु दिवौकसः ।
तुष्टुवुस्त्र्यम्बकं तत्र लिंगरूपं जगद्गुरुम् ॥५४

देवीकूट में महादेवी महाभाग—इस नाम से गान की जाया करती है। जगत् के प्रभु योगनिद्रा सती के दोनों चरणों में लीना है ॥ ४८ ॥ उड्डीयान में कात्यायनी है और कामरूप वासी कामाख्या है। पूर्ण-गिरि में पूर्णेश्वरी है तथा जालन्धर गिरि में चण्डी इस नाम से विख्यात है ॥ ४६ ॥ कामरूप के पूर्वान्त में देवी दिक्कर वासिनी है। तथा ललित कान्ता—इस नाम से योगनिद्रा का गान किया जाता है ॥५०। जहाँ पर ही सती का शिर गिरा था वहाँ पर वृषध्वज उस शिर का अव लोकन करके लम्बा श्वास लेते हुए शोक में परायण होकर उपविष्ट हो गये थे ॥५१॥ भगवान् शङ्कर के उपविष्ट हो जाने पर वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण दूर से ही शिव को सान्त्वना देते हुए उनके समीप में गये थे ॥ ५२ ॥ भगवान् शङ्कर ने आते हुए देवों का अवलोकन करके शोक और लज्जा से समन्वित होते हुए वहीं पर शिलत्व को प्राप्त होकर लिङ्ग के स्वरूप को प्राप्त हो गये थे ॥ ५३ ॥ भगवान् शङ्कर के लिङ्ग का स्वरूप प्राप्त हो जाने पर ब्रह्मा आदि देवगणों ने उन लिङ्ग के स्वरूप वाले जगत् में गुरु त्र्यम्बक भगवान् का वहाँ पर ही स्तवन किया था ॥५४॥

महादेव शिव स्थाणुमुग्र रुद्र वृषध्वजम् ।
श्मशानवासिन भर्ग सर्वान्तिकरण हरम् ॥५५
त्वा नमामो वय भक्त्या शकर नीललोहितम् ।
गिरीश वरद देव भूतभावनमव्ययम् ॥५६
अनादिमध्यससारयोगविद्याय शम्भवे ।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मण लिंगमूर्तये ॥५७
जटिलाय गिरिशाय विद्याशक्तिधराय ते ।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥५८
ज्ञानामृतान्तसम्पूर्णशुद्धदेहान्तराय च ।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥५९
आदिमध्यान्तभूताय स्वभावानलदीप्तये ।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥६०
प्रलयार्णवसस्थाय प्रलयस्थितिहेतवे ।
नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥६१

देवगण ने कहा—महान् देव—शिव—स्थाणु—उग्र—रुद्र—वृषभध्वज—श्मशान म निवास करने वाले—सबका अन्त करण—पर—भर्ग को हम भक्ति भाव से नील लोहित शङ्कर को प्रणाम करते है जो गिरीश—वरदान देने वाले—भूत भावन और अव्यय देव हैं ॥ ५६ ॥ अनादि—मध्य और ससार की योग विद्या वाले शम्भु के लिये नमस्कार है जो परम शिव—शान्त—ब्रह्म और लिङ्ग मूर्ति हैं उनके लिये नमस्कार है ॥ ५७ ॥ जटिल अर्थात् जटाजूट वाले—गिरिश—विद्या की शक्ति के धारण करने वाले—शिव—शान्त—ब्रह्म और लिङ्ग की मूर्त्ति वाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ५८ ॥ ज्ञानरूपी अमृत में अन्त तथा सम्पूर्ण शुद्ध देहान्तर—शिव—शान्त—ब्रह्म और लिङ्ग—मूर्त्ति के लिये नमस्कार है ॥५९॥ आदि और मध्य तथा अन्त स्वरूप—स्वभाव अनल की दीप्ति वाले—शिव—शान्त—ब्रह्म और लिङ्गमूर्ति

यों के लिये नमस्कार है ॥६०॥ प्रलय के अन्त में विराजमान—प्रलय और स्थिति के कारण—शिव—शान्त—ब्रह्म और लिङ्ग मूर्ति के लिये नमस्कार है ॥६१॥

यः परेभ्यः परस्तस्मात् पराय परमात्मने ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६२
ज्वालामालावृताङ्गाय नमस्ते विश्वरूपिणे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६३
ॐ नमः परमार्थाय ज्ञानदीपाय वेधसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६४
नमो दाक्षायणीनाथ मृड शर्व महेश्वर ।
नमस्ते सर्वभूतेश प्रसीद भगवञ्छिव ॥६५
महोर्मे त्वयि लोकेऽस्मिन् वेष्टनानि महेश्वर ।
भूरि समाकुला सर्वे तस्माद् घोर परिप्लव ॥६६
नमो नमस्ते भूतेश सर्वशरण्यशरण्य ।
प्रसीद रक्ष नः सर्वान्नघोर नमोऽस्तु ते ॥६७

के ईश ! आपको नमस्कार है– नमस्कार है । हे सब कारणों के भी कारण ! प्रसन्न होइए । हम सबकी रक्षा करो और शोक का त्याग कर दवें । आपके लिए नमस्कार है ।६७।

इति सस्तूयमानस्तु महादेवो जगत्पति ।
निज रूप समास्थाय प्रादर्भूत शुचाहत ॥६८
त शुचा विह्वल दृष्ट्वा प्रादुर्भूत विचेनसम् ।
शोकापह विधि साम्ना तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥६९
हिरण्यवाहो ब्रह्मा त्व विष्णुस्त्व जगत पति ।
सृष्टिस्थितिविनाशाना हेतुस्त्व केवल हर ॥७०
त्वमष्टमूर्तिभि सर्व जगद्व्याप्य चराचरम् ।
उत्पादक स्थापकश्च नाशकश्चापि विश्वकृत् ॥७१
त्वा माराध्य महादेव मुक्ति याता मुमुक्षव ।
रागद्वेषादिभिस्त्यक्ता ससारविमुखा बुधा ॥७२
विभिन्नवाय्वग्निजलौघवर्जित न दूरसस्थ रविचन्द्रसयुतम् ।
त्रिमाग्रमध्यस्थमनुप्रकाशक तत्त्व पर शुद्धमय महेश्वर ॥७३

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार से भली भाँति स्तवन किए गए जगत् के पति महादेव अपने रूप मे समास्थित होते हुए शोक म आहत प्रादुर्भूत हुए थ ॥६८॥ उनको शोक से विह्वल और विना चैन वाले अर्थात् अन्य मनस्क प्रादुर्भूत हुए देखकर देवों ने शोक के अपहरण करने वाले विधि वृषभध्वज की स्तुति की थी ॥६९॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे हर ! आप ही हिरण्य बाहु ब्रह्मा हैं और आप ही जगत् के पति विष्णु है । इस जगत् की सृष्टि—स्थिति और विनाश के आप ही हेतु होते हैं ॥७०॥ आप अपनी अष्ट मूर्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण चरा-चर जगत् म व्याप्त होकर इसके उत्पादक—स्थापक और नाशक भी हैं विश्वकृत ! आप ही हैं ॥७१॥ हे महादेव ! आपकी आराधना करके मिथ्या ज्ञान की इच्छा वाले पुरुष मुक्ति को प्राप्त हो गये हैं । वे राग—

द्वेष आदि बन्धन के कारणों से छूटे हुऐ है और बुद्ध पुरुष संसार से विमुख होते हैं ॥७२॥ हे महेश्वर ! विभिन्न वायु—अग्नि और जल के ओघ से रहित—सूर्य और चन्द्रमा से युक्त—इस रीति से दूर से भी स्थित नहीं है अर्थात् सन्निकट में ही वर्तमान है—तीन मार्गों के मध्य में संस्थित है और अनु प्रकाशक है—परम शुद्ध सत्व तत्त्व है ॥७३॥

यदष्ट शाखस्य तरो प्रसून
चिदम्बुवृद्धस्य समीपजस्य ।
तपश्छद मस्त्वगितस्य पीन
सूक्ष्मोपग ते वशग सदैव ॥७४
अध समाधाय समीरण स्वन
निरुद्ध्य चोर्द्ध्वं निशि हृन्मध्यत ।
हृत्पद्ममध्ये सुमुखीकृत रज
परन्तु तेजस्तव सर्वदेदयताम् ॥७५
प्राणायामे पूरके स्तम्भके वा
रिक्ते क्षिप्रं क्षोदन यत्पराख्यम् ।
दृश्याहृश्य योगिभिस्ते प्रपञ्चा
शुद्ध पूत तत्त्वतस्तेऽस्ति लब्धम् ॥७६
सूक्ष्म जगद्व्यापि गुणौघपीन
मुग्ध्यम्बुधे साधनसाध्यरूपम् ।
घोरैरक्षैनोज्झित नैव नीत
वित्त तवास्त्यर्थहीन महेश ॥७७
न कोपेन न शोकेन न मानेन न दम्भत ।
उपयोज्य नु तद्वित्तमन्वयेव विवर्धते ॥७८
मायया मोहित शम्भो विस्मृत ते हृदि स्थितम् ।
माया भिन्न परिज्ञाय धारयात्मानमात्मना ॥७९

जो ज्ञान रूपी जल के द्वारा वर्धित—समीप मे ही समुत्पन्न—तप रूपी पत्तों मे सम्पर्पित—आठ शास्त्र रूपी तरु का पुष्प है उसका सूक्ष्म उपगम करने वाला—पीत पराग सदा ही आपके वश मे गमन करने वाला है ॥७४॥ समीरण (वायु) की ध्वनि को नीचे की ओर समाधान करके और रात्रि मे ऊपर की ओर निरुद्ध करके हृस के मध्य से हृदय के पद्म के मध्य मे रज सुमुखी कृत है परन्तु आपका तेज सर्वदा देखिये ॥७५॥ पूरक अथवा स्तम्भक प्राणायामो मे रिक्त चित्रो मे जो पर नामक प्रेरण हैं— वे प्रपञ्च योगियो के द्वारा दृश्य और अदृश्य हैं—तात्त्विक रूप से शुद्ध और वृद्ध आपके द्वारा लब्ध हैं ॥७६॥ सूक्ष्म जगत् मे व्याप्त और गुणो के समूह से पीन मृण्मयबुधि के साधन—साध्य रूप वाला हे महेश। चोर और रक्षको के द्वारा न तो उज्झित है और न नीत ही है अर्थात् लिया हुआ है ऐसा ही आपका अथ से हीन वित्त है ॥७७॥ वह वित्त कोप से—शोक से—मान से और दम्भ से भी व्यय नहीं होता है। वह वित्त तो उपयोग करके अन्य प्रकार से ही बढ़ता रहा करता है ॥७८॥ हे शम्भो ! आप माया से मोहित हैं इसीलिए आप हृदय मे स्थित को ही आपने विस्मृत कर दिया है। माया को भिन्न समझ कर अपनी आत्मा के द्वारा ही आत्मा को धारण करो ॥७९॥

मायात्माभि स्तुता पूर्वं जगदर्थे महेश्वर।
तया ध्यानगत चित्त बहुयत्नं प्रसाधितम् ॥८०
शोक क्रोधश्च लोभश्च कामो मोह परात्मता।
ईर्ष्यामानो विचिकित्सा कृपासूया जुगुप्सता ॥८१
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मनसो मला ।
न त्वाहर्शेनियेव्यन्ते शोक त्यज ततो हर ॥८२
इति शाम्ना स्तुत शम्भु सस्मृत्यापि स्वकाञ्छितिम्।
नावदध्ये तदात्मान शोकात् सत्या विनाहृत ॥८३

अधोमुख स्थित वीक्ष्य ब्रह्माण स शनैरिदम् ।
प्राह ब्रह्मन्नतिगं वद किं करवाण्यहम् ॥८४

हे महेश्वर ! जगत् के हित के सम्पादन करने के लिये हमने पूर्व मे ही माया का स्तवन किया था उसके द्वारा ध्यान म मलग्न चित्त बहुत से प्रयत्नों के द्वारा प्रसाधित है ॥८०॥ शोक—क्रोध—लोभ—काम—मोह—पराधीनता—ईर्ष्या—मान—मशय—कृपा—असूया—जुगुप्सता—ये बारह मन के मल होते हैं जो बुद्धि के नाश करने के हेतु हैं। आप जैसे महा पुरुषों के द्वारा इन बारह मानस मलो का सेवन नही किया जाया करता है। हे हर! आप शोक का परित्याग कर दीजिए।८१। ॥८२॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस रीति से माया के द्वारा स्तुति के द्वार स्तुति किए गए शम्भु ने अपने वांछित का ससमरण करके भी सती के शोक से विनाकृत हुए शिव न उस समय म आत्मा का अव धारण नही किया था ॥८३॥ नीचे की ओर मुख को किए हुए समवस्थित ब्रह्माजी को देखकर उनने धीरे से यह कहा था—हे ब्रह्माजी! कुछ अतिक्रमण करने वाली बात कहो—बतलाओ अब मैं क्या करू ॥८४॥

इत्युक्तो वामदेवेन विधाता मर्वदैवतं ।
इदमाह तदेशस्य शोकविध्वंसकं वच ॥८५
त्यज शोकं महादेव सस्मृत्यात्मानमात्मना ।
न त्व शोकस्य सदन परं शोकान्तवान्तरम् ॥८६
सशोके त्वयि भूतेश देवा भूता समाध्वसा ।
प्रशयेज्जगती कोप शोक सर्वांश्च शोषयेत् ॥८७
त्वद्बाष्पव्याकुला पृथ्वी विदीर्णा स्यान्नचेच्छनि ।
अवजग्राह तं वाष्प सोऽपि कृष्णोऽभवद् हठात् ॥८८
यत्र देवा सगन्धर्वा सदा क्रीडन्ति सोत्सुका ।
सुमेरुसदृशो योऽसौ मानत सर्वतोत्तम ॥८९

यस्मिन प्रविश्य शिशिरे पद्मनालनिभे घना ।
उत्पिबन्ति स्म तोयानि पुष्करावर्तकादय ॥९०
मन्दरात् सततं यत्र कुम्भयोनिमहामुनि ।
गत्वा गत्वा तपस्तेपे हिताय जगतो हर ॥९१

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार से वामदेव और समस्त देवों के द्वारा कहे हुए विधाता (ब्रह्मा) उस समय म महेश्वर के शोक का विनाश करने वाला यह वचन कहा था ॥८५॥ ब्रह्माजी ने कहा हे महादेव ! अपनी आत्मा के द्वारा ही अर्थात् अपने आप ही अपनी आत्मा अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का सस्मरण करके शोक का परित्याग करदो। आप शोक करने के स्थान नही है। शोक से आपका परम अन्तर होगया है ॥८६॥ हे भूतेश्वर ! आपके शोक स युक्त हो जाने पर सभी देवगण अत्यन्त भयभीत हो गए है। आपका क्रोध और शोक जगतीतल को भ्रश कर देगा और आपका शोक सबका शोषण कर देगा ॥ ८७ । आप के बाष्पो अर्थात् अश्रुपात से यह सम्पूर्ण पृथ्वी व्याकुल होकर विदीर्ण हो जाती यदि शनि आपके बाष्पो को अवग्रहण नही करता। वह शनि भी हठ से कृष्ण हो गया है ॥८८॥ जहाँ पर गन्धर्वो के सहित सब देवगण सदा उत्सुकता मे युक्त होकर क्रीडा किया करते है। जो यह सुमेरु पवत के सदृश मान से उत्तम पवत है—जिसम पद्मनाल के तुल्य म शिशिर ऋतु मे मेघ प्रवेश करके जो कि पुष्कर—आवर्त्त क आदि हैं जलो का पान किया करते थ—जहाँ पर जा जा करके महामुनि कुम्भ योनि मन्दर पवत से निरन्तर जगत् के हित तपस्या का तपन किया करते थ। ॥८६-९१॥

यस्मिन् स्थित्वा गिरौ पूर्वमगस्त्यस्तोयसागरम् ।
पपौ तपोवलात् कृत्वा करमध्यगत किल ॥९२
शनैश्चरेण ते वोढुमसमर्थेन लोतक ।
क्षिप्तार्विदारितस्तेऽसौ जलधाराह्वयो गिरि ॥९३

विभिद्य पर्वतं शम्भो वाष्पास्ते सागरं ययुः ।
भित्त्वा तु सागरं शीघ्रं प्रभीताण्डजसंकुलम् ॥६४
जग्मुस्ते पूर्वपुलिनं तस्य तद्विभिदुश्च ते ।
भित्त्वा वेलां ततः पृथ्वी चिभिदुराशु तरंगिणीम् ॥६५
चक्रुर्वैतरणी नाम्ना पूर्वसागरगामिनीम् ।
न नावा न विमानेन द्रोण्या स्यन्दनेन च ॥६६
तर्तुं शक्या सा तु नदी तप्ततोयातिभीषणा ।
दुःखेन तान्तु पृथिवी बिभर्ति महताधुना ॥६७
सदा चोर्द्ध्वगतैर्वाष्पैर्विक्षिपन्ती नभश्चरान् ।
तस्यास्तूपरि नो यान्ति देवा अपि भयातुराः ॥६८

जिस पर्वत में भगवान् शम्भु स्थित होकर पूर्व में जल के सागर के हाथ के मध्य में रखकर तप के बल में पी गए थे ॥६२॥ शनैश्चर के द्वारा आप के वाष्पों को सहन करने में असमर्थ होते हुए क्षिप्त मौनवों से यह जल धारा नामक गिरि विदारित हो गया था ॥६३॥ हे शम्भो ! आपके वाष्प पर्वत का विशेष रूप से भेदन करके सागर में चले गए थे । वे प्रभीत अण्डजों से संकुल सागर का शीघ्र ही भेदन करके वे वाष्प उसके पूर्व पुलिन पर चले गए थे और उन्होंने उस पुलिन का भी भेदन कर दिया था । वेला का भेदन करके फिर पृथ्वी का भेदन किया था और उन्होंने एक नदी को बना दिया था ॥६४॥६५॥ उन्होंने उस वैतरणी नाम वाली नदी को बना दिया था जो पूर्व सागर की ओर गमन करने वाली थी । वह नदी गर्म जल से होने के कारण से अत्यन्त भीषण थी जो किसी भी नौका—विमान—द्रोणी और रथ के द्वारा भी तरण करने के योग्य नहीं हो सकी थी । पृथिवी अत्यन्त दुःख के साथ अब उसको धारण किए हुए थी ॥६६॥६७॥ वह सदा ही ऊर्ध्वगत अर्थात् ऊपर की ओर जाते हुए वाष्पों से नभश्चरों का विक्षेपण करती हुई थी और उसके ऊपर से देवगण भी भय से आतुर होकर गमन करते हैं ॥६८॥

यमद्वार परावृत्य योजनद्वयविस्तृता ।
निम्ना वहति सम्पूर्ण भीषयन्ती जगन्त्रयम् ॥६६
त्वन्नि श्वासमरुज्जातैर्व्यस्ता पर्वतकानना ।
समाकुलद्वीपिनागा नाद्यापि प्रतिशेरते ॥१००
तव नि श्वासजो वायु पीडयन् जगतः सुखम् ।
नाद्यापि प्रशम याति वाधाहीन सनातन ॥१०१
सतीशव ते वहत शीर्यमाणा पदे पदे ।
नाद्यापि व्याकुला पृथ्वी व्याकुलत्व विमुञ्चति ॥१०२
न स्वर्गे न च पाताले तत्सत्त्व विद्यतेऽधुना ।
यत्ते क्रोधेन शोकेन नाकुल वृषभध्वज ॥१०३
तस्माच्छोकममर्षचत्यक्त्वा शान्ति प्रयच्छ न ।
आत्मानञ्चात्मना वेत्थ धारयात्मानमात्मना ॥१०४
सती च दिव्यमानेन व्यतीते शरदा शते ।
सा च त्रेतायुगस्यादौ भार्या तव भविष्यति ॥१०५

यमराज के द्वार से परावर्त्तित होकर दोनो जन के विस्तार वाली निम्न होती हुई वह सम्पूर्ण तीनो भुवनो को भय उत्पन्न करती हुई वहन किया करती है ॥६६॥ आपके शोक सतप्त निश्वासो की वायुओ से समस्त पर्वत और कानन व्यस्त हैं और समाकुल द्वीपी नाग आज तक भी प्रतिशयन नही किया करते है ॥१००॥ आपके सतप्त नि श्वासो से समुत्पन्न वायु सम्पूर्ण जगत् के सुख को पीडित करता हुआ वह वाधाहीन और सनातन आज तक भी शमन को प्राप्त नही होता है ॥१०१॥ सती के शव अर्थात् मृत शरीर को वहन करने वाले आपके पद पद मे यह पृथ्वी शीर्यमाण हो रही है और वह परम व्याकुल पृथ्वी अपनी व्याकुलता का मोचन नही कर रही है ॥१०२॥ इस समय न तो पाताल मे और न स्वर्ग मे वह सत्त्व विद्यमान है जो आपके क्रोध से और शोक से हे वृषध्वज ! व्याकुल न होवे ॥१०३॥

इसी कारण से आप शोक और अमर्ष को परित्याग करके तुम सब को शान्ति का प्रदान करो। अपनी आत्मा के द्वारा ही अपनी आत्मा को जानिए। अर्थात् स्वयं ही अपने आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कीजिये। और आत्मा से ही आत्मा को धारण करिए ॥१०४॥ और वह सती विद्यमान से यौ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर त्रेता युग के आदि में वही सती आपकी भार्या होगी ॥१०५॥

इत्युक्तो वेधसा शम्भुस्तूष्णीं ध्यानपरायण ।
अधोमुखस्तदा प्राह ब्रह्माणममितोजसम् ॥१०६
यावद ब्रह्मन्नहं शोकादुत्तरामि सतीकृतात् ।
तावन्मम सखा भूत्वा कुरु शोकापनोदनम् ॥१०७
तस्मिन्नवसरे यत्र यत्र गच्छाम्यहं विधे ।
तत्र तत्र भवान् गत्वा शोकहानिं करोतु मे ॥१०८
एवमस्त्विति लोकेश प्रोक्त्वा वृषभवाहनम् ।
हरेण सार्धं कैलासं गन्तुं चक्रे मनस्तत ॥१०९
ब्रह्मणा सहितं शम्भुं कैलाशगमनोत्सुकम् ।
समासेदुर्गणा दृष्ट्वा नन्दिभृङ्गिमुखाश्च ये ॥११०
तत पर्वतसङ्काशो वृषभ पुरतो विधे ।
उपतस्थे सिताभ्रस्य सदृको गैरिको यथा ॥१११
वासुकप्रमुखाश्च ये सर्पा यथास्थानञ्च ते हरम् ।
भूपयाञ्चक्रुरुद्गम्य शिरोवाह्वादिषु द्रुतम् ॥११२

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ब्रह्माजी के द्वारा इस रीति से कहे हुए शम्भु नीचे की ओर मुख वाले—ध्यान में परायण होकर अमित ओज वाले ब्रह्माजी से बोले—ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मन्! जब तक मैं सती के द्वारा किए हुए शोक से उत्तीर्ण होऊँ तब तक आप मेरे सखा हो व शोक का अपनोदन करिए। हे ब्रह्माजी! उस अवसर में मैं जहाँ जहाँ पर भी गमन करूँ वहाँ-वहाँ पर ही आप भी गमन करके मेरे इस

दुस्सह शोक को हानि करिए। तात्पर्य यही है कि मेरे साथ ही सवदा आप रहकर जहाँ पर भी मैं जाऊँ वहीं पर मर शोक का विनाश करने की कृपा करे ॥१०६—१०८॥ लोकेश ब्रह्माजी ने 'ऐसा ही होवे' यह वृषभ वादन स कहकर अर्थात् मैं आपके साथ म सर्वत्र रहकर आप के शोक का विनाश करूँगा फिर ब्रह्माजी ने भगवान् शम्भु के ही साथ मे कैलास गिर पर जाने का मन किया था ॥१०६॥ ब्रह्माजी के साथ भगवान् शम्भु को कैलास पर्वत की ओर गमन करने के लिए उत्सुक देखकर जो नन्दि और भृङ्गि आदिगण थे व भी यह देखकर वहाँ प्राप्त होगये थे ॥११०॥ फिर एक विशाल पर्वत के ही समान वृषभ विधाता के सामने उपस्थित हो गया था जिस तरह से सिताभ्र के सदृश गैरिक होवे ॥१११॥ वासुकि आदि जो सर्प थे उन सबने यथा स्थान पर भगवान् शम्भु को बहुत शीघ्र वहाँ आकर शिव के शिर और बाहु आदि मे उनको विभूषित कर दिया था। कथन का अभिप्राय यही है कि वासुकि प्रभृति सब सर्प वहाँ आकर शिव के करादि अङ्गो के आभूषण बन गये थे ॥११२॥

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च महादेव सतीपति ।
सर्वे सुरगणै सार्धं जग्मु प्रालेयपर्वतम् ॥११३
ततस्तानोषधिप्रस्थान् नि सृत्य नगराद्गिरि ।
सर्वैरमात्य सहित उपतस्थे सुरोत्तमान् ॥११४
तत सम्पूजितास्तेन सुरौघा गिरिणा सह ।
सचिवै पौरवर्गैश्च मुमुदुस्ते सुरर्षभा ॥११५
ततो ददर्श तत्रैव गिरीन्द्रस्य पुरे हर ।
विजयामोषधिप्रस्थे सखीभिर्गतमात्मजाम् ॥११६
सापि सर्वान् सुरवरान् प्रणम्य हरमुक्तवान् ।
चुक्रोश मातृभगिनी पृच्छन्ती गिरिश सतीम् ॥११७
क्व सती ते महादेव शोभसे न तया विना ।
विस्मृतापि त्वया तात मद्धृदो नापसर्पति ॥११८

ममाग्रे सा पुरा प्राणान् यदा त्यजति कोपतः ।
तदद्य हृ शोकशल्यविद्धा नाप्नोमि वै सुखम् ॥११६
इत्युक्त्वा वदनं वस्त्रप्रान्तेनाच्छाद्य सा भृशम् ।
रुदन्ती प्रापनद्भूमौ कश्मलञ्चाविशत्तदा ॥१२०

इसके अनन्तर ब्रह्मा—विष्णु और सती के पति महादेव समस्त देवों के समूह के साथ हिमवान् पर्वत पर चले गये थे ॥११३॥ इसके पश्चात् गिरि अपने नगर से निकलकर उन ओषधियों के प्रस्थों को समस्त अपने अमात्यों के सहित सुरोत्तमों के सामने उपस्थित हुए थे। ॥११४॥ इसके अनन्तर उस गिरिराज के द्वारा वे सभी सुरगण पूजे गये थे और सबका एक ही साथ अभ्यर्चन किया गया था। वहाँ पर उस देवों के यजन करने में सभी सचिव और पुरवासीगण भी सम्मिलित थे। वे सुरगण बहुत ही प्रसन्न हुये थे ॥११५॥ फिर वहीं पर उस गिरीन्द्र के नगर में भगवान् हरने उस ओषधियों के प्रस्थ पर सखियों के साथ शैल की आत्मजा विजया का अवलोकन किया था। ॥११६॥ उसने भी उन समस्त सुखरों को प्रणिपात करके हरसे कहा था। गिरिश से अपनी माता की भगिनी सती के विषय में पूछती हुई ने क्रोध किया था ॥११७॥ हे महादेव ! आपकी वह सती कहाँ पर हैं उनके विनाशमें आप शोभित नहीं हो रहे हैं। हे तात ! आपके द्वारा भी वह विस्मृत हो गई हैं अर्थात् आपने तो उस सती को भुला ही दिया है तथापि मेरा हृदय अपमर्पित नहीं होता है अर्थात् मेरे हृदय से दुःख दूर नहीं हट रहा है ॥११८॥ मेरे ही आगे पहिले समय में उसने जिस समय में कोप में प्राणों को त्यागती है उसी समय में शोक रूपी शल्य से विद्ध होकर सुख को प्राप्त नहीं करती हूँ ॥११६॥ इतना कहकर वस्त्र के छोर से मुख को ढक कर वह बहुत अधिक रुदन करती हुई भूमि पर गिर पड़ी थी और बहुत दुःख को प्राप्त हो गई थी ॥१२०॥



॥ सन्ध्या तपश्चरण वर्णन ॥

ततस्ता पतिता दृष्ट्वा तदा दाक्षायणी स्मरन् ।
न शशाक ह सोढु शोकमुद्वेगसम्भवम् ॥१
भ्रष्टधैर्यस्तत. शम्भुर्बाष्पव्याकुललोचन. ।
पश्यता सर्वदेवाना चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ॥२
अथाश्वास्य तदा धाता विजया शोककर्षिताम् ।
हरमाश्वासयन् सान्त्वपूर्वमेतदुवाच ह ॥३
पुराणयोगिन् भगवन्न शोकस्तव युज्यते ।
परधाम्नि तव ध्यानमासीत् कस्मात् स्त्रियामिह ॥४
प्रभविष्णु. पर. शान्त. सूक्ष्म स्थूलतर. सदा ।
तव स्वभावश्च कथ शोकेन बहुधाकृत ॥५

निरञ्जन ध्यानगम्य यतीना
परात्परं निर्मल सर्वगामि ।
मलैर्हीन रागलोभादिभिर्यत्
तत् ते रूप स्वद्भूत गृहण बुद्ध्या ॥६

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके पश्चात् उस समय मे दाक्षायणी का स्मरण करते हुए उसको भूमि पर गिरी हुई देखकर उस समय मे शोक से समुत्पन्न उद्वेग युक्त रञ्ज को शिव सहन न कर सके थे ॥ १ ॥ जिनका धीरज एकदम ही नष्ट हो गया था ऐसे भगवान् शम्भु बाष्पो से व्याकुल लोचनो वाले हो गये थे अर्थात् उनके नेत्रो से अविरल अश्रु प्रवाह चलने लग गया था । सभी देवो के देखते हुए वे भगवान् शिव चिन्ता के ध्यान मे तत्पर हो गये थे ॥२॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने शोक से कर्षित विजया को ढाढस बँधाकर फिर भगवान् शङ्कर को समाश्वासन देते हुए सान्त्वना के साथ यह वचन कहने लगे थे ॥ ३ ॥

ने कहा—हे भगवन् ! आप पुराने योगी हैं। आपको ऐसा करना युक्त नही प्रतीत होता है । आपका ध्यान था पर धाम मे

ही या फिर यहाँ पर सती में कैसे हो गया है ? ॥ ४ ॥ आप तो प्रभा विष्णु—पर—शान्त—सूक्ष्म तथा सदा ही स्थूलतर और आपका स्वभाव किस तरह से शोक के द्वारा बहुत प्रकार का बन गया है ? ॥५॥ आप तो निरञ्जन हैं और आप बड़े २ यतियों के ध्यान में आनने के योग्य हैं। आप पर से भी पर हैं—आपका स्वरूप निर्मल है तथा आप सर्वत्र गमन के स्वभाव एवं शक्ति से समन्वित हैं। जो राग और लोभ आदि मल हैं उन मलों से आप विहीन रहने वाले हैं। ऐसा ही आपका स्वरूप है उसे ही आप अपनी बुद्धि से ग्रहण कीजिए ॥६॥

शोको लोभः क्रोधमोहौ च हिंसा
मानो दम्भो मदमोहप्रमोदाः ।
ईर्ष्यासूयाक्षान्तिरमत्यता च
चतुर्दश ज्ञाननाशा हि दोषाः ॥७
ध्यानेन त्वा योगिनश्चिन्मयन्ति
त्वं विष्णुरूपी जगतां विधाता ।
या ते महामोहकरी सतीति
सर्वैव सा लोकमोहाय माया ॥८
या सर्वलोकाञ्जननेऽथ गर्भ
विमोहयन्ती पूर्वदेहस्य बुद्धिम् ।
विनाशय बाल्य कुरुते हि जन्तो-
र्विमोहयत्यद्य सा त्व सशोकम् ॥६
सतीसहस्राणि पुरोज्झितानि
त्वया मृतानि प्रतिकल्प मेवम् ।
हिताय लोकस्य चराचरस्य
पुनर्गृहीता च तथा त्वयेयम् ॥१०
भवान्तरे ध्यानयोगेन पश्य
सतीसहस्राणि मृतानि यानि ।
यथा तथा त्व परिवर्जितश्च
यथास्ति सा वा नृपराजकेतौ ॥११

यत समुत्पद्य मुहुर्भवन्त
सा प्राप्स्यतीश त्रिदशैर्दुरापम् ।
पुनश्च जाया यादृशी ते भवित्री
तत्तत् सर्वं ध्यानयोगेन पश्य ॥१२

प्राणी के अन्दर रहने वाले ज्ञान के विनाश करने वाले निम्न दर्शित चौदह दोष हुआ करते हैं। वे ये हैं—मोह—लोभ—क्रोध—मोह—हिंसा—मान—(मैं बहुत ही महान् हू—ऐसा मान मन में रखना) दम्भ अर्थात् पाखण्ड-मद-मोह-प्रमोद-ईर्ष्या-असूया-अशान्ति और असत्यता । ७। आप तो विष्णु के ही स्वरूप वाले जगतो के विधाता हैं अर्थात् जगतों की रचना करने वाले हैं। जो भी आपको महान् मोह कर देने वाली सती है। यह तो आपकी ही लोको के मोह के लिये माया है।८। जो समस्त लोको को जनन मे और गर्भ मे पूर्व देह की बुद्धि को विमोहित करती हुई विनाश करके बाल्य अवस्था मे जन्तु का किया करती है आज वह ही शोक के सहित आपको विमोहित कर रही है।९। प्रत्येक कल्प मे पहिले आपने सहस्रो सतिया का त्याग किया था जो मृत हो गई थी। इस प्रकार से इस चर-अचर लोक के हित के ही सम्पादन करने के लिये उसी भाँति आपके द्वारा यह सती पुन ग्रहण की गयी थी ॥१०॥ हे वृषराज केतो ! आप ध्यान के योग द्वारा देखिये, दूसरे जन्म मे जो सहस्रो सतियाँ मृत हुई हैं आप यथा तथा पारवर्जित हैं अथवा जैसी वह है ॥ ११ ॥ क्योंकि वह पुन समुत्पन्न होकर हे ईश ! वह आपको ही प्राप्त करेगी जो आप देवगणो के द्वारा भी दुष्प्राय होते हैं। और फिर वह जैसी जाया आपकी होने वाली है। यह सभी कुछ आप ध्यान के योग द्वारा दख लीजिए।१२।

एव बहुविध ब्रह्मा व्याहरन् साम शङ्करम् ।
गिरिराजपुराजपुरात्तस्मादगमयामास निर्जनम् ॥१३
ततो हिमवत प्रस्थे प्रतीच्या तत्पुरस्य च ।

शिप्रं नाम सरः पूर्णं ददृशुर्द्रुहिणादयः ॥१४
तद्रहस्यानमासाद्य ब्रह्मशक्रादय सुराः ।
उपविष्टा यथान्यायं पुरस्कृत्य महेश्वरम् ॥१५
तं शिप्रसंज्ञ कासारं मनोज्ञं सर्वदेहिनाम् ।
शीतमलजलं सर्वैर्गुणैर्मानससम्मितम् ॥१६
दृष्ट्वा क्षणं हरस्तस्मिन् सोत्सुकोऽभूदवेक्षणे ।
शिप्रां नाम नदीं तस्मान्नि सृतां दक्षिणोदधिम् ।
गच्छन्तीञ्च ददर्शासो पावयन्ती जगज्जनान् ॥१७
तत्सरः पूर्णमासाद्य चरतः शकुनान् बहून् ।
नानादेशागताञ्छम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे मनोरमान् ॥१८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस रीति से ब्रह्माजी ने बहुत प्रकार के साम को भगवान् शंकर से कहा था। फिर उस गिरिराज के नगर में उनको निर्जन स्थान में गत कर दिया था ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त हिमवान् के प्रस्थ में और उसके नगर के पश्चिम दिशा में द्रुहिण आदि ने शिप्र नाम वाला परिपूर्ण एक सरोवर देखा था ॥१४॥ उस परम एकान्त स्थान की प्राप्ति करके ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवों ने वहाँ पर उपवेशन किया था अर्थात् वहाँ पर बैठ गये थे और जैसा भी न्याय था उसी के अनुसार उन्होंने महेश्वर को अपने आगे बिठा लिया था ॥१५ ॥ वह शिप्र नाम वाला सरोवर बहुत ही सुन्दर था जो सभी देहधारियों के मन को हरण करने वाला था। उसका जल ठण्डा और निर्मल था। वह सरोवर अपने सभी गुणों से मानस सरोवर के ही तुल्य था ॥१६॥ भगवान् शम्भु उस सरोवर को देखकर एक क्षण पर्यन्त उसके देखने में उत्सुकता से सयुन हो गये थे। उसी सरोवर से एक शिप्रा नाम वाली नदी निकली है और वह दक्षिण सागर को जा रही थी—जो जगत के जनों को पावन कर रही थी ऐसा उनने वहाँ पर देखा था ॥ १७ ॥ उस पूर्ण सरोवर के पास प्राप्त होकर अनेक देशों से समागत हुए परमाधिक

सुन्दर चरण करते हुए बहुत से पक्षियों को शम्भु ने अवलोकन किया था ॥१८॥

गम्भीरपवनोदधुतिसम्पन्नेषु विराजित ।
कोकद्वन्द्वास्तरंगेषु ददर्श नृत्यतो यथा ॥१६
मद्गुचञ्चुपू सम्पृक्तास्तरगान् स पृथक् पृथक् ।
वीक्षाञ्चक्रे यथा तोयादुत्पतनपतगान् मुहु ॥२०
कादम्बै सारसैर्हंसै श्रेणीभृतैस्तटेतटे ।
भगीकृतैर्यथा शखं सागरस्तादृश सर ॥२१
महामीनाहतिक्षुब्धस्नोयशब्दोत्थसाध्वसै ।
पक्षिभिर्विहतै शब्दस्तत्र तत्र मनोहरम् ॥२२
प्रफुल्लै पकजैश्चैव क्वचिज्जालैर्मनोहरै ।
सरोरेजे यथा स्वर्गो नक्षत्रैं स्थूलसूक्ष्मकैं ॥२३
महोत्पलाना मध्येषु विरल नीलमुत्पलम् ।
रेजे नक्षत्रमध्येषु नीलनारदखण्डवत् ॥२४

वहाँ पर विराजित होकर उन्होने गम्भीर वायु से उद्धृत एव सम्पन्न तरङ्गो मे चक्रवाक के जोडो को नृत्य करते हुए देखा था ।१६। उन शम्भु भगवान् ने चञ्चुओ मे सम्पृक्त तरङ्गो को पृथक्-पृथक् देखा था जिस तरह से जल से पुन उत्पतन करते हुए पक्षियो को देखा हो ॥ २० ॥ प्रत्येक तट पर श्रेणी मे आबद्ध हुए कादम्ब—सारस और हसो के द्वारा भङ्गीकृत शखो से सागर जैसा हो वैसा ही वह सरोवर था । जिसको शिव ने देखा था ॥ २१ ॥ बडे २ मत्स्यो की आहृति से अर्थात् बडी मछलियो के उछालो से क्षोभ को प्राप्त हुए जल के शब्द से भय उत्पन्न होने वाले पक्षियो के द्वारा विहित शब्द वहाँ पर हो रहा था । वहाँ पर उस मन के हरण करने वाले दृश्य का अवलोकन किया था ॥२२॥ विकास को प्राप्त हुए कमलो से और कहो पर मनोहर जालो से वह सरोवर परम शोभित हो रहा था । जिस तरह से स्थूल

और सूक्ष्म नक्षत्रों से स्वर्ग शोभायमान हुआ करता है ॥२३॥ बड़े बड़े कमलों के मध्य में विरले ही नील कमल उसमें दिखलाई दे रहे थे और वह ऐसे ही शोभा में संयुत थे जैसे नक्षत्रों के मध्य में नीले मेघ का खंड शोभित हुआ करता है ॥२४॥

पद्मसङ्घात-मध्यस्था हंसा कश्चिन्न संस्तुता ।
प्रफुल्लपङ्कजभ्रान्त्या निश्चला स्वर्गगामिभिः ॥२५
द्विधा दृष्ट्वा शोणशुक्ले पद्मे फुल्ले विधिः स्वके ।
कायेऽरुणत्व फुल्लत्व स्वासनाब्ज निनिन्द च ॥२६
फुल्ल महोत्पल वीक्ष्य सरसस्तस्य शकर ।
मौलीन्दुकान्तिमलिन हस्तस्थ नानूपल मने ॥२७
हरेः स्वचक्रसूर्या शुभफुल्ल हस्तगताम्बुजम् ।
सर पद्माञ्च सदृश मेने वीक्ष्य समन्ततः ॥२८
तत्सरो वीक्ष्य सम्पूर्ण नानापक्षिसमाकुलम् ।
पद्मिनीशतसञ्छन्न नीलोत्पलचयैर्वृतम् ॥२६
देवदारुतरूणाञ्च तटस्थाना प्रसूनजैः ।
परागैर्वासित जल हृदयानन्दकारकम् ॥३०
तीरे तीरे महावृक्षैः शाद्वलैः परिवारितम् ।
दृष्ट्वा शम्भुः क्षण तत्र सोतमुक् शोकवर्जित. ॥३१

पद्मों के समूह के मध्य में समस्थित हंस किन्हीं के द्वारा संस्तुत नहीं हो रहे थे क्योंकि उनमें भी विकसित कमलों की भ्रान्ति होती थी अर्थात् उन हंसों का भी जो कमलों के बीच में स्थित थे । खिले हुए कमल ही समझा जा रहा था । वे स्वर्गगामियों के द्वारा निश्चल ही दिखाई दे रहे थे ॥२५॥ दो प्रकार के शोण और शुक्ल विकसित पद्मों को देखकर ब्रह्माजी ने अपने आसन के कमल के काम में उत्फुल्लत्व और अरुणत्व की अर्थात् विकास और लालिमा की निन्दा की थी ।२६। महादेवजी ने उस सरोवर के विकसित महोत्पल का अवलोकन करके उन्होंने हाथ में स्थित कमल को कुछ भी मान नहीं किया था क्योंकि

वह हाथ के कमल की कान्ति मस्तक में स्थित चन्द्रमा की कान्ति में मलिन हो गया था ॥२७॥ भगवान् हरि के अपने सुदर्शन चक्र के सूर्य की किरणों से विकसित हाथ में रहने वाला कमल को और सरोवर के पद्म को सब ओर देखकर सदृश ही माना था ॥ २८ ॥ उस सरोवर को जो नाना भाँति के पक्षियों से समाकुल—सम्पूर्ण—सैकड़ों ही कमलिनिओं से सच्छन्न (ढका हुआ) और नीलोत्पलों के समूहों से युक्त था, देखा था ॥२९॥ वह सरोवर तट पर स्थित देवदारु के वृक्षों के प्रसूनों में रहने वाले परागों से सुगन्धित जल से समन्वित था और देखने वालों के हृदय को महान आनन्द को उत्पन्न करने वाला था। ॥३०॥ उस सरोवर के प्रत्येक तट पर महान् विशाल वृक्ष थे और वह शाद्वलों से भी परिवारित था अर्थात् उसके किनारे शाद्वलों से चारों ओर घिरे हुए थे। ऐसे उस सुन्दर सरोवर की शोभा को देखकर शम्भु क्षण भर के लिये उत्सुकता से युक्त तथा शोक से रहित हो गये थे। तात्पर्य यही है कि उस सरोवर की सुषमा से शम्भु का शोक मिट गया था और एक विशेष उत्सुकता उनके हृदय में उत्पन्न हो गई थी ॥३१॥

शिप्रामालोकयामास निःसृता सरसस्तत ।
ययेन्दुमण्डलाद् गगा मेरोर्जाम्बुनदी यथा ।
तथा दृष्ट्वा महेशेन शिप्रा शिप्राद्विनिःसृता ॥३२
शिप्राह्वय क कासार· कथं शिप्रा तत सृता ।
कीदृशोऽस्य प्रभावश्च तत् समाचक्ष्व विस्तरात् ॥३३
शृण्वन्तु मुनय· सर्वे यथा शिप्रा नदी सृता ।
शिप्रस्य च महाभागा प्रभाव गदतो मम ॥३४
वसिष्ठेन यदा देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
तदा वैवाह्विंस्तोये शिप्रासिन्धुरभूद्‌द्विजा ॥३५
स समागत्य पतिता शिप्रे सरसि शासनात् ।
यथा मन्दाकिनी विष्णुपादादब्धो शिवोदधा ॥३६

ब्रह्मविष्णुमहादेवैस्तोय सिक्तं तयो पुरा ।
विवाहे शान्तिविहितं गायत्रीद्रुपदादिभि ॥३७
एकीभूतन्तु तत्तोय मानसाचलकन्दरात् ।
तत् सर्वं पतितं शिप्रे कामारे सागरोपमे ॥३८

भगवान् महेश्वर ने उस सरोवर से निकली हुई शिप्रा नदी का अवलोकन किया था जिस प्रकार से इन्द्र मण्डल से भागीरथी गङ्गा और मेरु पर्वत से जाम्बु नदी निकलती है। उसी भाँति देखकर भगवान् शम्भु ने शिप्र से शिप्रा को विनिःसृत किया था ॥ ३२ ॥ ऋषियों ने कहा—शिप्र नाम वाला सरोवर कौन सा है और किस प्रकार से उससे शिप्रा नदी सृत हुई थी ? इसका प्रभाव किस प्रकार का है —यह सभी कुछ आप विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ।३३। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे मुनिगणो ! अब आप लोग श्रवण कीजिए कि जिस प्रकार से शिप्रा नदी सृत हुई थी। हे महाभागो ! यह भी सुनिए कि उस शिप्र का क्या प्रभाव है क्योंकि मैं यह सभी आप लोगों को बतला रहा हूँ ।३४। जिस समय में वसिष्ठ जी से देवी अरुन्धती का विवाह किया था। हे द्विजो! उसी समय में वैवाहिक जलों से शिप्रा नदी समुत्पन्न हुई थी।३५। वह समागत होकर शमन से शिप्र सरोवर में गिरी थी जिस प्रकार से भागीरथी गङ्गा भगवान् विष्णु के चरणों से शिव जल वाली सागर में पतित हुई थी ॥ ३६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—इन्होंने पहिले उन दोनों का जल विवाह गायत्री से द्रुपदादि से शान्ति विहित सिक्त किया था ।।३७।। वह एक स्वरूप में होने वाला जल मान मानसाचल के कन्दर से वह सम्पूर्ण उस सागर के ही समान शिप्र सरोवर में पतित हुआ था ।।३८।।

देवानामुपभोगार्थं पुरा धात्रा विनिर्मितम् ।
सरः शिप्राह्वयं सान्द्रो प्रालेयस्य गिरेर्महत् ॥३९

तत्राद्यापि सुनासीरः सहितश्चाप्सरोगणैः ।
शचीसहायो रमते प्रसन्ने मालिते शुभे ॥४०
तद्वै सर्वदा यत्नाद्रक्ष्यतेऽद्यापि रत्नवत् ।
न तत्र मानुषः कश्चिद् यातुं शक्नोति योऽमुनिः ॥४१
तपःप्रभावान्मुनयः प्रयान्ति सरसीं शुभाम् ।
शिप्राख्यान्तु महायत्नात् स्नातुं पातुञ्च तज्जलम् ॥४२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मनुष्या दैवयोगतः ।
अवश्यममरत्वाय गच्छन्त्यविकलेन्द्रियाः ॥४३
वृद्धिं गच्छति वर्षासु सरो नैतद्द्विजोत्तमाः ।
न ग्रीष्मे शोषतां याति सर्वदा तद्यथा तथा ॥४४
तत्र तत्र पतितं तोयं वसिष्ठोद्वाहसम्भवम् ।
ब्रह्मविष्णुमहादेवपरपदैर्संदीरितम् ॥४५

पहिले समय में देवों के उपयोग करने के लिये ही धाता ने इसका विशेष निर्माण किया था जो हिमवान् के शिखर पर एक महान् शिप्रा नाम वाला सरोवर है ॥३९॥ वहाँ पर आज भी अप्सरागणों के सहित इन्द्र देव अपनी शची को साथ में लेकर उस परम शुभ सर में रमण किया करते हैं ॥४०॥ आज तक भी वह देवों के द्वारा एक रत्न की ही भाँति सर्वदा यत्न के साथ रक्षित हुआ करता है । वहाँ पर कोई भी मनुष्य जो मुनि नहीं है जा नहीं सकता है ॥४१॥ वहाँ पर तप के प्रभाव से मुनिगण इस परम शुभ सरोवर में गमन किया करते हैं । महान् यत्न से ही वे लोग शिप्रा नाम वाले सरोवर के उसके जल में स्नान करने के लिए तथा पान करने को जाया करते हैं । ४२॥ वहाँ पर मनुष्य हैं वे दैव योग से उसके जल का स्नान तथा पान करके अविकल इन्द्रियों वाले होते हुए अवश्य ही देव के स्वरूप को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥४३॥ हे द्विजोत्तमो ! यह सरोवर वर्षा ऋतु में भी वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है । तात्पर्य यह है कि अन्य प्राकृत जलाशयों

के समान यह सरोवर का जल नहीं बना करता है। और यह गर्मी की ऋतु में शोषण को भी प्राप्त नहीं हुआ करता है। यह तो सर्वदा ही जैसा है वैसा ही रहा करता है। न घटता है और न कभी बढता ही है ।४४।। वहाँ पर वसिष्ठ मुनि के विवाह में जन्म प्राप्त करने वाला यह जल जो पतित हुआ था ब्रह्मा—विष्णु और महादेव के कर कमला के द्वारा उदीरित है ।।४५।।

ववृधे शिप्रगर्भस्यमन्वहं द्विजसत्तमा ।
तत्र वृद्धन्तु तत्तोयञ्चक्रेण च हरि पुरा ।।४६
गिरे शृंग विनिर्भिद्य लोकाना हितकाम्यया ।
पृथिवी प्रेरयामास कृत्वा पुण्यतमा नदीम् ।।४७
परिवृत्य महेन्द्र सा पुनाना स्नानकारिण ।
दक्षिण सागर याता फलदा जाह्नवी समा ।।४८
शिप्राख्यात् सरसो यस्मान्नि सृता सा महानदी ।
अत शिप्रेति तन्नाम पूर्वं ब्रह्मणा कृतम् ।।४९
कार्तिक्या पौर्णमास्या तु तस्या य स्नाति मानव ।
स याति विष्णुसदन विमानेनातिदीप्यता ।।५०
कार्त्तिक सकल मास स्नात्वा शिप्राजले नर ।
प्रयाति ब्रह्मसदन पश्चान्मोक्षमोक्षमवाप्नुयात् ।।५१
वसिष्ठेन कथ देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
कस्य सा तनया ब्रह्मन्नुत्पन्ना वा वदस्व न ।।५२

हे द्विज श्रेष्ठो! शिप्र के गर्भ के मध्य में स्थित जल प्रतिदिन बढ़ता था। वहाँ पर उस बढे हुए जल का पहिले भगवान् हरि ने अपने चक्र के द्वारा लोकों की भलाई करने की कामना से गिरि की शिखर का भेदन करके उस नदी का परम पुण्यतम करके पृथ्वी की ओर प्रेरित कर दिया था ।।४६।। जाह्नवी गङ्गा के ही समान फल देने वाली वह नदी स्नान करने वालो को पवित्र करती हुई दक्षिण सागर को चली गयी

थी ॥४८॥ क्योंकि वह नदी शिप्र नाम वाले सरोवर से ही समुत्पन्न हुई थी अर्थात् वह महा नदी शिप्र से निकली थी अतएव उसका शिप्रा-यह शुभ नाम पूर्व में ही ब्रह्माजी ने रक्खा था ॥४६॥ जिसमें कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि के दिन जो भी कोई मनुष्य स्नान किया करता है वह मनुष्य अत्यन्त देदीप्यमान विमान के द्वारा भगवान् विष्णु देव के लोक में गमन किया करता है। तात्पर्य यही है कि इस महा नदी में कार्तिक मास की पौर्ण मासी में स्नान करने का ऐसा फल हुआ करता है कि वह सीधा विष्णु लोक की प्राप्ति कर लिया करता है ॥५०॥ पूरे कार्तिक मास में शिप्रा नदी के जल में जो भी मनुष्य स्नान किया करता है वह सीधा ही ब्रह्माजी के लोक को चला जाया करता है और कुछ समय तक वहाँ दैविक सुखों का भोग करके पीछे संसार के जन्म और मृत्यु के निरन्तर आवागमन से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करता है ॥५१॥ ऋषिगणों ने कहा—महामुनि वसिष्ठ जी ने किस प्रकार से अरुन्धती देवी के साथ विवाह किया था ? हे ब्रह्मन् यह अरुन्धती किसकी पुत्री समुत्पन्न हुई थी—यह सभी आप कृपा करके हमको वर्णन करके समझाइये ॥५२॥

पतिव्रतासु प्रथिता त्रिपुलोकेषु या वरा ।
भर्तृपादौ विनान्यत्र या न चक्षु प्रदास्यति ॥५३
यस्याः स्मृत्वा यथामात्र माहात्म्यसहित स्त्रियः ।
प्रेत्येह च सतीत्व वै प्राप्नुवन्त्यन्यजन्मनि ॥५४
आसन्नकालधर्मो यां न पश्यति तथा शुचिः ।
पुरुषः पापकारी च तस्या जन्म वदस्व नः ॥५५
शृणुध्व सा यथा जाता यस्य वा तनया शुभा ।
यथावाप वसिष्ठं सा यथाभूता पतिव्रता ॥५६
या सा सन्ध्या ब्रह्मसुता मनोजाता पुराभवत् ।
तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव भूता त्वरुन्धती ॥५७

मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य सा सती ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाना वचनाच्चरितव्रता ।
वव्रे पति महात्मान वसिष्ठ सशितव्रतम् ॥५८

वह परम श्रेष्ठा देवी अरुन्धती तीनो लोकों मे पतिव्रता नारियो मे बहुत ही अधिक प्रसिद्धा हुई थी । वह ऐसी ही पतिव्रता नारी थी कि अपने पतिदेव के चरणो के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान मे अपने नेत्रो से नही देखा करती थी ॥५३॥ जिस देवी अरुन्धती की केवल कथा का ही श्रवण करके जो कि माहात्म्य के सहित है स्त्रियाँ स्मरण करके यहाँ सतीत्व को प्राप्त करती हुई मर मर भी अन्य जन्म मे भी सतीत्व को प्राप्त किया करती हैं ॥५४॥ कालधर्म को समापन्न होने वाला पुरुष जिसका दर्शन नही किया करता है तथा जो भी शुचि होता है वह पुरुष पापकारी होता है । उस देवी का जन्म का वर्णन आप हमारे समक्ष मे करने की कृपा करिए ॥५५॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा था—आप लोग भली भाँति श्रवण कीजिए जैसे वह समुत्पन्न हुई थी । और जिस प्रकार से उस देवी ने अपने पति के स्वरूप मे वसिष्ठ मुनि को प्राप्त किया था और जैसे वह परम प्रसिद्ध पति व्रता हुई थी ॥५६॥ जो सन्ध्या पहिले ब्रह्माजी पुत्री मन से ही समुत्पन्न हुई थी उसने तपस्या का तपन किया था और वही शरीर का त्याग करके पीछे अरुन्धती नाम वाली हुई थी ॥५७॥ वह मेधातिथि की पुत्री होकर वह सती ब्रह्मा—विष्णु और महेश के वचन से चरित व्रत वाली मुनियो मे श्रेष्ठ की सती हुई थी । उसने ही संशित व्रतो वाले महात्मा वसिष्ठ का पति के स्वरूप मे वरण किया था अर्थात् स्वयं ही वसिष्ठ को अपना पति बनाना स्वीकार किया था ॥५८॥

कथ तया तपस्तप्त किमर्थं कुत्र सन्ध्यया ।
कथ शरीर सा त्यक्त्वा भूता मेधातिथे सुता ॥५६
कथ वा वदित देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवै पतिम् ।

वसिष्ठ सुमहात्मान सा वव्रे संशितव्रतम् ॥६०
तत्र सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ।
एतच्च श्रोष्यमाणाना चरित द्विजसत्तम ।
अरुन्धत्या महासत्या पर कौतूहल महत् ॥६१
ब्रह्मापि तनया सन्ध्या दृष्ट्वा पूर्वमथात्मन ।
कामाय मानसञ्चक्रे त्यक्ता सा च सुतेति वै ॥६२
कामस्य तादृश भाव मुनिमोहकर मुहु ।
दृष्ट्वा सन्ध्या स्वय तत्र त्रपामायाति दु खिता ॥६३

ऋषियो ने कहा—उस सन्ध्या ने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये कहाँ पर किस प्रकार से तप किया था ? फिर क्यो अपने शरीर का परित्याग किया था और वह कैसे मेधातिथि की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई थी ? कैसे ब्रह्मा—विष्णु और महेश देवो के द्वारा कहे हुए परम संशित वाले सुन्दर महात्मा वसिष्ठ मुनि को उसने अपने पति के स्थान म वरण किया था ? ॥५८॥६०॥ हे द्विजोत्तम ! इस चरित को श्रवण करने की इच्छा वाले हमको यह सब विस्तार के साथ कहने की कृपा कीजिए। महा सती अरुन्धती देवी के चरित के सुनने के लिये हमारे हृदय मे बडा भारी कौतूहल हो रहा है ॥६१॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—ब्रह्माजी ने भी पहिले अपनी पुत्री सन्ध्या को देखकर काम वासना के लिए अपना मन किया था और फिर उस सुता का त्याग कर दिया गया था ॥६२॥ काम के उस प्रकार के भाव को जो मुनियो के हृदय म भी मोह के करने वाला है वहाँ पर उसको सन्ध्या ने स्वय ही देखा था वह परम दु खिता होकर लज्जा को प्राप्त हो गई थी अर्थात् स्वय ही लज्जा आ गई थी ॥६३॥

ततस्तु ब्रह्मणा शप्ते मदने तदनन्तरम् ।
अन्तर्भूते विधौ शम्भौ गते चापि निजास्पदम् ॥६४
अमर्षवशमापन्ना सन्ध्या ध्यानपराभवत् ।

ध्यायन्ती क्षणमेवाशु पूर्ववृत्त मनस्विनी ॥६५
करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम् ।
आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारत. ॥६६
किन्त्वेका स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामा. स्यु शरीरिण. ॥६७
एतदर्थमह कृत्वा तप परमदारुणम् ।
मर्यादा स्थापयित्वैव पश्चात्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥६८
यस्मिञ्छरीरे पित्रा मे ह्यभिलाप. स्वयं कृतः ।
भ्रातृभिस्तेन कायेन किञ्चिन्नास्ति प्रयोजनम् ॥६९
येन स्वेन शरीरेण तातं च सहजं स्वके ।
उद्भावित. कामभावो न तत्सुकृतसाधकम् ॥७०
इति सञ्चिन्त्य मनसा सन्ध्या शैलवर तत: ।
जगाम चन्द्रभागाख्य चन्द्रभागा यत: सृता ॥७१

तया स शैल समधिष्ठित तदा
सुवर्णगौर्या सुसमप्रभासृता ।
सोमेन सन्ध्यासमयोदितेन
यथोदयाद्रिर्विरराज शश्वत् ॥७२

परमाधिक दारुण अर्थात् कठिन कष्टप्रद व्रत का समाचरण करके मर्यादा का स्थापन करके ही इसके पश्चात् अपने जीवन का त्याग करूँगी ।६७। जिस मेरे शरीर में मेरे पिता ब्रह्माजी ने अपने मन की अभिलाषा से समन्वित स्वयं किया था उस शरीर में भाइयों के साथ कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।।६८।। जिस अपने शरीर के द्वारा सहज स्वीय तात में काम का भाव उद्भावित कर दिया गया था वह शरीर कभी भी सुकृत को साधना करने वाला नहीं है ।।६९।। इस प्रकार से सन्ध्या ने मन के द्वारा भली भाँति चिन्तन करके वह परम श्रेष्ठ पर्वत पर चली गयी थी जो चन्द्र भाग नाम वाला था और जिससे चन्द्र भागा नाम वाली नदी निकली थी ।।७०।। सुवर्ण के समान गौर और सुसमान प्रभा के धारण करने वाले—सन्ध्या के समय में समुदित चन्द्र से जिस रीति से उदय पर्वत निरन्तर शोभित हुआ था ठीक उसी भाँति उस सन्ध्या के द्वारा वह पर्वत उस समय में समधिष्ठित हुआ और शोभित हुआ था ।। ७१—७२ ।।



।। चन्द्रमा को शाप वर्णन ।।

अथ तत्र गतां दृष्ट्वा सन्ध्यां गिरिवरं प्रति ।
तपसे नियतात्मानं ब्रह्मा प्राह स्वकं सुतम् ।।१
वसिष्ठं संशितात्मानं सर्वज्ञं ज्ञानियोगिनम् ।
समीपे सुखमासीनं वेदवेदाङ्गपारगम् ।।२
वसिष्ठ गच्छ यत्रैषा सन्ध्या याता मनस्विनी ।
तपसे धृतकामा सा दीक्षस्वैनां यथाविधि ।।३
मन्दाक्षमभवत् तस्याः पुरा दृष्ट्वैव तामुवान् ।
युष्मान् मां च तथात्मानं सकामान् मुनिसत्तम ।।४

अयुक्तरूप तत्कर्म पूर्ववृत्त विमृश्य सा।
अस्माकमात्मनश्चापि प्राणान् सन्त्यक्तुमिच्छति ॥५
अमर्यादिषु मर्यादा तपसा स्थापयिष्यति।
तप कर्तुं गता साध्वी चन्द्रभागाय साम्प्रतम् ॥६
न भाव तपसस्तात सा तु जानाति कञ्चन।
तस्माद्यथोपदेश सा प्राप्नोति त्वं तथा कुरु ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उस श्रेष्ठ पर्वत की ओर गमन की गयी सन्ध्या को देखकर जो कि तपश्चर्या करने के लिये नियत आत्मा वाली थी ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहा था ॥ १ ॥ वह पुत्र वसिष्ठ मुनि थे जो वसिष्ठ संचित आत्मा वाले—सब कुछ के ज्ञान रखने वाले—ज्ञान योगी—समीप मे ही सुसमासीन और वेदों तथा वेदो के अङ्ग शास्त्रो मे पारगामी थे ॥ २ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे वसिष्ठ ! आप जाइये जहा पर मनस्विनी सन्ध्या ने गमन किया है। वह सन्ध्या तपस्या करने के लिये इच्छा रखने वाली है। आप जाकर इसको विधि के अनुसार दीक्षा दीजिए ॥ ३ ॥ पहिले यहाँ पर कामुकों को देखकर उसको लज्जा हो गई थी। हे मुनि श्रेष्ठ ! उसने आपको—मुझको और अपने आपको सकाम ही देखा था अर्थात् सभी के अन्दर काम-वासना का अवलोकन किया था ॥ ४ ॥ पव मे होने वाले आयुक्त रूप से सयुत उस कर्म को विचार करके वह हमारे और अपने भी प्राणों का भली भाँति परित्याग करने की इच्छा करती है ॥ ५ ॥ इस प्रकार मे जो मर्यादा मे रहित पुरुष हैं उनमे वह तपश्चर्या के द्वारा ही मर्यादा की स्थापना करेगी वह साध्वी तपस्या करने के ही लिये इस समय चन्द्र भाग पर्वत पर गई है ॥ ६ ॥ हे तात ! वह तपस्या के किसी भी भाव को नही जानती हैं इस कारण से वह जिस प्रकार से उपदेश को का प्राप्त कर लेवे आप वैसा ही करिये ॥७॥

इद रूप परित्यज्य रूपान्तर पर भवान् ।

परिगृह्यान्तिके तस्यास्तपश्चर्यान्निदेशतु ॥८
इद स्वरूप भवतो दृष्टवा पूर्वं यया त्रपाम् ।
तथा प्राप्य न किंचित् सा त्वदग्रे व्याहरिष्यति ॥६
परित्यज्य स्वक रूप रूपान्तरधरो भवान् ।
तस्मात सन्ध्या महाभागामुपदेष्टु प्रगच्छतु ॥१०
तथेत्युक्त्वा वसिष्ठोऽपि वर्णी भूत्वा जटाधरः ।
तरुणश्चन्द्रभागाय ययौ सन्ध्यान्तिक मुनिः ॥११
तत्र देवसर पूर्णं गुणैर्मानससम्मितम् ।
ददर्श स वसिष्ठोऽथ सन्ध्या तत्तीरगामिनीम् ॥१२
तीरस्थया तया रेजे तत्सर कमलोज्ज्वलम् ।
उद्यदिन्दुसनक्षत्र प्रदोपे गगन यथा ॥१३
ता तत्र दृष्ट्वाथ मुनि. समाभाष्य सकौतुकः ।
वीक्षाञ्चक्रे सरस्तत्र बृहल्लोहितसञ्ज्ञकम् ॥१४

आप भी अपने इस वर्त्तमान रूप का परित्याग करके अन्य रूप का परिग्रहण करके उसक समीप मे तपश्चर्या का निदेश कीजिए ॥८॥ आपके इस स्वरूप को देखकर पूर्व मे जैसे लज्जा को प्राप्त हुई थी उसी भाँति अब भी लज्जा को पाकर आपके आगे वह कुछ भी नहीं कहेगी। ॥६॥ आप अपने रूप का त्याग करके ही अन्य रूप वाले बन जावे फिर उस महाभाग वाली सन्ध्या के लिये उपदेश देने को गमन करें ॥१०॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा—यह कहकर वशिष्ठ भी जटाधारी ब्रह्मचारी बन कर जो एकदम तरुण था वह मुनि वसिष्ठ चन्द्रभाग पर्वत पर उस सन्ध्या के समीप मे गये थे ॥११॥ वहाँ पर देवसर परिपूर्ण था जैसे गुणो से मानसरोवर ही होवे। इसके उपरान्त उस वसिष्ठ मुनि ने उस सरोवर के तट पर गमन करती हुई उस सन्ध्या को देखा था ॥१२॥ वह कमलों से समुज्ज्वल सरोवर तट पर समवस्थित उसके द्वारा उसी भाँति शोभायमान हो रहा था जैसे प्रदोष के समय मे

उगे हुए चन्द्रमा और नक्षत्रों से युक्त आकाश शोभित होता है ॥१३॥ वहाँ पर उसको देखकर कौतुक के सहित मुनि ने सम्भाषण किया था। वहाँ पर वृहल्लोहित नाम वाला सर देखा था ॥१४॥

चन्द्रभागा नदी तस्मात् कासाराद्दक्षिणाम्बुधिम् ।
यान्ती निर्भिद्य दद्दशे तेन सानुगिरेर्महत् ॥१५
निर्भिद्य पश्चिमं सानु चन्द्रभागस्य सा नदी ।
यथा हिमवतो गंगा तथा गच्छति सागरम् ॥१६
चन्द्राभागा कथं सिन्धुस्तत्रोत्पन्ना महागिरौ ।
कीदृक् सरस्तद्विप्रेन्द्र वृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥१७
कथं स पर्वतश्रेष्ठश्चन्द्रभागाह्वयोऽभवत् ।
चन्द्रभागाह्वया कस्मान्नदी जाता वृषोदका ॥१८
एतन्नः श्रोष्यमाणा ना जायते कौतुकं महत् ।
माहात्म्यं चन्द्रभागाया. कासारस्य गिरेस्तथा ॥१९
श्रूयतान्चन्द्रभागा या उत्पत्तिर्मुनिसत्तमाः ।
युष्माभिश्चन्द्रभागस्य माहात्म्यं नामकारणम् ॥२०
हिमवद्गिरिसंसक्त. शतयोजनविस्तृत. ।
योजनत्रिंशदायाम. कुन्देन्दुधवलो गिरि. ॥२१

उस सरोवर से चन्द्रभागा नदी दक्षिण सागर को जाती हुई थी जो उस पर्वत के महान् शिखर का भेदन करके ही जा रही थी वह उनके द्वारा देखी गयी थी ॥१५॥ वह नदी चन्द्रभाग के पश्चिम शिखर का भेदन करके ही वहन कर रही थी जैसे हिमवान् पर्वत से गङ्गा सागर को गमन करती है ॥१६॥ ऋषियों ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! चन्द्र भागा नदी उस महा गिरि में कैसे समुत्पन्न हुई थी। वह सर भी कैसा था जिसका नाम वृहल्लोहित है।१७। वह चन्द्रभाग नाम वाला पर्वतों में श्रेष्ठ कैसे हुआ था और चन्द्रभागा नाम वाली वृषोदका नदी किससे उत्पन्न हुई थी ? ॥१८॥ इस सबके श्रवण करने की इच्छा वाले होते

हुए हमारे हृदय मे बडा भारी कौतुक है। हम चन्द्र भागा का माहात्म्य तथा गिरि के का सार का महत्त्व भी सुनना चाहते हैं ।१९। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे मुनि सत्तमो ! अब आप लोग चन्द्रभागा की उत्पत्ति और चन्द्रभाग का माहात्म्य तथा नाम का कारण भी श्रवण कीजिए ॥२०॥ हिमवान् पर्वत से ससक्त अर्थात् लगा हुआ—सौ योजन के विस्तार वाला और तीस योजन आयाम अर्थात् चौड़ाई वाला एक कुन्द तथा इन्दु के समान धवल (श्वेत) गिरि है ॥२१॥

तस्मिन् गिरौ पुरा वेधाश्चन्द्र शुद्ध सुधानिधिम् ।
विभज्य कल्पयामास देवान्न स पितामहः ॥२२
पितृर्थञ्च तथा तस्य तिथिवृद्धिक्षयात्मकम् ।
कल्पयामास जगता हिताय कमलासन ॥२३
विभक्तश्चन्द्रमास्तस्मिन् जीमूते द्विजसत्तमा ।
अतो देवाश्चन्द्रभाग नाम्ना चक्रुः पुरा गिरिम् ॥२४
यज्ञभागेपु तिष्ठत्सु तथा क्षीरोदजेऽमृते ।
किमर्थमकरोच्चन्द्र देवान्न कमलासन ॥२५
तथा कव्यं स्थिते कस्मात् पित्रर्थं समकल्पयत् ।
तिथिक्षयं तथा वृद्धौ कथमिन्दुरभूद्गुरो ॥२६
एतन्नः सशय ब्रह्मञ्छिन्धि सूर्यो यथा तम ।
नान्योऽस्ति सशयस्यास्य छेत्ता त्वत्तो द्विजोत्तम ॥२७

उस पर्वत मे पहिले विधाता ने शुद्ध सुधा का निधि चन्द्रमा का विभाग करके उस पितामह ने देवान्न कल्पित किया था ॥२२॥ कमल के आसन वाले ब्रह्माजी ने उसी भाँति पितृगण के लिये तिथियों की क्षीणता वृद्धि के स्वरूप वाला जगत् के हित-सम्पादन के लिए कल्पित किया था ॥२३॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! उस जीमूत मे चन्द्रमा विभक्त किया गया था। इसीलिए देवों ने पहिले समय मे उस गिरि को नाम से चन्द्रभाग किया था ॥२४॥ ऋषियों ने कहा—यज्ञों के भागों मे स्थित

रहने पर तथा क्षीर सागर से समुत्पन्न अमृत के रहने पर कमलासन (ब्रह्मा) ने किसलिये चन्द्र को देवान्न किया था ? ॥२५॥ इसी भाँति क्रम के रहते हुए किस कारण से पितृगण के लिए उसे कल्पित किया गया था ? हे गुरो ! चन्द्रमा तिथियों के क्षय और वृद्धि में कैसे हुआ था ? ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! यह हमको बड़ा संशय हो रहा है। उसका आप हमको सूर्य की ही भाँति छेदन करिए। हे द्विजोत्तम ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इससे संशय का छेदन करने वाला नहीं है ॥ २७ ॥

पुरा दक्ष स्वतनया अश्विन्याद्या मनोरमाः ।
षड्विंशति तथैकाञ्च सोमायादात् प्रजापतिः ॥२८
समस्तास्तास्तत सोम उपयेमे यथाविधि ।
निनाय च स्वकं स्थानं दक्षस्यानुमते तदा ॥२९
अथ चन्द्रः समस्तासु तासु कन्यासु रागतः ।
रोहिण्या सार्धमवसद्रतोत्सवकलादिभिः ॥३०
रोहिणीं भजते रोहिण्या सह मोदते ।
विनेन्दु रोहिणी शान्तिं न काञ्चिल्लभते पुरा ॥३१
रोहिणीतत्परं चन्द्रं वीक्ष्य ता सर्वकन्यका ।
उपचारैर्बहुविधैर्मेजुश्चन्द्रमसं प्रति ॥३२
निरेक्ष्यमाणोऽनुदिनं यदा नैवाकरोद्विधुः ।
तासु भावं तदा सर्वा अमर्षवशमागताः ॥३३
अथासरापाल्गुनीति नाम्ना या भरणी तथा ।
कृत्तिकार्द्रा मघा चैव विशाखोत्तरभाद्रपत् ॥३४
तथा ज्येष्ठोत्तराषाढे नवैताः कुपिताः भृशम् ।
हिमांशुमुपसंगम्य परिवव्रुः समन्ततः ॥३५

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—प्राचीन समय में प्रजापति दक्ष ने परम सुन्दरी सत्ताईस अश्विनी आदि अपनी पुत्रियों को सोम के लिये

प्रदान की थी। उन समस्तों को ही विधि के साथ सोम ने अपने साथ विवाह लिया था। उस समय में दक्ष के अनुमत में वह सोम सबको अपने स्थान में ले गया ॥ २८—२९ ॥ इसके अनन्तर चन्द्र उन समस्त कन्याओं में राग से रोहिणी के ही साथ निवास करता था और रतोत्स व कला आदि के द्वारा रमण किया करता था।३०। वह सोम केवल रोहिणी का ही सेवन किया करता था और रोहिणी के साथ ही आनन्द मनाया करता था। रोहिणी के बिना सोम पहिले कुछ भी शान्ति की प्राप्ति नहीं किया करता था।३१। रोहिणी ही में परायण रहने वाले वाले चन्द्र को देखकर उन सब कन्याएं अनेक प्रकार के उपचारों के द्वारा चन्द्रमा की सेवा करने लगी थी ॥३२॥ प्रति दिन उनके द्वारा निषेवित होते हुए भी चन्द्र ने उनमे कुछ भी भाव नहीं किया था तो उस समय में वे सब अमर्ष के वश में समागत हो गयी थी ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उत्तरा फाल्गुनी नाम वाली—भरणी—कृत्तिका—आर्द्रा—मघा—विशाला—उत्तरा भाद्रपद—ज्येष्ठा और उत्तराषाढा ये सौ बहुत ही अधिक कुपिता हो गयी थी। वे सब चन्द्र के समीप में जाकर चारों ओर से कहने लगी थी ॥३४, ३५॥

परिवार्य निशानाथ ददृशू रोहिणी ततः।
वामाकस्था तस्य तेन रममाणा स्वमण्डले ॥३६
ता वीक्ष्य तादृशी सर्वा रोहिणी वरवर्णिनीम्।
जज्वलुश्चातिकोपेन हविषेव हुतशन ॥३७
ततो मघात्रिपूर्वाश्च भरणी कृत्तिका तथा।
चन्द्राकस्था महाभागा रोहिणी जगृहुर्हठात् ॥३८
ऊचुश्चातीव कुपिता. परुषं रोहिणी प्रति।
जीवन्त्यां त्वयि दुष्प्राज्ञे नास्मानिन्दुस्तु भावभाक् ॥३९
समुपैष्यति कस्मिंश्चित्समये सुरतोत्सुकः।
यष्णोना क्षेमवृद्ध्यर्थं ता हनिष्याम दुर्मतिम् ॥४०

न त्वा हत्वा चवेत् पापमस्माकमपि किंचन ।
प्रजनघ्नी बहुस्त्रीणामिनृतौ पापकारिणीम् ॥४१
यस्मिन्नर्थे पुरा ब्रह्मा व्याजहार सुतं प्रति ।
नीतिशास्त्रोपदेशाय तत्र सम्मतमस्ति वै ॥४२

निशानाथ को परिवृत करके फिर इन्होंने रोहिणी को देखा था जो उस चन्द्र के वाम अङ्क में स्थिता थी और उसके द्वारा अपने मण्डल में रमण करने वाली थी ॥३६॥ उन सबने उस पर दर्पिणी रोहिणी को उस प्रकार की देखकर वे सब दृष्टि से हुताशन की ही भाँति क्रोध से अत्यधिक ज्वलन्त थी ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर जिसके तीन पूर्व में हैं ऐसी मघा अर्थात् पुनर्वसु पुष्य और आश्लेषा के सहित मघा—भरणी कृत्तिका ने चन्द्र की गोद में स्थित महाभागा रोहिणी को हठ से पकड़ कर ग्रहण कर लिया था ॥ ३८ ॥ और वे सब अतीव कुपित हाती हुई रोहिणी के प्रति कठोर वचन कहने लगी थीं । हे पुरो बुद्धि वाली ! तेरे जीवित रहते हुए चन्द्र हम लोगों में बिल्कुल भी अनुराग नहीं करता ॥ ३९ ॥ जब भी किसी समय में यह चन्द्र सुरत में उत्सुक होकर समुपस्थित होगा तभी बहुतों के क्षेम की वृद्धि के लिये हम इस दुष्ट बुद्धि वाली का हनन कर देंगी ॥ ४० ॥ तुमको मार कर हमको कुछ भी पाप नहीं होगा क्योंकि तू बहुत सी स्त्रियों के प्रजनन का हनन करने वाली तथा बिना ही ऋतुकाल के पाप करने वाली है ॥ ४१ ॥ जिस अर्थ के विषय में पहिले ब्रह्माजी ने अपने पुत्र के प्रति कहा था। नीति शास्त्र के उपदेश के लिये वह विषय ही हमारा सुना हुआ है ॥४२॥

एकस्य यत्र निधने प्रवृत्तो दुष्टकारिणः ।
बहूनां भवति क्षेम तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥४३
स्वयमन्वेषी मृगपक्ष ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
आत्मानं घातयेद्यस्तु तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥

तासा माहगभिप्राय बुद्ध्वा न्ष्ट्वा च धर्म च ।
भीता च रोहिणी दृष्ट्वा प्रियामतिमनोरमाम् ॥४५
आत्मान चापराध च तदसम्भोगज मुहु ।
विचिन्त्य रोहिणी भीता तासा हस्तादमोचयत् ॥४६
मोचयित्वा च वाहुभ्या सम्परिष्वज्य रोहिणीम् ।
वारयामास ता सर्वा कृत्तिकाद्या स भामिनी ॥४७
तदेन्दु वारयन्त्यस्ता कृत्तिकाद्या मघान्विता ।
साम्यमूचुर्मनस्विन्यस्ता वीक्ष्यन्त्याऽथ रोहिणीम् ॥४८
न ते त्रपा वा भीतिर्वा पापतोऽस्मान्निरस्यत ।
सजायते निशानाथ प्राकृतस्येव वतत ॥४९

दोषयुक्त कर्म करने वाले किसी एक दुष्ट के निधन में जहाँ पर प्रवृत्त हो जाने से यदि बहुतो का क्षेम होता है तो उसका वध पुण्य ही प्रदान करने वाला हुआ करता है वहाँ किसी भी पाप के होने का तो प्रश्न ही नही होता है ॥ ४३ ॥ जो सुवर्ण की चोरी करने वाला है—जो मदिरा का पान करने वाला है—जो ब्राह्मण की हत्या करने वाला है—जो गुरुपत्नी के साथ सङ्गम करने वाला है और जो अपना आपका घात करने वाला हो—इन सबका वध कर देना पुण्य ही प्रदान करने वाला होता है ॥४४॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उन सबके उस प्रकार के अभिप्राय को समझ कर और धर्म को देखकर तथा भय से डरी हुई रोहिणी को देखकर जो उसकी अत्यधिक प्रिय और मन को रमण करने वाली परम सुन्दरी थी—उस सबके सम्भोग को न करने से उत्पन्न अपने आपका अपराधी सोचकर उस डरी हुई रोहिणी का उनके हाथ से मोचित कर दिया था अर्थात् छुडा लिया था ॥ ४५—४६ ॥ उस चन्द्र ने रोहिणी को छुडाकर अपनी दोनो बाहुओ से उसका (रोहिणी) भली भाँति आलिङ्गन करके उस चन्द्र ने जो कृत्तिका आदि भामिनियाँ थी उन सबका वारण कर दिया था ॥४७॥ उसी भाँति इन्दु का वारण

जो कि आप सत्पुरुषों के द्वारा निन्दित और धर्म से हीन कर्म को आप कर रहे है ? ॥ ५१ ॥ धर्म-शास्त्र के अर्थ को गमन करने वाले कर्म को यथोचित रीति से करने वाली और उद्वाहित अर्थात् ब्याही हुई पत्नियों का आप केवल मुख को भी नहीं देखते है ॥५२॥ हे निशापते ! पूर्व में कहने हुए पिता के मुख से नारद के लिए जो सुना है उस दक्ष प्रजापति के धर्म-शास्त्र के अर्थ का आप श्रवण कीजिए ॥ ५३ ॥ जो पुरुष बहुत सी दाराओं वाला हो और राग के वशीभूत होकर उनमें से किसी भी एक ही स्त्री का सेवन किया करता है वह पाप का भागी होता है और स्त्री के द्वारा जित भी हुआ करता है तथा उसका आशौच सनातन अर्थात् सर्वदा ही बने रहने वाला हुआ करता है।५४। हे विधो ! स्त्रियों को जो स्वाम्य सम्भोगज दुःख हुआ करता है उस दुःख के समान अन्यत्र कोई भी दुःख नहीं हुआ करता है ॥ ५५ ॥ जो पुरुषों में अधम परम सती और ऋतुकाल वाली पत्नी का सङ्ग नहीं किया करता है ऋतुकाल के शुद्ध होने पर भी उसके सङ्ग से रहित होता है वह भ्रूण ही होता है। भ्रूण गर्भ में रहने वाले शिशु को कहते हैं ।५६।

भार्या स्यादयावदात्रेयी तावत्काल वियोधनम् ।
तस्यास्तु सगमे किंचिद्विहितञ्चापि नाचरेत् ॥५७
बहुभार्यस्य भार्याणामृतुमैथुननाशनम् ।
न किंचिद्विद्यते कर्म शास्त्रेणापि यदीरितम् ॥५८
तोषयेन सतत भार्याविधिवत्पाणिपीडिता ।
नासा तुष्टया तु कल्याणम् कल्याणमतोऽन्यथा ॥५९
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेतत्कुले नित्य कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०
यया विरुध्यते स्वामी सौभाग्यमदहप्तया ।
सपत्नीसंगमं कर्तुं सा स्याद्वेश्या भवान्तरे ॥६१

यस्मात्मम पुरश्चोग्रास्तीक्ष्णा वाच गर्भोगिता: ॥६६
भयनीभिश्चतिसृभिर्योषिद्भिस्मिन् कृत्तिकादिभि. ।
ऊग्रास्तीक्ष्णा इति ख्यातिः प्राप्स्यथ त्रिदशेष्वपि ॥६७
तस्मादेवविधानेन नवैता कृत्तिकादय ।
यात्राया नोपयुक्ता हि भविष्यथ्व दिने दिने ॥६८
युष्मान् पश्यन्ति देवाद्या मनुष्याद्या च ये क्षितौ ।
यात्राया तेन दोषेण तेषा यात्रा न चेष्टदा ॥६९
अथ सर्वास्तदा शाप तस्य श्रुत्वातिदारुणम् ।
चन्द्रस्य हृदय ज्ञात्वा शापाच्चातीव निष्ठुरम् ॥७०

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—बहुत अधिक कठोर वचन इस रीति से उनके द्वारा कहने पर चन्द्रमा रोहिणी के मुख की कान्ति को मलिन देखकर बहुत ही अधिक कुपित हुये थे ॥६४॥ उस समय म रोहिणी ने भी उन सबकी उग्रता को बारम्बार देखकर वह भी भय—शोक और लज्जा से समाकुल होकर कुछ भी नही बोली थी ॥६५॥ इसके अनन्तर परमाधिक क्रोधित हुए चन्द्र ने उसी समय म उन सब स्त्रियों को शाप दिया था क्योंकि तुम सबने मेरे ही आगे अतीव उग्र और तीक्ष्ण वचन कहे है । इन तीनो भुवनो मे कृत्तिका आदि आप की उग्र और तीक्ष्ण—यही ख्याति देवगणो मे भी प्राप्त करोगी ॥६७॥ इस कारण से ये नौ कृत्तिका प्रभृति दिन-दिन म यात्रा मे उपयुक्त नही होगी ॥६८॥ तुम सबको देव आदि और क्षिति म मनुष्य आदि देखते हैं तो उसी दोष से यात्रा म उन पुरुषो की यात्रा अभीष्ट के प्रदान वाली नही हुआ करती है ॥६९॥ इसके उपरान्त उन सबो ने उसके अति दारुण शाप को सुनकर इस शापके देने से चन्द्रमा के हृदय को बहुत ही अधिक निष्ठुर जान लिया था ॥७०॥

जग्मु सर्वास्तदा दक्षभवन प्रत्यमर्षिता ।
ऊचुश्च दक्ष पितरमश्विन्याद्या सगद्गदम् ॥७१

सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ।
सेव्यमाना न भजते सोऽस्मान् परवधूरिव ॥७२
नावस्थाने नावसाने भोजने श्रवणे तथा ।
विनेन्दू रोहिणीं शान्तिं लभते नहि काचन ॥७३
रोहिण्या वसतस्तस्य समीपं वीक्ष्य ते सुताः ।
यान्ती. सोऽन्यत्र नयनमाधाय नहि वीक्षते ॥७४
सान्त्वनं स्वामिसद्भावो मुखमात्रं न वीक्षते ।
अस्मिन् वस्तुनि यत्कार्यं तदस्माभिर्निगद्यताम् ॥७५
अस्मान्निरेतत्समयेऽनुरक्ष्य चन्द्रमाः ।
स तत्कृते ततश्चास्मत्तापं तीव्रं उदाकरोत् ॥७६
दारुणाक्षानिनीदृशाश्च लोके वाच्यत्वमाप्य च ।
क्षयान्विता भविष्यध्वं यूयमित्युक्तवान् विधिः ॥७७

इस समय में वे सब जनि कम्पित होकर दक्ष प्रजापति के भवन को चली गयी थीं और वहाँ पर अश्विनी आदि ने गद्गदता के साथ अपने पिता दक्ष से कहा था ॥७१॥ सोम हमारे साथ निवास नहीं करते हैं और वे सदा ही एक रोहिणी का ही सेवन किया करते हैं हम लोग सभी उनकी सेवा भी करती हैं तो भी वे पराई वधू की ही भाँति हममें अनुराग न करके हमारा सेवन नहीं किया करते हैं ॥७२॥ अव-स्थान में—अवसान में तथा—भोजन में और श्रवण करने में चन्द्रदेव रोहिणी के बिना कोई भी शान्ति की प्राप्ति नहीं किया करते हैं ॥७३॥ रोहिणी के साथ निवास करते हुए समीप में आपकी पुत्रियों को देखकर वह अन्य स्थान में गमन करती हुई को देखकर नयन का आधान करके नहीं देखा करते हैं ॥७४॥ स्वामी का अन्य सद्भाव न होवे। वह केवल मुख को नहीं देखते हैं। इस वस्तु में जो भी कुछ करना चाहिए वह हमारे द्वारा चन्द्र अनिरुद्ध हुए हैं इस समय में उसने उनके लिये हमारी ओर से उस समय में किया था ॥७५॥ चन्द्रदेव ने कहा था

कि आप लाग अत्यन्त दाग्ण और तीक्ष्ण हाती हुई लोक मे वाच्यत्व को प्राप्त करके बिना यात्रा वाली हो जाओगी ॥७७॥

श्रुत्वा वाक्य स पुत्रीणा ताभि सार्धं प्रजापति ।
जगाम यत्र सोमोऽभूद्रोहिण्या सहितस्तदा ॥७८
दूरादेव विधुर्दृष्ट्वा दक्षमायान्तमासनात् ।
उत्तस्थावन्तिके प्राप्य ववन्दे च महामुनिम् ॥७९
अथ दक्षस्ततोवाच कृतासनपरिग्रह ।
सामपूर्वं चन्द्रमस कृत-सवन्दन तथा ॥८०
सम वर्तस्व भार्यासु वैषम्य त्व परित्यज ।
वषम्ये बहवो दोषा ब्रह्मणा परिकीर्तिता ॥८१
रतिपुत्रफला दारास्तासु कामानुबन्धनात् ।
कामानुबन्ध ससर्गात ससर्ग सगमाद्भवेत् ॥८२
सगमश्चाप्यभिध्यानाद्वीक्षणादभिजायते ।
तस्माद् भार्यास्वभिध्यान कुरु त्व वीक्षणादिकम् ॥८३
यद्यव नैव कुरुपे मद्वचो धर्मयन्त्रितम् ।
तदा लोकवचोद्दृष्ट पापवास्त्व भविष्यसि ॥८४

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस प्रजापति दक्ष ने अपनी पुत्रियो का वाक्य सुनकर वह उनको ही साथ मे लेकर वही स्थान पर गये थे जहाँ चन्द्रदेव रोहिणी के साथ उस समय मे वर्त्तमान थे ॥७८॥ चन्द्रमा ने दूर से आते हुये दक्ष को देखकर अपने आसन से वे उठ खड़े हुए थे और समीप जाकर उन महा मुनि के लिये प्रणिपात किया था। ॥७९॥ इसके अनन्तर उस समय मे अपने आसन को ग्रहण करके दक्ष प्रजापति ने भली भाँति वन्दना करने वाले चन्द्रमा से सामपूर्वक यह कहा था ॥८०॥ दक्ष ने कहा—आप अपनी भार्याओ मे समानता का ही व्यवहार करिए और विषम व्यवहार का परित्याग कर दीजिए। [illegible] मे ब्रह्माजी ने बहुत से दोष परिकीर्तित किये हैं ॥८१॥

दाराओं में काम के अनुबन्धन से वे दारारति और पुत्र की कला वाली होती हैं। काम का अनुबन्ध संसर्ग से ही होता है और वह संसर्ग सङ्गम से हुआ करता है ॥८२॥ और सङ्गम अभिध्यान से और वीक्षण से ही समुत्पन्न होता है। इस कारण से आप भार्याओं में अभिध्यान और वीक्षण आदि करिए ॥८३॥ यदि इस मेरे धर्म से नियन्त्रित वचन को आप नहीं करते हैं तो उस समय में आप लोक के वचनों से दोष युक्त और पाप वाले हो जायेंगे ॥८४॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्य सुमहात्मन ।
एवमस्त्विति चन्द्रोऽपि न्यगदद्दक्षशङ्कया ॥८५
अथानुमन्त्र्य तनयाश्चन्द्र जामातारं तथा ।
ययौ दक्षो निजं स्थानं कृतकृत्यस्तदा मुनिः ॥८६
गते दक्षे ततश्चन्द्रस्ता समासाद्य रोहिणीम् ।
जग्राह पूर्ववद्भाव तासु तस्या च रागत ॥८७
तत्रैव रोहिणी प्राप्य न काश्चिदपि वीक्षते ।
रोहिण्यामेव वसते ततस्ता कुपिता पुन ॥८८
गत्वा ता पितरं प्राहुर्दौर्भाग्याद्विग्नमानसा ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणी भजते सदा ॥८९
तवापि नाकरोद्वाक्य तस्मान्न शरणं भव ॥९०
उद्वेग कोपसयुक्त उत्तस्थौ तत्क्षणान्मुनि ।
जगाम मनसा ध्यायन् कर्तव्यं निकटं विधो ॥९१

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—महात्मा दक्ष के उस वचन का श्रवण करके चन्द्रदेव ने भी 'ऐसा ही होगा'—यह दक्ष की शंका से कह दिया था ॥८५॥ इसके अनन्तर दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्रियों को तथा जामाता इन्दु को अनुमन्त्रित करके उस समय में वह मुनि कृतकृत्य होकर अपने आश्रम को चले गये थे ॥८६॥ दक्ष के चले जाने पर फिर चन्द्रमा ने उस रोहिणी के पास प्राप्त होकर उसमें और उन सब

पत्नियो मे पूर्व जैसा ही भाव ग्रहण किया था क्योकि रोहिणी म उसका अनुराग था ।।८७।। वही पर रोहिणी को प्राप्त करके अन्य किन्ही को भी वह नही देखता था । वह सर्वदा रोहिणी ही मे निवास किया करता था । फिर वे सब पुन कुपित हो गयी थी ।।८८।। वे सब अपने दौर्भाग्य के कारण उद्विग्न मन वाली होती हुई पिता के समीप म जाकर उन्होने कहा था कि सोमदेव हम लोगो मे निवास न करते हैं और वे सदा ही रोहिणी का सेवन किया करते हैं ।।८६।। उसने भी आपके वाक्य का नही किया था । अतएव आप हमारे रक्षक होओ । ।।६०।। उसी क्षण मे मुनि दक्ष उद्वेग और क्रोध से सयुक्त होकर उठ खडे हुये थ और मन मे विधु के समीप मे जाकर क्या करना है—इसका ध्यान करते जा रहे थे ।।६१।

उपगम्य तदा प्राह वचश्चन्द्र प्रजापति ।
सम वर्तस्व भार्यासु वैषम्य त्व परित्यज ।।६२
न चेदिद वचोऽस्माक मौर्ख्यात् त्व मावबुध्यसे ।
धर्मशास्त्रातिगायाह शप्स्ये तुभ्य निशापते ।।६३
ततो दक्षभयाच्चन्द्रस्तत्वक्तु प्रति तत्पुर ।
अगीचकारातिभयात् कार्यमव मुहुस्त्विति ।।६४
सम प्रवर्तन वक्तु भार्यास्वगीकृते तत ।
विधुना प्रययौ दक्ष स्वस्थान चन्द्रसम्मन ।।६५
गते दक्षे निशानाथो रोहिण्यासहितो भृशम् ।
रममाणो विसस्मार दक्षस्य वचनन्तु स ।।६६
नेवमानाश्च ता सर्वा अश्विनाद्या मनोरमा ।
नाभजच्चन्द्रमास्तासु अवज्ञामेव चाकरोत् ।।६८
अवज्ञातास्तु ता सर्वाश्चन्द्रेण पितुरन्तिकम् ।
गत्वैवार्तस्वराश्चार्ता रुदन्त्यश्चेदमब्रुवन् ।।६८

उस समय में प्रजापति दक्ष चन्द्र के समीप में पहुँच कर यह

वचन तुम्होने चन्द्रदेव से कहा था कि अपनी भार्याओं में समानता का ही व्यवहार करिये तथा उनके प्रति जो भी कुछ विषमता की भावना होवे उसका आप अब परित्याग कर दीजिए ॥६२॥ यदि आप हमारे वचन का मूर्खता से नहीं समझते हैं तो हे निशापते ! मैं धर्मशास्त्र के मैं अतिक्रमण करने वाले आपके लिए शाप दे दूँगा ॥६३॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर चन्द्र देव ने उस प्रजापति के शासन वैसा ही करने के लिये स्वीकार किया था क्योंकि उनको दक्ष से अत्यधिक भय था। इसी प्रकार से किया जायेगा ऐसा पुन अङ्गीकार कर लिया था ॥६४॥ फिर अपनी भार्याओं के विषय में समान ही व्यवहार करने के लिए चन्द्र के द्वारा अङ्गीकार किये जाने पर दक्ष चन्द्र से सम्मत होकर अपने स्थान को चले गये थे ॥६५॥ दक्ष के गमन करने पर निशा नाथ चन्द्र फिर अत्यधिक रूप से रोहिणी के ही साथ में रमण करता हुआ उसने उस प्रजापति दक्ष के वचन को भुला ही दिया था कि मैं सब भार्याओं में एक सा व्यवहार करूँगा ॥६६॥ वे अश्विनी आदि सभी मनोरमा उनकी सेवा करने वाली हुई थीं किन्तु चन्द्र ने उनका कभी सेवन नहीं किया था और वह केवल उन सबको अवज्ञा ही किया करता था ॥६७॥ वे चन्द्र देव के द्वारा अवज्ञा मयुत होकर अपने पिता के समीप में जाकर आर्त्तस्वर में अत्यन्त आर्त्त होकर रुदन करती हुई अपने पिता से यह वार्ता थी ॥६८॥

नाकरोद्वचन सोमस्तवापि मुनिसत्तम ।
अवज्ञां कुरुतेऽस्मासु पूर्वतोऽप्यधिक स च ॥६६
तस्मात् सोमेन न कार्यं न किञ्चिदपि विद्यते ।
तपस्विन्यो भविष्यामस्तपश्चर्यां निदेशय ॥१००
तपसा शोधितात्मान. परित्यक्ष्याम जीवितम् ।
किमस्माक जीवितेन दुर्भगाना द्विजोत्तम ॥१०१
इत्युक्त्वा तास्तत सर्वा दक्षजा धृतिवादय. ।

कपोलमालम्व्य करैरूरुदुर्विविशु क्षितौ ॥१०२
तास्तु दृष्ट्वा तथाभूता दु खव्याकुलितन्द्रिया ।
अतिदीनमुखो दक्ष कोपाज्जज्वाल वह्निवत् ॥१०३
अथ कोपपरीनस्य दक्षस्य सुमहात्मन ।
निश्चक्राम तदा यक्ष्मा नासिकाग्राद्विभीषण ॥१०४
दंष्ट्राकरालवदन कृष्णागारसमप्रभ ।
अतिदीर्घ स्वल्पकेश कृशो धमनिसन्तत ॥१०५

उन्होंने कहा था कि हे मुनि श्रेष्ठ ! आपके वचन को भी सोमदेव ने नहीं किया है और वह तो अब पहिले से भी अधिक हमारे विषय में अवज्ञा किया करते हैं ॥९९॥ सोम के द्वारा हमारे विषय में जो भी करना चाहिए वह कुछ भी नहीं होता है। अतएव अब हम तो सब तपस्विनी हो जायगा। आप अब हमको यहां निदेश कीजिए ॥१००॥ तपस्या के द्वारा अपनी आत्माओं का शोधन करके हम अपना जीवन ही त्याग देंगी। हे द्विजोत्तम ! आपही विचार कीजिए कि ऐसी दुर्भाग्य शालिनी हमको जीवन रखने में क्या लाभ है ॥१०१॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—फिर यह इतना कहकर वे सभी कान्तका प्रभात दक्ष की पुत्रियाँ अपने करों से कपोलों का आलम्बन करके विवश होती हुई भूमि पर रुदन करने लगी थी ॥१०२॥ अतीव दुःख से व्याकुल इन्द्रियों वाला उस प्रकार से स्थित उन सबको देखकर अत्यन्त ही दीन मुख वाले प्रजापति दक्ष कोप से वह्नि के ही समान ज्वलित हो गये थे। ॥१०३॥ इसके अनन्तर कोप से व्याप्त महात्मा दक्ष की नासिका के अग्रभाग से बहुत ही भीषण यक्ष्मा निकल पड़ा था ॥१०४॥ वह यक्ष्मा दाढ़ों से कराल मुख वाला था और कृष्ण वर्ण वाले अङ्गार के समान था—वह बहुत ही लम्बे विशाल शरीर वाला था—उसके केश बहुत ही थोड़े थे—वह दौल अतीव कृश और धमनियों से ततत था ॥१०५॥

अधोमुखो दण्डहस्तः कास विश्रम्य सन्ततम् ।
कुर्वाणो निम्ननेत्रश्च योषासम्भोगलोलुप ॥१०६
स चोवाच तदा दक्ष कस्मिस्थास्याम्यहं मुने ।
किंवा चाहं करिष्यामि तन्मे वद महामते ॥१०७
ततो दक्षस्तु त प्राह सोम यातु द्रुत भवान ।
सोममत्तु भवान्नित्य सोमे त्व तिष्ठ स्वेच्छया ॥१०८
इति श्रुत्वा वचनस्तस्य दक्षस्याय महामुने ।
शनैः शनैस्ततः सोममासमाद गद स च ॥१०९
आसाद्य स तदा सोम्म वल्मीक पन्नगो यथा ।
प्रविवेशेन्दुहृदय छिद्र प्राप्य महागदः ॥११०
तस्मिन् प्रविष्टे हृदये दारुणे राजयक्ष्मणि ।
मुमोह चन्द्रस्तन्द्राच विषमा प्राप्तवाश्च ॥ ॥१११
उत्पद्य प्रथम यस्माल्लीनो राजन्यसौ गद ।
राजयक्ष्मेति लोकेऽस्मिन्नस्य ख्यातिरभूद्द्विजा ॥११२

उसका मुख तो नीचे की ओर था—उसके हाथ म एक दण्ड था—वह विश्राम करके निरन्तर कास (खाँसी) को करता जा रहा था—उसके नेत्र नीचे की ओर बँठे हुए थे तथा वह स्त्री के साथ सम्भोग करने के लिए अत्यन्त लालायित रहता था ॥१०६॥ उस यक्ष्मा ने दक्ष प्रजापति से कहा था कि हे मुने ! मैं अब किस स्थान में स्थित रहूँगा । अथवा मुझे क्या करना होगा— हे महामत ! आप मुझे यह अब बतलाइए ॥१०७॥ तब तो प्रजापति दक्ष ने उस यक्ष्मा से कहा था कि आप बहुत शीघ्र सोमदेव के समीप में जाइये । आप सोमदेव का भक्षण करिये और उसी सोम में स्वेच्छा से सदा सस्थित रहिये ॥ १०८ ॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर स महा मुनि दक्ष के इस वचन का श्रवण करके वह धीरे-धीरे सोमदेव के समीप म गया था और वह सोम का गद (रोग) हो गा ॥ १०९ ॥ उस समय में वह सोम के समीप में इसी

भाँति प्राप्त हुआ था जैसे सर्प अपनी बाँबी में प्रवेश किया करता है। वह महागद अर्थात् विशाल रोग चन्द्रमा के हृदय में छिद्र की प्राप्ति करके प्रवेश कर गया था ॥११०॥ उस दारुण राजयक्ष्मा के उस सोम के हृदय में प्रविष्ट हो जाने पर चन्द्रदेव मोहित हो गये थे अर्थात् उनको मोह हो गया था और उसने बहुत बड़ी विषम तन्द्रा को प्राप्त हो गया था ॥१११॥ क्योंकि यह रोग प्रथम उत्पन्न होकर उस राजा में लीन हो गया था। हे द्विजो! इसी कारण से उस रोग की लोक में "राज यक्ष्मा" इस नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी ॥११२॥

ततस्तेनाभिभूत स यक्ष्मणा रोहिणीपति ।
क्षय जगामानुदिग ग्रीष्मे क्षुद्रा नदी यथा ।।११३
अथ चन्द्रे क्षीयमाणे सर्वौषध्यो गता क्षयम् ।
क्षय यातास्वौषधिषु न यज्ञ समवर्तत ॥११४
यज्ञाभावात्तु देवानामन्न सर्वं क्षय गतम् ।
पर्जन्याश्च ततो नष्टास्ततो वृष्टिर्नचाभवत् ॥११५
वृष्ट्यभावे तु लोकानामाहारा क्षीणता गता. ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेते सर्वलोके द्विजोत्तमा ॥११६
दानधर्मादिक किंचिन्न लोकस्य प्रवर्तते ।
सत्त्वहीना प्रजा सर्वा लोभेनोपहतेन्द्रिया ।
पापमेव तदा चक्रु कुकर्मरतयश्च ता. ।।११७
एतान् दृष्ट्वा तदा भावान् दिक्पाला सपुरन्दरा ।
जग्मु क्षोभ पर देवा- सागराश्च ग्रहास्तथा ॥११८
ततो दृष्ट्वा जगत्सर्वं व्याकुल दस्युपीडितम् ।
ब्रह्माणमगमन् देवा सर्वे शक्रपुरोगमा ॥११९

इसके अनन्तर वह सोम रोहिणी का पति उस राजयक्ष्मा नामक रोग के द्वारा अभिभूत हो गया था। और वह प्रति दिन ग्रीष्म ऋतु में क्षुद्र नदी की ही भाँति क्षय को प्राप्त होने लगा था ॥११३॥ इसके

अनन्तर उस चन्द्र के क्षीण भाव हो जाने पर समस्त ओषधियाँ क्षय को प्राप्त हो गयी थी। उन ओषधियों के क्षय को प्राप्त हो जाने पर यज्ञ नहीं प्रवृत्त होते थे ॥११३॥ यज्ञों के अभाव हो जाने से देवों का सब ही अन्न क्षय को प्राप्त हो गया था। तब तो सभी मेघ नष्ट हो गये थे और वृष्टि का एक दम अभाव हो गया था। अर्थात् फिर वर्षा नहीं हुई थी ॥११४॥ जब वृष्टि का ही अभाव हो गया तो लोगों के आहार क्षीण हो गये थे। हे द्विजोत्तमो! दुर्भिक्ष (अकाल) और उसके कारण से होने वाले व्यसन (दुःख) से समुपेत समस्त लोग हो गये थे ॥११६॥ तब तो लोगों का दान देना और धर्म के कृत्य करना सभी पुण्य लोक के लिये प्रवृत्त नहीं होता है। समस्त प्रजा सत्त्व से हीन हो गई थी और सब लोभ से उपहत इन्द्रियों वाले हो गये थे। वे सभी प्रजायें कुकर्मों में रति रखने वाली हो गई थी तथा सभी उस समय में पाप ही करते थे ॥११७॥ उस समय में इन भावनाओं को देखकर इन्द्र के सहित सभी दिक्पाल परम क्षोभ को प्राप्त हो गये थे तथा सभी सागर और ग्रह भी क्षुभित हो गये थे ॥११८॥ इसके अनन्तर जगत् को अधिक व्याकुल और दस्युओं (चोर लुटेरों) से प्रपीडित देखकर इन्द्र को अपना नायक बनाते हुए सब देवगण ब्रह्माजी के समीप में गये थे ॥११९॥

उपसगम्य देवेशं स्रष्टारं जगतां पतिम् ।
प्रणम्याथ यथायोग्यमुपविष्टास्तदा सुराः ॥१२०
तान् म्लानवदनान् सर्वान् विदय लोकपितामहः ।
अभिभूतान् परेणैव हृतस्वविषयानिव ।
पप्रच्छ सम्मुखीकृत्य गुरुमिन्द्रं हुताशनम् ॥१२१
स्वागतं भो सुरगणाः किमर्थं यूयमागताः ।
दुःखोपहतदेहाश्च युष्मान् म्लानाश्च लक्षये ॥१२२
निरावाधान्निरातंकान् युष्मान् सर्वांश्च कामगान् ।
कृत्वा स्वविषये न्यस्तान् कथं पश्यामि दुःखितान् ॥१२३

यद्वोऽभवद्दु खबीजं युष्मान् वा यस्तु वाधते ।
तत्कथ्यतामशेषेण सिद्धञ्चाप्यवधार्यताम् ॥१२४
ततो वृद्धश्रवा जीवः कृष्णवर्त्मा च लोकभृत् ।
उवाचात्मभुवे तस्मै सुराणा दु खकारणम् ॥१२५

इस सृष्टि की रचना करने वाले—जगतो के स्वामी देवेश्वर ब्रह्माजी के पास पहुँचकर उन्होने उन को प्रणाम किया तब वे सब यथोचित स्थानो पर उपविष्ट हो गये थे अर्थात् बैठ गये थे ॥१२०॥ लोको के पितामह ब्रह्माजी ने उन सब देवो को मलिन मुख वाले देखकर जो कि ऐसे प्रतीत होते थे मानो किसी दूसरे के पराभूत हैं और अपने विषयो को अपहृत किए हुये से दिखाई पड रहे थे । तब तो ब्रह्माजी ने देवो के गुरु वृहस्पति इन्द्र और अग्नि को अपने सामने बिठाकर उनसे पूछा था ॥ १२१ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणो ! आपका मैं स्वागत करता हू । अर्थात् आपका यहो पर समागमन परम शुभ मैं मानता हूँ। आप लोग अब यह बतलाइए कि आप सब किस प्रयोजन को सुसम्पन्न करने के लिये यहाँ आये है ? मै देख रहा हूँ कि आप सभी लोग किसी महान दु ख से उपहत देहो वाले है और आप अधिक म्लान हो रहे हैं। ॥१२२॥ आप सबको बाधाओ से रहित—आतङ्क से हीन तथा इच्छानुसार गमन करने वाले बनाकर और अपने विषय मे विन्यस्त करके आज मैं आप लोगों को परम दुःखित कैसे देख रहा हूँ ॥१२३॥ जो भी कुछ आप लोगो के दु ख का बीज अर्थात् हेतु होवे अथवा जो भी कोई आप लोगो का बाधा पहुँचाता होवे वह सभी आप लोग पूर्ण रूप से मुझे बतलाइये और यही समझ लीजिये कि वह आपका कार्य सिद्ध ही हो गया है अर्थात् उसका मैं निवारण करके आपको सुख सम्पन्न ही बना दूँगा—इसमे कुछ भी सशय न समझें ॥१२४॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वृद्ध श्रवा—जीव और लोकों का भरण करने वाले कृष्ण वर्त्मा ने उन ब्रह्माजी से देवो के दु ख का कारण बतलाया था ॥१२५॥

श्रृणु सर्वं जगत्कर्तस्त्वा येन वयमागता ।
यद्वास्माकं दुःखबीजं यतो म्लानश्रियो वयम् ॥१२६
न क्वचित् सम्प्रवर्तन्ते यज्ञा लोके पितामह ।
निराधारा निरातंका प्रजा सर्वा क्षयं गता ॥१२७
न च दानादिधर्मश्च न तपांसि क्षितौ क्वचित् ।
नैव वर्षति पर्जन्यः क्षीणतोयाभवत् क्षितिः ॥१२८
क्षीणाः सर्वास्तथौषध्यः शस्या लोका समाकुला ।
दस्युभिः पीडिता विप्रा वेदवादं न कुर्वते ॥१२९
अन्नवैकल्यमासाद्य म्रियन्ते बहवः प्रजाः ।
क्षीणेषु यज्ञभागेषु भोग्यहीनास्तथा वयम् ॥१३०
दुर्बलास्तु श्रियाहीना नैव शान्ति लभामहे ॥१३१
रोहिण्या मन्दिरे चन्द्रो वत्सरया चिरं स्थितः ।
वृषराशौ स च क्षीणो ज्योत्स्नाहीनश्च वर्तते ॥१३२
यदैवाप्यते देवैश्चन्द्रो नैया पुरः सरः ।
कदाचिदपि देवानां समाजे वा भवद्विधे ॥१३३

देवों ने कहा—हे जगत् की रचना करने वाले! आपके समीप में जिस कार्य के सम्पादन के लिए हम लोग समागत हुए हैं उसका आप श्रवण करिए जो कि हम लोगों के दुःख का बीज है और जिसके होने से हम लोग सब म्लान श्री वाले हो रहे हैं ॥१२६॥ हे पितामह! कहीं पर भी लोक में यज्ञ सम्प्रवर्तित नहीं हो रहे हैं अर्थात् कोई भी किसी जगह पर लोक में यज्ञ नहीं कर रहे हैं। समस्त प्रजा इस समय में निरातङ्क और निराधार होकर क्षय को प्राप्त हो रही है ॥१२७॥ भू मण्डल में न तो दान देता है और न कोई धर्म सम्बन्धी कर्म करता है—न तप है अर्थात् कोई भी तपस्या भी नहीं कर रहा है। मेघलोक में वर्षा नहीं करते हैं—समस्त पृथ्वी क्षीण जल वाली हो गयी थी। ॥१२८॥ सभी ओषधियाँ क्षीण हो गयी हैं—शस्य भी क्षय को प्राप्त

हैं और लोग सभी समापन्न हैं। विप्रगण दस्युओं के द्वारा पीड़ित होते हुए वेदों के वाद में निरत नहीं हो रहे हैं ॥१२६॥ अन्न की विकलता को प्राप्त करके बहुत-सी प्रजा मर रही है। यज्ञ भागों के क्षीण हो जाने पर हम सभी लोग भोगने के योग्य पदार्थों से हीन हो रहे हैं। ॥१३०॥ हम बहुत ही दुर्बल हो गये हैं और हमारी कान्ति नष्ट हो गई है। हम कहीं पर भी शान्ति की प्राप्ति नहीं कर रहे हैं ॥१३१॥ चन्द्रदेव तो रोहिणी के ही मन्दिर में सदा वक्र गति से चिरकाल पर्यन्त स्थित रहा करते हैं और वृष राशि में वह क्षीण होकर ज्योत्स्ना (चाँदनी) से हीन रहते हैं ॥ १३२ ॥ देवों के द्वारा जिस समय में भी चन्द्र का अन्वेषण किया जाता है तो वह कभी भी इनके आगे स्थिति वाला नहीं हुआ करता है। वह किसी समय में भी देवों के समाज में अथवा आपके समीप में उपस्थित नहीं हुआ करता है ॥१३३॥

कदाचिद्रोहिणी त्यक्त्वा नैव क्वचन गच्छति ।
यद्यन्य कोऽपि न भवेत्तदा चन्द्रो वहिर्भवेत् ॥१३४
दृश्यते स कलाहीन कलामात्रावशेषक ।
इति सर्वत्र लोकेश वृत्त कर्मविपर्यय ॥१३५
त दृष्ट्वा कान्तिशोकास्तु वय त्वा शरण गता ।
पातालाद्यावदुत्थाय कालकञ्जादयोऽसुरा ॥१३६
नास्मान् लोकेश बाधन्ते तावन्नस्त्वाहि साध्वसात् ।
अय प्रवर्तते कस्माज्जगता वा व्यतिक्रम ।
न जानीमस्तु तत्सर्वं विप्लवे वापि कारणम् ॥१३७
एतत् सुराणा वचन दिव्यदर्शी पितामह ।
श्रुत्वा क्षणमभिध्यायन निजगाद सुरोत्तमान् ॥१३८
शृण्वन्तु देवता सर्वा यदर्थं लोकविप्लव ।
प्रवर्ततेऽधुना येन शान्तिस्तस्य भविष्यति ॥१३९

सोमो दाक्षायणी. कन्या सप्तविंशतिसंख्यकाः ।
अश्विन्याद्या वरवधूर्भार्यार्थे परिणीतवान् ॥१४०

वह किसी समय में भी रोहिणी का त्याग करके कहीं पर भी गमन नहीं किया करता है। यदि कोई भी अन्य नहीं होता है तभी चन्द्र बाहिर हो जाया करता है ॥ १३४ ॥ वह चन्द्र समस्त कलाओं से हीन केवल एक ही कला वाला रह गया है। अर्थात् केवल एक ही कला उसमें शेष रह गई है। हे लोकों के ईश ! यही सर्वत्र लोक में धर्म का विपर्यय प्रवृत्त हो रहा है। तात्पर्य यही है कि सभी कर्म विपरीत हो रहे हैं ॥१३५॥ यह ऐसा है उसको देखकर हम सब क्रान्दिशीक हो गये हैं अर्थात् किस ओर जावें—ऐसे कर्त्तव्य विमूढ होकर हम सब आपकी ही शरणागति में प्राप्त हुए हैं। जब तक पाताल लोक से उठकर काल कञ्जादिक असुर हे लोकेश्वर ! हमको बाधा पहुँचाते हैं तब तक आप भय से हमारी रक्षा करिए ॥१३६॥ यह जगतो का अतिक्रम किस कारण से होगया है—यह हम नहीं जानते हैं। इस विप्लव का क्या कारण है—यह भी हम नहीं समझते हैं ॥ १३७ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—दिव्यदर्शी पितामह ब्रह्माजी ने देवों के इस वचन का श्रवण करके एक क्षण पर्यन्त ध्यान करते हुए सुरोत्तमों से कहा—॥१३८॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ ! जिस कारण से यह लोकों का विप्लव हो रहा है उसका आप श्रवण करिए। देव सोम ने दाक्षायणी सत्ताईस संख्या वाली अश्विनी आदि को श्रेष्ठ वधू के रूप में भार्या बनाने के लिए उनके साथ परिणय किया था ॥१४०॥

परिणीय स ताः सर्वा रोहिण्यां सततं विधुः ।
प्रावर्त्ततानुरागेण न समस्तासु वर्त्तते ॥१४१
अश्विन्याद्यास्तु ताः सर्वा दौर्भाग्यज्वरपीडिताः ।
षड्विंशतिर्वरारोहा पितरं प्रस्थिताः स्वकम् ॥१४२
प्रवर्त्तते निशानाथो रोहिण्यां रागतो यथा ।

तास न तासु भजते तद्दक्षाय न्यवेदयत् ॥१४३
ततो दक्षो महाबुद्धि साम्ना सस्तूय विट्पतिम् ।
बहुसुनृतमाभाष्य पुत्र्यर्थे चान्वरोधत ॥१४४
अनुरुद्धो यथाकाम दक्षेण सुमहात्मना ।
सम प्रवर्तितु तासु समय कृतवान् विधु ॥१४५
सममशेषकृते भाव तासु स्तु हिमांशुना ।
स्व जगाम तत स्थान दक्षोऽपि मुनिसत्तम ॥१४६
गते दक्षे मुनिश्रेष्ठे वैषम्य तासु चन्द्रमा ।
अहो न भाव ता शश्वन् कुपिता पितर गता ॥१४७

उस सोम ने उन सबके साथ परिणय करके वह चन्द्र रोहिणी मे ही निरन्तर अनुराग मे प्रवृत्त हुआ था और अन्य सबमें वह अनुराग नहीं किया करता था ॥ १४१ ॥ वे सब अश्विनी आदि कन्याएँ दौर्भाग्य के ज्वर से प्रपीड़ित थीं। वे छब्बीस वर आरोहण वाली कन्याये अपने पिता के समीप मे गयी थी ॥ १४२ ॥ जिस प्रकार से निशानाथ अनुराग से रोहिणी में प्रवृत्त होता रहता है उस भाँति उन सबका सेवन नहीं किया करता है—यह सब उस प्रजापति दक्ष से निवेदन कर दिया था ॥१४३॥ इसके अनन्तर महा बुद्धिमान दक्ष ने सोम के द्वारा चन्द्रदेव की स्तुति करके और बहुत अधिक सूनृत वचनो से सम्भाषण करके अपनी पुत्रियो के लिये उससे अनुरोध किया था ॥१४४॥ यथेच्छ या महात्मा दक्ष के द्वारा अनुरुद्ध होकर चन्द्र ने उन सबमें समान ही प्रवृत्त होने की प्रतिज्ञा की थी। ॥१४५॥ चन्द्रदेव ने उन सब मे समान भाव रखने की बात स्वीकार करने पर वह मुनि श्रेष्ठ दक्ष भी अपने निवास स्थान को चला गया था ॥ १४६ ॥ उस मुनि श्रेष्ठ दक्ष प्रजापति के चले जाने पर चन्द्र ने उनमें विषमभाव का त्याग नहीं किया था और वे फिर निरन्तर क्रोधित होकर अपने पिता के समीप मे गयी थी ॥१४७॥

ततो दक्षः पुनश्चन्द्रमभ्यध्य सुतान्तरे ।
समां वृत्तिं प्रतिश्राव्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥१४८
न समं वर्तसे चन्द्र सर्वास्त्वासु भवान् यदि ।
तदा शप्स्ये त्वहं तुभ्यं तस्मात् कुरु ममाज्ञया ॥१४९
ततो गते पुनर्दक्षे न समं वर्तते यदा ।
तासु चन्द्रस्तदा दक्षं पुनर्गत्वाब्रवन् स्त्रियः ॥१५०
न ते वचः सत्करोति नैवास्मासु प्रवर्तते ।
वयं तपश्चरिष्यामः स्थास्यामश्च तवान्तिके ॥१५१
तासामिति वचः श्रुत्वा कुपितः स महामुनिः ।
क्षयाय चन्द्रस्य पुनः शापायाल्पकृतो गतः ॥१५२
शापायाद्य कृतमनसः कुपितस्य महामुने ।
क्षया नाम महारोगो नासिकाग्राद्विनिर्गतः ॥१५३
प्रेषितः स च चन्द्राय दक्षेण मुनिना ततः ।
प्रविष्टश्च ततो देहं क्षयिनस्तेन चन्द्रमाः ॥१५४

इसके अनन्तर पुनः दक्ष ने दूसरा पुत्री के विषय में अनुरोध किया था और समान व्यवहार रखने की प्रतिज्ञा कराकर उसने यह वचन कहा था कि हे चन्द्र ! यदि आप समान व्यवहार नहीं करेंगे और आप इन सबहों में अनुराग यदि न हो तो फिर तो मैं आपको शाप दे दूँगा । इस कारण से जो सबके अनुकूल अर्थात् समुचित हो वही आप व्यवहार सभी के प्रति करिए ॥१४८॥ इसके उपरान्त जब दक्ष के चले जाने पर उस चन्द्र ने समान बर्ताव नहीं किया तो पुनः दक्ष के समीप में जाकर क्रोध के साथ कहने लगी थी ॥ १५० ॥ वह चन्द्रदेव आपके वचनों का सत्कार नहीं करते हैं और वे हम सबमें प्रवृत्त नहीं होते हैं अर्थात् हम सबका सेवन कभी भी नहीं किया करते हैं । अतएव अब हम सब तपश्चर्या करेंगी और आपके ही समीप में स्थित रहा करेंगी ॥ १५१ ॥ उन अपनी पुत्रियों के इन वचनों को श्रवण करके

महामुनि दक्ष परम क्रोधित हो गये थे और फिर चन्द्रदेव के क्षय करने के लिये शाप देने को उत्सुक हो गये थे ॥ १५२ ॥ हे महामुने ! शाप देने के लिए उद्यत मन वाले और महान् कुपित हुए उन दक्ष प्रजापति की नासिका के अग्र भाग से क्षय नाम वाला एक महान् रोग निकल पड़ा था ॥१५३॥ उस महारोग को चन्द्रदेव के लिए प्रेषित कर दिया गया था जो कि मुनिवर दक्ष के ही द्वारा भेजा गया था। वह महारोग चन्द्रदेव के देह में प्रवेश कर गया था और उसने चन्द्र को क्षयित कर दिया था ॥१५४॥

क्षीणे चन्द्रे क्षयं याता ज्योत्स्नास्तस्य महात्मनः ।
क्षीणासु सर्वज्योत्स्नासु सर्वौषध्यः क्षयं गताः ॥१५५
औषध्यभावाल्लोकेऽस्मिन् न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
यज्ञाभावादनावृष्टिस्ततः सर्वप्रजाक्षयः ॥१५६
यज्ञभागोपभोगेन हीनानां भवतां तथा ।
दुर्बलत्वं समुत्पन्नं विकारश्च स्वगोचरे ॥१५७
इति वः कथितं सर्वं यथाभूल्लोकविप्लवः ।
येनोपायेन तच्छान्तिस्तच्छृण्वन्तु सुरोत्तमाः ॥१५८

चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर उस महात्मा की ज्योत्स्ना (चाँदनी) भी क्षय को प्राप्त हो गयी थी। ज्योत्स्ना के क्षीण हो जाने पर समस्त ओषधियाँ भी क्षय को प्राप्त हो गयी थी ॥१५५॥ ओषधियों के अभाव में इस लोक में यज्ञों की सम्प्रवृत्ति नहीं हुआ करती है। यज्ञों के न होने ही से वृष्टि का अभाव हो रहा है और समस्त प्रजाओं का क्षय हो रहा है। यज्ञ के भागों के उपयोग से हीन आप लोगों की दुर्बलता समुत्पन्न हो गई है और स्वगोचर में विकार हो गया है ॥१५७॥ यही सम्पूर्ण हमने आपको बतला दिया है जिस रीति से लोकों में विप्लव हो हो रहा है। हे सुरोत्तमो ! अब यह भी आप लोग श्रवण कर लीजिए कि जिस उपाय से इस विप्लव की शान्ति होगी ॥१५८॥

॥ चन्द्रमा का शाप विमोचन ॥

गच्छन्तु भो सुरगणा दक्षस्य सदनं प्रति ।
प्रसादयन्तु चन्द्रार्थे स च पूर्णो भवेद्यथा ॥१
पूर्णो चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ।
युष्माकञ्च भवेच्छान्तिरोषधीनाञ्चसम्भव ॥२
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा देवा शक्रपुरोगमा ।
प्रययुर्हृष्टमनसस्तदा दक्षनिवेशनम् ॥३
यथान्यायमुपस्थाय सर्वे मुनिवर सुरा ।
प्रोचु प्रजापतिं दक्षं प्रणम्य श्लक्ष्णया गिरा ॥४
प्रसीद सीदता ब्रह्मन्नस्माकं बहुदुःखिनाम् ।
उद्धरस्व महाबुद्धे त्राहि न शोकसागरात् ॥५
यद्रूप ब्रह्मसगन्तु सृष्टिकृत् परमात्मन ।
तदंशस्त्वं परं ज्योतिविप्रम्य नमोऽस्तु ते ॥६
रक्षणात् सर्वजगतां प्रजापालनकारणात् ।
दक्ष प्रजापतिश्चेति योगेशस्त्वं नमो वयम् ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे सुरगणो ! अब आप सब लोग दक्ष प्रजापति के गृह पर चले जाइये और उनको प्रसन्न करिये कि चन्द्रदेव पर वे कृपा करें और वह जैसे भी किसी तरह से पूर्ण हो जावें अर्थात् उनके क्षीण होने का महारोग दूर हो जावे ॥१॥ चन्द्रदेव के परिपूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में स्थित हो जायगा और आपको भी शान्ति की प्राप्ति हो जायगी तथा समस्त ओषधियों की समुत्पत्ति भी हो जायगी। ॥२॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—ब्रह्माजी के इस वचनामृत का श्रवण करके समस्त देवगण जिनमें इन्द्रदेव सबके आगे चलने वाले नायक थे परम प्रसन्न मन वाले होते हुए उस समय में दक्ष प्रजापति के सदन अर्थात् निवास स्थान पर गये थे ॥३॥ वहाँ पर सब सुरगणों ने नीति

के अनुसार उपस्थान करके मुनिवर प्रजापति दक्ष को प्रणाम करके बहुत ही श्लक्ष्ण अर्थात् विनम्रता संयुत मधुर वाणी से उन्होंने कहा ॥४॥ देवो ने कहा ॥४॥ देवो ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त दुःखित हमारे ऊपर प्रसन्न होइए—प्रसाद कीजिए। हे महा बुद्धे ! हमारी इस शोक के सागर मे रक्षा कीजिये और उद्धार करिये ॥५॥ सृष्टि की रचना करने वाले परमात्मा का ब्रह्मा संज्ञा वाला जो रूप है उन्ही के अंश आप परम ज्योति हैं। हे विप्ररूप ! आपके लिए हमारा नमस्कार है। समस्त जगतो की रक्षा करने से और प्रजा के पालन करने के कारण से दक्ष और प्रजापति आप योगश है उन आपको हम प्रणाम करते है ॥७॥

दक्षाय सर्वजगता दक्षाय कुशलात्मनाम् ।
दक्षायात्महितायाशु नमस्तुभ्य महात्मने ॥८
सतत चिन्त्यमानस्य योगिभिर्नियतन्द्रियैः ।
सारस्य सारभूतस्त्व दक्षाय परमात्मन ॥६
योगिवृत्तिरनाधृष्य पारगाणा परायण ।
आद्यन्तमुक्त सहसा तस्मै नित्य नमो नम ॥१०
इति तेषा वच श्रुत्वा दक्षो यज्ञभुजा तथा ।
प्राह प्रसन्नवदन शक्रमाभाष्य मुख्यत ॥११
मुत शक्र महाबाहो भवता दु खमागतम् ।
दु खहेतु वद विभो श्रोतुमिच्छाम्यहन्तु तम् ॥१२
ममास्ति वा किं कर्तव्य भवता दु खहानये ।
तदह यदि शक्नोमि करिष्यामि हित समम् ॥१३
तच्छ्रुत्वा वचन तस्य ब्रह्मसूनोर्महात्मन ।
जगाद वाक्पति श क्रो वीतिहोत्रोऽथ त मुनिम् ॥१४

समस्त जगतो के दक्ष के लिये और कुशल आत्मा वालो के दक्ष के लिए तथा आत्मा के हित के दक्ष के लिए महात्मा के लिए शीघ्र

आपके लिये नमस्कार है ॥८॥ नियत इन्द्रियों वाले योगियों के द्वारा निरन्तर चिन्तन किए हुए सारका भी आप सार भूत है। ऐसे परमात्मा दक्ष के लिये नमस्कार है ॥६॥ योगियों की वृत्ति को अनाधृष्ट करके पारगामियों मे परायण सहसा ही आद्यन्त कहा गया है उनके लिए नित्य ही नमस्कार है नमस्कार है ॥१०॥ इस प्रकार से कहे हुए उन यज्ञ के भागों का सेवन करने वालों के वचन को सुनकर दक्ष प्रसन्न मुख वाला होकर मृदु रूप से इन्द्रदेव को सम्बोधित करके बोले ॥११॥ दक्ष ने कहा—हे महाबाहो ! हे इन्द्र देव ! आपको यह महान् दुःख कैसे प्राप्त हो गया है ? हे विभो ! आप इस दुःख का हेतु तो बतलाइए। मैं उसके श्रवण करने की इच्छा कर रहा हूँ॥ १२॥ आप लोगों के दुःख की हानि करने के लिए मेरा क्या कर्त्तव्य होता है ? उसको यदि मैं कर सकता हूँ तो समहित अवश्य ही करूँगा॥ १३ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी के पुत्र के वचन का श्रवण करके नीति क्षेत्र वाक्पति इन्द्रदेव ने उस महा मुनि से कहा था ॥१४॥

क्षयी जातो निशानाथस्तस्मिन् क्षीणे क्षयं गताः ।
सर्वौषध्यो द्विजश्रेष्ठ तद्धानिर्यज्ञहानिकृत् ॥१५
यज्ञे विनष्टे सकला प्रजा क्षुद्भयकातरा ।
वृष्ट्यभावान्महद्दुःखं प्राप्य नष्टाश्च काश्चन ॥१६
क्षयोऽस्य रात्रिनाथस्य यस्ते कोपात् प्रवर्तते ।
स सर्वजगतो ब्रह्मन्नभावायोपस्थितः ॥१७
नाधुना तत् त्रिभुवने यन्न क्षव्य नु किंचन ।
विप्लुतं वास्ति विप्रेन्द्र स्थावरा पतगाश्च वा ॥१८
न यज्ञाः सप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।
आहारदुःखान्निःश्रीका प्रजा क्षीणा भयातुरा ॥१९
एवं प्रवृत्ते विप्रेन्द्र विप्लवेऽस्मात् रसातलात् ।
दैत्या न यावदुत्थाय बाधन्ते तावदुद्धर ॥२०

प्रसीद दक्ष चन्द्रस्य तं पूरय तपोबलात् ।
पूर्णे चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ॥२१

गोष्पतिशक्र नीति हो चो ने कहा – निशानाथ चन्द्र क्षयी अर्थात् क्षय होने वाला हो गया है । उसके क्षीण हो जाने पर सभी ओषधियाँ क्षय को प्राप्त हो गयी है । हे द्विज श्रेष्ठ उसकी हानि यज्ञों की हानि करने वाली है ।१५॥ यज्ञों के विनाश हो जाने पर सम्पूर्ण प्रजा क्षुधा के भय से कातर होगई हैं । कुछ तो प्रजा वृष्टि के अभाव से महान् दुःख को पाकर नष्ट हो गई हैं ॥१६॥ यह निशा नाथ चन्द्रमा का क्षय जो है वह आपके ही कोप मे प्रवृत्त हुआ है । हे ब्रह्मन् ! वह क्षय समस्त जगत् के अभाव के ही लिये उपस्थित हो गया है । अर्थात् इस क्षय से पूरे जगत् का ही विनाश हो जायगा ॥१७॥ इस समय मे ऐसा कुछ भी नही है जो क्षोभ से युक्त न होवे । हे विप्रेन्द्र ! अथवा सभी विप्लुत हैं चाहे स्थावर हो या जङ्गम होवे या पतग ही होवें ॥१८॥ इस समय मे न तो यज्ञ सम्प्रवृत्त हो रहे है और तापस गण ही तपश्चर्या किया करते हैं । आहार के अभाव के कारण होने वाले दुःख से समस्त प्रजा क्षीण और भय से आतुर हैं ॥१६॥ हे विप्रेन्द्र ! ऐसा प्रवृत्त होने पर इस रसा तिल से जब तक दैत्य उठकर बाधा नही पहुँचाते है तभी तक आप उद्धार कीजिए । २०॥ हे दक्ष ! चन्द्रदेव पर प्रसन्न होइए और अपने तपके बल से पूर्ण बना दीजिए । चन्द्रदेव के परिपूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रकृति मे स्थित हो जायगा ॥२१॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रजापतिसुतस्तदा ।
उवाच तान् सुरगणान् हृदयाच्छल्यमुद्धरन् ॥२२
यन्मे वचो निशानाथे प्रवृत्तं शापकारणम् ।
न केनापि निशानेन मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥२३
किन्तु मद्वचनं यस्मान्नैकान्तेन मृषा भवेत् ।
चन्द्रोऽपि वर्धते यस्मात्तदुपायमुदीरत ॥२४

तत्राप्ययमुपायोऽस्ति मासार्धं यातु चन्द्रमा ।
क्षय वृद्धिञ्च मासार्धं सम भार्यासु वर्त्तताम् ॥२५
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा त प्रसाद्य प्रजापतिम् ।
सर्वे सुरगणास्तत्र गता यत्रास्ति चन्द्रमा ॥२६
एवमुक्ते तु वचने दक्षेण मुनिना द्विजा ।
अथ चन्द्र सामादाय भार्याभि सहित तदा ।
जग्मुर्न्वे ब्रह्मभवनं मुदिता सुरसत्तमा ॥२७
तत्र गत्वा महाभागा यथा दक्षेण भाषितम् ।
तत्सर्वं कथयामासुर्ब्रह्मणे परमात्मने ॥२८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस प्रकार से उनके वचन का श्रवण करके उस समय में प्रजापति के सुत उन सुरगणों से हृदय से शल्य का उद्धार करते हुए बोले ॥२२॥ दक्ष प्रजापति ने कहा—जो मेरा वचन निशानाथ चन्द्र में शाप का कारन्यसन कर प्रवृत्त हुआ है उसको किसी भी निदान के द्वारा मैं मिथ्याभूत करने का उत्साह नहीं करता हूँ। ॥२३॥ किन्तु मेरा वचन भी एकान्त रूप से जिससे वृथा न होवे और चन्द्र भी बढ़ना हो जिससे वही उपाय देखिए ॥२४॥ उसमें भी एक उपाय है कि जो चन्द्रमा मास के आधे भाग में क्षय और वृद्धि को प्राप्त होकर भार्याओं में समान बरताव करे ॥२५॥ उस प्रजापति को प्रसन्न करके उसके उस वचन का श्रवण करके समस्त देवगण वहाँ पर गये थे जहाँ पर चन्द्रमा रहता है ॥२६॥ हे द्विजो ! दक्ष मुनि के द्वारा इस प्रकार से वचन के कहने पर इसके अनन्तर उस समय में भार्याओं के सहित चन्द्रमा का समादान करके वे परम प्रसन्न सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजी के भवन में गए थे ॥२७॥ हे महा भागो ! वहाँ पर पहुँच कर जैसा दक्ष प्रजापति ने कहा था वह सभी परमात्मा ब्रह्माजी से उन्होंने कह दिया था ॥२८॥

ब्रह्मा दक्षवच श्रुत्वा देवाना वचनात्तदा ।
चन्द्रभाग महाशैल जगाम सहित सुरै ॥२९

तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ प्रजानां हितकाम्यया ।
स्थापयामास शुभ्रांशुं बृहल्लोहितपुष्करे ॥३०
भूतभव्यभवज्ज्ञानं पूर्वमेव पितामहः ।
एतदर्थञ्चकाराय सरः पूर्णं जगद्गुरुः ॥३१
तत्र स्नातस्य जन्तोस्तु नीरोगत्वं प्रजायते ।
चिरायुष्ट्वञ्च सततं बृहल्लोहितमज्जने ॥३२
तत्र स्नातस्य चन्द्रस्य शरीरात्तत्क्षणं गदः ।
राजयक्ष्मा निर्गमाद पूर्वरूपो यथोदितः ॥३३
निःसृत्य राजयक्ष्मापि ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
प्रणम्याह किं करिष्ये क्व गच्छामीत्युवाच तम् ॥३४
स्थानं पत्नीञ्च लोकेश कृत्य मम सनातनम् ।
निदेशयानुरूपं मे स्रष्टा त्वं जगतां यतः ॥३५

उस समय में ब्रह्माजी देवों के गुरु से दक्ष प्रजापति के वचन का श्रवण करके वे फिर सब सुरों के साथ चन्द्र भाग नामक पर्वत पर जो कि एक महान् पर्वत था चले गये थे ॥२६॥ वहाँ पर सुरों म श्रेष्ठ ने जाकर प्रजाओं की हित की कामना से बृहल्लोहित पुष्कर म चन्द्र-देव को स्थापित कर दिया था ॥ ३० ॥ पितामह पूर्व म ही भूत भव्य और भवत् अर्थात् वर्त्तमान के ज्ञान से सयुत थे अतएव इसके ही लिए जगद्गुरु ने सरोवर को पूर्ण कर दिया था ॥ ३१ । उस सरोवर मे स्नान करने वाले जन्तु को नीरोगता हो जाया करती है । बृहल्लोहित नाम वाले मे स्नान करने से प्राणी चिरायु अर्थात् बड़ी उम्र वाला हो जाया करता है ॥३२॥ वहाँ पर स्नान किये हुए चन्द्र के शरीर से उसी क्षण मे रोग निकल गया था जिसका नाम राजयक्ष्मा था जैसा कि पूर्व रूप कहा गया है ॥३३॥ राजयक्ष्मा भी निकलकर जगत् के पति ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनसे बोला था कि मैं क्या करूँगा और कहाँ पर जाऊँगा ॥३४॥ क्योंकि आप इस सम्पूर्ण जगत् के सृजन करने वाले

है अतएव हे लोकेश ! मेरा सनातन कृत्य—स्थान और पत्नी का मेरे ही अनुरूप निदेश कीजिए ॥३५॥

ततो ब्रह्मापि त पुष्ट निरीक्ष्येन्दु शरीरगः ।
अमृतैस्तेनातियुक्तं क्षीणञ्चापि निशापतिम् ॥३६
दोर्भिः स्वय त्वं गृहीत्वा गिरौ निष्पीड्य वै मुहु ।
अमृतं गालयामास शरीराद्राजयक्ष्मण ॥३७
अमृतानि च यान्याशु गालितानि तदा जने ।
क्षीरोदस्य स चिक्षेप मध्ये ग्हमि लोकभृत् ॥३८
तस्मादस्यामृतादिन्दो कलाः क्षीणास्तु याः पुरा ।
तासा जग्राह लवशश्चूर्णान् क्षीरोदसागरात् ॥३९
कलामात्रावशेषश्च ससर्गाद्राजयक्ष्मण. ।
क्षीणा. कलाः पचदश या पूर्वममृतात्मिकाः ॥४०
ता राजयक्ष्मगर्भस्थाश्चूर्णीभूतास्तु पीडया ।
तेजोज्योत्स्ना सुधाभिस्तु निबद्धं यत् कलापतेः ॥४१
शरीरं तत् त्रिधा भूत गर्भस्थ राजयक्ष्मण. ॥४२

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर चन्द्रमा के शरीर में स्थित अवियुक्त अमृतों से परिपुष्ट उसको देखकर और क्षीण हुए चन्द्रमा को देखकर उन्होंने स्वय ही हाथों से उसका ग्रहण करके गिरि में बार-म्बार निष्पीडित किया था और उस राजयक्ष्मा के शरीर से उस अमृत को गालित किया था ॥३७॥ उस समय में जो शीघ्र ही अमृत जल में गलित किये गये थे। लोकभृत् ने क्षीर सागर के मध्य में एकान्त में प्रक्षिप्त कर दिया था ॥३८॥ जो पहिले इसके उस अमृत से चन्द्र की कलाएं क्षीण हो गयी थी उनके चूर्णों के क्षीरोद सागर से लव से ग्रहण किया था ॥ ३९ ॥ राजयक्ष्मा के ससर्ग से एक कला मात्र ही शेष वाले इसकी क्षीण हुई पन्द्रह कलाऐं जो पूर्व में अमृत से परिपूर्ण थी ॥४०॥ वे राजयक्ष्मा के गर्भ में स्थित थी और पीड़ा से चूर्णी भूत थीं वे

ज्योत्स्ना से अमृता से जो कलापति का निबद्ध शरीर था वह राजयक्ष्मा के गर्भ में स्थित तीन प्रकार का हो गया था ॥४१—४२॥

ज्योतिश्चूर्णमभून् ज्यात्स्ना लीना राजदि मणि ।
द्रवीभूता सुधा सवा गभ रागस्य च म्थिता ॥४३
यदा निर्गालयामास सुधा ब्रह्मा यक्ष्मान्तरात् ।
तदा ज्योत्स्नासुधाज्योति सर्वं तस्माद्बहिर्गतम् ॥४४
क्षीरोदसागरे क्षिप्त तत् सव विधिना तदा ।
देवान गिरौ परित्यज्य स्वय गत्वा द्रुत तत ॥४५
ततोऽमृतानि प्रक्षाल्य कलाचूर्णानि वारिभि ।
ज्योत्स्नाञ्चाप्याजगामाशु गृहीत्वा तत्त्रय गिरिम् ॥४६
क्षीरोदाद्गिरिमासाद्य चन्द्रभाग तदा विधि ।
देवमध्ये कलाचण सुधाज्योत्स्ना न्यवीविशत ॥४७
सस्थाप्य तत्त्रय ब्रह्मा देवाना मध्यन स्थित ।
जगाद राजयक्ष्माण तत् स्थानादि निदेशयन् ॥४८

वह ज्योति से परिपूर्ण हो गया था और ज्योत्स्ना राजयक्ष्मा में लीना हो गई थी और रोग के गर्भ में स्थित सम्पूर्ण सुधा द्रवीभूत हो गई थी ॥ ४३ ॥ जिस समय में ब्रह्माजी ने राजयक्ष्मा के अन्दर से सुधा को निर्गलित किया था उस समय मे समस्त ज्योत्स्ना सुधा की ज्योति उमसे बाहर गत हो गई थी ॥४४॥ उसी समय में विधाता के द्वारा वह सम्पूर्ण क्षीरोद सागर म प्रक्षिप्त करदी गयी थी। सब देवो को उस पर्वत म परित्याग करके वह स्वय वहा से शीघ्र ही गमन कर गए थ ॥४५॥ इसके उपरान्त कला चूर्ण अमृतो को जल से प्रक्षालित करके उन तीनो को ग्रहण करके शीघ्र ही ज्योत्सना का भी प्रक्षालन करके उस गिरि पर समागत हो गए थे ॥४६॥ उस समय म विधाता क्षीरोद से चन्द्र भाग पवन पर पहुँच कर देवो के मध्य म सुधा ज्योत्मना कलाओं के चूर्ण म प्रविष्ट हो गयी थी ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजी ने उन तीनो को सस्थापित करके वे देवो के मध्य म सस्थित हो गए थे। उसके

स्थान आदि के विषय में निर्देश करते हुए उन्होंने राज यक्ष्मा से कहा था ॥४८॥

सर्वदा यो दिवारात्र सन्ध्यायां वनितारत ।
सेवते सुरत तस्मिन् राजयक्ष्मन् वसिष्यसि ॥४९
प्रतिश्याय श्वासकास-सयुक्तो मैथुन चरेत् ।
स ते प्रवेश्य सतत श्लेष्मणश्च तथाविध ॥५०
कृष्णाद्या मृत्युपुत्री या भवत सदृशी गुणं ।
सा तेऽस्तु भार्या सतत त्वत्समनुयास्यति ॥५१
क्षीणत्व भवत कृत्य ततस्त्व विषय कुरु ।
द्रुत गच्छ यथाकाम चन्द्रात् त्व विमुखो भव ॥५२
एव विसृष्टो विधिना राजयक्ष्मा महागद ।
पश्यत सर्वदेवानामन्तर्धान जगाम ह ॥५३
अन्तर्हिते महारोगे ब्रह्मा लोकपितामह ।
चन्द्रं समग्रयामास कलापञ्चदशैर्धितम् ॥५४
तेन क्षीरोदधौतेन सुधापूतेन चाप्यम् ।
सद्योनूत्नस्तु कलाचूर्णं पूर्ववच्चाकरोद्विभुम् ॥५५
स षोडशकलापूर्ण. पूर्ववद्विबभौ यदा ।
चन्द्रस्तदा सर्वदेवा मुमुदुस्तस्य दर्शनात् ॥५६
अथ चन्द्रस्तदा पूर्ण. प्रणिपत्य पितामहम् ।
उवाचेद गुरुमदोमध्यगो नाति हर्षित. ॥५७

ब्रह्माजी ने कहा—हे राज यक्ष्मा ! जो सर्वदा ही रात दिन सन्ध्या के समय में वनिता में रत रहा करता है और उसमें सुरत का सेवन किया करता है वहीं पर ही आप निवास करेंगे ॥४९॥ जो प्रतिश्याय (जुकाम-सर्दी) श्वास और कास से समन्वित होता हुआ भी मैथुन करने का समाचरण किया करता है और श्लेष्मा (कफ) का इसी प्रकार वाला हुआ करता है उसमें ही आपका प्रवेश होना चाहिये।

॥५०॥ जो कृष्ण नाम वाली मृत्यु की पुत्री है और आपके गुणों के ही तुल्य है वही आपकी भार्या होवेगी जो निरन्तर ही आपका अनुगमन किया करेगी ॥५१॥ आपका कर्म भी यही है कि क्षीणता करें उसी को आप अपना विषय बना लेवे । अब आप बहुत ही शीघ्र चले जाइये और आप चन्द्र से विमुख ही हो जाइए ॥५२॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस रीति से विधाता के द्वारा विदा किये हुए महान् रोग राजयक्ष्मा समस्त देवगणों के देखते हुए ही अन्तर्धान को प्राप्त हो गया था ॥५३॥ उस महान् रोग के अन्तर्धान हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को पन्द्रह कलाओं के द्वारा समृद्ध पूर्ण कर दिया था ॥५४॥ फिर ब्रह्माजी ने सुधा से पूत और क्षीरोद से धौत उसके द्वारा तथा ज्योत्स्ना के सहित कलाओं के चूर्णों से पूर्व की ही भाँति चन्द्रदेव को कर दिया था ॥५५॥ जिस समय में सोलहों कलाओं से परिपूर्ण चन्द्र पूर्व की ही भाँति शोभित हुआ था उस समय में समस्त देवगण उसके दर्शन से बहुत ही अधिक प्रसन्न हुये थे ॥५६॥ इसके अनन्तर उस पूर्ण चन्द्र ने पिता मह के लिये प्रणिपात किया था अत्यन्त हर्षित न होते हुए सुरों ने सभा के मध्य में सम्स्थित होते हुए यह वचन कहा था ॥५७॥

न श्यामं पूर्ववद् ब्रह्मञ्छरीरे मम वर्तते ।
न वीर्यं वा तथोत्साहो निषीदन्त्यगसन्धयः ॥५८
नोत्सहे पूर्ववच्चेष्टा विधातुं सुतरामहम् ।
चेष्टाहीनस्त्वनुदिनं वर्तेयं केन लोककृत् ॥५९
ग्रस्तस्य यक्ष्मणा सोम यदभूदगसन्धयः ।
पूर्वं विशीर्णा भवतस्तत्पूर्णमभवन्नहि ॥६०
अधुना भवतो देहपूर्णं निःसारितं मया ।
शरीरात् सामृतज्योत्स्नमञ्जसा राजयक्ष्मणः ॥६१
तेषां प्रक्षालनविधौ तवशो यत्स्थितो जले ।
ज्योत्स्नायाश्च सुधायाश्च तेन हीनो भवान् यतः ॥६२

ततोऽङ्गसन्धयो राजस्तव सीदन्ति साम्प्रतम् ।
तस्योपायं विधास्यामि यथा नार्ति लभेद्भवान् ॥६३

सोम देव ने कहा—हे ब्रह्माजी ! मेरे शरीर में पूर्व की ही भाँति श्यामता नहीं है और न तो वैसा पराक्रम ही और न वैसा उत्साह ही है। मेरे अङ्ग की सन्धियाँ निपीडित हैं ॥५८॥ मैं पहिली ही भाँति चेष्टायें करने के लिये मुतरां अर्थात् अपने आप ही उत्साहित नहीं होता हूँ। हे लोक हृत ! मैं निरन्तर चेष्टा मे हीन होता हुआ किस कारण से रहता हूँ ॥५९॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे सोम यक्ष्मा के द्वारा ग्रस्त आपकी जो अङ्ग की सन्धियाँ हो गई हैं वे पूर्व में विशीर्ण हो गई हैं और अब वह पूर्णता को प्राप्त नहीं हैं ॥६०॥ अब इस समय में मैंने आप से देह का चूर्ण निकाल लिया है। राज यक्ष्मा के शरीर में अमृत की ज्योत्स्ना शीघ्र ही निकाल दी है ॥ ६१ ॥ उनके प्रक्षालन की विधि में जो जल के रूप में उदर में स्थित है क्योंकि आप ज्योत्स्ना में और सुधा से उसी में हीन हैं ॥ ६२ ॥ इसके उपरान्त आपकी अङ्ग सन्धियाँ हे राजन् ! इस समय में सीदित हो रही हैं। उपाय भी मैं करूँगा जिससे आप किसी पीड़ा को प्राप्त न होवें ॥६३॥

प्राजापत्य पुरोडाशो हवनीय पुरोऽध्वरे ।
ऐन्द्रस्ततोऽनु चाग्नेय प्रदेय सर्वत सतो ॥६४
ततो नु भवतो भाग पुरोडाशो मया कृत ।
तेन भागेन भुक्तेन नित्य यज्ञकृतेन हि ।
पूर्ववत् ते समुत्साह श्याम वीर्य भविष्यति ॥६५
ये चामृतकणास्तोये क्षीरोदस्य स्थितास्तव ।
शरीरचूर्ण वा यत्ते ज्योत्स्नाश्चापि ये लवाः ॥६६
तत् सर्वं भवतो ज्योत्स्नायोगादनुदिन विधो ।
वृद्धि यास्यति सतत क्षीरसागरसंगमम् ॥६७

स्वारोचिषेऽन्तरे प्राप्ते द्वितीये शंकरांशज ।
दुर्वासा भविता विप्र प्रचण्डश्चण्ड भानुवत् ॥६८
स देवेन्द्रस्याविनयाच्छाप दत्वा सुदारुणम् ।
करिष्यति त्रिभुवन नि श्रीक ससुरासुरम् ॥६९
श्रिया हीने ततो लोके भविता लोकविप्लव ।
यथा तव क्षयात् सोम प्रवृत्त सर्वविप्लव ॥७०

पुर के अन्दर म पाज पत्य पुरोडाश का हवन करना चाहिए। इसके उपरान्त ऐन्द्र और पीछे आग्नेय सभी ऋतुओं म देना चाहिए। ॥६४॥ इसके अनन्तर आपका भाग पुरोडाश मैंने किया है। उस भाग के भोग करने वाले ओ नित्य ही यज्ञ के द्वारा तृप्त है पूर्व की ही भाँति आपका उत्साह और श्याम वीर्य हो जायगा ॥६५॥ जो आपके अमृत के कण क्षीरोद के जल मे स्थित हैं अथवा आपके शरीर का चूर्ण और ज्योत्सना के जो लव है। हे विधो! वह सब आपकी ज्योत्सना योग मे अनुदिन वृद्धि को प्राप्त होगा जो निरन्तर क्षीर सागर के गर्भ म गमन करने वाला है ॥ ६७ ॥ द्वितीय स्वरोचिष के अन्तर मे प्राप्त होने पर शङ्कर के अन्श मे जायमान दुर्वासा विप्र सूर्य की ही भाँति प्रचण्ड और चण्ड होगा ॥६८॥ उसने देवेन्द्र के अविनय मे सुदारुण शाप दे दिया था सुर और असुरो के सहित तीनो भुवनो को बिना श्री वाला कर देगा ॥६९॥ फिर लोक के श्री से हीन होने पर लोक मे विप्लव ही आयगा। हे सोम! जिस तरह से आपके क्षय होने मे सर्वत्र विप्लव प्रवृत्त हो गया था ॥७०॥

तन्मानुपप्रमाणेन तृतीये तु कृते युगे ।
भविष्यति स्थास्यति च यावद् युगचतुष्टयम् ॥७१
ततश्चतुर्थे सम्प्राप्ते सह देवै कृते युगे ।
क्षीरोद निर्मथिष्याम सम्भूर्विष्णुरह तथा ॥७२
मन्थान मन्दर कृत्वा नेत्र कृत्वा तु वासुकिम् ।
यज्ञभागेषु लीनेषु देवानार्थं वय तत ।

मथिष्याम सह देवैः क्षीरोदं सह दानवैः ॥३३
त्वच्छरीरामृतमिदं यत्स्थितं क्षीरसागरे ।
तत् प्रमथ्य ग्रहीष्यामो राशीभूतं तथा क्षयम् ॥३४
सर्वौषध्यन्तरे कृत्वा त्वच्छरीरं तदा वयम् ।
क्षेप्स्यामः सागरजले शरीरार्थं विभो तव ॥३५
निर्मथ्य सागरं पश्चात् समुद्धार्य यदामृतम् ।
तदा तव वपुस्तस्मिन् पूर्ववत् सम्भविष्यति ॥३६
ओजोवीर्याद्भुतं कान्तमक्षयं च सुधात्मकम् ।
दृष्टाङ्गसन्धिकं चारु भविष्यति वपुस्तव ॥३७

जब मानुष के प्रमाण से तीसरे युग न होगा और जब तक आगे युग नहीं स्थित रहेगा ॥३१॥ इसके अनन्तर देवों के साथ चतुर्थ कृतयुग के सम्प्राप्त होने पर मैं—ब्रह्मा और विष्णु क्षीरोद का निर्मन्थन करेंगे ॥३२॥ मन्दराचल को मन्थान करके अर्थात् मथन करने का साधन बनाकर फिर वासुकि सर्प को नेत्र बनायेंगे। सब भागों के लीन होने पर देवताओं के लिए हम फिर हम देवों के तथा दानवों के साथ मिलकर क्षीरोद का मन्थन करेंगे ॥३३॥ आपके शरीर का यह अमृत जो क्षीर सागर में स्थित है उसको प्रमथन करके हम राशिभूत तथा क्षय को ग्रहण करेंगे ॥३४॥ उस समय में हम आपके शरीर को सर्वौषधियों के अन्तर में करके हे विभो ! आपके शरीर के लिये सागर के जल में प्रक्षिप्त कर देंगे ॥३५॥ सागर का विनिर्मन्थन करके और पीछे जब अमृत का समुद्धरण करेंगे तो उस समय में आपका वपु पूर्व की ही भाँति सम्भूत होगा ॥३६॥ ओज और वीर्य से अद्भुत—कान्त—अक्षय और सुधात्मक अर्थात् सुधा से परिपूर्ण—दृष्ट अङ्ग की सन्धियों वाला आपका शरीर परम सुन्दर हो जायगा ॥३७॥

सुधांशुमेवमाश्वास्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
विधोः क्षयाय मासार्धं वृद्धये यत्नवानभूत् ॥३८

यथा दक्षेण गदिता मासार्धं यातु चन्द्रमा ।
क्षय वृद्धि च मासार्धं यत्न तत्राकरोद्विधि ॥७६
तत पोडशधा चन्द्र सुरज्येष्ठो विभक्तवान् ।
विभज्य च सुरान् सवान् समुवाचेदमुत्तमम् ॥८०
कला पोडश चन्द्रस्य तत्रका शम्भुमूर्धनि ।
तिष्टत्वद्यावधि परा क्षय क्षान्तु क्षय विना ॥८१
क्षयेण यदि रोगेण मासार्धं दक्षवाक्यत ।
क्षयाय पीडयते चन्द्रा नोपशान्तिस्तदा भवेत् ॥८२
किंत्वस्य या कला शम्भौ ज्योत्स्ना गच्छतु ता प्रति ।
चतुर्दशकलासस्था प्रतिमास सुरोत्तमा ॥८३
चतुर्दशकलामस्यान्यमृतानि पिबन्तु वै ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य भवन्तस्ता चतुर्दशीम् ॥८४

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने इस प्रकार से सुधांशु (चन्द्रमा) ने कहकर चन्द्र के क्षयके लिये और आधे मास तक वृद्धि के लिये यत्नो वाला हुए थे ॥ ७८ ॥ जैसा प्रजापति दक्ष ने कहा था कि चन्द्रमा आधे मास तक क्षय और वृद्धि को प्राप्त होवे उस मासार्ध में विधाता ने यत्न किया था ॥ ७६ ॥ फिर सुरों में ज्येष्ठ ने चन्द्रमा को सोलह प्रकार से विभक्त किया था । और ऐसा विभाग करके समस्त देवों से य यह उत्तम वचन बोले थे ॥ ८० ॥ चन्द्रमा की सोलह कलाएँ हैं उनमें एक भगवान् शम्भु के मस्तक में आज की अवधि पर्यन्त स्थित रहे और परामय के बिना ही क्षय को प्राप्त होवें ।८१। दक्ष के वाक्य से यदि क्षय रोग से मासार्ध तक क्षय के लिए चन्द्र प्रपीडित किया जाता है तो उस समय में उपशान्ति नहीं होगी ।८२। किन्तु इसकी जो कला शम्भु में है ज्योत्स्ना उसके ही प्रति गमन करे । हे सुरोत्तमो ! प्रति मास में चौदह कलाओं की संस्था है ।।८३।। आप लोग प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके चतुर्दशी पर्यन्त चतुर्दश कलाओं में संस्थित अमृतों का पान करें ।८४।

तेजोभोगा सूर्य्यबिम्ब चतुर्दशतिथौ क्रमात् ।
प्रविशन्तु क्षय त्वेव कृष्णपक्षे विधोर्भवेत् ॥८५
यातु शेषा कला दर्शे हरित्पत्रे पलायिता ।
तिष्ठतु प्रथमे भागे तिथौ तस्या निशापते ॥८६
द्वितीये दर्शभागे तु रोहिण्या यातु मन्दिरम् ।
तृतीये तु सरस्वत्या स्नात्वा समुत्थितो विधु ॥८७
चतुर्थे वलसम्पूर्णस्तिथिभागे विभावसो ।
मण्डल यातु चन्द्रोऽथ सबिम्बस्थघोटक ॥८८
यावत् कालेन हि कला प्रथमा क्षयमाप्नुयात् ।
एवमेव कृष्णपक्षे तावत् सा प्रतिपद् भवेत् ॥८९
द्वितीयादौ कृष्णपक्षे वृद्धि-ह्रासस्तथाविध ।
तिथीना वृद्धिहेतुश्च शुक्ले कृष्णे तथा भवेत् ॥९०
तत पुन शुक्लपक्षे यावत् पूर्वकलोदिता ।
वृद्धि नैति भवेत्तावत् प्रतिपत्तिथिरुदित ॥९१

तेजो के लोग चतुर्दशी तिथि म क्रम से सूर्य के बिम्ब मे प्रवेश करें । इस प्रकार मे कृष्णपक्ष मे चन्द्र का क्षय होता है ॥ ८५ ॥ शेष कला हरित्पत्र मे पलायित दश म जावे । उस तिथि मे निशापति के प्रथम भाग मे स्थित रहे ॥८६॥ द्वितीय दर्श-भाग मे रोहिणी के मन्दिर मे गमन करे । तीसरे भाग मे सरस्वती मे स्नान करके चन्द्र समुत्थित होता है ॥ ८७ ॥ विभावसु के चतुर्थ तिथिभाग मे वह बल मे सम्पूर्ण होता है । बिम्ब मे स्थित घोटक के सहित यह चन्द्रमा मण्डल मे जावे ॥ ८८ ॥ जितने समय पर्यन्त प्रथमा कला क्षय को प्राप्त होवे इसी प्रकार से कृष्णपक्ष मे तब तक वह प्रतिपदा होती है ॥ ८९ ॥ द्वितीयादि मे कृष्ण पक्ष म उसी प्रकार का वृद्धि तथा ह्रास होता है । तिथियो की वृद्धि का हेतु शुक्ल और कृष्ण मे उसी भाँति होता है । ॥९०॥ इसके अनन्तर फिर शुक्ल पक्ष मे जब तक पूर्व कला उदित

होती है तब तक वृद्धि की नहीं जाती है और आदि स प्रतिपदा तिथि है॥ ८१॥

ततो द्वितीयभागस्य या ज्योत्स्ना हरमूर्धनि।
स्थिता या वै कला यातु गता सापुनरेप्यति।
युष्माभिस्तु भवेत् पेयममृतं यद्दिने दिने ॥८२
तद्द्वितीयादितिथिभि पूर्णान्ताभि सदैव हि।
स्वयमुत्पत्स्यते चन्द्रो ज्योत्स्नायोगात् सुरोत्तमा ॥८३
यथा दिने दिने भागा क्षय यान्ति तथा विधो।
वृद्धि गच्छन्त्यनुदिन शुक्लपक्षेऽन्वह सुरा ॥८४
तेजोभाग सूर्यबिम्बात् पुनरेव समेष्यति।
प्रयास्यति कृष्णपक्षे यथा भागक्रम तथा ॥८५
ज्योत्स्ना हरशिरश्चन्द्रात् प्रत्यह पुनरेष्यति।
तेजोभाग सूर्यबिम्बादमत वपति स्वयम् ॥८६
एव वृद्धि शुक्लपक्षे सुधाशो सम्भविष्यति।
पक्षयो शुक्लकृष्णत्व चन्द्रवृद्धिक्षयाद्भवेत ॥८७
यावत् कालेन यो भाग क्षय वृद्धि च यास्यति।
तावत् कालमभिव्याप्य तिथि स्यास्यति सा पुन ॥८८

इसके अनन्तर द्वितीय भाग की जो ज्योत्स्ना भगवान् हर के मस्तक म है और जो स्थिता है वह जाव और गयी हुई वह फिर आ जायगी। आपके द्वारा दिन दिन म अमृत पीने के योग्य होता है।८२। ह सुरोत्तमो! वह पूण अन्त वाली द्वितीया आदि तिथियो से सदा ही चन्द्र स्वय ही उत्पन्न होगा क्योकि वहाँ पर ज्योत्स्ना का योग होता है उसी स उसकी समुत्पत्ति होगी ॥८३॥ जिस प्रकार स दिन दिन म भाग क्षय को प्राप्त होते है व अनुदित चन्द्र की वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ह सुरो! शुक्लपक्ष म भी प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त हुआ करते है ॥८४॥ सूर्य के बिम्ब स तेज का भाग पुन ही समागत होगा। जिस प्रकार म कृष्ण पक्ष म उसी भाँति भाग के क्रम को प्राप्त होगा।

॥९८॥ भगवान् शम्भु के मस्तक में स्थित चन्द्रमा से ज्योत्स्ना प्रतिदिन पुनः आयगी। सूर्य के बिम्ब में तजोभाग स्वयं ही अमृत की वर्षा करता है ॥९६॥ इसी प्रकार से शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होगी। दोनों पक्षों यथा शुक्लत्व और कृष्णत्व के नाम हैं व चन्द्रमा के क्षय और वृद्धि से ही हुआ करते हैं। जब चन्द्र वृद्धि को प्राप्त होता है तब उस शुक्ल पक्ष कहा जाता है और जब क्षय को प्राप्त होता है तो उस कृष्ण पक्ष पुकारा जाया करता है ॥९७॥ जितने काल में होता जो भाग क्षय और वृद्धि को प्राप्त होता उतने ही काल का अभिप्राय करके यह तिथि स्थित रहती ॥९८॥

विरहेण वृद्धिर्यदि या क्षयो वा त्वत्तन्न वृद्धिर्यदिवा क्षयो वा ।
कृतानि शीतांशु सदा क्षयं स्यात्सिनीवालीषु वृद्धिर्विष्णु प्रवेशे ॥९९
हव्यं कव्यञ्च चन्द्रेण विना न सम्भविष्यति ।
तस्मादायो प्रवृद्धयर्थं चन्द्रं त्वन्तु देवता ॥१००
आस्वादनीय शुभ्रांशु स्त्वादौ सोऽनुपासन ।
अमावास्यागतार्थे तु पितृणां रोहिणीगृहं ॥१०१
सर्वेषामास्वादनात् तस्य वृद्धि यास्यति सास्यहम् ।
तेन धर्मेण पितरस्तृप्तिं यास्यन्ति वै परम् ॥१०२
तत्र शृङ्गाणां सर्वं यथोक्तेन विधिना तथा ।
ततः शीरहितार्थाय चन्द्रस्य क्षय यन्त्रे ॥१०३
महादेवोऽपि चन्द्रार्द्ध स्वरूप परमात्मन ।
जटायां देवविधिना जिह्मा धारितो भृशम् ॥१०४
ततोऽत्र परन्तु नित्यमनयमव्ययमव्ययम् ।
तत्स्वरूपा चन्द्रकला प्राणाम्नु क्षय गता ॥१०५

विरहकाल में वृद्धि अथवा क्षय अथवा ज्योत्स्ना में वृद्धि अथवा मन्द ही हम में अर्थात् ज्योत्स्ना में सिनीवाली का सदा क्षय होता है और विरहकाल में सिनीवाली में प्रवेश से वृद्धि होती है ॥९९॥ हव्य और कव्य चन्द्र के बिना सम्भव न होगा। इस कारण से उसकी वृद्धि

के लिये है देवताओ ! आप लोग चन्द्रदेव की रक्षा करे ॥१००॥ अनुमास से कला शेष चन्द्रदेव का आस्वाद करना चाहिये। अमावास्या मे अपराह्न काल मे तो वह पितृगणों के साथ रोहिणी के मन्दिर मे रहता है ॥१०१॥ उसके ही आस्वादन से प्रतिदिन कला की वृद्धि हुआ करती है। उस कव्य से पितृगण भी परा तृप्ति को प्राप्त होंगे ॥ १०२ ॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर सभी सुरगण जैसा भी विधाता ने कहा था वैसा ही उन्होंने चन्द्र की क्षय और वृद्धि के लिए लोक के हित के सम्पादन की कामना की थी ॥ १०३ ॥ महादेवजी ने भी परमात्मा के स्वरूप चन्द्रमा के अर्ध भाग को देवों के सहित विधिपूर्वक अत्यन्त क्षुधित होकर शिर मे ग्रहण किया था। ॥ १०४ ॥ जो तत्व पर—नित्य—अज—अव्यय और अक्षय है उस स्वरूप वाली ही चन्द्रमा की कला है जो आप मे ही क्षय को प्राप्त हो गई थी ॥१०५॥

प्रविशति यदा ज्योतिरानन्दमजर परम् ।
योगिनस्तु तदा तेषा चिन्तन लीनमेष्यति ॥१०६
महादेवशिर सस्थे लीने चिरो सुधानिधौ ।
चन्द्रद्वारा भवेन्मुक्तिरित्येय वैदिकी श्रुति ॥१०७
एतज् ज्ञात्वा महादेव क्षयवृद्धयविनाकृतम् ।
हिताय सर्वजीवाना जग्राह शिरसा विधुम् ॥१०८
चन्द्रज्योत्स्नासमायोगादोषध्यो याति वृद्धये ।
सर्वौषधिषु वृद्धासु प्रवर्तन्ते ततोऽध्वरा ॥१०९
अध्वरेषु प्रवृत्तेषु स्वान् स्वान् भागास्तु देवता ।
परिगृह्णन्ति पितरस्तथा कव्यानि भूरिश ॥११०
अमृत ब्रह्मणा सृष्ट यद् देवेभ्य पुरातनम् ।
तेन तृप्यन्ति क्षीणा ये हव्यभागेन देवता ॥१११
यत्तेनाप्यायितं तच्च ज्योत्स्नाभिर्वृद्धिमेति यै ।
ससाज्यो स्या दिवामृत तत्त्व स्यात् क्षीणमन्यथा ॥११२

ब्रह्मणा पर्वतश्रेष्ठे यथा तच्चन्द्रभागत. ॥११७
यज्ञभागे स्थिते यस्माद्देवान्नमकरोद्विधुम् ।
कव्ये स्थितेऽपि पित्रन्न तिथिवृद्धि-क्षया यथा ॥११८
इद पुण्यतमाख्यान य शृणोति सकृन्नर ।
राजयक्ष्मा तस्य कुले न कदाचिद् भविष्यति ॥११९
यक्ष्मणा परिभूतो य शृणोति वचन विधे ॥१२०
इद स्वस्त्ययन पुण्य गुह्याद्गुह्यतम शुभम् ।
य शृणोत्येकचित्त सन् स महापुण्यभाग्भवेत् ॥१२१

अतएव यज्ञ के अमृत का धारण भी चन्द्रमा ही स्वय होता है अतएव दक्ष प्रजापति के शाप मे रक्षा के लिए विकल्पित होता है । ॥११३॥ आज भी कृष्ण पक्ष में सुरगणों के द्वारा चन्द्र का पान किया जाया करता है । तेज तो सूर्य देव को चला आता है और चन्द्र का अर्धभाग तथा उसकी ज्योत्स्ना भगवान् शम्भुदव के समीप म चले जाया करते हैं ॥११४॥ और फिर शुक्ल पक्ष मे शेप कला उदित हुआ करती है । ज्योत्सना का दूसरा भाग और द्वितीय तेज का भाग और अन्य भी शिव के मस्तक मे सस्थित चन्द्रमा से और क्रम से सूय के बिम्ब से चन्द्र की सोलह कलायें है उनमे एक भगवान् शम्भु के मस्तक मे रहा करती है ॥११६॥ शेप कलाओ के सित और असित अर्थात् शुक्ल और कृष्ण ये दोनो पक्ष उदय और क्षय वाले हो होते है । यह सब मैंने आपको बतला दिया है जिस प्रकार से भी चन्द्रमा का विभाग किया गया है जिस रीति से ब्रह्मा के द्वारा उस श्रेष्ठ पर्वत म चन्द्रमा समागत हुआ था ॥११७॥ जिस कारण से यज्ञ भाग के स्थित होने पर विधु को देवो का अन्न किया था । जिस तरह से कव्य के स्थित होने पर भी पितृगण का अन्न तिथियो का क्षय और वृद्धि होता है ॥११८॥ इस परम पुण्यतम आख्यान को जो भी कोई मनुष्य एक बार भी श्रवण कर लिया करता है उस के कुल म राज यक्ष्मा का महारोग कभी भी

गयी थी ॥८॥ उस समय में सागर ने भी महा नदी चन्द्रभागा भार्या को उस जल के प्रवाह से उसको अपने भवन में ले गया था ॥ ९ ॥ इसी रीति से उसमें चन्द्रभागा नाम वाली नदी समुत्पन्न हुई थी । वह चन्द्रभाग महान् शैल में अपने गुण गणों के द्वारा सदा गङ्गा के ही समान थी ॥१०॥ नदियाँ और सब पर्वत स्वभाव से ही दो रूपों वाले सदा हुआ करते हैं । नदियों का रूप तो उनका जल ही होता है तथा शरीर दूसरा ही हुआ करता है ॥११॥ पर्वतों का रूप तो स्थावर ही होता है और उनका शरीर दूसरा होता है । जैसे शुक्तियों का और कम्बुओं का अन्तर्गत तनु होता है ॥१२॥ स्वरूप तो बाहिर होता है और वह सर्वदा ही प्रवृत्त हुआ करता है । इसी प्रकार से जल तथा उस समय में नदी और पर्वत का स्थावर होता है ॥१३॥ उनका काम सदैव अन्तर में वास किया करता है और निरन्तर उपपन्न नहीं होता है ॥१४॥

आप्याय्यते स्थावरेण शरीरं पर्वतस्य तु ।
तथा नदीनां कायस्तु तोयेनाप्याय्यते सदा ॥१५
नदीनां कामरूपित्वं पर्वतानां तथैव च ।
जगत्स्थित्यै पुरा विष्णुः कल्पयामास यत्नतः ॥१६
तोयहानौ नदीदु.ख जायते सततं सुरा. ।
विशीर्णे स्थावरे दु ख जायते गिरिकायम् ॥१७
तस्मिन् गिरौ चन्द्रभागे बृहल्लोहिततीरगाम् ।
सन्ध्यां दृष्ट्वा पप्रच्छ वसिष्ठ. सादरं तदा ॥१८
किमर्थमागता भद्रे निर्जनं तु महीधरम् ।
कस्य वा तनया गौरि किं वा तव चिकीर्षितम् ॥१९
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यदि गुह्यं न ते भवेत् ।
वदनं पूर्णचन्द्राभं निःश्रीकं वा कथं तव ॥२०
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।

दृष्ट्वा च त महात्मान ज्वलन्तमिव पावकम् ।।२१
शरीरधृग्ब्रह्मचर्य सदृश त जटाधरम् ।
सादर प्रणिपत्याथ सन्ध्योवाच तपोधनम् ।।२२

पर्वत का शरीर तो स्थावर के द्वारा ही आप्यायित होता है। उसी भाँति नदियो का शरीर जल के द्वारा ही सदा आप्यायित हुआ करता ।।१५।। नदियों का तथा पर्वतो का कामरूपी होना भगवान् विष्णु ने यत्न पूवक पहिले जगत् की स्थिति के लिय ही कल्पित किया था ।। १६ ।। हे सुरगणो ! जल की हानि होने पर या निरतर ही नदियो को महान् दुःख हुआ करता है और विशीर्ण हो जाने पर स्थावर गिरि के शरीर म जात्त उत्पन्न होता है ।।१७।। उस पर्वत पर जो कि चन्द्र भाग नाम वाला या वृहल्लोदित के तट पर गमन करने वाली सन्ध्या का अवलोकन किया था और वसिष्ठ मुनि ने उस समय मे बडे ही आदर पूर्वक उससे पूछा था ।।१८।। वसिष्ठ जी ने कहा—हे भद्रे ! आप इस निजन महान् गिरि पर किस प्रयोजन के लिए आयी हैं। हे गौरि ! आप किसकी पुत्री हैं ? और आप का क्या चिकीर्षित है अर्थात् क्या करने की इच्छा रखती हैं ।।१६।। यदि आपकी कोई भी गोपनीय बात न हो तो मैं यही सुनना चाहता हूँ। आपका मुख तो चन्द्रमा के समान परमाधिक सुन्दर है किन्तु इस समय मे वह नि श्रीक सा क्यों हो रहा है ? ।।२०।। उन महात्मा वसिष्ठ मुनि के इस वचन का श्रवण करके उन महात्मा का अवलोकन किया था जो प्रज्वलित अग्नि के ही समान थे। व उस समय म ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो शरीरधारी ब्रह्मचय म ही सदृश हो। उन जटाधारी का बहुत ही आदर के साथ प्रणिपात करके इसके पश्चात् उस सन्ध्या ने उन तपोधन से कहा था ।। २२ ।।

यदर्थमागता शैल सिद्ध तन्मे द्विजोत्तम ।
तव दर्शनमात्रेण तन्मे सेत्स्यति

तपः कर्तुमहं ब्रह्मन्निर्जनं शैलमागता ।
ब्रह्मणोऽहं मनोजाता सन्ध्या नाम्नाच विश्रुता ॥२४
नोपदेशमहं जाने तपसो मुनिसत्तम ।
यदि ते युज्यते गुह्यं मां त्वं समुपदेशय ॥
एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नान्यत्किञ्चन विद्यते ॥२५
अज्ञात्वा तपसा भावं तपोवनमुपाश्रिता ।
चिन्तया परिशुष्येऽहं वपते च मनः सदा ॥२६
आकर्ण्य तस्या वचनं वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ।
स्वयं स सर्वतत्त्वज्ञो नान्यत्किंचन पृष्टवान् ॥२७
अथ तां नियतात्मानं तपसेऽतिधृतोद्यमाम् ।
वसिष्ठो मनसाऽऽचक्रे गुरुर्दाक्षिण्यवत्सदा ॥२८

सन्ध्या बोली—जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिये मैं इस शैल पर समागत हुई थी वह मेरा कार्य सिद्ध हो गया है। हे द्विजोत्तम ! हे विभो ! आपके दर्शन मात्र से ही अथवा वह कार्य पूर्ण हो जायगा। ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! मैं तपश्चर्या करने के लिये ही इस निर्जन पर्वत पर आई थी। मैं ब्रह्माजी के मन मे समुत्पन्न हुई हूँ और मैं लोक में सन्ध्या—इस नाम से प्रसिद्ध हूँ ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तप का उपदेश भी कुछ नहीं जानती हूँ। यदि आपको कुछ गोपनीय युक्त होता हो तो आप मुझको उपदेश दीजिए। यही मेरा परम गुह्य चिकीर्षित है और दूसरा कुछ भी नहीं है ॥ २५ ॥ तपस्या के भाव का ज्ञान न प्राप्त करके ही मैंने इस तपोवन का उपाश्रय ग्रहण किया है। मैं चिन्ता से परिशुष्क हो रही हूँ और मेरा मन सदा ही काँपता रहता है ॥२६॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ जी ने उस सन्ध्या के वचन को सुनकर स्वयं ही सम्पूर्ण तत्त्व के ज्ञाता मुनि ने उससे अन्य कुछ भी नहीं पूछा था ॥२७॥ इसके अनन्तर उस समय में वसिष्ठ मुनि ने उस नियत आत्मा वाली और तप के लिये अत्यन्त उद्यम धारण

करने वाली उसको शिष्य को गुरु के ही समान वसिष्ठ ने मन्त्र दीक्षा दी थी ॥२८॥

परमं यो महत्तेज परमं यो महत्तप ।
परमो य समाराध्यो विष्णुर्मनसि धीयताम् ॥२९
धर्मार्थकाममोक्षाणां य एकस्त्वादिकारणम् ।
तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ॥३०
शंखचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं क्वचिन्नीलाम्बुदच्छविम् ॥३१
गरुडोपरि शुक्लाब्जे पद्मासनगतं हरिम् ।
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं वनमालाधरं परम् ॥३२
केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्वलम् ।
निराधारं ज्ञानगम्यं साकारं देहधारिणम् ॥३३
नित्यानन्दं निरालम्बं सूर्यमण्डलमध्यगम् ।
मन्त्रणानेन देवेशं विष्णुं भज शुभानने ॥३४
ॐ नमो वासुदेवाय ओमित्यन्तेन संततम् ।
तपस्यामारभन्मौनी तन्नतान्नियमान् शृणु ॥३५

वसिष्ठ मुनि ने कहा—जो महान तेज परम है जो परम महान् तप है जो परम समाराधना करने के योग्य है उन भगवान् विष्णु को ही अपने मन में धारण करिए ॥२९॥ जो धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष—इन परम पुरुषार्थों का एक ही आदि कारण है उन जगतो के आद्य पुरुषोत्तम प्रभु एक का ही यजन करो ॥३०॥ जो भगवान् विष्णु शंख चक्र—गदा और पद्म को धारण करने वाले है और उनके लोचन कमलों के ही समान परम सुन्दर हैं—उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के तुल्य है और कहीं पर उनकी छवि नीले मेघ के सदृश ही है ॥३१॥ गरुड़ के ऊपर शुक्ल कमल पर पद्मासन से विराजमान—श्री वत्स का वक्षःस्थल में चिह्न वाले—परमशान्त और वनमाला के धारी हरि का

भजन करे ॥३२॥ जो केयूर और कुण्डलों को पहिने हुए हैं—जो किरीट और मुकुट से समुज्ज्वल हैं—जो बिना आकार वाले केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य हैं—जो आकार से रहित देहधारी हैं—नित्य आनन्द स्वरूप—बिना अवलम्बन वाले और सूर्य मण्डल के मध्य में संस्थित हैं ऐसे देवेश्वर विष्णु की इस मन्त्र के द्वारा ही हे शुभ आनन वाली ! आप यजन करो ॥३३॥३४॥ वह मन्त्र 'ओम् नमो वासुदेवाय ओम्" यह है। इसी मन्त्र के जाप के द्वारा निरन्तर मौनी होकर तपश्चर्या का समारम्भ करो। उसमें कुछ नियम हैं उनका अब श्रवण करो ॥३५॥

स्नानं मौनेन कर्तव्यं मौनेनैव तु पूजनम् ।
द्वयो पर्णजलाहार प्रथम पष्ठकाल्योः ।
तृतीये षष्ठकाले तु उपवास परो भवेत् ॥३६
एवं तपः समाप्तौ तु षष्ठे काले क्रिया भवेत् ।
वृक्षवल्कलवासाश्च काले भूमिशयस्तथा ।
एवं मौनी तपस्याख्या व्रतचर्या फलप्रदा ॥३७
एवं तपः समुद्दिश्य कामं चिन्तय माधवम् ।
स ते प्रसन्न इष्टार्थं न चिरादेव दास्यति ॥३८
उपदिश्य वसिष्ठोऽथ सन्ध्यायार्यं तपसः क्रियाम् ।
तामाभाष्य यथान्याय तत्रैवान्तर्दधे मुनिः ॥३९
सन्ध्यापि तपसो भावं ज्ञात्वा मोदमवाप्य च ।
तपः कर्तुं समारेभे बृहल्लोहिततीरगा ॥४०
यथोक्तन्तु वसिष्ठेन मन्त्रं तपसि साधनम् ।
व्रतेन तेन गोविन्दं पूजयामास भक्तितः ॥४१
एकान्तमनसस्तस्या कुर्वन्त्या सुमहत्तपः ।
विष्णौ विन्यस्तमनसो गतमेकं चतुर्युगम् ॥४२

नित्य स्नान मौन होकर करना चाहिये और मौन व्रत के साथ ही पूजन करे। प्रथम तो छठवें दोनों कालों में पर्ण और फलों का

आहार करे और तीसरे षष्ठ काल में उपवास परायण ही होना चाहिए ॥३६॥ इस प्रकार से तप की समाप्ति में षष्ठ काल की क्रिया होती है। वृक्षों के छालों के वस्त्र धारण करें और समय पर भूमि में ही शयन करे। इस रीति से मौनी रहे और यह तपस्या नाम वाली व्रतचर्या फल के प्रदान करने वाली होती है ॥३७॥ इस तरह से तप का उपदेश करके इच्छापूर्वक माधव भगवान् का चिन्तन करो। वे प्रसन्न होकर आपके अभीष्ट को शीघ्र ही प्रदान कर देंगे ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वसिष्ठ जी ने उस सन्ध्या के लिये तप करने की क्रिया का उपदेश देकर और उससे न्याय के अनुसार सम्भाषण करके मुनि वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ॥ ३६ ॥ वह तपस्या के भाव का ज्ञान प्राप्त करके और परम आनन्द प्राप्त करके उसने बृहल्लोहित के तीर पर स्थित होकर तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥४०॥ उसने वासिष्ठ मुनि ने जैसा कहा था उस मन्त्र को तथा तप के साधन को करके उसी व्रत से भक्तिभाव के द्वारा गोविन्द का पूजन किया था ॥ ४१ ॥ परम एकान्त मन वाली वह सुमहान् तप का समाचरण करती हुई और भगवान् विष्णु में विन्यस्त मन वाली को चारों (सत्य—त्रेता—द्वापर—कलियुग) युगों का समय व्यतीत होगया ॥४२॥

न कोऽपि विस्मय नाप तस्या दृष्ट्वा तपोऽद्भुतम् ।
न तादृशी तपश्चर्या भविष्यति च कस्यचित् ॥४३
मानुषेणाथ मानेन गते त्वेकचतुर्युगे ।
अन्तर्वहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निजं वपुः ॥४४
प्रसन्नस्तेन रूपेण यद्रूप चिन्तितं तया ।
पुरः प्रत्यक्षता यातस्तस्या विष्णुर्जगत्पतिः ॥४५
अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिन्तितं हरिम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पद्मलोचनम् ॥४६

केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।
तार्क्ष्यस्थं पुण्डरीकाक्षं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥४७
ममाध्वसमहं वक्ष्ये किं कथं स्तौमि वा हरिम् ।
इति चिन्तापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी ॥४८
निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदयं हरिः ।
दिव्यं ज्ञानं ददौ तस्यै वाचं दिव्ये च चक्षुषी ॥४९
दिव्यं ज्ञानं दिव्यचक्षुर्दिव्यां वाचमवाप सा ।
प्रत्यक्षं वीक्ष्य गोविन्दं तुष्टाव जगतां पतिम् ॥५०

उसके इस अद्भुत तप को देखकर कोई भी विस्मय को प्राप्त नहीं हुआ था। उस तरह की तपश्चर्या अन्य किसी की भी नहीं होगी ।४३। इसके अनन्तर मनुष्यों के मान से चारों युगों की एक चौकड़ी व्यतीत हो गयी थी। फिर अन्दर—बाहिर और आकाश में अपना वपु दिखला कर उस रूप से परम प्रसन्न हुए जिस रूप को उसने चिन्तन किया था। वही उसके सामने प्रत्यक्षता को प्राप्त हो गये थे जो भगवान् विष्णु इस जगत् के स्वामी थे ॥४५॥ इसके अनन्तर अपने सामने अपने मन के द्वारा चिन्तन किये गये हरि को देख करके बहुत ही प्रसन्न हुई। उनका स्वरूप शङ्ख—चक्र—गदा और पद्म के धारण करने वाला था तथा वे किरीट और मुकुट से परम समुज्ज्वल थे। पुण्डरीक के समान उनके नेत्र थे और वे गरुड पर विराजमान थे। उनकी छवि नील कमल के समान थी ॥४७॥ मैं भय के साथ क्या कहूँगी अथवा किस प्रकार से हरि भगवान् का स्तवन करूँ। इसी चिन्ता में परायण होकर उसने अपने नेत्रों को मूँद लिया था ॥ ४८ ॥ मूँदे हुए लोचनों वाली उसके हृदय में हरि भगवान् ने प्रवेश किया था और उनमें उस सन्ध्या को परम दिव्य ज्ञान को प्रदान किया था और उसको दिव्य वाणी बोलने की शक्ति दी थी तथा दिव्य चक्षु भी प्रदान कर दिये थे ॥ ४९ ॥ वह फिर परम दिव्य ज्ञान—दिव्य लोचन और दिव्य वाणी को प्राप्त करके

वाली हो गई थी। उसने प्रत्यक्ष में हरि का दर्शन कर उसका स्तवन किया था ॥५०॥

निराकार ज्ञानगम्यं परं यन्नैव
स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चैः ।
अन्तश्चिन्त्यं योगिभिर्यस्य रूपं
तस्मै तुभ्यं हरये मे नमोऽस्तु ॥५१
शिवं शान्तं निर्मलं निर्विकारं
ज्ञानात्परं सुप्रकाशं विसारि ।
रविप्रख्यं ध्वान्तभागात् परस्ताद्
रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम् ॥५२
एकं शुद्धं दीप्यमानं विनोदं
चित्तानन्दं सत्वजं पापहारि
नित्यानन्दं सत्यं भूरिप्रसन्नं
यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमोऽस्तु ॥५३
विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं
सत्वच्छन्नं ध्येयमात्मस्वरूपम् ।
सारं पारं पावनानां पवित्रं
तस्मै रूपं यस्य चैव नमस्ते ॥५४
नित्यार्जवं व्ययहीनं गुणौघै-
रष्टागैर्यश्चिन्त्यते योगयुक्ते ।
तत्त्वं व्यापि प्राप्य यज्ज्ञानयोगे
परं याता योगिनस्तं नमस्ते ॥५५
यत्साकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं
गरुत्मस्थं नीलमेघप्रकाशम् ।
शङ्ख चक्रं पद्मगदे दधानं
तस्मै नमो योगयुक्ताय तुभ्यम् ॥५६
मन्या न महा—जो बिना आकार वाले हैं—जो ज्ञान के ही

द्वारा जानने के योग्य हैं—जो सब से पर हैं जो न तो स्थूल है और न सूक्ष्म ही हैं तथा जो उच्च भी नहीं हैं—जिनका रूप योगियों के द्वारा अन्दर ही चिन्तन करने के योग्य है उन आप भगवान् श्री हरि के लिए मेरा नमस्कार है ।५१। जिनका स्वरूप शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप है—जो परम शान्त—निर्मल—विकारोंसे रहित—ज्ञानसे भी पर सुन्दर प्रकार से युक्त विभारी—रवि प्रख्य ध्वान्त (अन्धकार) भाग से परहै उन परम प्रसन्न आपके लियेमैं प्रणाम करती हूँ।५२। जो एक शुद्ध दैदीप्यमान विनोद, चित्त के लिए आनन्द मन्त्र से समुत्पन्न पापों का हरण करने वाला, नित्य ही आनन्द रूप, सत्य और बहुत ही अधिक प्रसन्न जिसका श्री का प्रदाता यह रूप है उन प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है ।।५३।। विद्या के आकार से उद्भावना करने के योग्य प्रकृष्ट रूप से भिन्न—सत्व से छन्न—ध्यान करने के योग्य—आत्म स्वरूप से समन्वित—सार—पार और पावनों को भी पवित्र करने वाला जिनका रूप है उनके लिये मेरा प्रणिपात है ।।५४।। योग मार्ग में युक्त पुरुषों के द्वारा गुणों के समूह आठ अङ्गों वाले योग से जो नित्यार्जन और व्यय से हीन का चिन्तन किया जाता है जिसको योगीजन अपने ज्ञान योग में व्यापी तत्त्व को प्राप्त करके परात्पर को प्राप्त हुए हैं उस आप के लिए मेरा नमस्कार है ।।५५।। जो आकार में मयूत है, जो शुद्ध रूप वाले हैं और जो मनोज्ञ हैं, जो गरुड़ पर विराजमान हैं जिनका प्रकाश नील मेघ के समान है जो शङ्ख—चक्र—गदा और पद्म को धारण करने वाले हैं उन याग से युक्त आपके लिए मेरा प्रणाम समर्पित है ।।५६।।

गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ।
वायुः कालश्च रूपाणि यस्य तस्मै नमोऽस्तु ते ।।५७
प्रधानपुरुषौ यस्य कार्याङ्गत्वे निवत्स्यत ।
तस्मादव्यक्तरूपाय गोविन्दाय नमोऽस्तु ते ।।५८
यः स्वयं यश्च भूतानि यः स्वयं तद्गुणः परः ।

य स्वय जगदाधारस्तस्मै तुभ्य नमोनम ॥५६
पर पुराण पुरुष परमात्मा जगन्मय ।
अक्षयो योऽव्ययो देवस्तस्मै तुभ्य नमो नम ॥६०
यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टि यो विष्णु कुरुते स्थितिम् ।
सहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्य नमो नम ॥६१
नमो नम कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ।
समस्त लोकान्तर मोहदाय प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥६२
यस्य प्रपञ्चो जगदुच्यते महान क्षितिर्दिश सूर्य इन्दुर्मनोजव ।
वह्निर्मुखान्नाभितश्चान्तरीक्ष तस्मै तुभ्य हरये ते नमोऽस्तु ॥६३

जिसका गगन—भूमि—दिशायें जल ज्योति—वायु और काल स्वरूप है उसके लिये मेरा नमस्कार है ॥५७॥ जिनके कार्यों के जगत्‌ में प्रधान और पुरुष निवास किया करते है उन अव्यक्त रूप वाले गोविंद के लिये नमस्कार है। जो स्वय हैं और जो भूत हैं—जो स्वय उसके भूतों में धर है—जो स्वय ही इस जगत् का आधार है उन आपके लिए नमस्कार है। तथा वारम्बार प्रणाम है ॥५८॥ जो सबसे पर तथा पुराण है—जो पुराण पुरुष और जगन्मय परमात्मा है—जो अक्षय और व्यथा से रहित है उस देव के लिये वारम्बार नमस्कार है ॥६०॥ जो ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके इस सृष्टि की रचना किया करते है और जो विष्णु के स्वरूप से इस जगत् का परिपालन करते हैं तथा जो रुद्र के रूप में होकर इस जगत् का सहार किया करते हैं उन आपकी सदा में वारम्वार मेरा प्रणिपात समर्पित है ॥६१॥ कारणों के भी कारण—दिव्य अमृत—ज्ञान और विभूति के प्रदाता, समस्त अन्य लोकों को मोह के दाता हैं उन प्रकाश स्वरूप वाले परात्पर के लिए वारम्बार नमस्कार है ॥६२॥ जिसका महान प्रपञ्च जगत् कहा जाया करता है जो भूमि, दिशायें, सूर्य, चन्द्र, मन जव वह्नि, मुख नाभि से अन्तरिक्ष है उन भगवान् हरि आपके लिये नमस्कार है ॥६३॥

स्व पर परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरे।
शब्दब्रह्म परब्रह्म विचारणपरात्परः ॥६४
यस्य नादिर्नमध्यञ्च नान्तमस्ति जगत्पते।
कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोगोचराद्वहिः ॥६५
यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः।
न विवृण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे ॥६६
स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो।
नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥६७
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ नमस्तुभ्यं तपोमय।
प्रसीद भगवंस्तुभ्यं भूयोभूयो नमोनमः ॥६८
अथ तस्याः शरीरन्तु वल्कलाजिनसंवृतम्।
परिक्षीणं जटाव्रातैः पवित्रैर्मूर्ध्नि राजितम् ॥६९
हिमानी तर्जिताम्भोजसदृशवदनं तथा।
निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरिः प्रोवाच तामिदम् ॥७०

आप पर परमात्मा हैं हे हरे! आप विविध विद्या हैं, आप शब्द ब्रह्म, पर ब्रह्म और विचार में पर से भी पर हैं ॥६४॥ जिस जगत् के पति का न तो आदि है—न मध्य है और न अन्त ही होता है उन देव को मैं किस प्रकार से स्तवन करूँ जो देव वाणी मन के गोचर से भी बाहिर अर्थात् पर हैं ॥६५॥ जिनके स्वरूपों का ब्रह्मा आदि देव-गण तथा तप के ही धन वाले मुनिगण भी विवरण नहीं किया करते हैं उनके रूप मेरे द्वारा किस प्रकार से वर्णन करने के योग्य हो सकते हैं? ॥६६॥ उन निर्गुण प्रभु के गुण मुझ स्त्री जाति वाली के द्वारा कैसे जानने के योग्य हो सकते हैं। जिनके स्वरूप को इन्द्र आदि सुर और असुर भी नहीं जानते हैं ॥६७॥ हे जगत् के नाथ! आपके लिए नमस्कार है। हे तप से परिपूर्ण! आपके लिए नमस्कार है। हे भगवन्! आप प्रसन्न होइए आपके लिए बारम्बार नमस्कार है ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर उसका शरीर वल्कल और अजिन (मृगचर्म) से समावृत था तथा बहुत ही क्षीण और मस्तक पर पवित्र जटा-जूटों से शोभित था अर्थात् परम शोभित था ।।६६।। माधिनी में सर्जित कमल के सदृश मुख को देखकर भगवान् हरि कृपामें समाविष्ट होकर उस सन्ध्या से यह बोले ।।७०।।

प्रीतोऽस्मि तपसा भद्रे भवत्या परमेण वै ।
स्तवेन च शुभप्रज्ञे वरं वरय साम्प्रतम् ।।७१
येन ते विद्यते कार्यं वरेणास्ति मनोगतम् ।
तत् करिष्यामि भद्रन्ते प्रसन्नोऽहं तव व्रतैः ।।७२
यदि देव प्रसन्नोऽसि तपसा मम साम्प्रतम् ।
वृतस्तदाय प्रथमो वरो मम विधीयताम् ।।७३
उत्पन्नमात्रा देवेश प्राणिनोऽस्मिन्नभस्तले ।
न भवन्तु क्रमेणैव सकामा सम्भवन्तु वै ।।७४
पतिव्रताहं लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा ।
भविष्यामि तथा नान्या वर एको वृतो मम ।।७५
सकामा मम दृष्टिस्तु कुत्रचिन्नपतिष्यति ।
ऋते पतिं जगन्नाथ सोऽपि मेऽस्ति सुहृत्तरः ।।७६
यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम् ।
नाशं गमिष्यति तदा स तु क्लीवी भविष्यति ।।७७

श्री भगवान ने कहा—हे भद्रे ! आपकी इस परम दारुण तपश्चर्या से मैं अधिक प्रसन्न हो गया हूँ हे शुभ प्रज्ञावाली ! मुझे आपकी स्तुति से अधिक प्रसन्नता हुई है । अब आप मुझसे वरदान जो भी अभीष्ट उसे प्राप्त करलो ।।७१।। जिस वर से आपका मनोगत कार्य हो मैं उसको वर दूँगा—तुम्हारा कल्याण होवे—मैं तुम्हारे इन व्रतों से परम हर्षित हो गया हूँ ।।७२।। सन्ध्या ने कहा—हे देव ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मेरी इस तपश्चर्या से आपको आह्लाद हुआ

है तो अब मैंने प्रथम वर वृत किया है उसी को आप करने की कृपा कीजिये ॥७३॥ हे देवेश्वर ! उत्पन्न मात्र ही प्राणी इस नभस्तल में क्रम से ही सकाम न होवें वे सम्भव होवें ॥७४॥ मैं तीनों लोकों में परम पतिव्रता प्रथित हो जाऊंगी जैसी कोई दूसरी न होवे। मैंने यह एक वर वृत किया है ॥ ७५ ॥ काम वासना से संयुत मेरी दृष्टि कहीं पर भी न गिरेगी। हे जगत् के स्वामिन् ! पति को छोड़कर कहीं पर मेरी सकाम दृष्टि नहीं होवे। यह भी मेरा परम सुहृद होगा ॥ ७६ ॥ जो भी कोई पुरुष कामवासना से युक्त होकर मुझे देखे उसका पुरुषत्व विनाश को प्राप्त हो जावेगा और वह क्लीव अर्थात् नपुंसक हो जावेगा ॥ ७७ ॥

प्रथमः शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वितीयकः ।
तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्द्धकस्तथा ॥७८
तृतीये त्वथ सम्प्राप्ते वयोभागे शरीरिणः ।
सकामाः स्युर्द्वितीयान्ते भविष्यन्ति क्वचित् क्वचित् ॥७९
तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥८०
त्वञ्च लोके सतीभावं तादृशं समवाप्स्यसि ।
त्रिषु लोकेषु नान्यस्या यादृशं सम्भविष्यति ॥८१
यः पश्यति सकामस्त्वां पाणिग्रहभृते तव ।
स सद्यः क्लीवतां प्राप्य दुर्बलत्वं गमिष्यति ॥८२
पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः ।
सप्तकल्पान्तजीवी च भविष्यति सह त्वया ॥८३
इति ये ते वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया ।
अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वं जन्मनि स्थितम् ॥८४

श्री भगवान् ने कहा—प्रथम तो शैशव भाव हुआ करता है और दूसरा कौमार नाम वाला भाव होता है—तीसरा यौवन का भाव है

और चतुर्थ वार्द्धक भाव होना है। तीसरे भाव अर्थात् यौवन के भाव को सम्प्राप्त हो जाने पर जो एक शरीर धारी की अवस्था का भाग है मनुष्य उसमे ही काम वासना से समन्वित हुआ करते है। कहीं-कहीं पर द्वितीय भाव के अन्त मे भी हो जाते है ॥७६॥ मैंने आपके तप से जगत् मे मर्यादा स्थापित कर दी है कि उत्पन्न होते ही शरीरधारी सकाम नहीं होंगे ॥८०॥ और आप लो लोक मे उस प्रकार का भाव प्राप्त करेगी कि तीनो लोको मे अन्य किसी का भी ऐसा भाव नहीं होगा ॥८१॥ जो भी कोई बिना आपके पाणिग्रहण के किये हुए काम-वासना से युक्त होकर आपको देखेगा वह तुरन्त ही क्लीनता अर्थात् नपुसकता को प्राप्त करके अतीव दुर्बलता को फलेगा ॥८२॥ आपका पति तो बहुत बड़े भाग्य वाला होगा जो सुन्दर रूप लावण्य से और तप से समन्वित होगा। वह आपके ही साथ रहकर सात कल्पों के अन्त पर्यन्त जीवन के धारण करने वाला होगा ॥ ८३ ॥ ये जो भी वरदान आपने मुझसे प्रार्थित किये थे वे सब मैंने पूर्ण कर दिये है। और अन्य भी मैं आपको बतलाऊँगा जो कि पूर्व से आपके मन मे स्थित था ॥८४॥

अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव प्रतिश्रुत ।
स च मेधातिथेर्यज्ञे मुनेर्द्वादशवार्षिके ॥८५
हूत प्रज्वलिते वह्नौ न चिरात् क्रियता त्वया ।
एतच्छैलोपत्यकाया चन्द्रभागानदीतटे ॥८६
मेधातिथिर्महायज्ञ कुरुते तापसाश्रमे ॥८७
तत्र गत्वा स्वय छन्ना मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
मत्प्रसादाद्वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यसि ॥८८
यस्त्वया वाञ्छनीयोऽस्ति स्वामी मनसि कश्चन ।
त निधाय निजस्वान्ते त्यज वह्नौ वपु स्वकम् ॥८९
यदा त्व दारुणे सन्ध्ये तपश्चरसि पर्वते ।

यावच्चतुर्युग तस्य व्यतीते तु कृते युगे ॥९०
त्रेताया प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यका ।
स ददौ कन्यका सप्तविंशतिञ्च सुधांशवे ॥९१

आपने पूर्व में ही अग्नि में अपने शरीर के परित्याग करने की प्रतिज्ञा की थी वह प्रतिज्ञा बारह वर्ष तक होने वाले मुनिवर मेधातिथि के यज्ञ में की थी। हुत से प्रज्वलित अग्नि म शीघ्र ही आप करें। इस पर्वत की उपत्यका म चन्द्र भागा नदी के तट पर तापसों के आश्रम मे मेधा तिथि महा यज्ञ कर रहे हैं ॥८७॥ वहाँ पर जाकर स्वय छन्न होती हुई जिसको मुनियो ने भी नहीं देखा है, मेरे प्रसाद स वह्नि से जात आप उसकी पुत्री होगी ॥८८॥ जो भी अपने मन के द्वारा अपने मन के द्वारा अपने पति होने की थी वह जो भी कोई हो उसको अपने मन में धारण करके अपने शरीर का त्याग वह्नि में कर दो ॥८९॥ हे सन्ध्ये ! जब आप इस परम दारुण पर्वत म तपश्चर्या कर रही हो उस तप का करते हुए चारो युग व्यतीत हो गए हैं तथा कृतयुग के व्यतीत होने पर त्रेता के प्रथम भाग में दक्षकी उत्पन्न हुई थी। उस प्रजापति दक्ष ने सत्ताईस अपनी कन्याओं को चन्द्रदेव के लिए दे दिया था ॥९०॥९१॥

तासा हेतोर्यदा शप्तश्चन्द्रो दक्षेण कोपिना ।
तदा भवत्या निकटे सर्वे देवा समागता ॥९२
न दृष्टाश्च तथा सन्ध्ये देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
मयि विन्यस्तमनसा त्वञ्च दृष्टा न तं पुन ॥९३
चन्द्रस्य शापमोक्षार्थं चन्द्रभागा नदी यथा ।
सृष्टा धात्रा तदैवात्र मेधातिथिरुपस्थितः ॥९४
तपसा तत्समो नास्ति न भूतो न भविष्यति ।
तेन यज्ञः समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधि ॥९५
तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिंस्त्यज वपु स्वकम् ॥९६

एतन्मया स्थापित ते कार्यार्थ भोस्तपस्विनि ।
तन् कुरुष्व महाभाग याहि यज्ञ महामुने ॥९७

उन कन्याओं के लिए जिस समय मे क्रोधयुक्त दक्ष के द्वारा चन्द्र देव को शाप दिया गया था उस समय मे आपके समीप मे सभी देवगण समागत हुए थे ॥९२॥ हे सन्ध्ये ! उसके द्वारा ब्रह्मा के साथ देवगण नही देखे गये थे। क्योकि आपने मुझ मे ही अपना मन लगा रक्खा था अत आपभी उनके द्वारा नही देखी गयी थी ॥९३॥ चन्द्रदेव का दिए हुए शाप के छुटकारे के लिए जिस प्रकार से विधाता ने चन्द्रभागा नदी की रचना की थी उसी समय मे यहाँ पर मेधा तिथि उपस्थित हो गया था ॥९४॥ तप से उसके समान कोई भी अन्य नही है और न अब तक कोई हुआ ही है तथा भविष्य मे भी कोई ऐसा तपस्वी नही होगा। उस मेधा तिथि न महान् विधि वाला ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का आरम्भ किया था ।' ९५ ॥ वहाँ पर जो वह्नि प्रज्वलित है उसी मे अपन शरीर का त्याग करो ॥ ९६ ॥ हे तपस्विनि ! यह मैंने तुम्हारे ही काम के सम्पादन करन क लिय स्थापित किया है। हे महाभागे ! आप वह करिए और उस महामुनि क यज्ञ म गमन करिए ।९७।

नारायण स्वय सन्ध्या पस्पर्शाथाग्रपाणिना ।
तन पुरोडाशमय तच्छरीरमभूत् क्षणात् ॥९८
महामुनेर्महायज्ञ तस्मिन् विश्वापकारिणि ।
नाग्नि क्व्यादतां याति त्वतश्च तथा कृतम् ॥९९
एव कृत्वा जगन्नाथस्तत्रवान्तरधीयत ।
सन्ध्याप्यगच्छत्तत्सत्र यत्र मधातिथिर्मुनि ॥१००
अथ विष्णो प्रसादन वनाप्यनुपलक्षिता ।
प्रविवेश यदा यज्ञ सन्ध्या मधातिथर्मुन ॥१०१
वशिष्ठन पुरा सा सुवर्णोभूत्वा तपस्विनी ।
उपदिष्टा तपश्चर्तु वचनात् परमेष्ठिन ॥१०२

सर्यो द्विधा विभज्याथ तच्छरीरं तदा रथे ।
स्वके सस्थापयामास प्रीतये पितृदेवयो ॥१०७
यदूर्ध्वभागस्तस्यास्तु शरीरस्य द्विजोत्तमा ।
प्रात सन्ध्याभवत् सा तु अहोरात्रादिमध्यगा ॥१०८
यच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रान्तमध्यगा ।
सा सायमभवत् सन्ध्या पितृप्रीतिप्रदा सदा ॥१०९
सूर्योदयात्तु प्रथमं यदा स्यादरुणोदय ।
प्रात सन्ध्या तदादेति देवाना प्रीतिकारिणी ॥११०
अस्त गते तत सूर्ये शोणपद्मनिभा सदा ।
उदेति सायसन्ध्यापि पितृणा मोदकारिणी ॥१११
तस्या प्राणास्तु मनसा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरेऽथ शरीरिण ॥११२

वह्नि ने उसके शरीर का दाह करके पुन भगवान् विष्णु की ही आज्ञा से शुद्ध को सूर्य मण्डल म प्रविष्ट कर दिया कर दिया था ॥१०६॥ सूर्य का दो भागो विभाग करके उसके शरीर को उस समय म रथ म जो अपना था पितृगण और देवों की प्रीति के लिये सस्थापित कर दिया था ॥ १०७ ॥ उसका ऊर्ध्व भाग हे द्विजोत्तमो ! अर्थात् उसके शरीरका आधा हिस्सा प्रात सन्ध्या होगई थी जो अहोरात्र आदि के मध्य म रहने वाली थी ॥१०८॥ उसका शेष भाग था जो अहोरात्रान्त के मध्य म रहने वाली थी वह साय सन्ध्या हो गयी थी जो सदा ही पितृगणो की प्रीति का प्रदान करने वाली थी ॥१०९॥ सूर्योदय से प्रथम जो अरुण का उदय जिस समय म होता है प्रात सन्ध्या उसी समय म उदित हुआ करती है जो देवगणों को प्रीति को करने वाली है ॥११०॥ सूर्य देव के अस्ताचल गामी होने पर शोण (रक्त) पद्म के सदृश होती है वह साय सन्ध्या भी समुदित हुआ करती है जो पितृगणो के मोद के करने वाली हुआ करती है ॥१११॥ उसके प्राणो

थी प्रभ विष्णु भगवान् विष्णु के द्वारा शरीरी के दिव्य शरीर से ही किये थे ॥११२॥

मुनेर्यज्ञावसाने तु सम्प्राप्ते मुनिना तु सा ।
प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकाञ्चन सप्रभा ॥११३
तां जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसंयुत. ।
यज्ञार्थतोयैः सस्नाप्य निजक्रोडे कृपायुत. ॥११४
अरुन्धतीति तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनि ।
शिष्यै. परिवृतस्तत्र महामोदमवाप च ॥११५
न रुणद्धि यतो धर्मं सा केनापि च कारणात् ।
अतस्त्रिलोकविदितं नाम सा प्राप सान्वयम् ॥११६
यज्ञं समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभाव-
मासाद्य सम्मदयुतस्तनयाप्रलम्भात् ।
तस्मिन् निजाश्रमपदे सहशिष्यवर्ग-
स्तामेव सन्ततमसौ दयते महर्षि. ॥११७

महामुनि के यज्ञ के अवसान के अवसर के प्राप्त हो जाने पर मुनि के द्वारा तपे हुए सुवर्ण की प्रभा के तुल्य पुत्री वह्नि के मध्य में प्राप्त हुई थी ॥११॥ उस समय में उस पुत्री को मुनि ने आमोद से समन्वित होकर ग्रहण कर लिया था । उस पुत्री को यज्ञार्थ जल से स्नपन कराकर कृपा से युत होते हुए अपनी गोद में रक्खा था । और उसका नाम अरुन्धती—यह महामुनि ने रक्खा था । वे शिष्यों से परिवृत होते हुए वहाँ पर महान् मोद को प्राप्त हुए थे ॥११४—११५॥ वह जिस किसी भी कारण से धर्म का रोध नहीं करती थी अतएव त्रिलोकी में विदित सान्वय नाम उसने प्राप्त किया था अर्थात् वह जैसा करती थी वैसा ही अन्वर्थ नाम की प्राप्ति उसने की थी ॥११६॥ उस मुनि ने यज्ञ को समाप्त करके कृतकृत्य भाव को प्राप्त किया था और तनया के प्रलम्भ से वे सम्मद युत हुए थे । उस अपने आश्रम के

स्थान मे अपने शिष्य वर्गों के सहित यह महर्षि उसी अपनी तनया को प्यार किया करते थे। और निरन्तर उसी को प्रिय बना लिया था ।११७।



।। वसिष्ठ-अरुन्धती विवाह ।।

अथ सा ववृधे देवी तस्मिन् मुनिवराश्रमे ।
चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसंज्ञके ॥१
यथा चन्द्रकला शुक्लपक्षे नित्यं विवर्धते ।
यथा ज्योत्स्ना तथा सापि प्राप वृद्धिमरुन्धती ॥२
सम्प्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागां तदा गुणं ।
तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत् सती ॥३
तत्र तीर्थं महापुण्यं मेधातिथिनिषेवितम् ।
क्रीडास्थानमरुन्धत्या पूतं बाल्योचित कृतम् ॥४
अद्यापि तापसारण्ये चन्द्रभागानदीजले ।
अरुन्धतीतीर्थतोये स्नात्वा याति हरिं नरः ॥५
कार्तिकं सकलं मासं चन्द्रभागानदीजले ।
स्नात्वा विष्णुगृहं गत्वा ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥६
माघे मासि पौर्णमास्याममायां वा तथैव च ।
चन्द्रभागाजले स्नानं यस्तु कुर्यात् सकृत् सकृत् ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर वह देवी उन मुनिवर के आश्रम मे बड़ी हो गयी थी जो कि चन्द्रभागा नदी के तट पर तापसारण्य नाम वाला था ॥१॥ जिस प्रकार से चन्द्रमा की कला शुक्ल पक्ष में नित्य ही प्रवर्धित हुआ करती है जैसे ज्योत्स्ना बढ़ा करती है उसी भाँति वह अरुन्धती भी वृद्धि को प्राप्त हुई थी ॥२॥ उस समय में

पाँचवाँ वर्ष के सम्प्राप्त होने पर गुण गणो के द्वारा उस सती चन्द्रभागा ने भी उस ताप सारण्य को भी परम पवित्र कर दिया था ॥३॥ वहाँ पर मेधातिथि द्वारा निषेवित महा पुण्य वाला तीर्थ था जो अरुन्धती की क्रीड़ा का स्थान था और उस अरुन्धती ने बाल्योचित कृत मे पूत किया था ॥४॥ आज भी ताप सारण्य मे चन्द्रभागा नदी के जल मे मनुष्य अरुन्धती तीर्थ के जल मे स्नान करके अन्त मे हरि की प्राप्ति किया करता है ॥५॥ कार्त्तिक के पूरे मास मे चन्द्रभागा नदी के जल मे स्नान करके विष्णु भगवान् के लोक मे प्राप्त होकर अन्त मे मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥६॥ माघ मास मे पौर्णमासी मे अथवा अमावास्या मे उसी भाँति चन्द्र भागा के जल मे जो स्नान करता है और एक-एक बार ही किया करता है ॥७॥

तस्य वंशे राजयक्ष्मा न कदाचिद् भविष्यति ।
देहान्ते चन्द्रभवनं गत्वा याति हरेर्गृहम् ॥८
पुण्यक्षयादिहागत्य वेदज्ञो ब्राह्मणो भवेत् ।
चन्द्रभागाजलं पीत्वा चन्द्रलोकमवाप्नुयात् ॥९
सकृत् स्नात्वा तु विधिवद्वाजिमेधायुतं लभेत् ॥१०
चन्द्रभागाजले स्नात्वा क्रीडन्ती बाल्यलीलया ।
पितुः समीपे तत्तीरे कदाचित्तामरुन्धतीम् ।
गच्छन्नाकाशमार्गेण ददर्श कमलासनः ॥११
अथावतीर्य भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अरुन्धत्यास्तदा कालमुपदेशे ददर्श ह ॥१२
अथोवाच तदा ब्रह्मा मुनिभिः परिपूजितः ।
मेधातिथिप्रभृतिभिरुचितं तं महामुनिम् ॥१३

उस पुरुष के वंश मे राज यक्ष्मा या महा रोग कभी भी नही होगा। देह के अन्त मे वह पुरुष चन्द्र भवन को जाकर फिर वह भगवान् हरि के लोक मे चला जाया करता है। ८। जब पुण्य का क्षय हो जाता

है तब भी यहाँ संसार में आकर अर्थात् पुनः जन्म ग्रहण करके वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होता है। चन्द्र भागा नदी का जल पीकर वह मनुष्य चन्द्र लोक को प्राप्त किया करता है ॥६॥ विधि के साथ एक बार स्नान करके अयुत (दश हजार) वाजिमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त किया करता है ॥१०॥ चन्द्रभागा के जल मे स्नान करके बाल्य लीला से क्रीडा करती हुई – पिता के समीप मे उसके तट पर किसी समय मे उस अरुन्धती को आकाश मार्ग से जाते हुये ब्रह्माजी ने देखा था ॥११॥ इसके अनन्तर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने अरुन्धती को उस काल में उपदेश म देखा था ।१२। इसके उपरान्त उस समय में मुनियों के द्वारा परिपूजित जो वि मेधातिथि आदि थे ब्रह्माजी ने उन महामुनि से समुचित कहा था ॥१३॥

उपदेशस्य कालोऽयमरुन्धत्या महामुने ।
तस्मादेना सतीनान्तु क्षीणा त्व कुरु सन्निधिम् ॥१४
स्त्रिभिस्त्रियश्चोपदेश्या काचिदन्यत्र विद्यते ।
बहुलायाश्च सावित्र्या पुत्री त्व स्थापयान्तिके ॥१५
तयो ससर्गमासाद्य पुत्री तव महामुने ।
महागुणैश्चर्ययुता मा चिरात तु भविष्यति ॥१६
मेधातिथिर्वच श्रुत्वा ब्रह्मण परमात्मन ।
एवमेवेति प्रोवाच त तदा मुनिसत्तम ॥१७
ततो गते सुरश्रेष्ठे पत्री मेधातिथिर्मुनि ।
समादाय ययौ सूर्यभवन प्रति तत्क्षणात् ॥१८
ददर्श तत्र सावित्री सूर्यमण्डलमध्यगाम् ।
पद्मासनगता देवीमक्षमालाधरा सिताम् ॥१६
दृष्टा मा तेन मुनिना नि सृत्य रविमण्डलात् ।
बहुला सा गता तूर्णं प्रस्थ मानसभूभृत ॥२०
अयद् तत्र सावित्री गायत्री बहुला तथा ।

सरस्वती च द्रुपदा पञ्चैता मानसाचले ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे महामुने ! यह अरुन्धती के उपदेश का काल है । इस कारण से इसको सती स्त्रियों के मध्य में सन्निधि वाली करो । १४ । सतियों के द्वारा स्त्रियों को उपदेश देना चाहिए । कोई अन्य स्थान में विद्यमान है । बहुला और सावित्री के समीप में आप पुत्री को स्थापित करिये । १५ । हे महामुने ! आपकी पुत्री उन दोनों का संसर्ग प्राप्त करके महान् गुण गण और ऐश्वर्य से संयुक्त शीघ्र ही हो जायगी ॥१६॥ परमात्मा ब्रह्माजी के वचन का श्रवण करके मेधातिथि ने उस समय में ऐसा ही होगा—यह मुनि श्रेष्ठ ने कहा था । १७ । इसके अनन्तर सुर श्रेष्ठ के चले जाने पर मेधातिथि मुनि अपनी पुत्री को लेकर उसी क्षण में सूर्य भवन के प्रति गमन किया था । वहाँ पर सूर्य मण्डल के मध्य में विराजमान सावित्री को देखा था । जो कि पद्म के आसन पर समस्थित थी और वह देवी अक्षों की माला का धारण करने वाली एवं सितवर्ण वाली थी ॥१८॥ रवि के मण्डल से निगत कर उस मुनि के द्वारा वह देखी गयी थी । वह बहुला शीघ्र ही मानस पर्वत के प्रस्थ पर चली गयी थी । २० । वहाँ पर प्रतिदिन सावित्री—गायत्री तथा बहुला—सरस्वती और द्रुपदा में पाँचों मानस अचल पर थी ॥२१॥

धर्माख्यानस्तथा साध्वीः कथा. कृत्वा परस्परम् ।
स्व स्व स्थान पुनर्याति लोकाना हितकाम्यया ॥२२
मेधातिथिस्तु ता सर्वा दृष्ट्वैं कत्र तपोधन ।
मातृ. सर्वस्य लोकस्य प्रणनाम पृथक् पृथक् ॥२३
उवाच च स ता सर्वा ऋषि श्लक्ष्ण तपोधन ।
ससाध्वसो विस्मितश्च तासामेकत्र दर्शनात् ॥२४
मात. सावित्रि बहुले मत्पुत्रीय महायशा ।
कालोऽयमुपदेशेऽस्यास्तदर्थमहमागत ॥२५

जगत्स्रष्ट्रा समादिष्टा प्रयातु तव शिष्यताम् ।
एषा तेन भवनपार्श्वमानीता पुत्रिका मम ॥२६
सोचारित्र्य यथास्या स्यात्तथैना बालिका मम ।
युवां विनयतं देव्यौ मानमतिर्नमोऽस्तु वाम् ॥२७
अथोवाच तदा देवी सावित्री मुनिसत्तमम् ।
स्मितपूर्वं बहुलया सहिता ताञ्च बालिकाम् ॥२८

वहाँ पर लोगों की हित-कामना से परस्पर में धर्माख्याओं के द्वारा साध्वी कथाओं को कहकर फिर अपने-अपने स्थान को चली जाया करती थी। २२। तप ही जिनका धन था ऐसे परम तपस्वी मेधा तिथि ने उन सबको एक ही स्थान में देखकर कहा था—हे माता! आप तो समस्त लोकों की माता हैं मैं आपको पृथक् पृथक् प्रणाम समर्पित करता हू। २३। उस तपोधन ऋषि ने उन सबने परम श्लक्ष्ण वचन कहा था। और वह उन सबको एक ही स्थान में सम्मिलित हुई यों का दर्शन करके बहुत ही भयभीत और विस्मित हुआ था। । २४। मेधा तिथि ने कहा—हे माता मं विवि ! हे माता बहुले ! यह मेरी महान् यश वाली पुत्री है। अब इनके उपदेश करने का काल आगया है। उसी के लिये मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ। २५। यह—जगत् के सृजन करने वाले के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली हुई है कि यह आपकी शिष्यता को प्राप्त करे अर्थात् आपकी शिष्य हो जावे। इसी कारण से यह मेरी पुत्री आपके समीप में लायी गई है। २६। जिस प्रकार से इसकी सुचरित्रता होवे उसी प्रकार से इस मेरी बलिका का आप दोनों देवियाँ बना देवें। हे माताओ ! आप दोनों के लिये मेरा प्रणाम अर्पित है ॥२७॥ इसके उपरान्त उस समय में देवी सावित्री मन्द मुस्कराहट के साथ बहुला के साहत उस मुनियों में श्रेष्ठ से कहा था और उस बालिका से भी कहा था ॥२८॥

प्रद्युम्न् विष्णो. प्रसादेन सुचरित्रा भवत् सुता ।

पूर्वमेव मुने भूता तदुद्देशेन किं पुनः ॥२९
किं त्वह ब्रह्मावाक्येण बहुला च महासती ।
विनेष्यावस्तव सुता धीरा स्यान्नचिराद् यथा ॥३०
ब्रह्मणः पूर्वदुहिता भवतस्तु तपोबलात् ।
तथा विष्णोः प्रसादेन सुता तेऽभूदरुन्धती ॥३१
कुलं पुनाति भवतः सत्यसौ वर्द्धयिष्यति ।
लोकानामथ देवानां शिवमेषा करिष्यति ॥३२
अथ ताभ्यां विसृष्टः स मुनिमेधातिथिः सुताम् ।
आश्वास्यारुन्धतीं तत्रा ता स्वस्थानं जगाम ह ॥३३
गते तस्मिन् मुनिवरे सह ताभ्यामरुन्धती ।
मातृभ्यामिव निर्भीना पालिता मोदमाप सा ॥३४
कदाचित् सह सावित्र्या सार्धं याति रवेर्गृहम् ।
तथा बहुलया याति शक्रगेहं कदाचन ॥३५

उन दोनों देवियों ने कहा—हे ब्रह्मन्! भगवान् विष्णु के प्रसाद से आपकी पुत्री बहुत ही चरित्र वाली है। हे मुने! यह तो पहिले ही ऐसी सुयोग्य हुई है फिर इसको उपदेश देने से क्या लाभ है। तात्पर्य यही है कि जो यह आपकी पुत्री पहिले ही से परम योग्या है तो फिर इसको उपदेश देने की कोई भी आवश्यकता ही नहीं है।२९। किन्तु मैं और महा सती बहुला ब्रह्म वाक्य के होने से आपकी धैर्य वाली सुता को विनीत बनावेंगी अर्थात् सदुपदेशों के द्वारा परम विनीत ऐसे ढङ्ग से कर देंगी कि उसमें विशेष विलम्ब नहीं होगा ॥३०॥ यह पहिले ब्रह्माजी की पुत्री थी आपके तपो बल के कारण से तथा भगवान् विष्णु के प्रसाद से यह अरुन्धती आपकी सुता हुई है ॥३१॥ यह सती आपके कुल को पवित्र करती है और उसकी वृद्धि भी करेगी। यह लोकों का और देवों का कल्याण ही करेगी।३२। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वहाँ मेधा तिथि मुनि उनके द्वारा विदा किया हुआ होकर

उसने अपनी पुत्री अरुन्धती को आश्वासन दिया था। और फिर उनको प्रणाम करके वह अपने आश्रम को चले गये थे। ३३। उन मुनिवर के चले जाने पर अरुन्धती उन दोनों के साथ माताओं की ही भाँति निडर पाली गयी थी और उसने भी आनन्द प्राप्त किया था। ३४। किसी समय में रात्रि में सावित्री के साथ वह—रविदेव के गृह को जाया करती थी। और किसी समय में बहुला के साथ रुद्रदेव के घर में जाती थी ॥३५॥

एवं ताभ्यां समं देवी विहरन्ती सुरालये।
निनाय दिव्यमानेन सा सप्त परिवत्सरान् ॥३६
ताभ्यां तथोपविष्टा सा स्त्रीधर्ममचिरात् सती।
सर्वं ज्ञातवती भूता सावित्री बहुलाधिका ॥३७
अथ तस्यास्तदा काले सम्प्राप्ते उचितेऽभवत्।
शोभनो योवनोद्भेद पद्मिनीनां रुचिर्यथा ॥३८
उदभूतयौवना सा तु वसिष्ठं मानसाचले।
विहरन्ती ददर्शैका चारुतेजस्विनं मुनिम् ॥३९
दृष्ट्वा तमिच्छयाञ्चक्रे कामभावेन सा सती।
बालसूर्यप्रभं चारुरूपं ब्रह्मश्रिया युतम् ॥४०
अथ सोऽपि महातेजा वसिष्ठो वरवर्णिनीम्।
दृष्ट्वैवोद्भूतमदनो वीक्षाञ्चक्रे त्वरुन्धतीम् ॥४१
तयो परस्परं दृष्ट्वा ववृधे हृच्छयो महान्।
अमर्याद द्विजश्रेष्ठो प्राकृते मदनो यथा ॥४२

इसी रीति से वह देवी उन दोनों के साथ सुरों के आलय में अर्थात् स्वर्ग लोक में विहार करती उसने दिव्यमान से अर्थात् देवों की गणना के हिसाब से सात परिवत्सर व्यतीत कर दिये थे ॥३६॥ उन दोनों के साथ ये बैठी हुई उस सती ने शीघ्र ही स्त्री के धर्म सम्पूर्ण को जान गयी थी अर्थात् स्त्रियों का पूरा धर्म का ज्ञान उसने प्राप्त कर

लिया था। और वह सावित्री तथा बहुला से भी अधिक शाम वती हो गयी थी। ३७। इसके अनन्तर उसको उस समय में समुचित काल के सम्प्राप्त होने पर यौवन का उद्रेक हो गया था अर्थात् यौवनावस्था के चिह्न प्रकट होगये थे जिस प्रकार से पद्मिनीयों की रुचि हुआ करती है ॥३८॥ उद्गत यौवन वाली उसने मानस अचल में विहार करती हुई ने अकेली ही ने सुन्दर तेज वाले वसिष्ठ मुनि को देखा था ॥३९॥ उस सती ने उस समय में उन मुनि का अवलोकन करके काम वासना की भावना से बाल सूर्य के तुल्य प्रभा वाले—सुन्दरतम रूप से नयुत ब्राह्मण की श्री से समन्वित उसकी इच्छा की थी अर्थात् उसे प्राप्त करने की लालसा उसको होगई थी ॥४०॥ इसके उपरान्त महान् तेज वाले उन वसिष्ठ मुनि ने भी उस वर वर्णिनी का अवलोकन करके उद्भूत काम वाला होते हुए उस अरुन्धती को देखा था ॥४१॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! इस रीति से परस्पर में एक दूसरे का अवलोकन करके महान् काम की वृद्धि हो गयी थी जिस तरह से किसी प्राकृत अर्थात् साधारण व्यक्ति को बिना ही मर्यादा के कामदेव समुत्पन्न हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि सामान्य जन की ही भाँति काम वासना उद्भूत हो गई थी ॥४२॥

अथ धैर्यं समालम्ब्य तया मेधातिथेः सुता ।
आत्मानं धारयामास मनश्च मदनेरितम् ॥४३
वसिष्ठोऽपि महातेजा धैर्यमालम्ब्य चात्मनः ।
मनः संस्तम्भयामास मदनोन्मत्त ततः ॥४४
अरुन्धती सती देवी विहाय मुनिसन्निधिम् ।
जगाम यत्र सावित्री निन्दन्ती स्वं मनोरथम् ॥४५
बाध्यमानातिदुःखेन मानसेन महासती ।
सतीभावं परित्यक्तश्चिन्तयन्ती ममेति वै ॥४६
तस्या मनोजदुःखेन विवर्णमभवन्मुखम् ।

शरीर मकल म्लान गतिश्च वलिताभवत् ।।४७
इद विमृपे साच गर्हयन्तो स्वक मन ।
मृणालतन्तुवत् सूक्ष्मा छिन्ना च तत्क्षणादपि ।।४८
स्थिति सतीनामल्पेन चापल्येनैव नश्यति ।
इति स्रीधर्ममध्याप्य मामाह चरितव्रता ।।४६

इसके अनन्तर उस प्रकार से उस मेधा तिथि की पुत्री ने धीरज का आलम्बन लिया था और अपनी आत्मा को तथा मदन (कामदेव) से प्रेरित मन को धारण किया था अर्थात् अपने आपके मन को संयत रक्खा था ।। ४३ ।। महान् तेजस्वी वसिष्ठ मुनि ने भी अपनी आत्मा में धैर्य रखकर कामवासना से उन्मथित मन को स्तम्भित किया था ।४४। इसके अनन्तर देवी अरुन्धती ने मुनि की सन्निधि का त्याग करके अपने मनोरथ की बुराई करती हुई जहा पर सावित्री थी वहाँ पर ही वह चली गयी थी ।। ४५ ।। वह महा सती मानस दुःख की अधिकता से बाध्यमाना होती हुई मैंने सती भाव का परित्याग कर दिया है—यही वह चिन्तन कर रही थी ।।४६।। उसका काम वासना के द्वारा समुत्पन्न दुःख से मुख कान्तिहीन हो गया था—उसका सम्पूर्ण शरीर भी म्लान हो गया था और गति भी मलिन हो गयी थी ।। ४७ ।। और उसने यह विचार किया था और अपने मन की गर्हणा (बुराई) करती थी कि यह मनकी वृत्ति मृणालके तन्तु के ही समान परम सूक्ष्म है और उस क्षण में छिन्न हो जाया करती है ।। ४८ ।। सतियों की स्थिति अत्यन्त अल्प चपलता से ही विनष्ट हो जाया करती है। यही सती के धर्म को पढ़ाकर मुझे चरित व्रत वाली सावित्री ने कहा था ।।४६।।

सावित्री सारमेतद् हि सतीधर्मस्य चोद्धृतम् ।
तदद्य नाशित पुसि परकीये मनोरथम् ।।५०
वर्द्धयन्त्या तदा किं मे परत्रह भविष्यति ।
इति सञ्चिन्तयन्ती सा पुत्री मेधातिथेस्तदा ।।५१

दुःखार्त्ता बहुला देवी सावित्री चाससाद ह ।
तथाविधान्तु तां दृष्ट्वा विवर्णवदनां सतीम् ॥५२
ध्यानचिन्तापरा भूत्वा सावित्री विममर्ष ह ।
विमृष्य दिव्यज्ञानेन सर्वं ज्ञातवती सती ॥५३
वसिष्ठेन त्वरुन्धत्या यथाभूद्दर्शनं तथा ।
यथा तयोः सम्प्रवृद्धो मनोजश्चातिदुःसहः ॥५४
मुखवैवर्ण्यहेतुश्च सावित्री दिव्यदर्शिनी ।
अथ मेधातिथेः पुत्र्या मूर्ध्नि हस्तं निवेश्य सा ॥५५
इदमाह महादेवी सावित्री चरितव्रता ।
यत्से तव मुखं कस्माद्भिन्नवर्णमभूदिदम् ॥५६

सावित्री देवी ने उसी धर्म को यह सार उद्धृत किया था अर्थात् मुझे बतलाया था वह आज परकीय पुरुष में मनोरथ ने नष्ट कर दिया है। तात्पर्य यह है कि दूसरे पुरुष में मन के जाने ही से वह नष्ट हो गया है ॥ ५० ॥ उस समय उस मेधा तिथि की पुत्री अरुन्धती क्या यहाँ पर पराए में मेरा मन होगा—इसी विचार को बढ़ाते हुए, यही वह चिन्तन कर रही थी ॥ ५१ ॥ दुःख से आर्त्त वह बहुला और सावित्री देवी के समीप पहुँच गयी थी। उस प्रकार से परम चिन्तित होती हुई—कान्तिहीन मुख वाली उस सती को देखकर ध्यान के चिन्तन में परायण होकर सावित्री ने विचार किया था और दिव्य ज्ञान के द्वारा विचार करती हुई उस सती को पूरा ज्ञान हो गया ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार से वसिष्ठ मुनि के साथ अरुन्धती का अवलोकन हुआ था और जैसा उन दोनों में अत्यन्त दुःसह काम वासना प्रवृद्ध हुई थी ॥ ५४ ॥ दिव्य दर्शन करने वाली सावित्री ने अरुन्धती के मुख की कान्ति की हीनता का हेतु भी जान लिया था। इसके अनन्तर उस सावित्री ने मेधा तिथि की पुत्री के मस्तक पर हाथ रखकर उस महादेवी ने जो चरित व्रत वाली सावित्री थी यही कहा था—हे वेटी ! किस कारण से तुम्हारा मुख भिन्न वर्ण वाला हो गया है ? ॥५५—५६॥

छिन्ननाल यथापद्म सूर्यांशुपरितापितम् ।
कथ शरीरमभवत् म्लान ते गुणवत्तमे ॥५७
यथा निशापतेर्बिम्ब तनुकृष्णाभ्रसवृम् ।
अन्तर्मनश्च ते भद्रे सचिन्तमिव लक्ष्यते ।
तन्मे कथय ते गुह्य नैतच्चेद्दु स्वकारणम् ॥५८
अथ साधोमुखी भूत्वा किंचिन्नोवाच लज्जया ।
सावित्री मातर गुर्वो तथा पृष्टाप्यरुन्धती ॥५९
यदा नोक्तवती किंचित्तदा मेधातिथे सुता ।
स्वय प्रकाश्य सावित्री तामुवाच तपस्विनी ॥६०
वत्से योऽसौ त्वया दृष्टो मुनिर्भास्करसन्निभ ।
स वसिष्ठो ब्रह्मसुतस्तव स्वामी भविष्यति ।
तव तस्य च दाम्पत्य पुरा धात्रैव निर्मितम् ॥६१
अतस्तव सतीभावो न हीनस्तस्य दर्शनात् ।
यद्वा तवाभूद्धृदय सकाम तस्य दर्शनात् ॥६२
न तद्दोषकर पुत्रि मनोदु ख ततस्त्यज ।
त्वया पर तप कृत्वा पूर्वजन्मनि शोभने ॥६३
वृत स एव दयित सकामस्तेन स त्वयि ।
शृणु पूर्वं त्वया वत्से वसिष्ठोऽयं वृत. पति ।
यथा तप कृत तत्र येन भावेन सन्ततम् ॥६४

हे गुणवत्तमे ! जिस प्रकार से नाल के छिन्न होने वाला पद्म जो सूर्य के ताप से तापित हुआ होता है उसी भाँति तेरा शरीर कैसे म्लान हो गया है ॥ ५७ ॥ जिस तरह से चन्द्र का बिम्ब छोटे से काले बादल के द्वारा सवृत होकर मलिन हो जाया करता है वैसे ही तुम्हारा मुख हो गया है। हे भद्रे ! तुम्हारा मन का आन्तरिक भाव भी चिन्ता से युक्त जैसा लक्षित हो रहा है। इसलिये तुम मुझे जो भी गोपनीय रहस्य की बात हो और जो भी इस दुःख का कारण हो उसे बतलादो।

॥५८॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वह नीचे की ओर मुख वाली होकर लज्जा से कुछ भी नहीं बोली थी अर्थात् बड़ी माता सावित्री के द्वारा वह पूछी भी गयी था तब भी वह लज्जा से कुछ भी नहीं बोली थी ॥५९॥ जब मेधा तिथि की पुत्री अरुन्धती ने उस समय में कुछ भी नहीं कहा था तो मनस्विनी सावित्री ने स्वयं प्रकाश करके उससे कहा था ॥ ६० ॥ हे वत्से ! जो तुमने सूर्य के समान प्रभा से समन्वित मुनि को देखा था वह ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ मुनि हैं जो कि तेरा स्वामी होगा। तेरा और उसका दाम्पत्य भाव का होना तो पहिले ही विधाता ने निर्मित कर दिया है ॥६१॥ उस लिये आपका जो सती भाव है वह उस मुनि के दर्शन में हीन नहीं हुआ है अथवा जो उनके दर्शन से आपका हृदय कामवासना से संयुत हो गया है इसमें भी सती भाव का विनाश नहीं हुआ है ॥६२॥ हे पुत्री ! वह कुछ भी दोष देने वाली बात नहीं है। अतएव जो तुम्हारे मन में दुःख है उसका परित्याग कर दो। हे शोभने ! तुमने पूर्व जन्म में परम दारुण तप करके ही उसी मुनि को अपना पति बनाना वृत किया था। इसी कारण से वह भी तुम्हारे लिये सकाम हो गये थे। हे वत्से ! तुम श्रवण करो कि आपने ही इस वसिष्ठ मुनि को अपने पति के स्थान में वरण किया था जैसा कि वहाँ पर जिस भाव से निरन्तर आपने तप किया था ॥६४॥

इत्युक्त्वा सा च सावित्री यथा सन्ध्याभवत् पुरा ॥६५
कृत तपो अदर्शयन्तु चन्द्रभागाह्वये गिरौ।
वसिष्ठेन यथा पूर्वं वर्णिरूपेण वेधस ॥६६
वचनादुपदिष्टा सा तपश्चर्या दुरत्ययाम्।
यथा प्रसन्नो भगवान् विष्णु प्रत्यक्षता गत ॥६७
वर यथा ददौ तस्यं मर्यादा स्थापिता यथा।
यथा वा वाञ्छित स्वामी वसिष्ठ स तया मुनि ॥६८

मेधातिथेर्यथा यज्ञे वह्नौ त्यक्तं त्वया वपुः ।
यथा तत्तनया जाता तस्यैतद्विस्तरात् तदा ।।६९
सावित्री कथयामास क्रमाद् बहुलया सह ।।७०

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—और उस सावित्री ने यह सब कर जैसे पहिले सन्ध्या हुई थी और उसने चन्द्रभागा के तट पर पवन में जिसके लिये तप किया था जिस तरह से ब्रह्मचारी के रूप से वसिष्ठ मुनि ने बोधा के वचन से उपदेश को हुई उसने पर महत्तम तपस्या की थी और जैसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुए थे ।।६५।।६६।।६७।। जिस प्रकार से उसके लिए वर दिया था और जैसे भर्ता ही की स्थापना की थी अथवा जिस प्रकार से उसके द्वारा वसिष्ठ मुनि को अपना पति होना चाहा था ।।६८।। जिस प्रकार से मेधातिथि ने यज्ञ किया था और जैसे तुमने अपने शरीर का त्याग किया था । और जिस रीति से उसकी पुत्री ने जन्म ग्रहण किया था उस समय में उसको यह विस्तार पूर्वक क्रम से बहुला के साथ सावित्री ने कहा था ।।६९ ।७०।।

अथ तस्या वचः श्रुत्वा यदभूत् पूर्वजन्मनि ।
तच्छुत्वा वै तदा ज्ञातं मम सर्वं मनोगतम् ।।७१
इत्यतीवत्रपा प्राप्य सातीवाभूदधोमुखी ।
सावित्रीवचनाद्भूता पूर्वजन्मस्मरा च सा ।।७२
तयैवाधोमुखी भूत्वा यद्वृत्तं पूर्वजन्मनि ।
तस्य सर्वस्य सस्मार दिव्यज्ञारुन्धती तदा ।।७३
पूर्वं विष्णुप्रसादेन सा भूत्वा दिव्यदर्शिनी ।
अधुना बाल्यभावेन प्रच्छन्ना दिव्यदर्शना ।।७४
सावित्रीवचनाच्छ्रुत्वा वृत्तान्तं पूर्वजन्मनः ।
प्रत्यक्षमिव तत् सर्वं पूर्वज्ञानमवाप सा ।।७५
अवाप्य पूर्वं ज्ञानं तद्यद्दत्तं विष्णुना पुरा ।

वसिष्ठोऽथ वृत स्वामी मया वै पूर्वजन्मनि ॥७६
इति ज्ञातवती देवी सामोदारुन्धती स्वयम् ।
वसिष्ठदर्शनद्भूते पूर्वं तस्यास्तु हृच्छये ॥७७

इसके अनन्तर इसके वचन का श्रवण करके जो भी पूर्व जन्म में हुआ था। उस समय में यह मुझ करके मेरे मन में जो था वह मैंने जान लिया था ॥७१॥ इस रीति से वह अत्यधिक लज्जा को प्राप्त कर के नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी और सावित्री के वचन से वह पूर्व जन्म के स्मरण वाली हो गई थी ॥ ७२ ॥ उसी भाँति अधोमुखी होकर पूर्व जन्म में जो भी हुआ था उस समय में उस दिव्य ज्ञान वाली अरुन्धती सब घटनाओं का स्मरण किया था ॥ ७३ ॥ पहिले भगवान् विष्णु के प्रसाद से वह दिव्य दर्शनी होकर इस समय में वह दिव्य दर्शन वाली बाल्य भाव के द्वारा प्रच्छन्न हो गई थी ॥ ७४ ॥ सावित्री के वचन का श्रवण करके पूर्व जन्म के वृत्तान्त को सबको प्रत्यक्ष की ही भाँति वह सम्पूर्ण पूर्व ज्ञान को प्राप्त करने वाली हो गई थी ॥ ७५ ॥ पूर्व ज्ञान की प्राप्ति करके जो पहिले भगवान् विष्णु ने दिया था कि मैंने पूर्व जन्म में इन्हीं वसिष्ठ मुनि का अपने स्वामी के स्थान में वरण किया था ॥ ७६ ॥ इस ज्ञान के रखने वाली वह देवी अरुन्धती स्वयं ही परम आमोद से समन्वित हो गई थी और वसिष्ठ मुनि के दर्शन से पूर्व में उसको काम वासना के उद्भूत होने का भी पूर्ण ज्ञान हो गया था ॥७७॥

यथातथ्यं समुत्पन्नं सतीत्वस्य निवारणे ।
तच्च स्वयं सा तत्याज तदा मेधातिथेः सुता ॥७८
त्यक्तचिन्ता ततस्तान्तु विज्ञायारुन्धती सतीम् ।
सावित्री सूर्यभवनं तया सार्धं जगाम ह ॥७९
अरुन्धती निवेश्याथ सावित्री सूर्यमन्दिरे ।
जगाम ब्रह्मभवनं सर्वज्ञा सा सतीवरा ॥८०

अथ प्रणम्य ब्रह्माण पृष्टा तेनैव तत्क्षणात् ।
इद जगाद सावित्री ब्रह्माणममितौजसम् ॥८१
भगवन् जगता नाथ वसिष्ठ भवत सुतम् ।
मानसस्य गिरे सानौ ददर्शारुन्धती सती ॥८२
तयोदर्शनमात्रेण ववृधे हृच्छयो महान् ।
परस्पर तौ स्पृहयाञ्चक्रतुश्च प्रजापते ॥८३
सतो घर्यात्तु सस्तम्य मनोज तौ सुदु खिता ।
विमनस्कौ गतौ स्थान लज्जितौ तौ स्वक स्वकम् ॥८४

जिस प्रकार से उसके मन मे सतीत्व के निवारण करने म आतङ्क समुत्प न हो गया था उस समय मे उस मेधातिथि की पुत्री ने उस समय मे उस आतङ्क को स्वय ही त्याग दिया था ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त चिन्ता को त्याग देने वाली उस अरु धती सती को समझ कर तब सावित्री उसके ही साथ सावित्री सूर्यदेव के भवन को चली गई थी ॥७६॥ इसके अनन्तर सावित्री अरुन्धती को उस सूर्यदेव के मन्दिर म बिठाकर वह सवज्ञा और श्र ष्ठ सती सावित्री ब्रह्माजी के भवन को चली गई थी । ८० । वहाँ पर ब्रह्माजी को प्रणाम किया था और उसी क्षण मे ब्रह्माजी के द्वारा पूछी गई उस सावित्री से अमित ओज वाले ब्रह्माजी से यह कहा था । ८१ । हे भगवन् ! आप तो समस्त जगतो के स्वामी हैं । आपके पुत्र वसिष्ठ मुनि को मानस पर्वत के शिखर पर उस सती अरुन्धती ने देखा था ॥८१—८२ ॥ फिर उसके केवल अव लोकन करने ही से महान् अधिक कामदेव की वासना बढ गई थी । व दोनो ही परस्पर म ह प्रजापते ! वे दोनो ही स्पृहा करने वाले हुए थ ॥ ८३ ॥ वे दोनों ही ने बड़े ही धीरज से बहुत ही दु खित होकर काम की वासना का स्तम्भन किया था । व दोनो ही अन्य मनस्क होकर अथवा उद म होते हुए परम लज्जित होकर अपने अपने स्थान को चले गये थ ।८४।

एवम्प्रवृत्ते यद्योग्य तदा त्वेतद्विधीयताम् ।
आयत्याञ्च सुरश्रेष्ठ लोकाना हितकाम्यया ॥८५
इति श्रुत्वा वचस्तस्या ब्रह्मा सर्वजगद्गुरु ।
ददर्श दिव्यज्ञानेन प्रवृत्ति भाविकर्मण ॥८६
इदञ्च स्वागत प्रोचे तदा लोकपितामह. ।
तयोर्दाम्पत्यभावस्य कालोऽय समुपस्थित ॥८७
अतो लोकहितार्थाय यास्यऽहं तद्प्रवृत्तये ।
इति निश्चत्य मनसा सावित्रीसहितो विधि ।
जगाम मानसप्रस्थ यत्राभूद्दर्शन तयो. ॥८८
पितामहे तत्र याते सर्वः सुरगणैर्युतः ।
नन्दिभृङ्गिप्रतिभि. समायाता वृषध्वजः ॥८९
भगवान् वासुदेवोऽपि ब्रह्मणा परिचिन्तितः ।
भवत्या सोऽपि जगन्नाथ. शङ्खचक्रगदाधर ।
स्थितो ब्रह्महरी यत्र तत्रैव स्वयमागत. ॥९०
अथ ते जगता नाथा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा. ।
नारदं प्रेषयामासुर्द्रुत मेधातिथि प्रति ॥९१

हे सुर श्रेष्ठ ! ऐसा हो जाने पर जो भी कुछ समुचित होवे उस समय में वही आप कीजिए। आयती में अर्थात् भविष्य काल की भलाई में लोकों की हित—कामना से वही आप करें जो सुवासित हो ।८५। समस्त जगतों के गुरु ब्रह्माजी ने यह उसके वचनों का श्रवण करके आगे होने वाले कर्म की प्रवृत्ति का दिव्य ज्ञान के द्वारा दर्शन किया था अर्थात् समझ लिया था कि भविष्य में क्या होने वाला है । ।८६। उस अवसर पर लोक पितामह ने इसका स्वागत ही कहा था क्योंकि उन दोनों के दाम्पत्य भाव का समय यह उपस्थित हो गया था । ।८७। इसी लिये लोकों के हित के लिये उनकी प्रवृत्ति के लिये मैं अवश्य ही जाऊँगा । ऐसा मन के द्वारा निश्चय करके सावित्री के साथ

ब्रह्माजी ने गमन किया था। और व मानस गिरि के प्रस्थ पर गये थे जहाँ पर कि उन दोनों का दर्शन हो जावे। ८८। पितामह के वहाँ चले जाने पर शिव समस्त सुरगणों से सहित होकर नन्दि प्रभृति गणों के साथ वृषभध्वज वहाँ पर समायात हो गये थे अर्थात् आ गये थ। ८९। भगवान् वासुदेव भी ब्रह्माजी के द्वारा परिचिन्तित होकर वहाँ पर आ गये थे जो कि जगत् के साथ वह भी भक्ति की भावना से शख चक्र गदा के धारण करने वाले थे। जहाँ पर ब्रह्मा और शिव स्थित थे वे भी वहाँ पर स्वय ही आ गये थे। ९०। इसके अनन्तर जगतो के स्वामी ब्रह्मा—विष्णु—महेश्वर इन तीनों ने मेधातिथि के समीप म देवर्षि नारदजी को दूत बना कर भेजा था ॥९१॥

याहि द्रुत नारद त्व चन्द्रभागाह्वय गिरिम् ।
मुनिस्तस्योपत्यकायामास्ते मेधातिथि पर ॥९२
समानय यथाकाममस्माक वचनात् स्वयम् ।
मेधातिथि समादाय भवानागच्छतु द्रुतम् ॥९३
ब्रह्मादीना वच श्रुत्वा नारदोऽपि द्रुत ययौ ।
मेधातिथि समानेतु महाकार्यस्य सिद्धये ॥९४
मेधातिथि समाभाष्य देवाना वचनस्तत ।
मेधातिथि समादाय ययौ मानसपर्वतम् ॥९५
सेन्द्रा देवगणा सव मुनयश्च तपोधना ।
साध्या विद्याधरा यक्षा गन्धर्वाश्च समागता ॥९६
देवाश्च सर्वे देव्यश्च य देवानुचरास्तथा ।
ते मर्वे मानसप्रस्थ याताश्चान्ये च जन्तव ॥९७
अथ धृते समाजे तु देवाना कमलासन ।
मेधातिथि मुनि वाक्यमिदमाहातिदेशन ॥९८

उन्होंने नारदजी से कहा—हे नारद ! आप शीघ्र ही चन्द्रभाग नामक पर्वत पर चले जाइए। वहाँ पर उस पर्वत की उपत्यका मे परम

श्रेष्ठ मुनि मेधातिथि विराजमान हैं ॥६२॥ आप उनको हमारे वचन से यथा काम स्वयं ही हमारे पास ले आइए। आप स्वयं ही मेधातिथि को साथ में लाकर शीघ्र ही यहाँ पर आ जाइए ॥६३॥ ब्रह्मा आदि के वचन का श्रवण करके नारद जी शीघ्र ही चले गये थे और सब कार्य की सिद्धि के लिये वे मेधातिथि को वहाँ पर लाने के लिये प्रस्थान कर गए थे ॥६४॥ उन देवर्षि ने मेधा तिथि से सम्भाषण करके देवों के वचनों से मेधातिथि को अपने साथ लाकर मानस पर्वत पर चले गये थे। ६५। वहाँ मानस पर्वत पर समस्त देवगण इन्द्र के सहित और सब तपोधन मुनिगण—साध्य—विद्याधर—यक्ष और गन्धर्व भी वहाँ पर समागत हो गये थे। ६६। सब देव और समस्त देवियाँ और जो देवों के अनुचर थे तथा जो अन्य जन्तुगण थे सभी मानस से प्रस्थ को समागत हो गये थे। ६७। इसके पश्चात् देवों के समाज के सम्पन्न हो जाने पर कमलासन ने मेधातिथि मुनि से अतिदेश करते हुए यह वचन कहा था ॥६८॥

मेधातिथे वसिष्ठाय पुत्री ते चरितव्रताम्।
देहि ब्राह्मेण विधिना समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥६६
वधूवरत्वमनयो पूर्व सृष्ट मयैव हि।
हरिणा चाप्यनुज्ञात कर्म चैतत् समञ्जसम् ॥१००
एव कृते तव कुले भविष्यति महद्यश ।
हित च सर्वभूताना देहि त्वा मा चिर कृथा ॥१०१
ततो ब्रह्मवच श्रुत्वा ह्यतिप्रमोदितो मुनि ।
एवमस्त्विति चोवाच नत्वा तान सुरगु गवान् ॥१०२
एषा तु वचनात् पुत्रीमादायारुन्धतीं मुनि ।
ध्यानस्थस्य वसिष्ठस्य देवै सह जगाम ह ॥१०३
गत्वा वसिष्ठनिकट देवै परिवृतो मुनि ।
ब्राह्मश्रिया दीप्यमान ज्वलन्तमिव पावकम् ॥१०४

धर्मार्थकाममोक्षेषु धृतबुद्धिं पृथक् पृथक् ।
ददर्श मुनिमासीनं मानसाचलकन्दरे ॥१०५
वसिष्ठमोजस्विवरं बालसूर्यमिवोदितम् ।
अथ पुत्रीमग्रगतां कृत्वा मेधातिथिर्मुनिः ।
वसिष्ठं नियतात्मानमुवाचारुन्धतीपिता ॥१०६

ब्रह्माजी ने कहा—हे मेधातिथे ! आप अपनी सुचारित व्रत वाली पुत्री अरुन्धती को इस देवों के समाज में ब्राह्म विधि से दे दीजिए ।९९। मैंने इन दोनों का वर और वधू होना पहिले ही सृजित कर दिया है । भगवान् हरि ने भी इस परम समुचित कर्म के विषय में आज्ञा प्रदान कर दी है ।१००। ऐसा समाचरण करने पर आपके कुल में बड़ा भारी यश होगा और इसमें समस्त प्राणियों की भलाई भी होगी । अतएव शीघ्र ही दे दीजिए और इस कर्म में विलम्ब नहीं कीजिए ।१०१। फिर ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके वह मुनि बहुत ही अधिक प्रसन्न हुये थे । और उन्होंने कहा था—'ऐसा ही होगा' फिर उसने समस्त देवों को प्रणाम किया था ।१०२। उस मुनि ने इनके वचन का श्रवण करके वह अपनी पुत्री अरुन्धती को ले आये थे । ध्यान में स्थित वसिष्ठ मुनि के समीप में देवों के साथ चले गये थे ।१०३। देवों के द्वारा परिजन मुनि ने वसिष्ठ जी के समीप में पहुँच कर जो मुनि ब्राह्म श्री से दीप्यमान थे और प्रज्वलित अग्नि के ही समान कान्ति वाले थे ।१०४। उनने पृथक्-पृथक् उस मानस पर्व तप की कन्दरा में धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष में बुद्धि को धारण किए हुए समासीन मुनि का दर्शन किया था ।१०५। वहाँ पर अरुन्धती के पिता ने ओजस्वियों में परम श्रेष्ठ—उदित बाल सूर्य के समान—नियत आत्मा वाले वसिष्ठ मुनि से अपनी पुत्री अरुन्धती को आगे करके मेधातिथि ने कहा था ।१०६।

भगवन् ब्रह्मण. पुत्र पुत्री मे चरितव्रताम् ।

दत्ता प्रतिगृह्णीष्व मया ब्राह्मेण धर्मतः ॥१०७
यत्र यत्राश्रमे ब्रह्मन् स्वेच्छया निवसिष्यसि ।
त्वद्भक्तिपरा भाविनी च च्छायेवानुगता तव ॥१०८
तत्र तत्रैव मे पुत्री समानव्रतधारिणी ।
पतिव्रता वरारोहा शुश्रूषां ते करिष्यति ॥१०९
इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु मुनेर्मेधातिथेर्वचः ।
दृष्ट्वा समागतान् देवान् ब्रह्मविष्णुशिवादिकान् ॥११०
अवश्यमेतद्भावीति निश्चित्य दिव्यचक्षुषा ।
ब्रह्मणः सम्मते पश्चात् तदा मेधातिथर्मुने ।
वसिष्ठः प्रतिजग्राह वाढमित्युक्तवाश्च ह ॥१११
गृहीतपाणि सा देवी वसिष्ठेन महात्मना ।
पत्युः पादयुगे चक्षुर्युगं न्यस्तवती सती ॥११२

मेधा तिथि न्नृपि ने कहा—हे भगवन् ! हे ब्रह्माजी के पुत्र ! मेरी चरित्र धन वाली पुत्री को जो मेरे द्वारा दी गई है इसका ब्राह्म धर्म से आप ग्रहण कीजिए । १०७ । जहाँ-जहाँ पर भी हे ब्रह्मन् ! आप अपनी इच्छा से निवास करेंगे वहीं पर ही यह अपनी परम भक्ति में प्रवृत्त होने वाली होती हुई आपके अनुगत छाया के ही समान रहेगी । १०८ । वहाँ-वहाँ पर ही समान व्रतों के धारण करने वाली यह मेरी पुत्री जो वरारोहा है और परम पति व्रता है आपकी सेवा किया करेगी । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वसिष्ठ मुनि ने इस मेधा तिथि के वचन का श्रवण करके और ब्रह्मा—विष्णु—शिव आदि देवों का वहाँ पर आये हुये देखकर दिव्य चक्षु से यह अवश्य ही होने वाला है यह निश्चय करके ब्रह्माजी के द्वारा सम्मत होने पर वसिष्ठ मुनि ने उस समय में मेधातिथि मुनि की पुत्री का 'वाढम्' अर्थात् बहुत अच्छा है—यह कह करके प्रति ग्रहण कर लिया था । ११० । १११ । महात्मा वसिष्ठ के द्वारा पाणि ग्रहण की हुई ब्रह्म देवी सती ने अपने पति वसिष्ठ जी के दोनों चरणों

मे अपनी दोना आँखों को न्यस्त कर दिया था अर्थात् अपने दोनो लोचनों को पतिदेव के चरणों मे लगा दिया था । ११२ ।

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चान्ये तथामरा ।
विवाहविधिना तौ तु मोदयाञ्चक्रुरुत्सवै ॥११३
सावित्री प्रमुखा देव्यो देवाश्चेन्द्रादयस्तथा ।
दक्षाद्याकश्यपाद्यास्तु मुनयोऽतितपोधना ॥११४
उन्मुच्य ब्रह्मवचनाद्वल्कलञ्चाजिन जटा ।
मन्दाकिनीजलेनाशु स्नानयित्वा सुत विधे ॥११५
जाम्बूनदैस्तथा दिव्यैर्भूषणैश्च मनोहरै ।
वसिष्ठ भूषयाचक्रुस्तद्वत्चारुन्धती सतीम् ॥११६
भूषयित्वाथ तौ तत्र समाप्य मुनिभिर्विधिम् ।
विवाहावभृथचक्रुस्तयोर्विधि-हरीश्वरा ॥११७
निधाय सर्वतीर्थाना तोय जाम्बूनदे घटे ।
आशीर्वादकरैर्मन्त्रैर्गायत्र्या द्रुपदादिभि ॥११८
स्वय तौ स्नापयाञ्चक्रुर्ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ।
ततो महर्षयश्चान्ये तथा देवर्षयश्च ये ॥११९

इसके अनन्तर ब्रह्मा—भगवान् विष्णु तथा रुद्रदेव और अन्य देवगण ने विवाह की तिथि के द्वारा उन दोनो को उत्सवो से परम मोदित (हर्षित) किया था । ११३ । सावित्री जिनमें प्रधान थी ऐसी देवियों ने और चन्द्र प्रभृति देवों ने दक्ष आदि और कश्यप आदि अति तप के धन वाले मुनियो ने ब्रह्माजी के कथन से वल्कल वस्त्र तथा मृग चर्म एव जटा जूटो का उन्मोचन करके विधाता के पुत्र (वसिष्ठ मुनि) को शीघ्र ही मन्दाकिनी के पावन जल से स्नपन कराकर सुवर्ण विरचित परम दिव्य एव मनोहर आभूषणो से वसिष्ठ मुनि को विभूषित किया था और उसी भाँति सती अरुन्धती को भी समलकृत कर दिया था । ११४—११६ । मुनियों के द्वारा उन दोनो वर वधू को भूषित

करके वहाँ पर विधि को सुसम्पन्न करके उन दोनों का विधाता—हरि भगवान और ईश्वर ने विवाह के अवभृथ को किया था ।।११७।। सुवर्ण रचित घट में समस्त तीर्थों के जल को रख कर आशीर्वाद करने वाले मन्त्रों से—गायत्री से और द्रुपदादि मन्त्रों से ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ने स्वयं ही उन दोनों का स्नान किया था। इसके अनन्तर अन्य महर्षियों ने और जो देवर्षियों ने शान्ति की थी ।।११८।।

ते सर्वे ऋग्यजु सामवेदमार्गैर्महास्वरैः ।
गंगादि सरितां तोयैश्चक्रु शान्ति तयोर्मुहः ।।१२०
भुवनत्रयसञ्चारि विमानं सूर्यवर्चसम् ।
अव्याहतगति ब्रह्मा सतोयञ्च कमण्डलुम् ।।१२१
ताभ्यां दायं ददौ विष्णुर्दुष्प्राप स्थानमुत्तमम् ।
यदूर्द्ध्वं सर्वदेवानां मरीच्याद्दे समीपतः ।।१२२
महाकल्पान्तजीवित्वं रुद्र प्रादात्तयोर्वरम् ।
अदितिः कुण्डलयुगं ब्रह्मणा निर्मितं स्वकम् ।
ददौ स्वकर्णादाकृष्य पुष्यै मेधातिथेस्तदा ।।१२३
पतिव्रतात्वं सावित्री बहुला बहुपुत्रताम् ।
देवेन्द्रो वहुरत्नानि धनेशेन समं ददौ ।।१२४
एवं देवाश्च मुनयो देव्यश्चान्ये च ये स्थिताः ।
ददुस्तत्र यथायोग्यं दायं ताभ्यां पृथक् पृथक् ।।१२५
एवं विवाह्य विधिवत् सौवर्णे मानसाचले ।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्तु मोदमाप तया सह ।।१२६

उन सबने महान् स्वर समन्वित ऋक्—यजु और साम वेदों के मन्त्र भागों द्वारा गङ्गा आदि सरिताओं के जलों से उन दोनों की फिर शान्ति की थी। २०। तीनों भुवनों में सञ्चरण करने वाला—सूर्य के समान वर्चस् वाला विमान जो अव्याहत गति से समन्वित था और जल के सहित कमण्डलु उन दोनों के लिए ब्रह्माजी ने दाय दिया था।

भगवान् विष्णु ने दुष्प्राप उत्तम स्थान दिया था जो मरीचि आदि के समीप में सब देवों का ऊर्ध्व था । २१ । २२ । भगवान् रुद्रदेव ने उन दोनों के लिए सात कल्पों के अन्त पर्यन्त जीवित बने रहने का वर दिया था । अदिति ने कुण्डलों का जोड़ा दिया था जो ब्रह्माजी के द्वारा अपने ही निर्माण किये गये थे । उस समय में मेधातिथि ने अपने कानों में निकालकर पुत्री के लिए दिए थे ।२३। सावित्री ने पतिव्रता होना और बहुला ने बहुत पुत्रों वाली होना दिया था । देवेन्द्र ने बहुत से रत्नों का समूह कुबेर के ही समान ही दिया था ।१२४। इस रीति से देवगण ने—मुनियों ने—देवियों ने और जो भी अन्य जन वहाँ पर उपस्थित थे सबने यथा योग्य दान उन दोनों के लिये पृथक्-पृथक् दिया था ।१२५। इस प्रकार से विधि पूर्वक विवाह करके सुवर्ण के मानस पर्वत पर वसिष्ठ और अरुन्धती रहे थे और वसिष्ठ जी ने उस अरुन्धती के साथ परम हर्ष प्राप्त किया था ॥१२६॥

तस्यां तु पतितं तोयं मानसाचलकन्दरे ।
विवाहावभृथार्थाय शान्त्यं च सुराहृतम् ॥१२७
ब्रह्मविष्णुमहादेवपाणिभिः समुदीरितम् ।
गलोय सप्तधा भूत्वा पतितं मानसाचलात् ॥१२८
हिमाद्रे सन्दरे सानौ सरस्याञ्च पृथक् पृथक् ।
तत्तोयं पतितं शिप्रे देवभोग्ये सरोवरे ॥१२९
तेन शिप्रानदी जाता विष्णुना प्रेरिता हि सा ।
महाकौशी प्रपाते तु यद्वारि पतितं तु यै ॥१३०
कौशिकी नाम सा जाता विश्वामित्राख्यतारिता ।
उमा क्षेत्रे यत् पतितं तोयं तेन महानदी ॥१३१
बाधेरी नाम सा जाता महा पापहरम् शुभा ।
महाकाले शुभ क्षेत्रे पतितं सज्जलं शिवे ॥१३२
हिमाद्रेः पार्श्वभागे तु दक्षिणे शम्भुनायितो ।

गोमती नाम तैर्जाता नदी गोमदुदीरिता ॥१३३

विवाह के अवभृथ के लिये और शान्ति के लिये जो सुरों के द्वारा लाया हुआ जल था वहा पर वह जल मानस पर्वत की कन्दरा में गिरा था ।१२७। ब्रह्मा—विष्णु और महादेव के हाथों से समुदीरित वही जल सात भागों में विभक्त होकर मानस पर्वत से गिरा था।१२८। हिमालय की कन्दरा में—शिखर में और सरोवर में पृथक् पृथक् गिरा हुआ वह जल फिर दवों के भोग के योग्य और शिप्र सरोवर में गिरा था।१२९। उसमें शिप्रा नदी समुत्पन्न हुई थी जो भगवान् विष्णु के द्वारा भूखण्डल में प्रेरित की गयी थी। महा कौषी के प्रपात में जो जल पतित हुआ था उससे कौशिकी नाम वाली नदी उत्पन्न हुई थी और जो विश्वामित्र ऋषि के द्वारा अवतारित थी। उमा के क्षेत्र में जो जल गिरा था उससे महा नदी समुत्पन्न हुई थी जो महाकाल नामक सर निम्नी है। सरा म श्रेष्ठ महाकाल में गिरि वह जल पतित हुआ था।१३०—१३२। हिमवान् पर्वत के पार्श्वभाग में भगवान् शम्भु की सान्निधि में जो जल गिरा था उससे गोमती नाम वाली नदी समुत्पन्न हुई थी जो गोमद से उदीरित है॥१३३॥

मैनाको नाम य पुत्र शैलराजस्य सत्तम ।
तस्मिन् सानौ समुत्पन्नो मेनकोदरत पुरा ॥१३४
यत्तत्र पतितं तोय तेन जाता महानदी ।
देविकाख्या महादेवप्रेरिता सागर प्रति ॥१३५
यत्तोय सगत दर्वा हसावतारसन्निधौ ।
तेनाभूत् सरयूर्नाम्ना नदी पुण्यतमा स्मृता ।।१३६
यान्यम्भांसि महापार्श्वे खाण्डवारण्यसन्निधौ ।
हिमवत्कन्दरे याम्ये इराया ह्रदमध्यत ॥१३७
इरावती नाम नदी तैर्जाता च सरिद्वरा ।
धृता सर्वा स्नानपानसेवनैर्जाह्नवी यथा ॥१३८

फल ददति मर्त्यानां दक्षिणोदधिगा सदा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजभूता सनातना ॥१३९
महानद्यस्तु सप्तैता सर्वदा देवभोगदा ।
एवं नद्य सप्तजाता सदापुण्यतमोदका ॥१४०

मैनाक नाम वाला जो पुत्र शैल राज के ही समान था पहिले वह उसी शिखर में मेनका के उदर से समुत्पन्न हुआ ।१३४। यह जल वहा गिरा था उसका शुभनाम देविका था जो महादेव के द्वारा सागर की ओर प्रेरित की गयी थी । १३५। जो जल हसावतार की सन्निधि में दरी में सङ्गत हुआ था उससे सरयू नाम वाली नदी उत्पन्न हुई थी जो परम पुण्यतम कही गयी है । १३६। जो जल खाण्डव वन की सन्निधि में महा पार्श्व में गिरे थे जो कि हिमवान् की कन्दरा में याम्य में पतित हुये थे वहा दरा के ह्रद के मध्य में इरावती नाम वाली नदी ने जन्म धारण किया था जो सरिताओं में परम श्रेष्ठ है। ये सभी सरितायें स्नान-पान और सवन से जाह्नवी गङ्गा के ही तुल्य हैं। ये सब सदा दक्षिण सागर में गमन करने वाली मनुष्यों को फल दिया करती है। ये नदिया धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष की सनातन बीज भूता हैं अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिये कारण स्वरूप ही है। ।१३९। ये सात महा नदियाँ सर्वदा देवों के भोगों को प्रदान करने वाली हैं। इस रीति में सात नदिया समुत्पन्न हुई थी जो सदा ही पुण्य जल वाली थी ॥१४०॥

अरुन्धत्या वसिष्ठस्य विवाह देवसन्निधौ ॥१४१
एवं विवाह्य स तदा वसिष्ठस्त्वामरुन्धतीम् ।
देवैर्दत्त सदा स्थानं विमानेन जगाम ह ॥१४२
ब्रह्म-विष्णु-महेशाना वचना मुनिसत्तम ॥१४३
हिताय सर्वजगतां त्रिपु लोकेषु नर्मदा ।
यस्मिन् यस्मिन् युगे यादृक् क्षीणा भवति तादृशम् ॥१४४

देश भाव शरीर च कृत्वा धर्मं नियोजनम् ।
विचरत्येप लोकास्त्रीनप्रमत्त प्रस नधी ।।१४५
एव पुरा वसिष्ठेन परिणीतात्वरुन्धती ।
सा हितार्थाय जगता देवाना वचनात् पुरा ।।१४६
य इद शृणुयान्नित्यमाख्यान धर्मसाधनम् ।
सर्वकल्याणसयुक्त चिरायुर्धनवान् भवेत् ।।१४७

देवो की सन्निधि म अरुन्धती का और वसिष्ठ मुनि का विवाह हो जान पर इस प्रकार स उस अरुन्धती के साथ विवाह करके उस अवसर पर वे वसिष्ठ मुनि उस अरुन्धती को लकर देवो के द्वारा किए हुए स्थान म उसी समय मे वसिष्ठ मुनि श्रेष्ठ ब्रह्मा—विष्णु और महेश के वचन से ही उस पूर्वोक्त स्थान पर चल गये थे । व समस्त जगतो के हित के सम्पादन करने के लिय तीनो भुवनो म सर्वदा जिस जिस युग म स्त्रियाँ को जैस भी हैं वैस ही हो जात हैं । १४४ । देश-भाव और शरीर का धम ■ नियोजन करक यह परम प्रमत्त बुद्धि वाले—प्रमाद से रहित होन हुए तीनो लोको म विचरण किया करत हैं ।१४५। इसी रीति से मुनि वसिष्ठ न पहिले अरुन्धती के साथ परिणय किया था जो कि देवो के हित क लिए ही देवों क पहिल वचन से ही परिणीत की गयी थी । १४६ । जो पुरुष इस धर्म के साधन स्वरूप आख्यान का नित्य ही श्रवण किया करता है वह सब प्रकार के कल्याणों स युक्त होकर चिरायु और धनवान् हुआ करता है ।।१४७।।

या स्त्री शृणोति सततमरुन्धत्या कथा मिमाम्
पतिव्रता सा भूत्वेह परत्र स्वर्गमाप्नुयाम् ।।१४८
इद पर स्वस्त्ययनमिद धमप्रद परम् ।
आख्यान सर्वदा कीर्तियश पुण्यविवर्धनम् ।।१४९
विवाह पु सि यात्राया य श्राद्धे श्रावयेत्तथा ।

स्थैर्यं पुंसवन सिद्धि पितृप्रीतिश्चजायते ॥१५०
इति व कथित सव वसिष्ठस्य महात्मन ।
अरुन्धती यथाभूता भार्या चापि पतिव्रता ॥१५१
यस्य या तनया जाता यथोत्पन्ना च यत्र च ।
यथा ब्रह्महरीशाना वचनात्त स वृत पति ॥१५२
एतत् व सर्वमाख्यात गुह्याद्गुह्यतर परम् ।
पुण्यद पापहरणमायुरारोग्यवधनम् ॥१५३
इति विपुलतपोधरोमवारीनिहास
गदति मयूदपाह श्रावयद्वा द्विजानाम् ।
स भवति तनुपोघहीनदेह समनो
मुनियरगहचया प्रेत्य गीर्वाण एव ॥१५४

१५३ ॥ यह बहुत वर्षों के ओघ का क्षय करने वाला इतिहास है। इसको सभा में द्विजों को कोई एक बार भी श्रवण करा देता है वह मनुष्य वसुधा में समूह में हीन दह वाला हो जाता है और साथ में रह कर मुनिवरों की सहचर्या को प्राप्त कर लेता है और मृत होने पर वह देवता ही हो जाता है ॥१५४॥

— × —

॥ संहार-कथन ॥

ततो हिमवत प्रस्थे गिरे शिप्रसर स्तीरे।
उपविष्टो महादेवस्तत्पारोऽपश्यदन्तिके ॥१
पुन पुन प्रेष्यमाणा ब्रह्मणा हरिणा च स ।
ध्यान कर्तुं तत्र मन स्थिर कृत्वा हठात्मवान् ॥२
आत्मानमात्मना द्रष्टुमात्मन्येव विशेषत ।
परम यत्नमकरोद्ध्यानेन स्मरशासन ॥३
ध्याने प्रविष्टचित्तन्तु त दृष्ट्वा द्रुहिणादय ।
हरे प्रविष्टा मायाद्या तुष्टुवुर्यतमानसा ॥४
मायया मोहितो भर्ग सतीशोकाकुलो भृशम् ।
विलपत्येव ता तस्मिन् मोहहेतु जगत्प्रसूम् ॥५
स्तुत्वा शम्भुशरीरात्तु नि सार्यता निराकुलाम्।
शम्भुर्चिरा करिष्यामो ध्यानासक्त निरञ्जनम् ॥६
यावत् सती पुनर्देह गृहीत्वा हरगामिनी ।
भविता तावदेवैष विशोको ध्यातु निष्कलम् ॥७
इति संचिन्त्य मनसा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकस ।
योगनिद्रा महामाया स्तोतुमेव समारभन् ॥८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके उपरान्त हिमालय पर्वत के प्रस्थ पर शिप्र सरोवर के तट पर उपविष्ट हुए महादेवजी ने

उस सरोवर का अवलोकन कर रहे थे ॥१॥ वारम्वार ब्रह्मा और हरि के द्वारा प्रेप्यमाण वह ध्यान करने के लिये मनका स्थिर करके दृढ आत्मा वाले हुये थे। आत्मा के द्वारा आत्मा को आत्मा मे ही विशेष रूप मे देखने के लिये कामदेव को शामन करने वाले शिव ने ध्यान के द्वारा परम यत्न किया था ॥२॥३॥ द्रुहिण प्रभृति ने ध्यान प्रविष्ट चित्त वाले उन को देखकर यतमानस होते हुये हर म प्रवेश की हुई माया नाम वाली का स्तवन किया था ॥४॥ माया मे मोहित हुये शिव बहुत ही अधिक सती के शोक स व्याकुल हैं और वह उसी के लिये विलाप किया करते हैं उसमे मोह के हेतु जगत्प्रभु की स्तुति करके शम्भु के शरीर से इस निराकुला को निकाल कर ध्यान म आसक्त निरञ्जन शम्भु के चित्त म कर देंग। ५। ६। जब तक सती पुन शरीर का ग्रहण करके शिव की भामिनी होव तब तक यह विगत शोक वाले होकर निष्कल का ध्यान करे ॥७॥ ब्रह्मा आदि देवगण यही मन से चिन्तन करके महामाया योग निद्रा देवी की स्तुति करने का समारम्भ उन्होंने कर दिया था ॥८॥

श्रीशक्ति पावनी तान्तु पुष्टि परमनिष्कलाम् ।
वय स्तुमो महाभक्तया महदव्यक्तरूपिणीम् ॥९
शिवा शिवकरी शुद्धा स्थूला सूक्ष्मा परावराम् ।
अन्तर्विद्यामविद्याख्या प्रीतिमेवाप्रयोगिणीम् ॥१०
त्व मेधा त्व धृतिस्त्व ह्रीस्त्वमेका सर्वगोचरा ।
त्व दीधिति सूर्यगता सुप्रपञ्चप्रकाशिनी ॥११
या तु ब्रह्माण्डसस्थान जगद्वीजपु या जगत् ।
आप्यायति ब्रह्मादीस्तम्वान्तान् या त्वमापगा ॥१२
य एक सर्वजगता प्राणभूत सदागति ।
देवानाञ्च य आधार. स नभस्वान्त्वाणव. ॥१२
एव विसारि यत्तेज सर्वत्रैव ममिध्यते ।

सतते रूप जगद्बीज बहुधा यच्च दृश्यते ॥१४

देवी न कहा—उस श्री शक्ति पावनी पुष्टि और परम निष्फला का जा महान् अव्यक्त रूप वाली है हम लोग महतीशक्ति की भावना स स्तुति करते हैं। ६। वह परम शिवा है—शिव अर्थात् कल्याण के करने वाली हैं शुद्धा—स्थूला—सूक्ष्मा—परावरा अनविद्या—अविद्या नाम वाली—प्रीति और एकाग्र योगिनी है। १०। आप ही मता हैं—आप धृति हैं—ह्री हैं और आप एव सबके गोचरा हैं—आप ही धिति हैं—सूय म यता है और सुप्रपञ्च के प्रकाश करने वाली हैं। ११। जो ब्रह्माड सधान है जो जगत् के बीजो म जगत् है जो आप आपको ब्रह्मा स आदि लेकर स्तम्ब के अन्त पयन्त आप्यायित किया करती है। १२। जो समस्त जगतो का प्राणभूत सदागति और दया का आधार है वह नभ भी आपका ही एव अशभूत है १३। इस प्रकार स विसारी जो तज है वह सवत्र ही भली भाति जायगा वह आपका रूप जगद् का बीज है और जो प्राय दिखाई दिया करता है। १४।

या ब्रह्मलोकपातालसान्तरालगता सदा।
सा त्व वियन्मध्यवर्तिन्य ब्रह्माण्डस्य च सर्वत ॥१५
अचलाचलवर्गेण यन्विता या प्रपञ्चसृ ।
जगद्धात्री लोकमाता सा च त्व माधवी क्षिति ॥१६
त्व बुद्धिस्त्व तद्विषया त्व माता च्छन्दसा गति ।
गायत्री त्व वेदमाता त्व सावित्री सरस्वती ॥१७
त्व वार्ता सर्वजगता त्व त्रयी कामरूपिणी ।
त्व हि निद्रास्वरूपेण प्राणिनो निर्जरादय ।
ये स्वर्गाद्योकस सर्वान् सुखयन्ती प्रमोहसि ॥१८
त्व लक्ष्मी पुण्यकर्त्रीणा पापिना त्व हि यातना ।
तथा नीतिभृता श्रीश्च सुखदानैशिकी धृति ॥१९
त्व शान्ति सर्वजगता त्व कान्तिश्चन्द्रगोचरा ।

त्व धात्री सर्वभूताना लक्ष्मीस्त्व विष्णुमोहिनी ॥२०
त्व तत्त्वरूपा भूतान । पचानामपि सारकृत् ।
त्व त्रिलोकी महामाया त्व नीतिर्मोहकारिणी ॥२१

जो ब्रह्मलोक पाताल और सदा अन्तरारमगता है वह आप वियत् (आकाश) के मध्य म और बाहिर और ब्रह्माण्ड में सभी ओर हैं । १५। जो प्रबल चल चक्र स यन्त्रित प्रपञ्च को उत्पन्न करने वाली हैं । आप इस जगत् की धात्री—लोक माता है और आप माधवी क्षिति है । १६ । आप बुद्धि है और आप ही उसका विषय है—आप मात' हैं और छन्दो की गति है । आप गायत्री—वद माता और आप सावित्री तथा सरस्वती है । १७ । आप ही सब जगतो की वार्त्ता है और आप कामरूपिणी त्रयी हैं । आप निद्रा के स्वरूप के द्वारा प्राणी हैं तथा निर्जर आदि है । निजर देवो का नाम है । जो स्वर्ग आदि के स्थान वाले हैं उन सबको आप मुख्य करती हुई प्रकृष्ट रूप से मोह युक्त किया करती हैं । १८ । आप पुण्य कार्य करने वालो के लिये लक्ष्मी हैं और जो पाप कर्म किया करत हैं उनके लिए साक्षात् यातना हैं । उसी भाँति जो नीति के धारण करने वाले पुरुष है उनके लिये श्री है और नीतिनी धृति सुख देने वाली हैं । १९ । आप सब जगतो की शान्ति है और आप चन्द्र म गोचर होने वाली कान्ति हैं । आप समस्त प्राणियों की धात्री है और आप विष्णु को मोहन करने वाली लक्ष्मी हैं । २० । आप भूतो की तत्त्व रूप वाली है और आप पाचो भूतो की सार करने वाली है । आप त्रिलोकी महा माया हैं । आप मोह करने वाली नीति हैं । २१ ।

ससारचक्रेप्यारोप्य सर्वभूत महेश्वर ।
भ्रामयन्नस्ति च यथा सा त्व माया महेश्वरि ॥२२
जयन्ती जययुवताना ह्रीर्विद्या नीतिरुत्तमा ।
गीतिस्त्व सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्व यजुषा हुति ॥२३

गभस्तगीर्वाणस्य शक्ति-
स्तमोमयी सत्त्वगुणैक रूपा।
रज प्रपचानुभवैककारिणी
या न स्तुता भव्यकरीह सास्तु ॥२४
संसारसागरकरालतरङ्ग ख-
निस्तारकारिरणिश्चितिरीतिहीना।
याष्टाङ्गरूपपरपावनकेलिगीत-
विक्षेपकारिणी गिरौ प्रणमाम तां वै ॥२५
नामाक्षिवक्त्रभुजवक्षसि मानसे च
धृत्वा सुखानि विदधाति सदैव जन्तो।
निद्रेति यातिसुभगा जगतो भवाना
सा न. प्रसीदतु धृतिम्भृतिवृत्तिरूपा ॥२६
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सृष्टिस्थित्यन्तशक्तिर्या सा माया न प्रसीदतु ॥२७

भगवान् महेश्वर सर्वभूत को समार चक्रो म समारोपित करके जैसे भ्रमण कराते हुए हैं हे महेश्वरि ! वह आप ही माया हैं। २२। आप जय ने गुणों की जननी—श्री—विद्या—उत्तमा नीति हैं, आप सामवेद की गीतिका हैं, आप यजुर्वेदों की ग्रन्थि और द्युति हैं॥ २३॥ आप समस्त देवों के समुदाय की तपोमयी शक्ति है जो सत्वगुण की एक रूपा हैं, आप रजोगुण के प्रपञ्च की एक ही करने वाली हैं। जो स्तुत नहीं हुई वह आप यहाँ भव्य के करने वाली होवे ॥ २४॥ इस ससार रूपी महा सागर की महान् कराल तरङ्गो के दुःखो से निस्तार करने वाली तरणि हैं जो स्थिति की रीति से हीन है। जो अष्टाङ्ग रूप परम पावन केलि गीत के विक्षेप करने वाली हैं पर्वत मे उसको निश्चय ही हम प्रणाम करते हैं॥२५॥ आप नासिका—नेत्र मुख—भुजा और वक्षस्थल म और मानस मे सुखो को ९

शम्भु की शान्ति के लिये ही उनके अन्दर प्रवेश करके वल्प रूप में ऐसे हो गये थे और अच्युत प्रभु ने सृष्टि स्थिति और अन्त को वैसा ही दिखा दिया था ॥२६—३०॥ जिस रीति से उत्पन्न की जाया हुई और वह जो विमर्वी पुत्री हुई थी तथा जैसे सभी युक्त देह वाली हुई थी वह सभी दिखला दिया था ।३१। बाहिर से व्यक्त हुआ प्रपन्च और बहुत रजोगुण और पर ज्योति का दिखला कर फिर उस समय में उनका मत चित्त वाला कर दिया था ॥ ३२ ॥ फिर भगवान् शङ्कर ने भी अनेक बार उन समस्त प्रपन्चों का नाश करके उस समय में उन्हें नि सार जानकर सार वस्तु में ही चित्त का निवेशन किया था ॥३३॥ उस समय में ब्रह्मा आदि देवों की माया उनके द्वारा परिप्लुत होकर और कर्त्तव्य की प्रतिज्ञा करके वहां पर ही शीघ्र अन्तर्धान हो गई थी ॥ ३४ ॥ वैकुण्ठ नाथ भगवान् श्री पद पद्म ने भगवान शम्भु के चित्त को संयमित करके रवि मण्डल में शम्भु की ही भांति शरीर में निवसन गये थे ।३५।

> ततस्तस्यान्तदा देवा ब्रह्मनारायणादय ।
> स्व स्व स्थान ययु प्रीतिमुक्तास्तपवा हर गिरौ ॥३६
> ध्यानासक्त महादेव प्रणम्यन्द्रादय सुरा ।
> विज्ञाप्य मोदित देव जग्मु स्थान स्वयम् ॥३७
> यातेषु तेषु देवेषु कपर्दी वृषवाहन ।
> सहस्र दिव्यमानेन दध्यौ ज्योति पर समा ॥३८
> एवं मधुरिपु शम्भो प्रविश्य हृदयेऽन्जसा ।
> कल्पे कल्पे स्थिति सृष्टि सायमन्त्वाप्यदर्शयत् ॥३९
> यदा जगत्प्रपचाय रजसा जगती गता ।
> नि सारता च न नेपा दर्शिता कैटभारिणा ॥४०
> किन्तु सारतर गुह्य पर ज्योति सनातनम् ।
> दर्शित तेन तत् सत्यमाचक्ष्व द्विजसत्तम ॥४१

सदा ही जन्तु का किया करती है जो संसार में होने वाली सुभगा निद्रा है—ऐसे जाया करता है वही आप हमारे ऊपर धृति—स्मृति और वृत्ति रूप वाली प्रसन्न होवे ॥ २३—२६ ॥ जो सृष्टि—स्थिति और अन्त के रूप वाली अथवा सृजन—पालन और संहार करने वाली हैं, जो सृष्टि—स्थिति और अन्त की शक्ति हैं वह माया हम प्रसन्न पर होवे ॥ २७ ॥

योगनिद्रा महामाया संस्तुतेयं तदा सुरैः ।
हरस्य हृदयात् क्षिप्रं निःससार तदाञ्जसा ॥२८
विनिःसृतायां तु तस्यां विवेश मधुसूदनः ।
शम्भोरन्तः स्वयं तस्य शान्त्यर्थं विश्वरूपधृक् ॥२९
प्रविश्य हृदयं तस्य कल्पे कल्पे यथाभवन् ।
सृष्टि स्थितिस्तथैवान्तस्तथादर्शयदच्युतः ॥३०
यथा सती तस्य जाया भूता सा या च यत्सुता ।
तत् सर्वं दर्शयामास मुक्तदेहा च सा यथा ॥३१
बहिर्व्यक्तं तु निःसारं प्रपञ्चं रजसा बहु ।
दर्शयित्वा परं ज्योतिर्मयं चित्तं तदाकरोत् ॥३२
ततो हरोऽपि तान् सर्वान् प्रपञ्चान् वीक्ष्य चासकृत् ।
निःसाराश्च तदा मत्वा सारे चित्तं न्यवेशयत् ॥३३
ब्रह्मादीनां तदा माया देवानां तैः परिप्लुता ।
प्रतिश्रुत्य च कर्तव्यं तत्रैवान्तर्दधे द्रुतम् ॥३४
भगवानपि वैकुण्ठं शम्भोश्चित्तं पदे पदे ।
सायम्य निःसृतः कायाद्राजेव रविमण्डलात् ॥३५

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—महामाया योग निद्रा यह उस समय में सुरों के द्वारा संस्तुता है वह शीघ्र ही भगवान् हर के हृदय से निकल गयी थी। २८। उसके विनिःसृत होने पर उसमें मधुसूदन ने प्रवेश किया था। विश्व के रूप को धारण वाले भगवान् ने स्वयं उन

शम्भु की शान्ति के लिये ही उनके अन्दर प्रवेश करके कल्प-कल्प में ऐसे हो गये थे और अच्युत प्रभु ने सृष्टि स्थिति और अन्त को वैसा ही दिखला दिया था ॥२९—३०॥ जिस योनि में उनकी सती माया हुई और वह जो जिसकी पुत्री हुई थी तथा जैसे सती युक्त देह वाली हुई थी वह सभी दिखला दिया था ।३१। बाहिर में व्यक्त हुआ प्रपञ्च और बहुत रजोगुण और पर ज्योति का दिखला कर फिर उस समय में उनको मन चित्त वाला कर दिया था ॥ ३२ ॥ फिर भगवान् शङ्कर ने भी अनेक बार उन समस्त प्रपञ्चों का मन्थन करके उस समय में उन्हें निःसार मानकर सार वस्तु में ही चित्त का निवेशित किया था ॥३३॥ उस समय में ब्रह्मा आदि देवों की माया उनके द्वारा परित्यक्त होकर और कर्त्तव्य की प्रतिज्ञा करके वहाँ पर ही शीघ्र अन्तर्धान हो गई थी ॥ ३४ ॥ वैकुण्ठ नाम भगवान् भी पद पद में भगवान् शम्भु के चित्त का समर्पित करके रवि मण्डल में राजा की हो भाँति शरीर में निवास गए थे ।३५।

कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मनारायणादय ।
स्व स्व स्थान ययु श्रीनिम्बुनास्त्यक्त्वा हर गिरं ॥३६
ध्यानासक्त महादेव प्रणम्यब्रह्मादय सुरा ।
विज्ञाप्य मोहित देव जग्मु स्थान स्वकम् ॥३७
यातेषु तेषु देवेषु कपर्दी वृषवाहन ।
सहस्रं दिव्यमानेन दध्यौ ज्योति पर महा ॥३८
अथ मधुरिपु शम्भो प्रविश्य हृदयेऽन्यसा ।
कल्पे कल्पे स्थिति सृष्टि सायमन्त्याप्यदर्शयत् ॥३९
यथा जगत्प्रपञ्चाय रजसा जगतो गता ।
नि सारता च तेषा दर्शिता कैटभारिणा ॥४०
किन्तु सारतर गुह्य पर ज्योति सनातनम् ।
दर्शित येन तत् सत्यमाचष्ट द्विजसत्तम ॥४१

श्रोतुमिच्छाम इति ते मुनीन्द्राद्‌भुतमुत्तमम् ।
विस्तरादिदमाख्याहि धर्मं निःश्रेयसं परम् ॥४२

उस समय में ब्रह्मा और नारायण प्रभृति समस्त देव कृतकृत्य अर्थात् सफल हो गए थे और प्रीति से युक्त होकर गिरिपर हर को छोड कर अपने अपने स्थान को चले गये थे ॥३६॥ ध्यान में समासक्त महादेव जी को प्रणाम करके इन्द्र आदि सुरगण मौनधारी देव को विज्ञापन करके अपने अपने स्थान को चले गये थे ॥३७॥ उन देवों के चले जाने पर वृषभ के वाहन वाले शम्भु दिव्यमान से एक सहस्र वर्ष पर्यन्त पर ज्योति के ध्यान में संलग्न हो गये थे ॥ ३८ ॥ ऋषियों ने कहा—भगवान मधुरिपु ने कैसे शम्भु के हृदय में शीघ्र प्रवेश करके कल्प कल्प में सृष्टि—स्थिति और प्रलय को दिखलाया था ॥ ३९ ॥ जिस तरह से रजोगुण के द्वारा जगत् में प्रपञ्च के लिये जगती तल में गये थे । फिर कैटभारि प्रभु ने उनकी निर्मानता को किस प्रकार से दिखलाया था ? ॥ ४० ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! उन्होंने फिर मारतट—गोपतीय—सनातन पर ज्योति को दिखलाया था ? वह सत्य बतलाइये ॥ ४१ ॥ यही हम सब श्रवण करने की इच्छा करते हैं । यह अतीव अद्भुत है उसे हम आप मुनीन्द्र के मुख से ही सुनने के इच्छुक हैं । आप इसको विस्तार पूर्वक कहिए क्योंकि यह परम निःश्रेयस धर्म है ॥४२॥

आदिसर्गमहं वक्ष्ये वाराहं द्विजसत्तमाः ।
कल्पे कल्पे यथा सृष्टिर्वाराहे यादृशो भवेत् ॥४३
आदिसृष्टिं दर्शयित्वा प्रतिसर्गं तथा हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास प्रलयादीन् निबोधत ॥४४
प्रलयं प्रथमं वक्ष्ये सर्गमादिं ततः परम् ।
प्रतिसर्गं ततो विप्रा वाराहं विनिबोधत ॥४५
निमेषो नाम कालांशो नेत्रोन्मेषविलक्षितः ।
तैरष्टादशभिः काष्ठा काष्ठाना त्रिंशता कला ॥४६

कलाभिस्तावतीभिस्तु क्षणाख्य परिकीर्तित: ।
क्षणैर्द्वादशभि प्रोक्तो मुहूर्त्तस्तैस्तु त्रिशता ॥४७
मानुष स्यादहोरात्र पक्षस्ते दश पञ्च च ।
पक्षाभ्या मानुषो मास पितृणा तदहर्निशम् ॥४८
मासैर्द्वादशभिर्वर्षो देवाना तदहर्निशम् ।
कृष्णपक्ष पितृणा तु कर्मार्थे दिवसो मत ॥४९

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठो ! मैं आदि सर्ग वाराह का वर्णन करूँगा जिस तरह से कल्प—कल्प में वाराह से जैसी सृष्टि हुई थी ।४३। भगवान् हरि ने प्रतिसर्ग में उसी भाँति आदि सृष्टि को दिखलाकर भगवान् शम्भु के लिये प्रलय आदि को दिखलाया था —इसे समझ लो ।४४। सबसे प्रथम मैं प्रलय का वर्णन करूँगा। उसके पीछे आदि सर्ग को बतलाऊँगा। हे विप्रो ! प्रति सर्ग में फिर वाराह का ज्ञान प्राप्त करलो।४५। काल के एक अंश को निमेष कहा जाता है जो नेत्रों के उन्मेष में विशेष लक्षित हुआ करता है। उन अठारह निमेषों से एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं की एक कला है। ।४६। उतनी ही अर्थात् तीस कलाओं से एक क्षण नामक कहा गया है। बारह क्षणों से एक मुहूर्त्त कहा गया है तथा तीस मुहूर्त्तों से मनुष्यों का अहोरात्र होता है। और पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है। पक्षों से मनुष्यों के वर्ष होते हैं जो कि पितृगणों का एक अहोरात्र हुआ करता है ।४७।४८। बारह मासों का एक वर्ष होता है जो देवों का एक महोरात्र ही है। पितृगणों के कर्म के लिये कृष्ण पक्ष ही दिन माना गया है ।४९।

स्वप्नार्थं शुक्लपक्षस्तु रजनी परिकीर्तिता ।
देवाना तु दिन प्रोक्त षण्मासा उत्तरायणम् ॥५०
रात्रि स्वप्नाय देवाना षण्मासा दक्षिणायनम् ।
द्वाभ्या द्वाभ्यान्तु मासाभ्यामर्त्तजान्यामृतु स्मृत ॥५१

ऋतुभिश्चायन प्रोक्त त्रिभिस्तन्मानुष मनम् ।
ऋतुभिर्वत्सर षड्भिस्ताश्च शृणु पृथक् पृथक् ॥५२
चैत्रादि-मासयुगलै सज्ञाभेदाद् द्विजोत्तमा ।
वसन्तश्चैत्रवैशाखो ग्रीष्मो ज्येष्ठ शुचिस्तथा ॥५३
प्रावृट नभोनभस्यौ तु शरत स्यादिप-कार्तिके ।
सह पौषौ च हेमन्त शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥५४
षडिमे ऋतव प्रोक्ता यज्ञादौ विहिता पृथक् ।
नृणा मानेन दशभिर्लक्षं सप्तभिरुत्तरं ।
अष्टाविंशतिसाहस्रं मानं कृतयुगस्य तु ॥५५
सन्ध्या चतुशतानीह वर्षाणामन्तरालत ।
सन्ध्याशस्तावता प्रोक्तस्तदन्तर्गत ईप्सित ॥५६

स्वपन अर्थात् शयन करने के लिये शुक्ल पक्ष होता है जो रजनी कही गयी है । उत्तरायण सूर्य के होने पर छै मास देवो का दिन कहा गया है । ५० । दक्षिणायन के छै मास देवो की रात्रि शयन करने की हुआ करती है । सूर्य से समुत्पन्न दो-दो मासो से ऋतु कहा गया है । । ५१ । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है जो मनुष्यो का माना गया है । छै ऋतुओं का एक वत्सर (वर्ष) होता है और उनको आप पृथक् पृथक् सुनिये । ५२ । हे द्विजोत्तमो ! सज्ञा के भेद से चैत्र आदि दो मासो से ऋतु को समझिये । चैत्र और वैशाख दो मास से वसन्त ऋतु होता है । ज्येष्ठ और आषाढ़ दो मासों मे ग्रीष्म ऋतु हुआ करता है । ५३ । श्रावण और भाद्रपद—दो दो मासो म वर्षा ऋतु हुआ करता है । आश्विन और कार्तिक मासो म शरत् ऋतु हुआ करता है । मार्गशीर्ष और पौष मे हेमन्त ऋतु होता है तथा माघ और फाल्गुन मासो मे शिशिर ऋतु होता है । ५४ । ये छै ऋतुयें कही गयी हैं जो यज्ञादि मे पृथक् विहित किये गये हैं । मनुष्यो के मान से सत्रह लक्ष है और अट्ठाईस सहस्र का मान कृतयुग का है । ५५ । अन्तराल मे अर्थात् युगो

की इन सबकी सन्ध्या या अन्त हुआ करता है जो कि उन सन्ध्याश में सयुत है । ६३ ।

दैव दिन वत्सरेण मानुषेण सरात्रकम् ।
एव क्रम गणित्वा तु मानुषीयैश्चतुर्युगे ।
दैव द्वादशसाहस्र वत्सराणा प्रकीर्तितम् ॥६४
देवैर्द्वादशसाहस्रैर्वत्सरैर्दैविक युगम् ।
तद्वै चतुर्युग नृणां सन्ध्या सन्ध्यांशसयुतम् ॥६५
देवाना तु कृते त्रेताद्वापरदिव्यवस्थया ।
न युगव्यवहारोऽस्ति न च धर्मादिभिन्नता ॥६६
किन्तु चातुर्युग नार भवेद्दैवयुग सदा ।
दैविकैरेकसप्तत्या युगैर्मन्वन्तर भवेत् ॥६७
दैवयुगसहस्रे द्वे ब्रह्मण स्यादहर्निशम् ।
चतुर्युगसहस्रे द्वे नृणा मानेन तद्भवेत् ॥६८
एतस्मिन् ब्राह्म दिवसे मनव स्युश्चतुर्दश ।
एव ब्राह्मेण मानेन दिवसैस्तु त्रिभि शतै ।
स षष्टिभिर्वत्सर स्याद् ब्राह्मो वर्षो नृणा यथा ॥६९
ब्राह्मै पञ्चशता वर्षे परार्ध परिकीर्तित ।
तदीश्वरस्य दिवसस्तावती रात्रीरीड्यते ॥७०

रात्रियो के सहित देवो का दिन मनुष्यो का एक वत्सर होता है । इस प्रकार स क्रम की गणना करके मनुष्यो के चारो युगो मे देवो के बारह सहस्र वर्ष कीर्तित किय गये है । ६४ । देवो के बारह सहस्र वर्षो का दैविक युग हुआ करता है । वह मनुष्यो के चार युग है जिसमे सन्ध्या और सन्ध्यांश की सम्मिलित होना है । ६५ । देवो के कृतयुग मे त्रेता—द्वापर की व्यवस्था से युग व्यवहार नही है और धर्म आदि की भिन्नता भी नही है।६६। किन्तु मनुष्यो का चतुर्युग अर्थात् चारो युग सदा देवो का युग होता है । इकहत्तर देवोंके युगोसे एक मन्वन्तर हुआ करता है । ६७ । देवों के दो सहस्र युगों का ब्रह्माजी का एक अहोरात्र हुआ

गया है । मनुष्यों के मान से दो [illegible] चारों युग होते हैं । ६८ । एक ब्रह्माजी के दिन में चौदह मनु होते हैं । इस प्रकार से ब्रह्मा के मान से तीन सौ दिनों से रातों के बराबर होता है जैसे मनुष्यों का है वैसे ही ब्रह्मा का वर्ष होता है । ६९ । आयु अर्थात् ब्रह्मा के पांच सौ वर्षों के परार्द्ध कीर्तित किया गया है । यह ईश्वर का दिवस है और इतनी ही रात्रि कही जाती है । ७० ।

एतेन ब्रह्मणो वर्षो कालः स्याद्द्विपरार्धकः ।
परार्धद्वितयेऽतीते ब्रह्मणः प्रलयोऽभवत् ॥७१
प्रलीने ब्रह्मणि परे जगतां प्राकृतो लयः ।
ततस्तु जगदाधारमव्ययं यत् परात्परम् ॥७२
तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य दिवारात्रिस्तु यद् भवेत् ।
तत्परं नाम तस्यार्धं परार्धमभिधीयते ॥७३
जगत्स्वरूपी भगवान् परमात्माक्षयोऽव्ययः ।
स्थूलात् स्थूलतमः सूक्ष्माद् यस्तु सूक्ष्मतमो मतः ।
न तस्यास्ति दिवारात्रिव्यवहारो न वत्सरः ॥७४
किन्तु पौराणिकैः पूर्वैस्तन्मानैरपि गाहते ।
सृष्टिप्रलययोर्वार्यं कल्प्यते तदहर्निशम् ॥७५
स एव रात्रिः स दिवा न वर्षं
स वै क्षितिः सृष्टिकरो हरश्च ।
स विष्णुरूपी पुरुषः पुराणः
तस्मिन् समस्तञ्च विभाति तत्त्वम् ॥७६
ततो ब्रह्मापि लीने तु परमात्मनि शाश्वते ।
जगत् सर्वं क्रमेणैव तद्रूपत्वाद् गच्छति ॥७७

ब्रह्माजी के एक सौ वर्ष का काल दूसरा परार्द्ध होता है । द्वितीय परार्द्ध के व्यतीत हो जाने पर जो कि ब्रह्मा का है प्रलय होता है पर ब्रह्मा के लीन हो जाने पर जगतों का प्राकृत लय हुआ

जो समस्त जगता का आधार—अव्यय और पर से भी पर है । ७२। उस ब्रह्मा के स्वरूप क दिवा रात्र का जो होता है उसस पर नाम उसका आधा पराध कहा जाता है । ७३। जगत् के स्वरूप वाले भगवान् परमात्मा अक्षय और अव्यय होता है । जो स्थूल से स्थूलतम है और जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम माना गया है । उसका दिवारात्रि का व्यवहार नहीं होता है और वत्सर ही है । ७४। किन्तु पूर्व पौराणिकों के द्वारा और उस प्रकार के हमारे भी द्वारा सृष्टि और प्रलय के ज्ञान प्राप्त करने के लिये अहर्निश कल्पित किया जाया करता है । ७५। वह ही रात्रि है—वही वप है और वह स्थिति है तथा सृष्टि के करने वाला हर है—वह विष्णु के रूप वाले पुराण पुरुष हैं उसी म यह समस्त उसी की भांति विभात होता है । ७६ । यह शाश्वत परमात्मा ब्रह्म के लीन होने पर यह सम्पूर्ण जगत् क्रम से ही उसके रूपत्व के निय गमन किया करता है अर्थात् उसी का स्वरूप बन जाया करता है ॥ ७७ ॥

ब्रह्मण शतवर्षान्ते रुद्ररूपी जनार्दन ।
जगदन्त स्वय कृत्वा परमे लीनमेति च । ७८
प्रथम मविता सर्वं स्थावर जगम तथा ।
नीत्रं करं शापयित्वा जल सर्वं ग्रहोष्यति ॥७९
शुष्का वृक्षास्तृणगणा प्राणिन पर्वतास्तथा ।
नर्णीरस्त्रा विश र्णा स्युर्दिव्यवर्षशतेन तु ॥८०
तता द्वादशसूर्यस्य रश्मय प्रबना भृशम् ।
भगवन द्वादशादित्या जगद्भाग्यापवृ हिता ॥८१
रश्मिद्वारेण मरनाग्यामे भवनानि च ।
अदहन्त पृथिवी घा,य मेदिनी नाप्णगता गता ॥८२
नना विनष्ट गम न स्थावर जगमे तथा ।
आदित्यरश्मिना देवा रुद्ररूपी जनार्दन ॥८३
नि मृत्य प्रथम यान पाताना... ॥८४

ब्रह्मा के सौ वर्ष के अन्त में रुद्रदेव के स्वरूप वाले भगवान् जनार्दन स्वयं इस जगत् का अन्त करके परम रूप में लीनता को प्राप्त हो जाते हैं ।७८। सबसे प्रथम तो सविता अपनी परम तीक्ष्ण किरणों से स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण जगत् के जल का शोषण करके स्वयं ग्रहण लेंगे ॥७९॥ शुष्क वृक्ष—तृण गण—प्राणी तथा पर्वत चूर्ण होकर दिव्य सौ वर्ष में विशीर्ण हो जायेंगे ॥८०॥ फिर बारह सूर्यों की बहुत ही अधिक प्रबल किरणें हुईं और जगत् के मोक्ष में उपस्थित द्वादश आदित्य हुए थे ॥८१॥ वे उग्र सूर्य अपनी किरणों के द्वारा भुवनों का दाह कर देते थे । द्यौ और मेदिनी उज्ज्वलता को प्राप्त हो गये थे ॥८२॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम के विनष्ट हो जाने पर आदित्य की किरण से रुद्ररूपी देव जनार्दन निरन्तर उन्नत हो पाताल नदी को प्राप्त होगये थे ॥८३—८४॥

सप्तपातालसंस्थांस्तु नागगन्धर्वराक्षसान् ।
देवान्नृपांश्च शेषञ्च जघान वरशूलधृक् ॥८५
एवं स्वर्गे च पाताले पृथिव्यां सागरेषु च ।
ये प्राणिनस्तान् समस्तान् जघान स जनार्दनः ॥८६
ततो मुखान्महावायुं रुद्रश्च सृष्टवान् स्वयम् ।
सोऽव्याहतगतिर्गाढं सञ्चचार भुवनत्रये ॥८७
यावद्वर्षशतं वायुर्भ्रमन् भुवनगर्भग ।
सर्वमुत्सारयामास यत् किञ्चित्तूलराशिवत् ॥८८
समस्तं तत् समुत्सार्य जगद्वायुः समन्ततः ।
विवेश द्वादशादित्यान् स वायुर्जवनाधिकः ॥८९
प्रविश्य मण्डलं तेषां तेजोभिः सह मारुतः ।
महामेघान् समारेभे रुद्रेण प्रतियोजितः ॥९०
ततस्ते प्रेरिता मेघास्तेन वातेन वेगिना ।
रुद्रेणाप्यतिरौद्रेण पर्यावव्रुर्नभस्तलम् ॥९१

सात पाताल के संस्थानो को—नाग, गन्धर्व और राक्षसों को—देवों को—ऋषियों को और शेष को नर शूल के धारण करने वाले ने हनन कर दिया था ॥ ८५ ॥ इसी प्रकार से स्वर्ग में—पाताल में—पृथिवी में और सागरों में जो भी प्राणधारी जीव थे उन प्रभु जनार्दन ने उन सबको मार गिराया था ॥ ८६ ॥ इसके पश्चात् मुख से महा-वायु का रुद्रदेव ने स्वयं सृजन किया था। वह अव्याहत गति वाला वायु दृढ़ता से संसार के तीनों भुवनों में भुवन के गर्भ में गमन करने वाला सौ वर्ष तक भ्रमण करता हुआ जो भी कुछ था उस सबको तुला राशि के ही समान उसको उत्सारित कर दिया था ॥८७—८८॥ सभी ओर जगत् में रहने वाले सम्पूर्ण को समुत्सारित करके वेग में अत्यधिक वह वायु बारह आदित्यों में प्रवेश कर गया था ॥८६॥ उनके मण्डल में प्रवेश करके उनके तेज के साथ वायु गुरुदेव के द्वारा प्रति-योजित होते हुए महान् मेघो का उसने समारम्भ कर दिया था ॥६०॥ फिर प्रेरित हुए वे मेघ जो उस वेग वाले वायु के द्वारा ही प्रेरित किये गये थे अतिरौद्र रुद्र के द्वारा मेघों ने नभस्तल को घेर लिया था ॥६१॥

सावर्ताख्या महामेघा भिन्नाञ्जनचयोपमा. ।
केचिद्धूम्रा.शोणवर्णाः शुक्लाश्चित्राश्च भीषणाः ॥६२
केचिच्च पर्वताकाराः केचिन्नागसमप्रभाः ।
प्रासादसदृशाः केचित् क्रौञ्चवर्णाविभीषणाः ॥६३
गर्जन्तस्ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम् ।
ववृषुर्क्षीनथो लोकान् प्लावयन्तो महास्वनाः ॥६४
अथ स्तम्भप्रमाणेन धारापातेन वै दृढम् ।
धारासारेण महता पूरितं भुवनत्रयम् ॥६५
आध्र वस्थानमासाद्य तोयराशौ स्थिते ततः ।
स मुखादसृजद्वायुं रुद्ररूपी जनार्दन ॥६६

तेनौघवायुनाक्षिप्ता मेघा नाबन्तसरान्छतम् ।
अव्याहतगतेनाशु विध्वस्ता अभवन्तत ॥९७
नष्टेषु तेषु मेघेषु जननोकादिक पुन ।
रुद्रस्त्वाब्रह्मभुवन ध्वंसयामास निर्दय ॥९८

सम्वर्त नाम वाले महामेघ जो भिन्न अञ्जन के समूह के समान थे। उनमें कुछ तो धूम्र वर्ण वाले थे—कुछ शुक्ल और कुछ चित्र विचित्र वर्ण वाले महा भीषण थे ॥ ९२ ॥ कुछ मेघ पर्वत के तुल्य आकार से युक्त थे—कुछ नाग के समान प्रभा से समन्वित थे—कुछ बड़े विशाल प्रासाद के समान थे और कुछ क्रौञ्च के वर्ण वाले महान् भीषण थे ॥ ९३ ॥ वे महामेघ गर्जन करते हुए सौ वर्ष से भी अधिक समय तक महान् शब्द करने वाले वे मेघ तीनों लोकों का प्लावन करते हुए वर्षा हुए वर्षा करते थे ॥ ९४ ॥ इसके अनन्तर स्तम्भ (खम्भा) के प्रमाण वाली धाराओं से पात से मुक्त हुए धारासार ने जो कि बहुत ही महान् थी तीनों भुवनों को पूरित कर दिया था ॥ ९५ ॥ आप्लुव-स्थान को प्राप्त करके जल समूह के स्थित होने पर उन रुद्ररूपी प्रभु जनार्दन ने अपने मुख से वायु का सृजन किया था ॥ ९६ ॥ उन वायु के ओघ से क्षिप्त मेघ सौ वर्ष तक अव्याहत गति वाले वायु से द्वारा फिर ध्वस्त हो गये थे ॥ ९७ ॥ उन मेघों के विनष्ट हो जाने पर फिर दया से रहित रुद्रदेव ने ब्रह्म भुवन तक जन लोक आदि का विध्वस कर दिया था । ९८ ।

विध्वस्तेषु समस्तेषु भुवनेषु विशेषत. ।
विनष्टे ब्रह्मलोके च रुद्रोऽजाद्द्वादशारुणान् ॥९९
स गत्वा द्वादशादित्यान् वेगेन महता हरि. ।
अप्रभच्चानिजज्वाल तेगभस्त्यैर्दिवाकरै: ॥१००
ततो ब्रह्माण्डमासाद्य रुद्र कालान्तकोपम. ।
चूर्णीचकार सकल मुष्टिपेप महाबल. ॥१०१

चूर्णीकुर्वंस्तु ब्रह्माण्डं पृथिव्यपि विचूर्णिता ।
तोयानि च समस्तानि स दध्रे योगतो हरिः ॥१०२
यद् ब्रह्माण्डाद्बहिस्तोयं स्थितं पूर्वं समन्ततः ।
यद्वाभ्यन्तर्गतं तोयं तत् सर्वञ्चैकतां गतम् ॥१०३
एकीभूतेषु तोयेषु सर्वव्यापिषु सर्वतः ।
ब्रह्माण्डखण्डपूर्णौघं प्लवन्नासीत् स नौरिव ॥१०४
ततः पृथिव्याः सारन्तु गन्धं तन्मात्रकं क्रमात् ।
अम्भो जग्राह सकलं विनष्टा पृथिवी ततः ॥१०५

समस्त भुवनो के विध्वस्त हो जाने पर और विशेष रूप से ब्रह्मलोक के विध्वस्त होने पर गुरुदेव द्वादश अरुणो के समीप गये थे। । ९९ । वे हरि महान् वेग के साथ द्वादश आदित्यों के समीप में पहुँचे थे और उनको ग्रसित कर लिया था फिर उन गर्भ में स्थित दिवाकरों के द्वारा अत्यन्त प्रज्ज्वलित हो गये थे । १०० । इसके उपरान्त कालान्तर में समान महान् बलवान् रुद्रदेव ब्रह्माण्ड में प्राप्त हुये थे और वह सब को मुष्टि पेष चूर्ण कर दिया था । १०१ । ब्रह्माण्ड को चूर्ण करते हुये उन्होंने पृथिवी को भी चूर्णित कर दिया था । उन हरि ने योग के बल से समस्त जलों को धारण कर लिया था । १०२ । जो जल पूर्व में सब ओर ब्रह्माण्ड से बाहिर स्थित था अथवा जो अभ्यन्तर में रहने वाला जल था वह सब एक रूपता को प्राप्त हो गया था । १०३ । सब ओर सर्व व्यापी जलों में एकीभूत हो जाने पर ब्रह्माण्ड के खण्डों से पूर्णौघ वह नौका की ही भाँति प्लवन करते हुए थे । १०४ । इसके अनन्तर पृथिवी का सार गन्ध तन्मात्रक से क्रम से जल ने ग्रहण कर लिया था और सम्पूर्ण पृथिवी विनष्ट हो गई थी ।१०५।

पुनः स रुद्रस्तेजांसि गर्भस्थानि रयवायतः ।
निःसारयामास पुनः पुञ्जीभूतानि भीषणः ॥१०६
तानि तेजांसि सकलं जगृहुः सर्वतः स्थितम् ।

अन्तर्बहिश्च ब्रह्माण्डात्तेजो यच्चान्यतो गतम् ॥१०७
जगद्गतं सर्वतेजो गृहीत्वा चैकतो ज्वलन् ।
रौद्रब्रह्माण्डखण्डानि तेजोऽत्र न्यदहज्जले ॥१०८
दग्ध्वा ब्रह्माण्डचूर्णानि तेजांस्युज्ज्वलितानि च ।
जलेभ्यो रसतन्मात्रं सारभूतं ततोऽग्रहीत् ।
गृहीतसारास्ता आपः प्रनष्टास्तेजसा ततः ॥१०९
अप्सु नष्टासु तत्तेजः प्रविश्याथ सदागतिः ।
एकीभूतो महाभागो रूपतन्मात्रमग्रहीत् ॥११०
गृहीते रूपतन्मात्रे तेजांसि सकलान्यथ ।
विनष्टानि ततो वायुः प्रबलोऽभूदवारितः ॥१११
महास्वनं ततो वायुमासाद्याग्निरिवज्वलन् ।
रुद्रः संक्षोभयामास तदाकाशं स्वयं ततः ॥११२

फिर उन रुद्रदेव ने गर्भ में स्थित तेजों का अपने शरीर से निकाल दिया था। पुनः भीषण रूप से वे पुञ्जीभूत हो गए थे।१०६। उन तेजों ने सब ओर स्थित सबको ग्रहण कर लिया था और भीतर—बाहिर ब्रह्माण्ड से जो तेज था तथा अन्य से गया हुआ था। सबका ग्रहण किया था ॥ १०७ ॥ जगत् में रहने वाले सम्पूर्ण तेज का ग्रहण करके एक ही स्थान में जलते हुए ने रौद्र ब्राह्माण्ड के खण्डों को जल में विक्षेप कर दिया था ॥ १०८ ॥ ब्रह्माण्ड के चूर्णों का दाह करके वे तेज उज्ज्वलित हो गये थे फिर जलों में जो उनकी रस तन्मात्रा थी जो कि सारभूत थी उसका ग्रहण कर लिया था। जिनका सार ग्रहण कर लिया गया वे निस्सार जल तेज के द्वारा प्रविनष्ट हो गये थे।१०९। जलों के विनष्ट हो जाने पर इसके अनन्तर सदा गति ने तेज में प्रवेश किया था और वह महा भाग एकीभूत होकर रूप की तन्मात्रा को उसने ग्रहण कर लिया था ॥ ११० ॥ रूप तन्मात्रा के ग्रहण किये जाने पर सम्पूर्ण तेज विनष्ट हो गये थे। और अनादित वायु प्रबल हो गया

था ।।१११।। इसके अनन्तर वायु महान् शब्द वाले को प्राप्त करके अग्नि की भाँति प्रज्वलित होते हुए रुद्रदेव सक्षुब्ध हो गये थे और उस समय में आकाश को गया था ।११२।

तेन सक्षुब्धमाकाशमग्रहीन्मरुतस्तत ।
तदगत स्पर्शतन्मात्र ततो नष्ट प्रभञ्जन ।।११३
नष्टे वायौ ततो रुद्र आकाशात् रासमग्रहीत् ।
शब्दतन्मात्रक तस्मिन गृहीते विगत वियन् ।।११४
नष्टे नभसि रुद्रोऽसौ काये ब्राह्मे तदाविशत् ।
ब्राह्म तदाकुल काय निराधार निरा कुलम् ।
विवेश वैष्णवे काये शखचक्रगदाधरे ।।११५
तत शौरिर्महातेजा काय तत् पाचभौतिकम् ।
शखचक्रगदाशार्ङ्ग वरासिधरमच्युतम् ।
स्वशक्त्या माजाहाराशु सारमादाय सर्वत ।।११६
निराधार निराकार नि सत्त निरवग्रहम् ।
आनन्दमयमद्वैत द्वैतहीनाविशेषणम् ।।११७

उसमे सक्षुब्ध आकाश को वायु ने ग्रहण कर लिया था । उसके अन्दर रूप की तन्मात्रा को लेकर फिर वायु भी नष्ट हो गया था । ।।११३।। वायु के नष्ट हो जाने पर रुद्रदेव ने आकाश से रास का ग्रहण किया था । उसमे शब्द तन्मात्रा के ग्रहण करने पर आकाश विगत हो गया था ।। ११४ ।। आकाश के नष्ट हो जाने पर यह रुद्रदेव उस समय में ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश कर गये थे । उस अवसर पर ब्राह्म शरीर आकुल—निराधार और निराकुल हो गया था । फिर शख, चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के शरीर में उसने प्रवेश किया था ।। ११५ ।। इसके उपरान्त महान् तेजस्वी भगवान् कृष्ण ने अपना पाञ्च भौतिक शरीर जो अच्युत और शख, चक्र तथा गदा के धारण करने वाला था सबसे सार का आदान करके अपनी शक्ति के द्वारा

शीघ्र ही त्याग दिया था ॥ ११६ ॥ जो बिना आधार वाला तथा आकार से रहित—निमित्त और निग्रह था। जो आनन्द से परिपूर्ण—अद्वैत—द्वैत से हीन और बिना विशेषण वाला था उसका त्याग कर दिया था ॥११७॥

न स्थूल न च सूक्ष्मं यज्ज्ञाय नित्यं निरञ्जनम् ।
एकमासीत् परं ब्रह्म स्वप्रकाशं समन्तत ॥११८
नाहो न रात्रिर्न वियन्न पृथ्वी
नासीत्तमो ज्योतिरभूच्चान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्याद्युपलम्भमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥११९
एवं यावत्स्थिता सृष्टिस्तावत् कालमसृष्टिकम् ।
आसीदेकं परं तत्त्वं ततः सृष्टि प्रवर्तते ॥१२०
प्रकृतौ सस्थितो यस्मात् सर्वतन्मात्रसंचय ।
अहङ्कारं महत्तत्त्वं यतो यत् प्राकृतो लय ॥१२१
प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलयन्तु तत् ।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चर ॥१२२
अयं च कथितो विप्रा प्राकृतात्मो महालय ।
आदिसृष्टिं शृणुध्वेमां कथ्यमाना मया पुन ॥१२३

जो न तो स्थूल है और न सूक्ष्म ही है जिसका ज्ञान नित्य एवं निरञ्जन है। वह एक ही परब्रह्म है जो सभी ओर से अपने द्वारा ही प्रकाश वाला है ॥ ११८ ॥ जो न तो दिन है और न रात्रि ही है। न आकाश है और न पृथ्वी है। वह तम भी नहीं था और न ज्योति भी नहीं था। श्रोत्रादि और बुद्धि आदि से उपलम्भ एक प्राधानिक ब्रह्म है। उस समय में पुमान् था ॥११९॥ इस प्रकार से जब तक यह सृष्टि स्थित थी तब तक ही सृष्टि काल काल था एक ही परतत्त्व था फिर उससे सृष्टि प्रवृत्त होती है ॥१२०॥ क्योंकि सभी तन्मात्राओं का संचय

प्रकृति म सास्थत था। जो प्राकृत लय था उसम अहङ्कार और महत्तत्व गत होगये थे।१२१। जो अतीत प्रलय वाला अव्यक्त था वह भी प्रकृति म संस्थित था इसी कारण से प्रत्यक यह सञ्ज्ञा प्राकृत सज्ञा वाला है और ऐसा कहा जाया करता है।। १२२ ।। हे विप्रो ! यह प्राकृत नाम वाला महान् लय आपको बतला दिया है। मेरे द्वारा पुन कथ्यमान इसका आदि सृष्टि का आप लोग श्रवण कीजिए।१२३।

— × —

।। वाराह-सर्ग वर्णन ।।

कालो नाम स्वय देव सृष्टिस्थित्यन्तकारक ।
अविच्छिन्न स प्रलय स्तेन भागेन केनचित् ।।१
लयभागे व्यतीते तु सिसृक्षा समजायत ।
ज्ञानरूपस्य च तदा परमब्रह्मणो विभो ।।२
ततोऽस्य प्रकृतिस्तेन सम्यक्संक्षोभिता धिया ।
साक्षुब्धा सर्वकार्यार्थमभूत् सा त्रिगुणात्मिका ।।३
यथा सन्निधिमात्रेण गन्ध क्षोभाय जायते ।
मनसो लोयकर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वर ।।४
स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वर ।
स सकोचविकाशभ्या प्रधानत्वेऽपि च स्थित ।।५
इच्छामात्रेण पुरुष सृष्ट्यर्थं परमेश्वर ।
तत सक्षोभयामास पुनरेव जगत्पति ।।६
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितात् तत ।
गुणव्यञ्जनसम्भूति सर्गकाले बभूव ह ।।७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह काल नाम वाला स्वय देव ही है जो सृजन—पालन और संहार के करने वाला है। उस किसी भाग स

वह प्रलय अविच्छिन्न है ॥ १ ॥ उस के काल के व्यतीत हो जाने पर सृजन करने की इच्छा समुत्पन्न हुई थी । और ज्ञान के स्वरूप वाले उस समय में परब्रह्म विभु को ही सृजन की इच्छा उत्पन्न हुई थी ॥ २ ॥ इसके अनन्तर उनके द्वारा प्रकृति स्वयं ही उसी भाँति थी के द्वारा सक्षोभित हुई थी । वह मनुष्य होकर त्रिगुणात्मक स्वरूप वाली (सत्व—रज—तम ये तीन गुण है)—वह प्रकृति सभी कार्य करने के लिये हुई थी ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से सन्निधि मात्र से ही गन्ध क्षोभ के लिये हुआ करती है उसी भाँति लोकों के कर्त्ता होने से वह परमेश्वर मन का होता है ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! वह ही क्षोभ को करने वाला है और वही क्षोभ करने के योग्य होता है । वह सङ्कोच और विकास से प्रधान—होने पर भी स्थित है । ५ ॥ परमेश्वर प्रभु या पुराण पुरुष अपनी केवल इच्छा के करने ही से सृष्टि की रचना करने के लिए प्राप्त हुआ करते हैं । इसके अनन्तर उन जगतों के स्वामी ने फिर भी सक्षोभ किया था ॥ ६ ॥ फिर गुणों के अर्थात् सत्व—रज और तम इन गुणों के साम्य होने से जो कि क्षेत्र के ज्ञाता से अधिष्ठित थे उस सर्ग अर्थात् सृजन के काल मे गुणों से व्यञ्जन की उत्पत्ति हो गई थी ॥ ७ ॥

प्रधानतत्त्वादुद्भूतं तमीश्वरेच्छासमीरितात् ।
महत्तत्त्वं प्रथमतस्तत् प्रधानं समावृणोत् ॥८
प्रधानेनावृतात्तस्मादहङ्कारो व्यजायत ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥९
त्रिविधोऽयमहङ्कारो यो जातो महतोऽमृत ।
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च स वै हेतुः सनातनः ॥१०
स महान्तमहङ्कारं जायमानं समावृणोत् ।
तन्मात्राणि ततः पञ्च अजनिरेऽस्मात् तमावृतात् ॥११
प्रथमं शब्दतन्मात्रं स्पर्शनं मारयतरम् ।

तृतीय रूपतन्मात्र रसतन्मात्रमेव च ॥१२
पञ्चम गन्धतन्मात्रमेतानि क्रमशोऽभवन् ।
प्रत्येक सर्वतन्मात्र महकार समावृणोत् ॥१३
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाश शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्र तथाकाश भूतादि स समावृणोत् ॥१४

ईश्वर की इच्छा से समीरित प्रधान तत्त्व से प्रथम ही उद्भूत महत्तत्त्व के प्रधान को समावृत किया था ॥८॥ प्रधान के द्वारा आवृत उस महतत्त्व से अहङ्कार उत्पन्न हुआ था। यह अहङ्कार वैकारिक—तैजस और तामस भूतादि था ।६। सबसे आगे अर्थात् पहिले जो अहङ्कार समुत्पन्न हुआ था यह तीन प्रकार का था। वह सनातन भूतादिको था और इन्द्रियों का हेतु था।१०। उस महान् ने अर्थात् महत्तत्त्व ने उत्पन्न होते ही अहङ्कार को समावृत कर लिया था। उस समावृत अहङ्कार से पाँच तन्मात्रायें समुत्पन्न हुई थीं ॥११॥ सबसे पहिले शब्द तन्मात्र और उसके अनन्तर स्पर्श तन्मात्र समुत्पन्न हुए। तीसरी रूप तन्मात्रा और फिर रसतन्मात्रा एवं पाँचवी गन्ध तन्मात्रा क्रम से ही समुत्पन्न हुई थी। उन सभी तन्मात्राओं में प्रत्येक तन्मात्रा को अहङ्कार ने समावृत कर लिया था ॥ १२—१३ ॥ फिर उन परमेश्वर प्रभु ने शब्द के लक्षण वाले आकाश को शब्द की तन्मात्रा में सृजित किया था। उस प्रकार से शब्द मात्र आकाश को उस भूतादि ने समावृत कर लिया था ॥१४॥

शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्रतस्तत ।
वायु समभवत् स्पर्शगुण शब्दसमन्वित ॥१५
आकाशवायुसयुक्ताद्रूपतन्मात्रतस्तत ।
तेज समभवद्दीप्त सर्वतस्तदवर्धत ॥१६
तच्छब्दवत् स्पर्शवच्च रूपवच्च व्यजायत ।
ततो वियद्वायुतेजोयुक्तात्तोय ससर्ज ह ।
रसतन्मात्रत सम्यक् तेन व्याप्त समन्त. ॥१७

तोयाद्याधारशक्तिर्या विष्णोरमिततेजसः ।
सा दधेञ्य निराधाराण्यनिलान्दोलितानि वै ॥१८
तेषु बीजं प्रथमतः ससर्ज परमेश्वरः ।
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥१९
महदादिविशेषान्तैरारब्धं सर्वतो वृतम् ।
वार्वह्निपवनाकाशैस्तमो भूतादिना बहिः ।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ॥२०
बीजं यथा बाह्यदलैर्व्याप्तमण्डं तथा पुनः ।
तोयादिभिरनया व्याप्तं ब्रह्माण्डमतुलं द्विजाः ॥२१

शब्द तन्मात्रा के सहित स्पर्श तन्मात्रा से शब्द से समन्वित स्पर्श गुण वाला वायु समुत्पन्न हुआ था ।१५। आकाश और वायु से संयुत रूप तन्मात्रा से देदीप्यमान तेज हुआ था जो सभी ओर से सन्वेष्टित हुआ था ।१६। यह शब्द वाला—स्पर्श वाला और रूप वाला समुत्पन्न हुआ था । इसके उपरान्त वायु तेज से युक्त विपत् से जल की उत्पत्ति हुई थी । वह रस तन्मात्रा से भली भाँति सभी ओर से इसके द्वारा व्याप्त हो गया था ।१७। अमित तेज वाले भगवान् विष्णु की आधार शक्ति है । उसने निराधार और अनिल के द्वारा आन्दोलितों को धारण किया था ।१८। सब से प्रथम परमेश्वर प्रभु ने उन में बीज का सृजन किया था । वह बीज हैम अण्ड हो गया था जिस अण्ड की प्रभा सहस्रांशु के ही समान थी ।१९। महत्तत्व से आदि लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सब से समावृत होकर आरम्भ किया था । वारि जल—अग्नि—अनिल—आकाश—तम और भूतादि से समावृत जिस तरह से महान् से भूतादि होते हैं वह अण्ड दश गुणों से समावृत था ।२०। जिस रीति से बाह्य दलों से बीज व्याप्त होता है ठीक उस भाँति से हे द्विजो ! यह तोय आदि से अतुल ब्रह्माण्ड व्याप्त था ।२१।

तदण्डमध्ये स्वयमेव विष्णु-
र्ब्रह्मस्वरूपं विनिधाय तावत् ।

दिव्येन मानेन स वर्षमेकं
स्थितोऽग्रहोद्वीजगण स्वबुद्ध्या ॥२२
ध्यानेन चाण्डं स्वयमेव कृत्वा
द्विधा स तस्थौ क्षणमात्रमस्मिन् ।
तदैव तन्मात्रगणैः समस्तै-
र्गन्धोत्तरैर्भू रमुनैव सृष्टा ॥२३
स्पर्शस्य शब्दस्य समस्तरूप-
गुणस्य गन्धस्य रसस्य चैवा ।
आधारभूता सकलं कृता य-
त्तन्मात्रवर्गैरखिला धरित्री ॥२४
जातस्तदुर्थे कनकाचलोऽसौ
जरायुभिः पर्वतसञ्चयोऽभूत् ।
गर्भादकैः सप्तपयोधयस्तु
स्कन्धद्वयेन त्रिदशालयोऽभूत् ॥२५
स्व धद्वयेनापरदेशजेन
रूप्याभवन्नागगृहाणि तानि ।
पातालसंज्ञानि महागुणानि
यत्र स्वयं स्यात् परतो महेश ॥२६
तेजोगणात्तस्य बभूव लोको
योऽसौ महर्लोक इति श्रुतोऽभूत् ।
जनाह्वयोऽभूत्तपसोऽस्य गर्भाद्
ध्यानात्तपोलोकवरो बभूव ॥२७
अण्डोर्ध्वभागादभवत्तु सत्य
ब्रह्माण्डखण्डोपरि विष्णुरूपम् ।
परं पदं यन्निगदन्ति धीरा
यज्ज्ञानगम्यं परिनिष्टितम् ॥२८

उस अण्ड के मध्य में भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा के स्वरूप वाले शरीर को रख कर दिव्यमान से वह एक वर्ष पर्यन्त स्थित होकर उन्होंने अपनी बुद्धि से बीजत्व को ग्रहण किया था ।२३। ध्यान के द्वारा उस अण्ड को स्वयं ही दो भागों में करके वह एक क्षण भर उसमें सुस्थित रहे थे। उसी समय में इसी के द्वारा सृष्ट सर्वोत्तर समस्त तन्मात्राओं के समूह हुए थे।२३। और वह स्वर्ग—शब्द—समस्त का रूप गन्ध और रस की आधार भूत थी और समस्त उस तन्मात्राओं के समुदाय से सम्पूर्ण पृथ्वी आधार की गयी थी ।२४। उनमें उत्थित दलों से यह समस्त चर समुत्पन्न हुआ था और जरायुओं से पर्वतों का का सञ्चय हुआ था। गर्भोदकों से सात सागर हुए और दो स्वर्गों में त्रिदशालय अर्थात् देवों के निवास का स्थान हुआ था। २५। दूसरे देश में उत्पन्न हो स्वर्गों में वे सात नागों की गृह हुये थे। जिनकी सात पाताल हैं और जो महान् सुख प्रद हैं जहाँ पर महेश स्वयं रहते हैं। ।२६। उसके तेजों के समूह से यह लोक उत्पन्न हुआ था जो चिर महर्लोक—इस नाम से ख्यात हुआ था। गर्भ से सत्य जन लोक नाम वाला हुआ था। और ध्यान से परम श्रेष्ठ तपोलोक उत्पन्न हुआ था। ।२७। उस अण्ड की ऊर्ध्व भाग से सत्य लोक समुत्पन्न हुआ था। उस ब्रह्माण्ड के खण्ड के ऊपर भगवान् अच्युत विष्णु हैं जिनको धीर पुरुष परम पद कहा करते हैं और जो ज्ञान के ही द्वारा जानने के योग्य तथा परिनिष्ठित रूप से समन्वित है ॥ २८ ॥

एवं विधाय प्रथमं बभूव
विष्णुस्वरूपी स्थितये स एव ।
स्वयं समुद्भूततनुर्यतोऽस्य
स्वभर्गिनि स्थानिरचाप विष्णु ॥२९
ततोऽभवत् पद्मगरूपी
विष्णुर्मुख प्रोद्भवनाद पोत ।

निमज्जमाना पृथिवी स मध्ये
भित्वा गतो धर्तुमघोतिऽवेगात् ॥३०
दंष्ट्राग्रदेशे विनिधाय पृथ्वी
स उद्गत सर्वमतीत्व तोयम् ।
ततोऽभवन् सप्तफणाञ्चितोऽय-
मनन्तमूर्ति पृथिवी विधर्तुम् ॥३१
प्रसार्य शेषोऽपि फणा स वैप
मध्ये निधायैकफणा धरित्रीम् ।
दधार तोयोपरि तोयसंस्थित-
स्ततोऽत्यजद् यज्ञवराह उर्व्वीम् ॥३२
प्रसारिता फणा स वांस्तासामेका तु पूर्वत. ।
अपरा पश्चिमाया तु दक्षिणोत्तरयो परे ॥३३
एका गता फणैशान्यामाग्नेय्यामपरा दिशि ।
पृथ्वीमध्ये स्थता चैका नैऋत्या तस्य वै तनु ।
शून्या दिग्वायवी तत्र ततो नम्रा स्थिता क्षिति ॥३४
स तु दीर्घतनुस्तोये यदानन्तो न चाशकत् ।
कूर्मरूपी तदा भूत्वानन्त कायमधाद्धरि ॥३५

इस रीति से सबसे प्रथम विष्णु के स्वरूप वाले हुये थे और ये ही स्थिति अर्थात् पालन के लिये हुए थे । क्योंकि ये स्वय ही समुत्पन्न शरीर वाले थे अर्थात् इनकी उत्पत्ति स्वय अपनी इच्छा से ही हुई थी और इनको किसी ने उत्पन्न नही किया था । अतएव उन भगवान् विष्णु ने 'स्वभू'—यह प्रसिद्धि प्राप्त की थी । २८। इसके अनन्तर भगवान् विष्णु यज्ञ के वराह के रूप धारी हुए थे जो भूमि के समुद्धरण करने के लिए परमाधिक पीन थे । उन वराह के रूपधारी प्रभु ने मध्य में निमग्न होती हुई इस पृथ्वी का भेदन करके अत्यधिक वेग से अन्दर चले गए थे । ३०। अपनी दाढ़ के भाग में पृथ्वी को रखकर वे सपूर्ण

जल का अति क्रमण करके ऊपर आसन हो गये थे। इसके अनन्तर यह सात फनों से समुन अनन्त की मूर्ति होकर इस पृथ्वी को धारण करने के लिये प्रकट हो गये थे। ३१। शेषनाग ने भी अपने फन को फैलाकर और उसने एक फन पर धरित्री को धारण करके जल में संस्थित होते हुए जल के ऊपर उसको रख दिया था और यज्ञ वराह ने भी पृथ्वी को त्याग दिया था। ३२। उन शेष ने सभी फनों को फैला दिया था। उनमें से एक फन तो पूर्व दिशा की ओर था दूसरा फन पश्चिम में था और दूसरे फन दक्षिण और उत्तर दिशा की ओर थे। उनका एक फन ऐशानी दिशा में और दूसरा फन आग्नेय दिशा में था। एक फन पृथ्वी के मध्य में था और उसरा ननु नैऋत्य दिशा में था। वहाँ पर वायव्य दिशा शून्य थी। फिर वह भूमि स्थित थी। वह दीर्घ ननु जल में था जिसको अनन्त न धारण कर सके थे। उस समय में हरि कूर्म के रूप वाले हो गये थे और अनन्त के काम को उन्होंने धारण किया था। ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अधो ब्रह्माण्डखण्ड स पद्भिराक्रम्य कच्छप. ।
ग्रीवाग्निनम्य वायव्या पृष्ठेऽनन्तमधारयत् ॥३६
अनन्तः कूर्मपृष्ठे तु नर्वानिर्ष्टनंन्तनुम् ।
निधाय पृथ्वीं दधे मुखेनैव महाननुः ॥३७
ततः फणास्वनन्तस्य चलन्ती पृथिवी स्थिता ।
वराह. कर्तुं मचलामचलामकरोद्दृढाम् ॥३८
मेरुं खुरप्रहारेण प्रहृत्य पृथिवीतलम् ।
न्यधनन् स विवेशाय पृथ्वीं भित्वान्तरं ततः ॥३९
योजनाना सहस्राणि षोडशैव रसातलम् ।
प्रविवेश महाशैलो वराहाङ्घ्रिप्रहारतः ॥४०
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनाना तु विस्तृतम् ।
मेरो. शिरोऽभवत्तेन प्रहारेण द्विजोत्तमाः ॥४१
मर्यादा पर्वतनायस्य पार्श्वे पोत्री तदाकरोत् ।

यदा चलति नैवेष पर्वत पृथिवीधरः ॥४२

उस कच्छप ने अपने चरणो से नीचे ब्रह्माण्ड खण्ड का आक्रमण करके वायव्य दिशा मे ग्रीवान्वित के पृष्ठ मे अनन्त को धारण किया था। ३६। विशाल शरीरधारी भगवान् अनन्त देव ने कूर्म के पृष्ठ पर नौ वेष्टनो (लपेटो) से अपनी शरीर को देखकर सुख से ही पृथ्वी को धारण किया। ३७। उसके अनन्तर अनन्त देवका फन पर चलती हुई पृथ्वी स्थित हुई थी वराह भगवान् ने इस पृथ्वी को अचल बनाने का प्रयत्न किया था और उसको अति सुदृढ अचलायमान कर दिया था। । ३८। मेरु पर्वत को अपने खुरो के द्वारा प्रहत करके पृथ्वीतल मे गाड़ दिया था। फिर उसका भेदन करके वह पृथ्वी के अन्दर प्रवेश कर गये थे। ३९। वराह भगवान के चरणो के प्रहारो से वह महान् पर्वत सोलह सहस्र योजन तक रसातल में प्रवेश कर गया था। ४०। हे द्विजोत्तमो! मेरुपर्वत का शिर उससे बत्तीस हजार योजन के विस्तार वाला हो गया था। ४१। उस अवसर पर उस पर्वतो के साथ भैरवी पौत्री मर्यादा की थी। यह पृथ्वी पर पर्वत जब यह नहीं चलता है ॥४२॥

हिमवत्प्रभृतीनां च भागं भागं सपर्वकम् ।
यदा क्षित्यन्तरं चक्रे तदुच्छ्रायप्रमाणतः ॥४३
ततो ब्रह्मा वराहाय नमस्कृत्य महौजसे ।
अर्धनारीश्वरं कायाद् देवदेव व्यजायत ॥४४
प्रथमं जातमात्रः स प्ररुराद महास्वनः ।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ॥४५
नाम देहीति तं सोऽपि प्रत्युवाच महेश्वरः ।
रुद्रनामा रोदनात्त्वं मा रोदीस्त्वं महाशय ॥४६
एवमुक्तः पुनः सोऽपि सप्तवारान् रुरोद सः ।
ततोऽपराणि नामानि सप्त ब्रह्माददौ पुनः ॥४७

शर्वं भवं च भीमञ्च महादेवं चतुर्थकम् ।
पञ्चमं चोग्रमीशानं षष्ठं पशुपतिं परम् ॥४८
मया यथा विभक्तस्त्वं तथात्मा स्वो विभज्यताम् ।
त्वदापि भूरिसृष्ट्यर्थं भवांश्चापि प्रजापतिः ॥४६

उनके उच्छ्राय के प्रमाण से हिमवान् प्रभृतियों के सपञ्जक भाग—भाग को पद से क्षिति के अन्दर कर दिया था ।४३। इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने महान् ओज वाले वराह भगवान् को प्रणाम किया था और देवों के देव अर्ध नारीश्वर का शरीर से समुत्पन्न किया था। ।४४। पहिले ही उत्पन्न होने के साथ वह महान् ध्वनि वाले व रुदन करने लगे थे। ब्रह्माजी ने उन से कहा था कि तुम क्यों रो रहे हो। उन महेश्वर ने उत्तर दिया था कि उनका नाम रक्खा। रुदन करने से वे रुद्र नाम वाले हुये थे। उन ब्रह्माजी ने कहा—हे महाशय ! आप रुदन मत करो ।४६। इस प्रकार से कहे हुए वे रुद्र सात बार रोये थे। अर्थात् सात बार उन्होंने रुदन किया था। फिर ब्रह्माजी ने इनके उपरान्त सात दूसरे नाम किये थे। ।४७। शर्व—भव—भीम और चौथा नाम महादेव किया था। पाँचवां नाम उग्र—छठवां नाम ईशान और पर पशुपति ये नाम किये थे ।४८। ब्रह्मा जी ने कहा—मेरे द्वारा जिस प्रकार से आपका विभाग किया गया है वैसे ही आप अपने आपको विभक्त करिये। आप भी बहुत सृष्टि के ही लिए हैं और आप भी प्रजापति हैं ।४६।

ततो ब्रह्मा द्विधा भूत्वा पुरुषोऽर्धेन सोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां तु विराजमसृजत् प्रभुः ॥५०
तमाह भगवान् ब्रह्मा कुरु सृष्टिं प्रजापते ।
तपस्तप्त्वा विराट् सोऽपि मनुं स्वायम्भुवं तत ॥५१
ससर्ज सोऽपि तपसा ब्रह्माणं पर्यतोषयत् ।
तोषितस्तेन मनसा दक्ष सृष्ट्यर्थं ससर्ज सः ॥५२

सृष्टे दक्षेऽथ दशधा प्रणतो मनुना विधि ।
पुनरेव सुतानन्यान ससर्ज दश मानसान ॥५३
मरीचिमत्र्यगिरसौ पुलस्त्य पुलह क्रतुम् ।
प्रचेतसा वसिष्ठञ्च भृगु नारदमेव च ॥५४
एतानुत्पाद्य मनसा मनु स्वायम्भुव पुन ।
यूय सृजध्वमित्युक्त्वा लोकेशाऽन्तर्दधे पुन ॥५५

इसके अनन्तर ब्रह्माजी दो भागों में विभक्त हो गए थे। वे अपने आधे भाग में पुरुष हुए थे और आधे भाग में नारी हो गए थे। और उसमें प्रभु ने विराज का सृजन किया था ।५०। उसको भगवान ब्रह्माजी ने कहा था—हे प्रजापते ! सृष्टि की रचना करो। उस विराट ने भी तपश्चर्या का तपन करके उसने स्वायम्भू मनु का सृजन किया था ।५१। उस स्वायम्भू मनु ने भी तप करके ब्रह्माजी को परितुष्ट कर दिया था। उससे द्वारा तुष्ट हुए ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना करने के लिए अपने मन से दक्ष का सृजन किया था अर्थात् दक्ष को मन से ही उत्पन्न कर दिया था ।५२। दक्ष के सृष्ट हो जाने पर मनु के द्वारा दश बार ब्रह्मा प्रणत हुए थे और फिर भी और दश मानस पुत्रों की सृष्टि की थी ।५३। उन पुत्रों के नाम ये हैं—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु प्रचेता—वसिष्ठ—भृगु और नारद। ।५४। इन सबका उत्पादन करके जो कि मन के ही द्वारा हुआ था फिर स्वायम्भू मनु से उन्होंने कहा था कि आप सृजन करो—यही कह कर लोकों के ईश ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गए थे ।५५।

वराहोऽप्यथ पोत्रेण खनित्वा सप्तसागरान् ।
पृथिव्या वलयाकारान् ससर्ज परमेश्वर ॥५६
सप्तधा भ्रमणेनासौ सृष्ट्वा सप्ताथ सागरान् ।
सप्तद्वीपानवच्छिद्य पृथिव्यन्त ततो गत ॥५७
लोकालोकाद्वय शैल कृत्वा पृथ्व्यास्तु शोभनम् ।

लक्षद्वयोच्छ्रित मानाद् योजनाना समन्तत ।
सुदृढ स्थापयामास भित्तिप्रान्ते यथा गहम् ॥५८
आदिसृष्टिरिय विप्रा कथिता भवता मया ।
प्रतिसर्गमह वक्ष्ये तच्छृण्वन्तु महर्षय ॥५६

वराह भगवान ने इसके अनन्तर पोत्र के द्वारा सात सागरो को खोद कर परमेश्वर ने पृथिवी म उनको वलय के आकार वाले बनाकर सृजन किया था । ५६ । इसके उपरान्त इ होने सात बार भ्रमण करने के द्वारा सात सागरो की रचना करके सात द्वीपो को अवच्छिन्न करके वे फिर पृथिवी के अन्दर चले गए थे । ५७ । लोकालोक पवत का इस पृथ्वी का वष्टन बना करके स्थित कर दिया था जो महान् शैल मान स दो लाख योजन ऊँचाई वाला था जा कि सभी ओर स था । उसको सुदृढ रूप स भित्ति प्रान्त मे गृह की ही भाँति स्थापित कर दिया था । । ५८ । हे विप्रगणो ! मैंने आप लोगो के समक्ष म यह आदि सृष्टि का वर्णन कर दिया है । हे महर्षियो ! प्रति सग म मैं इसको बतलाऊँगा उस आप श्रवण करिए ॥५६॥



॥ सृष्टि कथन (१) ॥

वाराहोय श्रुत सर्गो वराहाधिष्ठितो यत ।
प्रतिसग श्रुत सर्वदक्षाद्यैय कृत पृथक् ॥१
रुद्रो विराण्मनुदक्षो मरीच्याद्यास्तु मानसा ।
य य सर्ग पृथक् चक्रु प्रतिसगश्च स स्मृत ॥२
विराट् सुताऽभूद्ब्रह्यान्मनून् यैस्तत जगत् ।
मनु सप्त मनून् सृष्ट्वा चकार बहुश प्रजा ॥३

प्रजा सिसृक्षु म मनुर्योऽसौ स्वायम्भुवाह्णय ।
असृजत् प्रथम षड वै मनून् सोऽथ परान् सुतान् ॥४
स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वानपरस्तथा ॥५
यक्षरक्ष पिशाचाश्च नागगन्धर्वकिन्नरान् ।
विद्याधरानप्सरस सिद्धान् भूतगणान् बहून् ॥६
मेघान् सविद्युतो वृक्षान लतागुल्मतृणादिकान ।
मत्स्यान् पशूश्च कीटाश्च जलजान् स्थलजास्तथा ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—यह आप सर्गों म वराह सर्ग का श्रवण कर लिया है क्योंकि यह वराह से ही अधिष्ठित है। आप सबने प्रतिसर्ग का भी श्रवण किया है जो दक्ष आदि के द्वारा पृथक् किया गया था ॥ १ ॥ विराट्—रुद्र—मनु—दक्ष और मरीचि आदि मानस पुत्रों ने जिस-जिस सर्ग को पृथक् किया था वह प्रतिसर्ग भी कहा गया है। ॥ २ ॥ विराट सुत ने वश म होने वाले मनुओं का सृजन किया था जिनके द्वारा यह जगत् वितत किया गया है। मनु ने सात मनुओं की रचना करके बहुत सी प्रजा को बना दिया था। अर्थात् बहुत अधिक प्रजा की सृष्टि करदी थी ॥ ३ ॥ प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा वाले मनु ने जो स्वायम्भुव नाम वाले थे। उन्होंने दूसरे सुत छै मनुओं का सृजन किया था ॥ ४ ॥ उन छै मनुओं के नाम ये हैं—स्वारोचिष—औत्तमि—तामस—रैवत—चाक्षुष और महान् तेज से संयुत विवस्वान् ॥ ५ ॥ स्वायम्भू मनु ने यक्ष—राक्षस—पिशाच—नाग—गन्धर्व—किन्नर—विद्याधर—अप्सराएं—सिद्ध—भूतगण—मेघ जो विद्युत से सहित थे—वृक्ष—लता—गुल्म तृण आदि—मत्स्य—पशु—कीट—जल मे समुत्पन्न होने वाले और स्थल म समुत्पन्न—इन सबकी रचना की थी ॥६॥७॥

एतादृशानि सर्वाणि मनु स्वायम्भुव. सुतं ।
सहित. ससृजे सोऽन्य प्रतिसर्ग प्रकीर्तित ॥८

दैत्य और दानव सभी उत्पन्न हुए थे। यह उसका सर्ग कीर्तित हुआ था ॥१४॥

अत्रेर्नेत्रादभूच्चन्द्रश्चन्द्रवंशस्ततोऽभवत् ।
तेन व्याप्तं जगत सर्वं सोऽस्य सर्गः प्रकीर्तितः ॥१५
अथर्वाङ्गिरसा पुत्रा पौत्राश्च बहुशोऽपरे ।
मन्त्रयन्त्रादयो ये वै ते सर्वेऽङ्गिरसः स्मृताः ॥१६
आज्यपाख्या पुलस्त्यस्य पुत्राश्चान्ये च राक्षसाः ।
प्रतिसर्गः पुलस्त्यस्य बलवेगसमन्विता ॥१७
काद्रवेया गजा अश्वा प्रजा बहुतरास्तथा ।
ससृजे पुलहेनैव सर्गस्तस्य प्रकीर्तितः ॥१८
क्रतोः पुत्रा बालखिल्या सर्वज्ञा भूरितेजसः ।
अष्टाशीति-सहस्राणि ज्वलद्भास्करसन्निभा ॥१९
प्रचेतसः सुता सर्वे ये वै प्राचेतसा स्मृताः ।
षडशीतिसहस्राणि पावकोपमतेजसः ॥२०
सुकालिनो वसिष्ठस्य पुत्राश्चान्ये च योगिनः ।
आरुन्धतेया पचाशद्वासिष्ठ सर्ग उच्यते ॥२१

अत्रि महर्षि के नेत्रों से चन्द्रदेव ने जन्म धारण किया था और तभी से यह चन्द्रवंश हुआ था। उस चन्द्रवंश से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है और वह इसका ही सर्ग कीर्तित किया गया है। १५। अथर्वाङ्गिरस के पुत्र और बहुत से दूसरे पौत्र हुए। जो भी मन्त्र और तन्त्र आदि हैं वे सब अङ्गिरस कहे गये हैं। १६। पुलस्त्य के आज्यप नाम वाले पुत्र हुए थे और अन्य राक्षस भी हुए थे। यह पुलस्त्य का प्रति सर्ग है जो बल और वेग से समन्वित था। १७। काद्रवेय—गज—अश्व आदि बहुत अधिक प्रजा हुई थी। यह सर्ग पुलह ने किया था अर्थात् इसकी सृष्टि की थी। अतएव यह इसका ही सर्ग कहा गया है। १८। क्रतु ऋषि के बालखिल्य पुत्र हुए थे जो सभी कुछ के ज्ञान रखने वाले और परमा-

धिक तेज से संयुत थे। ये अट्ठासी हजार थे जो कि जाज्वल्यमान सूर्य के ही समान हुए थे ।१९। प्रचेता के जो सब पुत्र हुए थे वे सब प्राचेतस इस नाम से प्रथित हुए थे। ये छियासी हजार संख्या में थे और अग्नि के सदृश तेजस्वी हुए थे ।२०। वसिष्ठ ऋषि के सुकाली सुत हुए थे और दूसरे योगी थे। ये अरुन्धती में समुत्पन्न पचास वासिष्ठ कहलाये थे। यह वासिष्ठ अर्थात् वसिष्ठ मुनि का वंश कहा जाया करता है ॥२१॥

भृगोश्च भार्गवा जाता ये वै दैत्यपुरोधस ।
कवयस्ते महाप्राज्ञास्तैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥२२
नारदास्तारका जाता विमानानि तथैव च ।
प्रश्नोत्तरास्तथैवान्ये नृत्यगीतं च कौतुकम् ॥२३
एते दक्षमरीच्याद्या कृतदारान् बहून् सुतान् ।
उत्पाद्योत्पाद्य पृथिवीं दिवं च समपूरयन् ॥२४
तेषां सुतेभ्यश्च सुतास्तत्पुत्रेभ्य परे सुता ।
समुत्पन्ना प्रवर्तन्ते ह्यद्यापि भुवनेषु वै ॥२५
विष्णोस्तु चक्षुषो सूर्यो मनसश्चन्द्रमा स्मृत ।
श्रोत्राद्वायु समुद्भूतो मुखादग्निरजायत ॥२६
प्रतिसर्गो ह्ययं विष्णुस्तथा चापि दिशो दश ।
सृष्ट्यर्थं चन्द्रमा पश्चादत्रिनेत्रादवातरत् ।
भास्करः कश्यपाज्जातो मायया च समन्वित ॥२७

भृगु ऋषि से जो उत्पन्न हुए वे भार्गव थे जो दैत्यों के पुरोहित थे। वे कवि और बड़ा विशाल बुद्धि वाले हुए थे। उनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।२२। नारद से तारका ने जन्म प्राप्त किया था तथा विमान हुए थे एवं अन्य प्रश्नोत्तर से—नृत्य—गीत और कौतुक हुए थे।२३। ये दक्ष और मरीचि आदि ने दाराओं के ग्रहण करने वाले बहुत से पुत्रों का समुत्पादन कर—करके इस पृथ्वी को और दि

को पूरित कर दिया था। २४। उनके सबके पुत्रों के भी पुत्र हुए और फिर उन पुत्रों के भी पुत्र हुए थे। ये समुत्पन्न पुत्र आज भी भुवनों मे प्रवृत्त हो रहे हैं। २५। भगवान् विष्णु की आँख से सूर्यदेव और मन से चन्द्रमा बताया गया है। श्रोत्र से वायु समुद्भूत हुआ था तथा भगवान् विष्णु के मुख से अग्नि ने जन्म प्राप्त किया था। २६। यह प्रति सर्ग विष्णु है उसी भाँति दश दिशाऐं भी हुई थीं। पीछे सृष्टि की रचना करने के लिए चन्द्रमा अग्नि नेत्र से अवतरित हुआ था। भगवान् भुवन भास्कर कश्यप से समुत्पन्न हुए थे जो भार्या के संयुत थे।२७।

रुद्राश्च वहवो जाता भूतग्रामाश्चतुर्विधा ।
श्ववराहोष्ट्रूरूपाश्च प्लवगोमायुगोमुखा ।।२८
ऋक्षमार्जारवदना सिंहव्याघ्रमुखा परे ।
नाना शस्त्रधरा सर्वे नानारूपा महाबला ।।२९
एष व प्रतिसर्गोऽपि कथितो द्विजसत्तमा ।
दैनन्दिन च प्रलय शृणुध्व कल्पशेषत ।।३०

बहुत से रुद्र उत्पन्न हुए थे और चार प्रकार के भूत ग्राम हुए थे। श्वा—वराह और उष्ट्र रूप वाले प्लव—गोमायु—गोमुख—रीछ मार्जार के मुख वाले थे तथा दूसरे सिंह और व्याघ्र के मुख वाले थे। सभी अनेक प्रकार के शस्त्रों के धारण करने वाले थे तथा विभिन्न और अनेकों रूप वाले थे एवं महा बल से युक्त थे।। २८—२९ ।। हे द्विज श्रेष्ठो ! यह प्रति सर्ग आपको बतला दिया गया है। अब दैनन्दिन अर्थात् दिना दिन में होने वाली प्रलय को कल्प शेष से आप लोग श्रवण कीजिए।३०।



॥ सृष्टि कथन (२) ॥

मन्वन्तर मनो कालो यावत् पालयते प्रजा ।
एको मनु स कालस्तु मन्वन्तरमितिश्रुतम् ॥१
तदेकसप्ततियुगंदेवानामिह जायते ।
तैश्चतुर्दशभि कल्पो दिनमेक तु वेधस ॥२
दिनान्ते ब्रह्मणो जाते सुषुप्सा तस्य जायते ।
योगनिद्रा महामाया समायाति पितामहम् ॥३
नाभिपद्म प्रविश्याथ विष्णोरमिततेजस ।
सुख शेते स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामह ॥४
ततो विष्णु स्वय भूत्वा रुद्ररूपी जनार्दन ।
पूर्वयन्नाशयामास स सर्व भुवनत्रयम् ॥५
वायुना वह्निना सार्धं दाहयामास वै यथा ।
महाप्रलयकालेषु तथा सर्व जगत् त्रयम् ॥६
जन यान्ति प्रतापार्ता महर्लोकनिवासिन ।
त्रैलोक्यदाहसमये पीडिता दारुणाग्निना ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह मन्वन्तर मनु का काल होता है जितने पर्यन्त वह मनु प्रजाओं का पालन किया करता है। वह एक ही मनु होता है और वह काल मन्वन्तर—इस नाम से प्रसिद्ध होता है ॥ १ ॥ वह देवों के इकहत्तर युगों से यहाँ पर होता है। तात्पर्य यह है कि एक मन्वन्तर में अर्थात् एक ही मनु के काल में देवगणों के इक-हत्तर युगों का समय हुआ करता है। ऐसे चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है जो ब्रह्माजी का एक दिन हुआ करता है ॥२॥ ब्रह्माजी के दिन के अन्त में उनको सोने की इच्छा उत्पन्न होती है और फिर महामाया योगनिद्रा ब्रह्माजी के निकट आ जाया करती है ॥३॥ इसके अनन्तर वे लोकों के पितामह ब्रह्माजी न अमितमित तेज वाले

विष्णु के नाभि के पद्म में प्रवेश करके वे सुख से शयन किया करते हैं ॥ ४ ॥ उसके पश्चात भगवान् विष्णु स्वयं रुद्ररूपी जनार्दन होकर उन्होंने पूर्व की ही भाँति सम्पूर्ण तीनों भुवनों का विनाश कर दिया था ॥ ५ ॥ वायु के साथ वह्नि ने महा प्रलय कालों में जैसे हो वैसे ही सम्पूर्ण तीनों जगतों का दाह कर दिया था ॥ ६ ॥ प्रताप से आर्त्त होकर महर्लोक के निवासी जन जनलोक को प्रयाण किया करते हैं क्योंकि जब तीनों लोकों के दाह होने के समय में उस दारुण अग्नि से जन प्रपीड़ित हो गये थे ॥ ७ ॥

तत कालान्तके मेघैर्नानावर्णैर्महास्वनै ।
समुत्पाद्य महावृष्टिमापूर्य भुवनत्रयम् ॥८
चलत्तरंगैस्तोयौघैराध्रु वस्थानसगतं ।
निधाय जठरे लोकानिमाक्षीन् स जनार्दन ।
नागपर्यंकशयने शेते स परमेश्वर ॥९
शयान नाभिकमले ब्रह्माण स जगद्गुरु ।
सस्याप्य त्रीनिर्मांल्लोकान दग्ध्वा जग्ध्वा श्रिया सह ॥१०
शेते स भोगिशय्याया ब्रह्मा नारायणात्मक ।
योगनिद्रवश जातस्त्रैलोक्यग्रासवृंहित ॥११
त्रैलोक्यमखिल दग्ध यदा कालाग्निना तदा ।
अनन्त पृथिवी त्यक्त्वा विष्णोरन्तिकमागत ॥१२
तेन त्यक्ता तु पृथिवी क्षणमात्रादधोगता ।
पतिता कूर्मपृष्ठे च विशीर्णव तदाभवत् ॥१३
कूर्मोऽपि महतो यत्नाच्चलन्ती पृथिवी जले ।
ब्रह्माण्ड पद्मरात्रम्य पृष्ठ दध्रे धरा तदा ॥१४

इसके अनन्तर कालान्तक महामेघों जिनकी गर्जन की महाध्वनि थी, समुत्पादित करके महा वृष्टि से तीनों भुवनों का आपूरित करके चलती हुई तरङ्गों वाले जलों के समूहों से जो ध्रुव के स्थान पर्यन्त

तालवृन्तं तदा चक्रे सशेष पश्चिमा फणाम् ।
स्वपन्त वीजयामास शेषरूपी जनार्दनम् ॥२०
शख चक्र नन्दकासिमिषुधी द्वे महावल ।
ऐशान्ययाथ फणया स दध्रे गरुड तथा ॥२१

ब्रह्माण्ड के खण्डों के संयोग से वह पृथ्वी चूर्ण हो गयी थी— इससे भगवान् कर्म रूप धारी जनार्दन ने उसको परिगृहीत कर लिया ॥१५॥ चलते हुए जल के समूह से ससर्ग से चलती हुई धरा से उस समय मे कूर्म पृष्ठ बहुतर खण्डो से विततीभूत अर्थात् विस्तृत कर दी थी। १६। अनन्त भगवान् उस समय मे क्षीरोद सागर मे गये थे वहाँ पर उन्होने देखा था कि भगवान् जनार्दन प्रभु अपनी श्री के साथ शयन कर रहे थे। १७। मध्य मे रहने वाले फन से त्रैलोक्य के ग्रास से उप बृंहित को धारण कर रहे थे। महान् बल वाले ने पहिले फन को चौड़ा कर ऊर्ध्व भाग मे पद्म बनाकर उन शेष नाम धारी ने परमेश्वर भगवान् विष्णु को समाच्छादित कर दिया था। १८। अनन्त ने अपने दाहिने फन को उनका उपधान (तकिया) बना दिया था। महान् बलवान उनने उत्तर फन को चरणों की ओर तकिया बना दिया था। १९। उस समय मे उन शेष ने पश्चिम फन को ताल वृन्त कर दिया था। शेष रूप धारी ने शयन करते हुए जनार्दन प्रभु पर व्यजन किया था। । २०। महान बलधारी उनने ऐशानी फन से शख—चक्र—नन्दक असि और दो इषुधीयों को और गरुण को धारण किया था।२१।

गदा पद्म च शार्ङ्गञ्च तथैव विविधायुधम् ।
यानि चान्यानि तस्यासनाग्नेय्या फणया दधौ ॥२२
एव कृत्वा स्वक काय शयनीय तदा हरे ।
पृथ्वीमधरकायेन मग्नामाक्रम्य चाम्भसि ॥२३
त्रैलोक्य ब्रह्मसहित सलक्ष्मीक जनार्दनम् ।
सोपासग जगद्बीज जगत्वारणवारणम् ॥२४

नित्यानन्दं वेदमयं ब्रह्माख्यं परमेश्वरम् ।
जगत्कारणकर्तारं जगत्कारणकारणम् ॥२५
भूतभव्यभवन्नाथं परावरगतिं हरिम् ।
दधार शिरसा तत्तु स्वयमेव स्वकां तनुम् ॥२६
एवं ब्रह्मदिनस्यैव प्रमाणेन निशां हरिः ।
सन्ध्यां च समभिव्याप्य शेते नारायणोऽव्ययः ॥२७
यस्मादयन्तु प्रलयो ब्रह्मणः स्याद् दिने दिने ।
तस्माद् दैनन्दिनमिति ख्यापयन्ति पुराविदः ॥२८

गदा—पद्म—शार्ङ्ग धनुष तथा अनेक आयुधों को जो भी अन्य उनके थे उनको आग्नेय दिशा वाले फन से धारण किया था । २२ । उस समय में भगवान् हरि के शयन अर्थात् शय्या के लिये अपने स्वकीय शरीर को बनाकर जल में मग्न पृथ्वी को उधर काय में आक्रमण करके स्थित हुए थे ॥ २३ ॥ त्रैलोक्य ब्रह्म के सहित—तथा लक्ष्मी से समन्वित—सोमामन्तु—जगत् के बीज स्वरूप और जगत् के धारण के भी कारण जनार्दन प्रभु को धारण किया था ॥ २४ ॥ वे जनार्दन प्रभु नित्य आनन्द स्वरूप हैं—वेदों से परिपूर्ण हैं—ब्रह्माख्य हैं जगत् के कारण के भी कारण हैं—जगत् के कारण और कर्त्ता हैं—परमेश्वर हैं—भूत—भव्य और भव के नाथ हैं—परावर गति से संयुत हैं ऐसे हरि को शिर से धारण किया था और अपने शरीर को भी धारण कर लिया था । २५ । २६ । इस रीति से अव्यय नारायण हरि भगवान् ब्रह्माजी के दिन के प्रमाण से निशा और सन्ध्या को भी व्याप्त करके शयन किया करते हैं । २७ । यह प्रलय जिससे ब्रह्मा के दिन-दिन में होती है । इसी कारण से पुरातत्व के ज्ञाता जन इसको दैनन्दिन ख्यापित किया करते हैं । अर्थात् कहा करते हैं । २८ ।

व्यतीतायां निशायां तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

त्यक्त्वा निद्रां समुत्तस्थौ स पुनः सृष्टये हितः ॥२६
त्रैलोक्यं तोयसम्पूर्णं शयानं पुरुषोत्तमम् ।
निरीक्ष्य वैष्णवीं मायां महामायां जगन्मयीम् ।
योगनिद्रां स तुष्टाव हरेर् गेचरास्थिताम् ॥३०
चितिशक्तिं निर्विकारां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
प्रणमामि महामायां योगनिद्रां सनातनीम् ॥३१
त्वं विद्या योगिनां देवि त्वं गतिस्त्वं मतिः स्तुतिः ।
त्वं सृष्टिस्त्वं स्थितः स्वाहा स्वधा त्वमिह गीतिका ॥३२
त्वं सामगीतिस्त्वं नीतिस्त्वं ह्रीं श्रीस्त्वं सरस्वती ।
योगनिद्रा महामाया मोहनिद्रा त्वमीश्वरी ॥३३
त्वं कान्तिः सर्वशक्तिस्त्वं त्वं तनुर्वैष्णवी शिवा ।
त्वं धात्री सर्वलोकानामविद्या त्वं शरीरिणाम् ॥३४
आधारशक्तिस्त्वं देवी त्वं हि ब्रह्माण्डधारिणी ।
त्वमेव सर्वजगतां प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥३५

उस निशा के व्यतीत हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी निद्रा का त्याग करके पुनः सृष्टि की रचना के लिए समुत्थित हो गये थे। अर्थात् जाग कर खड़े होगये थे। २६। उन्होंने देखा था कि तीनों लोक जल से परिपूर्ण भरे हुये हैं और भगवान् पुरुषोत्तम शयन किये हैं। भगवान् विष्णु की जगन्मयी महामाया माया का उनने निरीक्षण किया था। फिर ब्रह्माजी ने भगवान् हरि के अङ्क में विराजमाना योग निद्रा की स्तुति की थी। ३०। ब्रह्माजी ने कहा—चित् शक्ति अर्थात् ज्ञान की शक्ति रूपा—विकारों से रहित पर ब्रह्म के स्वरूप वाली—सनातनी महामाया योग माया को मैं प्रणाम करता हूँ। ३१। हे देवि! आप योगियों की विद्या हैं—आपही गति—मति और स्तुति रूपा हैं। आप सृष्टि—स्थिति—स्वाहा—स्वधा और आप ही गीतिका है। ३२। आप सामवेद की गीति है—नीति है और आप ह्रीं, श्री और सरस्वती है।

आप महामाया आप निद्रा—मोह निद्रा और आप ईश्वरी हैं । ३३ । आप शान्ति हैं—सर्व शक्ति हैं और आप वैष्णवी शिवा तनु हैं । आप समस्त लोकों की धात्री हैं और आप शरीर धारियों की अविद्या हैं । ३४ । आप आधार शक्ति देवी हैं और आप ही इस ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली हैं । आप ही समस्त जगतों की तीन गुणों के स्वरूप वाली अर्थात् सत्त—रज और तम से संयुत प्रकृति हैं । ३५ ।

त्वं सावित्री च गायत्री सौम्यात्सौम्यातिशोभना ।
त्वं सिसृक्षा हरेर्नित्या सुषुप्सा त्वं सुषुप्तिका ॥३६
पुष्टिर्लज्जा क्षमा शान्तिस्त्वं धृतिः परमेश्वरी ।
त्वमेव क्षितिरूपेण ध्रियसे सचराचरम् ॥३७
त्वमापस्त्वमपां माता सर्वान्तर्गतचारिणी ।
स्तुतिः स्तुत्या च स्तोत्री च स्तुतिशक्तिस्त्वमेव च ॥३८
त्वामहं किन्नु स्तोष्यामि प्रसीद परमेश्वरि ।
नमस्तुभ्यं जगन्मातः प्रबोधय जनार्दनम् ॥३९
एवं स्तुता महामाया ब्रह्मणा लोककारिणा ।
नेत्रास्यनासिका-बाहु हृदयान्निर्गता हरेः ।
राजसीं मूर्तिमाश्रित्य सा तस्थौ ब्रह्मदर्शने ॥४०
ततो जनार्दनो योगिशयनान्निद्रया क्षणात् ।
परित्यक्तः समुत्तस्थौ सृष्टये चाकरोन्मतिम् ॥४१
ततो वराहरूपेण निमग्ना पृथिवी जले ।
मग्ना समुद्धाराशु न्यधाच्च सलिलोपरि ॥४२

आप सावित्री और गायत्री हैं तथा आप सौम्य और सौम्य से भी अत्यधिक शोभन हैं । आप नित्य भगवान् हरि की सृजन की इच्छा हैं । आप सुषुप्सा अर्थात् शयन करने की इच्छा हैं और आप सुषुप्ति हैं । ३६ । आप पुष्टि—लज्जा—क्षमा—शान्ति हैं और आप परमेश्वरि धृति हैं । आप ही भूमि के स्वरूप से इस सम्पूर्ण चराचर को धारण किया करती

है । ३७ । आप आप अर्थात् जल हैं और अन्य जलों को जन्म देने वाली माता हैं । आप सबके अन्दर रहकर सञ्चरण करने वाली हैं । आप स्तुति—स्तुत्य और स्तोत्री हैं तथा आप ही स्तुति की शक्ति हैं । । ३८ । मैं आपकी क्या स्तुति करूंगा हे परमेश्वरि ! आप प्रसन्न हो जाइए । हे जगत् की माता ! आपको नमस्कार है अब आप भगवान् जनार्दन को प्रबोध करा दो अर्थात् उनको जगा दीजिए ।३९। इस प्रकार से लोकों की रचना करने वाले ब्रह्माजी के द्वारा महामाया की स्तुति की गयी थी । फिर उनकी नासिका—मुख—बाहु हरि के हृदय में निकले थे और उसने राजसी मूर्ति का समाश्रय ग्रहण करके वह ब्रह्माजी के दर्शन में स्थित हो गई थी । ४० । इसके उपरान्त भगवान् जनार्दन शेष की शय्या पर निद्रा लेते हुए थे उस निद्रा से एक ही क्षण में उठ कर खड़े हो गये थे और फिर सृष्टि की रचना करने की बुद्धि की थी । । ४१ । फिर वराह के स्वरूप से जल में निमग्न हुई पृथ्वी को शीघ्र ही समुद्धृत करके उसको जल के ऊपर रख दिया था । ४२ ।

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति सम्प्लवम् ॥४३
ततो हरिः क्षितिं गत्वा तोयराशिं स्वमायया ।
सर्वस्य जन्तुस्थितये प्रवृत्तः स्वयमेव हि ॥४४
अनन्तोऽपि यथापूर्वं तथा गत्वा क्षितेस्तलम् ।
पृथिवीं धारयामास सर्वस्योपरि संस्थितः ॥४५
ततो ब्रह्मा समुत्पाद्य सर्वानेव प्रजापतीन् ।
जगदुत्पादयामास सर्वलोकपितामहः ॥४६
ब्रह्मा त्वं सृजते सृष्टिं यदासौ याति पूर्वते ।
दक्षाद्यास्तु प्रजापाला स्वयमेव तदिच्छया ॥४७
पञ्चतन्मात्ररूपी च सोऽसृजत्तानि सत्तमम् ।
तद्भिस्तानुसृष्टानि महाभूतानि पञ्च वै ॥४८

की इच्छा के अनुसार अट्ट गव्य अधिष्ठान पुरुष से अनुगृहीत किया करते है । ४६ । पुरुषो के अधिष्ठान से और महा भूतो के गण के इसी भांति से महद् दर्गदको का और महात्मा काल के अधिष्ठान से तथा प्रधान के अधिष्ठान से जो कुछ समुत्पन्न होता है । ५० । स्थावर अर्थात् अचर और जङ्गम अर्थात् चतन स्थिर अथवा अद्‌भुत है द्विज श्रेष्ठो ! सभी कुछ इस अधिष्ठान से उत्पन्न होता है । ५१ । जैसा ही पूर्व म दिखाया था वह सब आपको बतला दिया है जो भगवान् हरि ने भगवान् हर के लिये सृष्टि संहार कल्प किया था । ५२ । जिस प्रकार से इस जगत् के प्रपञ्च की परा असारता दिखलाई थी और जहां पर सार दिखलाया है हे द्विजो ! वह अब आप मुझसे श्रवण करिये । ५३ ।

— × —

॥ सारासार निरूपण ॥

जगत् सर्वं तु निःसारमनित्यं दुःखभाजनम् ।
समुत्पद्यते क्षणादेतत् क्षणादेतद्विपद्यते ॥१
तत्रैवोत्पद्यते साराग्निः सारं जगदञ्जसा ।
पुनस्तस्मिन् विलीयन्ते महाप्रलयसङ्गमे ॥२
उत्पत्तिप्रलयाभ्या तु जगन्निःसारता हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास भावेन जगतां पतिः ॥३
एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
परात्परं ज्ञानमयं विशेषम् ।
अद्वैतमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
सारं त्वेकं नास्ति सारं तदन्यत् ॥४
यस्मादेतज्जायते विश्वमग्रय
यस्माल्लीनं स्यात्तु पश्चात् स्थितञ्च ।

आकाशवन्मेघजालस्य वृत्त्या
यद्विश्व वै ध्रियते तत्त्वसारम् ॥५
अष्टाङ्गयोगैर्यदवाप्नुमिच्छन्
योगी पुनात्यात्मस्प सदैव ।
निवर्तते प्राप्य य नेह लोके
तद्वै सार सारमन्यन्न चास्ति ॥६

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—यह सम्पूर्ण जगत् सार हीन है—अनित्य है और महान् दुःखों का पात्र अर्थात् आधार है। यह एक ही क्षण में तो उत्पन्न होता है और एक ही क्षण में विपन्नता को प्राप्त हो जाया करता है। १। यह निस्सार जगत् शीघ्र ही उसी भाँति सार से उत्पन्न होता है और फिर महा प्रलय के मञ्जम में उसमें विलीन हो जाया करते हैं। २। भगवान् हरि ने उत्पत्ति और प्रलयों में जगत् की निःसारता शम्भु के लिए साथ में अपनी के पति ने दिखलाई थी। । ३। एक शिव—शान्त—अनन्त—अच्युत—पर से भी पर—ज्ञान से परिपूर्ण—विशेष अद्वैत—अव्यक्त और आकाश्य रूप एक ही सार है उससे अन्य सार नहीं है। ४। जिससे यह उत्तम जगत् अर्थात् विश्व उत्पन्न होता है जिससे महा स्थिति को प्राप्त होता है और पीछे लीन हुआ करता है। मेघों के जाल का आकाश की ही भाँति वृत्ति से जो इस विश्व को धारण किया जाता है वह तत्त्व सार है। ५। आठ अङ्गों वाले योगों के द्वारा योगी जिसकी प्राप्ति के लिए इच्छा करता हुआ सदा ही आत्म रूप को पवित्र किया करता है और जिसको प्राप्त करके वह निवृत्त हो जाया करता है। इस लोक में वह निश्चय ही सार नहीं है और अन्य सार नहीं है। ६।

सारो द्वितीयो धर्मस्तु यो नित्यप्राप्त्ये भवेत् ।
यो वै निवर्तको नाम तथासार प्रवर्तकः ॥७
धर्मं धर्मं नञ्चिनुयाद्वल्मीको मृत्तिका यथा ।

सहायार्थं परे लोके पूर्वपापविमुक्तये ॥८
एको धर्मं परं श्रेयः सर्वसंसारकर्मसु ।
इतरे तु त्रयो धर्माज्जायन्तेऽर्थादयःपरे ॥६
वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ कर्त्तनम् ।
न तु धर्मपरित्यागो लोके वेदे च गर्हितः ॥१०
धर्मेण ध्रियते लोको धर्मेण ध्रियते जगत् ।
धर्मेणैव सुराः सर्वे सुरत्वमगमन् पुरा ॥११
धर्मश्चतुस्पाद्भगवान् जगत् पालयतेऽनिशम् ।
स एव मूलं पुरुषो धर्म इत्यभिधीयते ॥१२

द्वितीय सार धर्म है जो नित्य ही प्राप्ति के लिये होता है। जो निवर्त्तक नाम है वहाँ पर असार प्रवर्त्तक है। ७। धर्म का धीरे-धीरे सञ्चय करना चाहिए जिस प्रकार से वल्मीक मिट्टी का सञ्चय किया करता है। इस धर्म का सञ्चय परलोक में सहायता के लिये और पूर्व में किये हुए पापों की विमुक्ति के लिए होता है। ८। संसार के समस्त कर्मों में एक धर्म ही परम श्रेय होता है और दूसरे तीनों अर्थात् अर्थ-काम और मोक्ष धर्म से ही समुत्पन्न हुआ करते हैं। तात्पर्य यही है कि धर्म ही सबसे अधिक एवं प्रमुख होता है॥ ६॥ प्राणों का त्याग कर देना श्रेष्ठ है तथा शिर का काट देना भी अच्छा है किन्तु धर्म का परित्याग करना उचित नहीं है। ऐसा करना लोक और वेद में बुरा होता है। १०। धर्म से ही लोक को धारण किया जाता है और धर्म से जगत् को धारण किया जाता है। धर्म के द्वारा ही सब सुरगण पहिले सुरत्व को प्राप्त हुए थे। ११। चार चरणों वाला भगवान् धर्म निरन्तर इस जगत् का पालन किया करता है वह ही पुरुष मूल है जो धर्म—इस नाम से कहा जाता है ॥१२॥

यं क्षरति लोकेऽस्मिन् धर्मो नैव च्युतो भवेत् ।
पर्वाद् यो न विचलति स एवाक्षर उच्यते ॥१३
एतद्... धर्मं सारं निःसारं सकलं जगत् ।

यथा स्वयं ददर्शासौ शम्भुर्ज्ञानेन स्वेऽन्तरे ॥१४
एतद्वै दर्शयामास स विष्णुर्जगतां पतिः ।
स्वयं जग्राह मनसा ध्यानेनात्मनि शंकरः ॥१५
सारं तत्त्वं परमं निष्कलं य—
न्मूर्त्या हीनं मूर्तिमान् धर्म एव ।
सारोऽन्योऽसौ सारहीनं तदन्यज्-
ज्ञात्वैवेत्थं याति नित्यं महाधी ॥१६

इस लोक में सभी कुछ क्षरित हो जाया करता है किन्तु धर्म कभी भी च्युत नहीं हुआ करता है जो पुरुष धर्म से कभी विचलित नहीं होता है वह ही 'अक्षर'—यह कहा जाता है । १३ । मैंने ही हमारे आपको सार बतला दिया है और यह सम्पूर्ण जगत् सार से रहित है । जिस प्रकार से भगवान् शम्भु ने अपने अन्तर में ज्ञान से देखा था । १४ । जगतों के पति भगवान् विष्णु ने यही दिखलाया था और शङ्कर ने स्वयं ही ध्यान के द्वारा मन से आत्मा में ग्रहण किया था । १५ । जो सार—तत्त्व—परम—निष्कल है और मूर्ति से हीन है यही यह मूर्तिमान् धर्म है । यह अन्य सार है और इसके अतिरिक्त अन्य सब सारहीन है । इसी प्रकार से इसका ज्ञान प्राप्त करके महा बुद्धिमान् नित्य ही गमन किया करते हैं । १६ ।

— ✿ —

॥ वाराह-शंकर सम्वाद ॥

ये सृष्टा शम्भुना पूर्वं भूतग्रामाश्चतुर्विधा ।
निर्भयं ते समुत्पन्ना वयं यानेकरूपता ॥१
शरीरमर्द्धं वाराहमर्द्धं दन्तावलं तथा ।
सिंहव्याघ्रशरीराच्च [illegible]

कहा था । १५ । मलिनी के साथ रति से समुत्पन्न यह आप का अनिष्ट करने वाला दुष्ट है । हे लोकेश ! इस वाराह के कामुक स्वरूप का आप त्याग कर दीजिए । १६ । आप ही लोकों के भावन करने वाले हैं और सृष्टि—स्थिति और संहार के करने वाले हैं और काल के प्राप्त होने पर सृष्टि—स्थिति और संहार को करेंगे । १७ । हे महा बलवान् आप लोकों के हित के सम्पादन करने के लिए इस शरीर का त्याग करके पुन समय के सम्प्राप्त होने पर अन्य काम का पोष करेंगे । १८ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—महान आत्मा वाले भगवान् शंकर के इस वचन का श्रवण करके वराह की मूर्ति को धारण करने वाले भगवान् ने महादेव जी से कहा—श्री भगवान् ने कहा—हे महेश्वर ! जैसा आप कह रहे हैं उस वचन का मैं पूर्णतया पालन करूँगा और इस यज्ञ वराह के शरीर का मैं त्याग कर दूँगा । इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । १९ । २० । समय के प्राप्त हो जाने पर फिर मैं अन्य उत्तम वाराह के रूप को धारण करूँगा जो अत्यन्त दुराधर्ष है और लोकों के भावन करने के लिये है । २१ ।

कथ ते वा गणा क्रूरा कि भोगास्ते महौजस. ।
एतत् सर्वं वय श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥३
शृण्वन्तु मुनय सर्वे यथा शम्भुगणाभवन् ।
यदर्थं त समुत्पन्ना यस्मात्ते नैकरूपिण ॥४
एतद्ध परम गुह्यमिद धर्मार्थकामदम् ।
एतद् हि परम तेज सनत परम तप ॥५
इद श्रुत्वा महाख्यान परत्रेह न सीदति ।
यशस्य धर्म्यमायुष्य तुष्टिपुष्टिप्रद परम् ॥६
आदिसर्गेऽथ वाराहे सम्पूर्णे मुनिसत्तमा ।
शकर प्राह सर्वेश वाराह् जगता पतिम् ॥७

ऋषियो न कहा—जो भगवान् शम्भु के द्वारा पूर्व मे चार प्रकार के भूत ग्राम सृष्ट किये गये थे अर्थात् जो चार तरह के भूत ग्रामो का पूर्व म सृजन किया गया था वे किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये समुत्पन्न हुए थे और किस तरह से उनकी अनेक रूपता हुई थी ? । १ । उनका आधा शरीर तो वराह का है और आधा दन्तावल है कुछ-कुछ गणो के अधिप तो सिंह—व्याघ्र के शरीर मे हुए थे । २ । वे गण किस कारण से महान् क्रूर थे और महान् ओज वाले वे किन भोगो वाले थे—यह सब हम लोग श्रवण करने की इच्छा करते है हे द्विज श्रेष्ठ ! हमारी ऐसी ही इच्छा है । ३ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे मुनियो ! अब आप लोग श्रवण कीजिए कि जिस रीति स भगवान् शम्भु के गण हुए थ और जिसके लिये वे समुत्पन्न हुए थे और जिस कारण से वे एक रूप वाले नही थे । ४ । यह विषय बहुत ही अधिक गोपनीय है और यह धर्म—अर्थ और काम के प्रदान करने वाला है । यह परम तेज है और निरन्तर परम तप है । ५ । इस महान् आख्यान का श्रवण करके पुरुष इस लोक मे और परलोक मे दु.ख नही प्राप्त किया करता है । यह आख्यान यश देने वाला है— धर्म मे युक्त है—आयु की वृद्धि

द्वारा स्थापित शैला के संघातों से समन्वित यह पृथ्वी है। ११। इस कारण से हे जगतों के स्वामिन्! इस वाराह के शरीर को त्याग दीजिए। यह जगत् से परिपूर्ण—जगत् के रूप वाला और जगत् के कारणों का भी कारण है। १२। हे विभो! आपके वाराह के शरीर को धारण करने में अन्य कौन समर्थ हो सकता है? विशेष रूप से आपके द्वारा ही यह सकाम पृथ्वी जल में धर्षित हुई है। यह स्त्री के रूप वाली ने आपके तेजो से दारुण गर्भ को धारण किया था। १३। हे जगत्पते! रजस्वला इस ने समर्थ होती हुई जिस गर्भ को धारण किया था। उससे जो तनय होने वाला है वह भी दुर्भक्ष का आदान करेगा। १४।

एष प्राप्यासुरं भावं देवगन्धर्वहिंसकः।
भविष्यतीति लोकेश प्राह मां दक्षसन्निधौ ।।१५
मलिनीरतिसंजातं दुष्टन्तेऽनिष्टकारकम्।
कामुकं त्यज लोकेश वाराहं कायमीदृशम् ।।१६
त्वमेव सृष्टिस्थित्यन्तकारको लोकभावन।
काले प्राप्ते स्थितिं सृष्टिं संहारं च करिष्यसि ।।१७
तस्माल्लोकहितार्थाय त्यक्त्वा कायं महाबल।
काले प्राप्ते पुनस्त्वयं कायं पोत्रं करिष्यसि ।।१८
इति तस्य वचः श्रुत्वा शंकरस्य महात्मनः।
वाराहमूर्तिर्भगवान् महादेवमुवाच ह ।।१९
करिष्येऽहं तव वचस्त्वं यथात्थमहेश्वर।
इमं तु यज्ञवाराहं कायं त्यक्ष्ये न संशयः ।।२०
याने प्राप्ते पुनस्त्वन्यं कायं वाराहमुद्भुतम्।
करिष्येऽहं दुराधर्षं लोकानां भावनाय वै ।।२१

यह असुरों के भाव को प्राप्त करके ही देवों और गन्धर्वों की हिंसा करने वाला होगा। यह लोकेश ने मुझसे दक्ष की सन्निधि में

कहा था । १५ । मलिनी के साथ रति में समुत्पन्न यह आप का अनिष्ट करने वाला दुष्ट है । हे लोकेश ! इस वाराह के कामुक स्वरूप का आप त्याग कर दीजिए । १३ । आप ही लोकों के पावन करने वाले हैं और सृष्टि—स्थिति और संहार के करने वाले हैं और काल के प्राप्त होने पर सृष्टि—स्थिति और संहार को करेंगे । १७ । हे महा बलवान् आप लोकों के हित में सम्पादन करने के लिए इस शरीर का त्याग करके पुनः समय के सम्प्राप्त होने पर अन्य काम को पोषण करेंगे । १८ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—महान आत्मा वाले भगवान् शंकर के इस वचन का श्रवण करके वराह की मूर्ति को धारण करने वाले भगवान् ने महादेव जी से कहा—श्री भगवान् ने कहा—हे महेश्वर ! जैसा आप कह रहे हैं उस वचन का मैं पूर्णतया पालन करूँगा और इस यज्ञ वराह के शरीर का मैं त्याग कर दूँगा । उसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । १९ । २० । समय के प्राप्त हो जाने पर फिर मैं अन्य उत्तम वाराह के रूप को धारण करूँगा जो अत्यन्त दुराधर्ष है और लोकों के पावन करने के लिये है । २१ ।

इत्युक्त्वा स महाकायस्तत्रैवान्तरधीयत ।
जगद्गुरुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगत्पतिः ॥२२
तस्मिन्नन्तर्हिते देवे देवदेवो महेश्वरः ।
निज स्थान देवगणैः स्वगणैश्च जगाम ह ॥२३
वाराहोऽपि स्वयं गत्वा लोकालोकाह्वयं गिरिम् ।
वाराह्या सह रेमे स पृथिव्या चारुरूपया ॥२४
स तया रममाणस्तु सुचिरं पर्वतोत्तमे ।
नावाप तोषं लोकेशः पोत्री परमकामुकः ॥२५
पृथिव्याः पोत्रीरूपायां रमयन्त्यास्ततः सुताः ।
त्रयो जाता द्विज श्रेष्ठास्तेषां नामानि मे शृणु ॥२६
सुवृत्तः कनको घोरः सर्व एव महाबलाः ॥२७

शिशवस्ते मेरुपृष्ठे काचने वप्रसमन्तरे।
रेमिरेऽन्योन्यसमरता गह्वरेष सरसु च ॥२८

इतना कहकर महान् नाथ वाले व वहीं पर ही अन्तर्धान हो गए थे जो इस जगत् के गुरु हैं और इस जगत् के सृजन करने वाले हैं - जो जगत् के धाता हैं और जगत् के स्वामी हैं। २२। उन देव के अन्तर्धान हो जाने पर देवों के देव महेश्वर प्रभु देवगणों के तथा अपने गणों के साथ ही अपने स्थान को गमन कर गये थे। २३। भगवान् वाराह भी लोका लोक नामक पर्वत पर स्वयं चले गये थे। और वहाँ पर वे अपनी पत्नी वाराही के साथ रमण करने लग गये थे जो कि परम सुन्दर स्वरूप वाली पृथ्वी थी। २४। वह उस उत्तम पर्वत में बहुत लम्बे समय तक रमण करते हुए वह लोकेश पोत्री और परमाधिक कामुक तोष को प्राप्त नहीं हुए थे। अर्थात् रमण करने पर भी उनको सन्तोष नहीं हुआ था। २५। पोत्री के स्वरूप वाली पृथ्वी के साथ रमण किए जाने वाली से तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे द्विजोत्तमो! आप अब उनके नामों का भी श्रवण करिए। २६। वे सुवृत्त—कनक और घोर नामों वाले थे जो कि सभी महान् बल से समन्वित थे। २७। वे शिशु ही सुवर्ण के मेरु पर्वत के पृष्ठ पर व प्रमस्तर में गहरों में और सरोवरों में परस्पर में ससक्त हुए रमण करते थे। २८।

स तैः पुत्रैः परिवृतो वाराहो भार्यया स्वया।
रममाणस्तदा कायत्याग नैवागणद्द्विजा ॥२६
कदाचिच्चिद्यमिस्तैस्तु सश्लिष्ट कर्दमान्तरे।
चकार कर्दमक्रीडा भार्यया च महाबल ॥३०
सपङ्कलेप शुशुभे वराहो मधुपिंगल।
सन्ध्याघनो यथातोय क्षरस्तोय तथाविध ॥३१
स पुत्रैः परमप्रीतो भार्यया च पृथिव्यया।
चिरञ्ज धरणी रेमे मध्यनिम्नाय माभवन् ॥३२

अनन्तोऽपि समाक्रम्य कूर्मं स पृथिवीतले ।
हरिं वहन् भुग्नशिरा सातकोऽभूतप्रपीडया ॥३३
सुवृत्तेन स्वर्णचप्र घोरेण कनकेन च ।
विदारित पोत्रघातं स्वर्ण-भग्नानुकृत समम् ॥३४
मेरुपृष्ठे यानि यानि सौवर्णानि द्विजोत्तमा ।
रचितानि सुरैर्यत्नात्तानि भग्नानि तत्सुतं ॥३५

हे द्विजो ! वह वाराह उन पुत्रों से परिवृत अपनी भार्या के साथ रमण करने वाले थे और उस समय में उन्होंने शरीर के त्याग करने का कुछ भी ध्यान नहीं किया था। २९। किसी समय में महान् बलवान् वह कदमों के अन्दर में पिशुया के साथ सम्मिलित होकर भार्या के साथ कर्दम क्रीडा किया करता था। ३०। कीच के लेप से संयुत मधु पिङ्गल वराह शोभित हुए थे। जिस प्रकार से सन्ध्या का मेघ जल का क्षरण किया करता है उसी भाँति वह भी जल का क्षरण करने वाले थे। ३१। वह पुत्रों के सहित और पृथिवी भार्या के साथ परम प्रीत होकर रमण किया करते थे। विदग्ध धरणी से रमण किया था और वह मध्य में निभ्न हो गयी थी। ३२। वह अनन्त भी पृथिवी के तल में कूर्म का समाक्रमण करके यह हरि का वहन करते हुए पीड़ा से भुग्न शिर वाले आतङ्क से समन्वित हो गये थे। ३३। सुवृत्त ने और घोर तथा कनक ने सुवर्ण के व प्रपोत्र घातों से विदारित कर दिया था और स्वर्ण के भग्न होने में सम कर दिया था। ३४। हे द्विजोत्तमो ! मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर सुरों के द्वारा जो—जो भी सुवर्ण द्वारा रचित हुए थे उसके पुत्रों ने यत्न पूर्वक उनको भग्न कर दिया था। ३५।

मानसादीनि देवाना सरांसि शिशवोऽस्य ते ।
आविलानि तदा चक्र पोत्रघातं समन्ततः ॥३६
पृथिवीवनिताकृपा रमयामास पोत्रिणम् ।

स्थावरेण तु रूपेण दु ग्धमाप्नोति वै दृढम् ॥३७
सागराश्च सुवृत्ताद्यैरवगाह्य समन्तत ।
विकीर्णरत्न पाश्रोधैः सर्व एवाकुलीकृताः ॥३८
इतस्ततश्च शिशुभि क्रीडद्भि पोत्रिभिस्तदा ।
जगन्ति तत्र भग्नानि नद्य कल्पद्रुमास्तया ॥३९
जानन्नपि जगद्भर्ता वराह स्वयमेव हि ।
जगत्पीडा सुतस्नेहान्न्यवारयामास नैव तान् ॥४०
सुवृत्त कनको घोरो यदागच्छति वै दिवम् ।
तदा देवगणा भीता प्राद्रवन्ति दिशो दश ॥४१
एव सुतैर्भार्यया यज्ञपोत्री
क्रीडस्तुष्टि नाप कान्चित् कदाचित् ।
नित्य नित्य वर्धते तस्य काम
वाय रयमतु नैच्छदेव प्रदिष्ट ॥४२

मानस आदि जो देवो के सरोवर थे उस समय में उसके पुत्रों ने अर्थात् शिशुओं ने पोत्र धात्री से सब ओर आविल अर्थात् मलिन कर दिये थे। ३६। वनिता के स्वरूप वाली पृथिवी के पोत्रिण से रमण किया था और स्थावर रूप से सुदृढ दुग्ध को प्राप्त किया करती है। ३७। सुवृत्त आदि के द्वारा सभी ओर सागरो का अवगाहन करके पोत्रीयों के द्वारा विकीर्ण रत्न वाले सब ही आकुली कृत हो गये थे। । ३८। उस समय में इधर—उधर क्रीडा करने वाले पोत्री शिशुओं के द्वारा वहाँ पर जगतों का तथा नदियो को और कल्प द्रुमों को भग्न कर दिया था।३९। जगत् के भरण करने वाले वराह ने स्वयं ही जगत् की पीडा को जानते हुए भी सुतो के स्नेह से उनका निवारण नही किया था। ४०। सुवृत्त कनक और घोर जब दिवलोक मे आगमन करते हैं उस अवसर पर देवो का समुदाय परम भीत होकर दशों दिशाओं में भाग जाया करते हैं। ४१। इस प्रकार से अपने पुत्रो से तथा भार्या के

साथ जो यज्ञ पौत्री या क्रीड़ा करना हुआ भी किसी भी समय में कोई तुष्टि के प्राप्त करने वाले नहीं हुए थे अर्थात् उनको सन्तोष नहीं हुआ था। नित्य-नित्य ही उनकी काम वासना बढ़ती ही जाती है और ऐसा प्रदिष्ट हो गये थे कि वह अपने शरीर का त्याग करने की इच्छा नहीं किया करते थे। ४२।



॥ शरभ-वाराय युद्ध वर्णन ॥

ततो देवगणाः सर्वे सहिता देवयोनिभिः ।
शक्रेण सहिता मन्त्रं चक्रुः सम्यग्जगद्धितम् ॥१
ततो निश्चित्य ते सर्वे शक्राद्या मुनिभिः सह ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमजं विभुम् ॥२
तं समासाद्य गोविन्दं वासुदेवं जगत्पतिम् ।
प्रणम्य सर्वे निदशास्तुष्टुवुर्गरुडध्वजम् ॥३
नमस्ते देव देवेश जगत्कारण कारक ।
कालस्वरूपिन् भगवन् प्रधानपुरुषात्मक ॥४
स्थूल सूक्ष्म जगद्व्यापिन् परेश पुरुषोत्तम ।
त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ॥५
त्वं हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ।
यद्भूतं यच्च वै भाव्यं यदिदानीं प्रवर्तते ॥६
तत् सर्वं परमेश त्वं स्थावरं जंगमं तथा ।
अर्थार्थिनां त्वमर्थस्त्वं कामं कामार्थिनां तथा ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर सब देवगणों ने देव योनियों के साथ और इन्द्रदेव के सहित मिलकर भली भाँति जगत् के हित के लिये सलाह की थी ॥ १ ॥ फिर मुनियों के सहित शक्र (इन्द्र)

आदि उन सबने निश्चय करके शरण्य—विभु—अज भगवान् नारायण की शरणागति मे गये थे ॥ २ ॥ उन गोविन्द—वसुदेव जगत् के स्वामी के समीप में पहुँच कर सब देवो ने प्रणाम किया था और फिर भगवान् गरुडध्वज का स्तवन किया था ॥ ३ ॥ देवों ने कहा—हे देवेश्वर ! हे देव ! हे जगत् के कारण को करने वाले ! हे काल के रूप वाले ! हे प्रधान और पुरुष के स्वरूप वाले ! हे भगवन् ! आपकी सेवा में हमारा सबका प्रणिपात समर्पित है ॥ ४ ॥ हे स्थूल और सूक्ष्म ! हे जगत् व्याप्त रहने वाले ! हे परेश ! हे पुरुषोत्तम ! आप ही समस्त प्राणियो के कर्त्ता है अर्थात् सबका सृजन आप ही के द्वारा हुआ करता है—और वही सबका पालन करने वाले रक्षक है तथा आप ही सबका विनाश करने वाले है। ५ । आप अपनी माया के स्वरूप के द्वारा इस जगत को सम्मोहित किया करते है जो भी कुछ हो गया है—जो इस समय मे हो रहा है और जो भविष्य मे होने वाला है। ६। हे परमेश ! यह सब स्थावर हो या जङ्गम हो आप ही है। आप अर्थ के अर्थियो के अर्थ है तथा आप जो भी काम के इच्छुक है उनके काम है। ७।

त्वं हि धर्मार्थिनां धर्मो मोक्षो निर्वाणमिच्छताम् ।
त्वं कामुकस्त्वमेवार्थो धार्मिकस्त्वं सदागतिः ॥८
त्वद्वक्त्राद् ब्राह्मणा जाता बाहुजाः क्षत्रियास्तव ।
ऊर्वो वैश्यास्तथा शूद्राः पादाभ्यां तव निर्गताः ॥९
सूर्यो नेत्रात्तव विभो मनोजश्चन्द्रमास्तव ।
श्रवणात् पवनो जातो दश प्राणास्तथापरे ॥१०
ऊर्ध्वं स्वर्गादिभुवनं तव शीर्षादजायत ।
तव नाभेस्तथाकाशं क्षितिः पादतलादभूत् ॥११
कर्णाभ्यां ते दिशा जाता जठरात् सकलं जगत् ।
त्वं हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ॥१२
निर्गुणो गुणवांस्त्वं हि शुद्ध एव परात्परः ।

उत्पत्तिस्थितिहीनस्त्वं त्वमच्युतगुणाधिकः ॥१३
आदित्यैर्वसुभिर्देवं साध्यैर्यक्षैर्मरुद्गणैः ।
त्वं चिन्त्यसे जगन्नाथ मुनिभिश्चमुमुक्षुभिः ॥१४

आप धर्म के चाहने वालों के लिये धर्म हैं और जो निर्वाण पद के चाहने वाले हैं आप ही मोक्ष हैं। आप कामुक हैं —आप ही अर्थ हैं और आप ही सदा मति धार्मिक हैं। ८। आपके मुख से ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं—और आपकी बाहुओं से क्षत्रियों ने जन्म ग्रहण किया है—आपके उरुओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई है तथा आपके चरणों से शूद्र निकले हैं अर्थात् आप ही के भिन्न-भिन्न अङ्गों से चारों वर्णों का समुत्पादन हुआ है। ९। हे विभो ! सूर्यदेव आपके नेत्रों से समुत्पन्न हुए हैं तथा चन्द्रमा आपके मन से जायमान हुआ है। आपके प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई है तथा दूसरे दश प्राण भी आप ही से हुए हैं। वायु के प्राण अपान आदि दश स्वरूप होते हैं १०। ऊपर की ओर जो स्वर्ग आदि भुवन हैं वे सब आपके मस्तक से ही उत्पन्न हुए हैं। आपकी नाभि से आकाश ने जन्म लिया है तथा आपके पाद तल से पृथ्वी समद्भुत हुई है। ११। आपके कानों से सब दिशायें उत्पन्न हुई हैं। आपके जठर (उदर) से यह सम्पूर्ण जगत् प्रादुर्भूत हुआ है। आप ही माया के स्वरूप से निश्चय ही इस जगत को सम्मोहित किया करते हैं। १२। आप गुणों से रहित होते हुये भी गुण गण से समन्वित है। आप परम शुद्ध—एक और पर से भी पर हैं। आप उत्पत्ति और स्थिति से रहित हैं और आप अच्युत अर्थात् क्षोण न होने वाले गुणों से अधिक हैं। १३। हे जगत् के स्वामिन् ! आप ही आदित्यों के द्वारा—वसुओं के द्वारा—देवों के—साध्यों के—यक्षों के—मरुद्गणों के द्वारा मुनियों के द्वारा और मुमुक्षुओं के द्वारा चिन्तन किये जाया करते हैं। अर्थात् सभी के चिन्तन करने का विषय आप ही केवल होते हैं। १४।

त्वां वै चिदानन्दमयं विदन्ति विशेषविज्ञा मुनयो विमोहा ।

त्वमेव ससार महीरुहस्य
बीज जल स्याममयो फल च ॥१५
त्व मद्मया पद्माकरो विभासि
वरासिचक्राब्जधनुर्धरस्त्वम् ।
त्वमेव तार्क्षे प्रतिभासि नित्य
स्वर्णाचले तोययुतो यथाब्द ॥१६
त्वमेव पीताम्बरशकराब्जजा-
स्त्व सर्वमेतन्न च किंचिदन्यत् ।
न ते गुणा न परिचिन्तनीया
विधेर्हरस्यापि दिशा पतीनाम् ।
भीतेन भक्त्या शरण प्रपन्ना
गता वय न. परिरक्ष विष्णो ॥१७
इति स्तुतो देवदेवो भूतभावनभावन ।
सेन्द्रैर्देवगणैरूचे तान् सर्वान्मेघनिस्वन ॥१८
यदर्थमागता यूय यद्वा भयमुपस्थितम् ।
तत्र यद्वा मया कार्य तद् देवास्तूर्णमुच्यताम् ॥१९
शीर्यते वसुधा नित्य क्रीडया यज्ञपोत्रिण ।
लोकाश्च सर्वे सक्षुब्धा नाप्नुवन्त्युपशान्त्वनम् ॥२०
शुष्क तुम्बीफल घातैर्यथा जर्जरता गतम् ।
वराहक्षुरघातेन तथा जर्जरिता क्षिति ॥२१

विशेष विज्ञान वाले विगत भाग से संयुत मुनिगण चित् (ज्ञान) और आनन्द मे परिपूर्ण आप को ही समझते अर्थात् जानते है । आप ही इस ससार रूपी वृक्ष के बीज है—जल है—ध्यान है और फल है । । १५ । आप पद्मा से पद्माकर विभात होते है । आप वरदान—खड्ग—चक्र—कमल और धनुष के धारण करने वाले हैं । आप ही नित्य तार्क्ष्य प्रतिभात होते हैं । जिस प्रकार से स्वर्णाचल पर जल से

समन्वित शब्द हुआ करता है । १६ । आपही पीताम्बर शङ्कर कमल स समुत्पन्न हैं। यह सब आप ही हैं और अन्य कुछ भी नहीं है । आपक गुण गण हमारे द्वारा चिन्तन करन के योग्य नहीं हैं । विधाता—हर और दिक्पालो के भी गुण चिन्तन करन के योग्य नहीं हैं। भय म और भक्ति स हम आपकी शरणागति म प्राप्त हुए हैं। हे विष्णो ! आप हमारी रक्षा करिए । १७ । मार्कण्डेय मुनि न कहा—इस प्रकार स देवो के भी देव--भूतो के भावन करन वालो के भी भावन इस रीति से स्तुति किय गय थ जो इन्द्रदव क सहित देवगणो क द्वारा स्तवन किये गय थे। मघ के समान ध्वनि वाले प्रभु न उन सबस कहा था । १८ । श्री भगवान् ने कहा--जिस प्रयोजन की सिद्धि क लिए आप लोग यहाँ पर समागत हुए हैं अथवा जो भी कुछ भय आपको हुआ है। अथवा वहाँ पर जो भी कुछ काम मुझे करना चाहिय ह देवो ! वह शीघ्र ही बतलाइये । १९ । देवो ने कहा—यज्ञ पोनी अर्थात् यज्ञ वाराह के क्रीडा स यह वसुधा अथात पृथ्वी नित्य विशीर्ण हो रही है और सभी लोक विशेष रूप से क्षुब्ध हो रहे हैं और वे उपसान्त्वना प्राप्त नहीं कर रहे हैं । २० । जिस प्रकार स सूखा हुआ तुम्बी का फल धातो से जजरता को प्राप्त हो जाता है ठीक उसी भाति यह भूमि यज्ञ वाराह के खुरा क प्रहारों से जर्जरित होगई है । २१ ।

तस्य ये वा त्रय पुत्रा कालाग्निसमतेजस ।
सुवृत्ता कनको घारस्तैश्चाप्याधातित जगत् ॥२२
तेषा कदमलीलाभि सरासि जगता पते ।
मानसादीनि भग्नानि प्रकृति यान्ति नाधुना ॥२३
भग्नास्तैर्देवतरवो मन्दराद्या महाबलै ।
देव नाद्यापि रोहन्ति फल पुष्प दल च वा ॥२४
सदा त्रिकूटमारुह्य ते सुवृत्तादयस्त्रय ।
प्लुत कृत्वा महाबाहो पतन्ति लवणार्णवे ।

तदा तत् क्षुब्धतोयौघै प्लाव्यते सकला मही ॥२५
उत्प्लवन्ति जना सर्वे प्रयान्ति च दिशो दश ।
जीवित रक्षमाणास्ते प्रयान्ति च दिशो दश ॥२६
यदा त्रिविष्टप यान्ति यज्ञवाराह-पुत्रका ।
इतस्ततस्तदा भग्ना देवा शान्ति न लेभिरे ॥२७
सर्वे ते पर्वता पुत्रैर्वराहस्य जगत्पते ।
क्रीडद्भि शिखरे नीता भूरिभागमधोगतिभ् ॥२८
एव विक्रीडता तेषा क्रीडाभि सकल जगत् ।
नाशमायाति वैकुण्ठ तस्माद्रक्ष जगत्प्रभो ॥२९

अथवा उसके जो तीन कालाग्नि के तज के समान पुत्र है जिनके नाम सुवृत्त—कनक और घोर है उनके द्वारा भी यह सम्पूर्ण जगत आपातित हा रहा है । २२ । उनकी कर्दम लीलाओं से हे जगतो के पति ! मानस आदि सब सरोवर भग्न हो गये हैं और अभी भी प्राकृतिक स्वरूप को प्राप्त नही होते है । २३ । महान् वल वाले उनके द्वारा मन्दार आदि देवो के तरु भग्न कर दिये गये है । हे देव ! वे आज तक भी प्ररोह को प्राप्त नही हो रहे हैं और उनम फल, पुष्प और दल भी विकसित नही हो रहे हैं । २४ । जिस समय ने वे सुवृत्त प्रभृति तीनो त्रिकूट पर्वत पर समारोहण किया करते है । हे महाबाहो ! वहाँ से वे प्लुति करके क्षार सागर से गिर जाया करते है । उस समय म क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के जल के समुदायो से यह सम्पूर्ण भूमि प्लावित हो जाया करती है । २५ । उस समय मे सभी मनुष्य उत्प्लवन को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जल म निमग्न हो जाया करते है और दशो दिशाओ मे जहाँ कही भी जीवन की रक्षा करते हुए प्रयाण करने लगते हैं।२६। जिस समय मे यज्ञ वाराह के पुत्र त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग को गमन करते हैं उस अवसर पर भग्नहुए देव इधर-उधर जाकर शान्ति को प्राप्त किया करते थे ।२७। हे जगत्पते ! सभी पर्वत उस वाराह के पुत्रो

ने शिखर पर क्रीडा करते हुए उनका दहुत अधिक भाग नीचे की ओर गया हुआ कर दिया था। २८। इस प्रकार से विशेष क्रीडा करते हुए उनकी क्रीडाओं से यह सम्पूर्ण जगत् हे वैकुण्ठ ! नाश के भाव को प्राप्त हो जाता है हे जगत् के प्रभो ! उससे आप रक्षा कीजिए। २९।

इति तेषां निगदतां श्रुत्वा वाक्यं जनार्दनः ।
उवाच शंकरं देवं ब्रह्माणं च विशेषतः ॥३०
यत्कृते देवताः सर्वाः प्रजाश्च सकला इमाः ।
प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं शीर्यते सकलं जगत् ॥३१
वाराहं तदहं कायं त्यक्तुमिच्छामि शंकर ।
निवशशक्तः तं त्यक्तुं स्वेच्छया न हि शक्यते ।
त्वं त्याजयस्व तं कायं यत्नाद्वा शंकराधुना ॥३२
त्वमाप्यायस्व तेजोभिर्ब्रह्मन् स्मरहरं मुहुः ।
आप्यायन्तु तथा देवाः शंकरं हन्तु पोत्रिणम् ॥३३
रजस्वलायाः संसर्गाद्विप्राणां मारणात्तथा ।
कायः पापकरो मृतस्तं त्यक्तुं युज्यतेऽधुना ॥३४
प्रायश्चित्तैरपर्यन्तं प्रायश्चित्तमहं ततः ।
चरिष्यामि तदर्थं मे तनुर्यत्नेन शाम्यताम् ॥३५

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भगवान् जनार्दन प्रभु ने इस प्रकार से कहते हुए उनके वाक्य का श्रवण करके भगवान ने देव शंकर से और विशेष रूप से ब्रह्माजी से कहा। ३०। जिस के लिए सभी देवगण और ये समस्त प्रजा महान् दुःख को पा रहे हैं और यह सम्पूर्ण जगत् शीर्ण हो रहा है। ३१। हे शंकर ? मैं उस वाराह के शरीर का त्याग करने की इच्छा कर रहा हूँ। निर्वश में शक्त उसका त्याग करना स्वेच्छा से से नहीं हो सकता है। हे शंकर ! अथवा अब आप यत्न से उसका त्याग कराइए। ३२। हे ब्रह्मन् ! आप भी अपने नेत्रों से पुनः स्मर के विनाशक शिव को आप्यायित कीजिए। तथा सब देवगण भी शंकर

को आप्यादित कर दिये इस पौत्री का हनन करने को उद्यत हो जावें। ३३। रजस्वला के समय से तथा विप्रगण के मारने से यह शरीर पापाक्त करने वाला हो गया है। इस समय में उसका त्याग करना युक्त होता है। ३४। यह पाप प्रायश्चित्तों के द्वारा ही दूर होता है। अतएव मैं प्रायश्चित्त को करूँगा। उसके लिए मेरा शरीर यत्न से शान्यता को प्राप्त होवे। ३५।

प्रजा पाल्या मम सदा सा हि सीदति निरपथा ।
मत्कृते प्रत्यह तस्मात् त्यक्ष्ये काय प्रजाकृते ॥३६
इत्युक्तो वासुदेवेन तदा तौ ब्रह्मशङ्करौ ।
त्वया यथोक्त तत्कार्यमिति गोविन्दमूचतु ॥३७
वासुदेवोऽपि तान् सर्वान् विसृज्य त्रिदशांस्तथा ।
वाराह तेज आहर्तुं स्वय ध्यानपरोऽभवत् ॥३८
शनैः शनैर्यदा तेज आहरत्येव माधव ।
तदा देहं तु वाराहं सत्व हीनमजायत ॥३९
तेजोहीन यदा देहं शान्त सर्वं स्तदामरं ।
आजगाम तदा देवो यत्रवाराहमद्भुतम् ॥४०
ब्रह्माद्यास्त्रिदशा सर्व महादेवमुमापतिम् ।
अनुजग्मुस्तदा तत्र आयातु स्मरशासने ॥४१
सत सर्वदेवगण स्वं स्व रजा वृषध्वजे ।
आदधे तेन वक्त्रात् गोत्रीय समजायत ॥४२

। ३७ । भगवान् वासुदेव ने भी उन सब देवगणों को विदा करके वाराह के तेज का आहरण करने के लिये वे फिर ध्यान में परायण हो गये थे। ३८ । जब धीर वीर माधव प्रभु उस तेज का अपहरण करते हैं तो उस समय में वह वाराह का देह सत्त्व से हीन हो गया था। ३९ । जब सभी देवों ने उन देह को ले मैं हीन समय लिया था उसी समय में देव अद्भुत वज्र वाराह के समीप में प्राप्त हुए थे। ४० । ब्रह्मा आदि समस्त देव उमा के स्वामी महादेव के समीप में गये थे कि उस समय में उस तेज को के महादेव में सम्मन करने के लिये आधान करें। ४१ । फिर इसके अनन्तर सभी देवों के समुदाय ने अपना-अपना तेज भगवान् वृषभध्वज में आधान कर दिया था उससे वे भगवान् शम्भु बहुत ही अधिक बलवान् होगये थे। ४२।

ततः शरभरूपो स तत्क्षणात् गिरिशोऽभवत् ।
ऊर्ध्वाधोभागतश्चाष्टपादयुक्तः सुभैरवः ॥४३
द्विलक्षयोजनोच्छ्राय साधलक्षैकविस्तृतः ।
ऊर्ध्वं वाराहकायन्तु लक्षयोजन विस्तृतः ॥४४
लक्षार्धविस्तृतः पार्श्वे वर्धमानस्तदाभवत् ।
ततः शरभरूपं तं महादेवमुमापतिम् ॥४५
ददर्श वज्रपाणिः स स्पृशन्तं शिरसा विभुम् ।
सुदीर्घनासानखरं कृष्णाङ्गारसमप्रभम् ॥४६
दीर्घवक्त्रं महाकायमष्टदंष्ट्रासमन्वितम् ।
बिभ्रतं स नटं तुच्छं दीर्घकर्णं भयानकम् ॥४७
चतुरः पृष्ठतः पादानग्रे चतुरस्तथा ।
कुर्वन्तं घोरसंरावमुत्पतन्तं पुनः पुनः ॥४८
तमायान्तं ततो दृष्ट्वा क्रोधाद्धावन्समञ्जसा ।
सुवृत्तं कनकं घोरं आसद् क्रोधमूर्च्छितः ॥४९

इसके अनन्तर शरभ के रूप वाले वे उसी क्षण में गिरिश हो

गये थे। वे ऊपर और नीचे के भाग से आठ पादों से युक्त अत्यन्त भैरव हो गये थे। ४३। वह वाराह का शरीर दो लाख योजन ऊँचाई वाला था और डेढ़ लाख योजन के विस्तार से युक्त था। ऊपर की ओर वह वाराह का शरीर एक लाख योजन के विस्तार वाला था। आधा लाख योजन पार्श्व में विस्तृत था। उस समय में ऐसा वह वाराह शरीर वर्धमान हो गया था। इसके अनन्तर उस यज्ञ पोत्री ने शिर पर चन्द्र का स्पर्श करने वाले शरभ के रूप वाले उमापति महादेव का दर्शन किया था। उनका स्वरूप लम्बी नाक और नखरों वाला था तथा काले अङ्गार के समान प्रभा से युक्त था ॥४३—४६॥ उनका मुख दीर्घ था—महान् शरीर से समन्वित था और उसमें आठ दाढ़ें थी—सटाऐ धारण करने वाली पूँछ थी तथा लम्बे कानों वाला परमाधिक भयानक स्वरूप था। ४७। उसके चार पद थे पृष्ठ भाग में थे तथा चार अग्र में थे। वह महान् घोर शब्द कर रहे थे तथा बारम्बार उछाल खा रहे थे।४८। इसके अनन्तर आगमन करते हुए उनको देखकर जो तुरन्त ही क्रोध से दौड़ लगा रहे थे सुवृत्त-कनक और घोर वहाँ पर क्रोध से मूर्छित होते हुए प्राप्त हो गये थे।४९।

तमासाद्य महाकाय शरभ भ्रातरस्त्रय ।
उच्चिक्षिपुस्ते युगपत् पोत्रघातैर्महाबलाः ॥५०
यावत् प्रमाण शरभस्तत्प्रमाणास्तदाभवन् ।
शरभोत्क्षेपसमये मायया पोत्रिणस्त्रयः ॥५१
तेषा पोत्रप्रहारेण प्रोत्क्षिप्त. शरभस्तदा ।
पपात पृथिवीप्रान्ते गम्भीरे तोयसागरे ॥५२
तस्मिन् निपतिते तत्र सागरे मकरालये ।
उत्पत्य ते त्रय. पेतुः क्रोधात्तस्मिन् महोदधौ ॥५३
सुवृत्तं कनके घोरे पतिते सागराम्भसि ।
वराहोऽपि सुतस्नेहात् क्रोधाच्च द्विजसत्तमाः ।

उत्प्लाविता प्रजा सर्वा क्षणाज्जग्मु क्षय ततः ।
प्लवमाना प्रजास्तोये भ्रियमाणा समन्तत ॥६५
हा पितस्त्वथ हा तात हा मातर्हा सुतेति च ।
विलपन्ति स्म करुण भीताश्चार्तामुमूर्षव ॥६६
यस्मिन् देशे निपतितो वराहै शरभ सह ।
तत्रैवाधोगता भूमि पादवेगेन दारिता ॥६७
अपर पृथिवीप्रान्त उत्थित पर्वतै सह ।
ससर्ज जनलोकेषु चला तेषा प्रभञ्जने ॥६८
जनलोकेषु सयुक्ता पृथिवीं शरभस्तदा ।
नि श्रेणीमिव सम्बद्धामचलामपि पोत्रिभि ।
ददर्श विस्मयाविष्ट स भीत श्रान्तपीडित ॥६९
ततस्ते युयुधु सर्वे पोत्राघातेन पोत्रिण ।
खुरप्रहारैर्दंष्ट्राभिर्गात्रक्षेपैश्च दारुणै ॥७०

एक ही क्षण मे सब मे सब सागर बिना जल वाले से हो गये थे क्योंकि वे सब जल की राशियाँ समुत्क्षिप्त होकर पृथिवी तल मे समागत हो गई थी । ६४ । उत्प्लावित हुई समस्त प्रजा एक ही क्षण मे क्षय को प्राप्त हो गई थी । प्लवमान होती हुई अर्थात् डुबकियाँ खाती हुई प्रजा सभी ओर से म्रियमाण हो गई थी । ६५ । उस समय मे बहुत ही अधिक करुण दृश्य हो गया था मरने वाले लोग परस्पर मे विलाप कर रहे थे । कुछ लोग कह रहे थे हा पिता, हा माता ! हा तात ! हा सुत ! इस प्रकार से कहते हुए परम भीत और आर्त मनुष्य करुणापूर्वक विलाप कर रहे थे।६६। जिस देश मे वाराहो के साथ शरभ निपतित हुआ था वहाँ पर ही अधोभाग मे गई हुई पृथ्वी पादो के वेग से विदारित हो गई थी । ६७। दूसरा पृथिवी का प्रान्त पर्वतों के साथ उत्थित हुआ था जन लोकों मे उनके प्रभञ्जनो चला का सृजन किया था । ६८ । उस समय मे शरभ ने जन लोकों मे सयुक्त पृथिवी को

केचिच्छैला पर्वतेषु पतिता पुनरेव ते ॥५९
विमृद्य वृक्षान जन्तूश्च निपेतुश्च पुनःपुनः ।
केचित् पर्वताघातनुं त्यमाना महीतले ॥६०
बभञ्जुरचलाश्चापि व्रजन्तो बहुशः प्रजाः ।
पर्वताः समदृश्यन्त वातवेगेन भूतले ॥६१
सचट्टमानास्तथ्योऽन्ये व्रजन्त इव तेऽचलाः ।
अम्भोनिधौ पतिद्भस्तैर्वाराहैः शरभेण च ॥६२
पर्वतैश्च महातुगैरुत्क्षिप्तास्तोयराशयः ।
तथा प्रपातवेगेन क्षिप्तेषु जलराशिषु ॥६३

हे द्विज श्रेष्ठो ! नक्षत्र विमान से महीतल में पतित हो गये थे, वे सब ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल दिखलाई दे रहे थे। ५७। उनके उत्पतन में जो वेग था वह बहुत ही अधिक दारुण था। उससे अत्यधिक वेग वाला वायु उत्पन्न हो गया था जो बहुत ही अधिक दारुण था। ५८। उस वायु से प्रेरित हुए पर्वत पृथिवी तल में गिर गये थे और कुछ पर्वत पुनः ही पर्वतों में पतित हो गये थे। ५९। उन्होंने वृक्षों को और जन्तुओं का विमर्दित करके बारम्बार नियतित हो गये थे। कुछ तो पर्वतों के आघातों से महीतल में भुग्यमान हो रहे थे। ६०। उन पर्वतों ने गमन करते हुओं ने बहुत सी प्रजाओं को भग्न कर दिया था। वायु के वेग से भूतल में पर्वत दिखलाई दिये थे। उन से सघट्टमान होते हुए अर्थात् रगड़ खाते हुए अन्य पर्वत गमन करते हुए से प्रतीत हो रहे थे। जो अम्भोनिधि में पतित हुए वाराहों से और शरभ से दिखाई दे रहे थे ॥६१—६२॥ महान् ऊँचे पर्वतों से जल की राशियाँ उत्क्षिप्त हो गई थी जब कि उनके प्रपात के वेग से समस्त जल राशियाँ उत्क्षिप्त हो गई थी। ६३।

निस्तोया इव सजाता क्षणं वै सर्वसागरा ।
तं गर्भेदरं क्षिप्तं पृथिवीतलमागतं ॥६४

उत्प्लाविता प्रजा सर्वा क्षणाज्जग्मु क्षयं तत ।
प्लवमाना प्रजास्तोये म्रियमाणा समन्तत ॥६५
हा पितस्त्वथ हा तात हा मातर्हा सुतेति च ।
विलपन्ति स्म करुणं भीताश्चार्त्तमुपूर्वक ॥६६
यस्मिन् देशे निपतितो वराहे शरभ सह ।
तत्रवाधोगता भूमि पादवेगेन दारिता ॥६७
अपरं पृथिवीप्रान्त उत्थित पर्वतै सह ।
ससर्ज जनलोकेपु चला तेषा प्रभञ्जनै ॥६८
जनलोकेपु संयुक्ता पृथिवीं शरभस्तदा ।
तिर्यग्श्रेणीमिव सम्यद्वाग्यचलामपि पोत्रिभि ।
ददर्श विस्मयाविष्ट स भीत आत्मपोत्रित ॥६९
ततस्ते युयुधु सर्वे पोत्राघातेन पोत्रिण ।
खुरप्रहारैर्दंष्ट्राभिर्गात्रक्षेपैश्च दारुणै ॥७०

एक ही क्षण म सब म सब सागर विना जल वाले से हो गये थे वराह के मन जन की राशियाँ समुल्लिस होकर पृथिवी तल में समागत हो गई थी । ६४ । उत्प्लावित हुई समस्त प्रजा एक ही क्षण म क्षय को प्राप्त हो गई थी । प्लवमान होती हुई अर्थात् डुबकियाँ खाती हुई प्रजा सभी ओर से म्रियमाण हो गई थी । ६५ । उस समय मे बहुत ही अधिक करुण दृश्य हो गया था मरने वाले लोग परस्पर मे विलाप कर रहे थे । कुछ लोग कह रहे थे हा पिता, हा माता ! हा तात ! हा सुत ! इस प्रकार से कहते हुए परम भीत और आर्त्त मनुष्य करुणापूर्वक विलाप कर रहे थे।६६। जिस देश मे वाराहो के साथ शरभ नियतित हुआ था वहाँ पर ही अधोभाग म गई हुई पृथ्वी पादो के वेग मे विदारित हो गई थी । ६७। दूसरा पृथिवी का प्रान्त पर्वतों के साथ उत्थित हुआ था जन लोको मे उनके प्रभञ्जनो चला का सृजन किया था । ६८ । उस समय म शरभ ने जन लोको म संयुक्त पृथिवी को

पोत्रियों कचला भी सम्बद्धा को नि:श्रेणी की ही भाँति देखा था। वह विस्मय से आविष्ट हुआ भीत—भ्रान्त एवं पीडित था। ६६। इसके अनन्तर पोत्रीगण वे सब पोत्राघात से युद्ध करने लगे थे। तथा उन्होंने खुरों के प्रहारों के द्वारा—दाढ़ों से और महान् दारुण गात्र के क्षेपों से ही युद्ध किया था। ७०।

शरभोऽप्यथ दंष्ट्राग्रैर्नखैस्तीक्ष्णैः खुरैस्तथा।
लांगूलस्य प्रहारैस्तु तुण्डघातैर्महास्वनैः ॥७१
चतुर्भिः पोत्रिभिस्तैस्तु स एकः शरभो महान्।
एकान्ते योधयामास गहनं परिवनसरान् ॥७२
तेषां प्रहारैर्वेगैश्च भ्रमणैश्च गतागतैः।
आस्फोटितैस्तथारावैर्देहपातैः पृथक् पृथक्।
पाताले पन्नगाः सर्वे विनेशुः कद्रुजैः सह ॥७३
ततस्ते सागरं त्यक्त्वा पृथिवीमध्यमागताः।
परस्परं युध्यमाना ततोऽभूत् पृथिवी समा ॥७४
शेषोऽपि महता यत्नाद्बलेनाष्टम्यवच्छपम्।
दधार पृथिवीं दुःखैर्भग्नशीर्षः प्रतापिता ॥७५
अनन्ते श्रामनीभूते समत्वा पृथिवीतले।
गतेऽम्भोभिश्चलद्भिश्च पर्वतैः सर्वजन्तुषु ॥७६
नष्टेषु युध्यमानेषु त्रिपोत्रिशरभेषु च।
सागरं गच्छते सर्वजगत्यापोमये हरिम् ॥७७
चिन्ताविष्टः सुरज्येष्ठ उवाचाथ पितामहः।
भगवन् भुवनं सर्वं ससुरासुरमानुषम् ॥७८

इसके अनन्तर एक ही उस महान् शरभ उन चारों पोत्रियों के साथ एक गहन वन पर्यन्त एकान्त में दाढ़ों से अग्र भागों से—तीक्ष्ण नखों से—खुरों से—लांगूल के प्रहारों के द्वारा और महान् शब्द वाले तुण्डाघातों से चारों उन पोत्रियों के साथ लड़ा था अर्थात् उसने युद्ध

किया था ॥ ७१—७२ ॥ उनके प्रहारों से—वेगों से—भ्रमणों से और गमनागमनों से—आस्फोटितों से—तथा आरावों से—पृथक-पृथक् देह के पातों से पाताल में समस्त पन्नग कद्रुजों के साथ विनष्ट हो गये थे। ७३। इसके उपरान्त वे सब सागर का परित्याग करके पृथिवी के मध्य में समागत हो गये थे। वे परस्पर में युद्ध करते हुए रहते थे फिर यह पृथिवी सम हो गई थी। ७४। शेष भगवान् भी बड़े भारी यत्न से बल के द्वारा कच्छप को अवष्टब्ध करके भग्न शीर्ष वाले प्रत्यपित होते हुए बड़े दुःखों के साथ इस पृथिवी को धारण करने वाले हुए थे अर्थात् बड़ी कठिनाई से उन्होंने पृथिवी को धारण किया था। ६५। अनन्त के कामनी भूत होने पर और पृथिवी तल के समत्व को प्राप्त हो जाने पर सागरों के और पर्वतों के चलायमान होने से समस्त जन्तुओं के विनष्ट हो जाने पर त्रिगोत्रि शरभों के युद्ध मान होने पर सागरों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के आप्लुत होने पर उस समय में जलमय में चिन्ता में समाविष्ट सुर श्रेष्ठ पितामह भगवान् हरि से बोला। हे भगवन्! सुर—असुर और मनुष्यों के सहित समस्त भुवन विध्वस्त हो गया है—यह पृथिवी विशीर्ण हो गई है और स्थावर तथा जङ्गम (चेतन) नष्ट हो गये हैं ॥७६—७८॥

विध्वस्त पृथिवी शीर्णा नष्टा स्थावरजंगमा ।
देवदानवगन्धर्वा दैत्याश्चापि सरीसृपा ।
विध्वस्ता जगता नाथ मुनयश्च तपोधना ॥७९
त्वं पालकोऽसि सर्वेषां त्वमेव जगतः प्रभु ।
तस्मात् पालय नः सर्वान् पृथिवीं च जगत्पते ॥८०
त्वमेव कायं वाराहं स्वयमेवोपसंहर ।
संस्थापय महावाहो पृथिवीं च चराचरे ॥८१
इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणोऽथ जनार्दनः ।
यत्नं चक्रे तदा सर्वं संस्थापयितुमच्युतः ॥८२

ततो हरी रोहितमत्स्यरूपी
भूत्वा मुनीन सप्त तदा सवेदान् ।
जग्राह ते रक्षणतत्परो जगद्-
हिताय सर्वश्रुतिकोविदावरान ॥८३
वसिष्ठमत्रिं त्वथ कश्यपं च
विश्वादिमित्रं च सगोतमं मुनिम् ।
महातपस्यं जमदग्निमुग्र्यं
तथा भरद्वाजं मुनिं तपोनिधिम् ॥ ८४
निधाय पृष्ठे स हि तोयमध्ये
स्थितो महानौप्रवरे मुनीन्द्रान् ।
ततः शिरः सान्त्वयितुं जनार्दनो
जगाम यस्मिन ययधे स पोत्रिभिः ॥८५

देखकर जो समागत हुए थे वाराह ने पूर्व मे होने वाली नृसिंह भगवान् की मूर्त्ति का स्मरण किया था । ८६ । उनके द्वारा स्मरण किए हुए वराह के सखा वराह के हित मे भगवान् नृसिंह समागत हुए थे । उस अवसर पर आए हुए उन भगवान् नृसिंह का वीक्षण करके उनके कामो को अपने ही तेज मे ले लिया था । ८७ । वाराहो के साथ शरभ ने देखा था कि वह तेज सबके तुल्य विष्णु भगवान् के अन्दर प्रवेश कर गया था । तज से रहित भगवान् नृसिंह का ज्ञान प्राप्त करके वराह ने नि श्वासो के समूह को छोड़ा था । अर्थात् वे बहुत कुछ नि श्वास लेने लग लग गये थे । ८८ । फिर तो बहुत से वाराह समुद्भूत हो गये थे जिनका बहुत प्रमाण था और अद्भुत एव तीक्ष्ण दाढो वाले थे । वे वराह शरभगिरिश माया धारी और भय रहित हान हुए पीडित करने वाले थे । ८९ । उस समय म भी नृसिंह भगवान् के साथ युद्ध किया था और बहुत अधिक गिरिश का मर्दन किया था । एक क्षण मे तो पक्षियो के समान स्वरूप वाले हो और क्षण म वो — तुरग और मनुष्य हो जाते थ । ९० । ... ही क्षण म नृसिंह और वराह के रूप वाले हो और वे किसी क्षण म गोमायु (शृगाल) और वैकृतिक अर्थात् बिगडे हुए हो जाते थे । उस युद्ध मे वराहो म अनेक भाँति के महा भयङ्कर स्वरूप विनम्यमान किय थ । ९१ ।

निरीक्ष्य भर्गं च निपीडितं तैरथासदन्माधवस्त गिरीशम् ।
पस्पर्श विष्णुर्गिरिशं करेण तेजो न्यधात्तत्र निजं पुन स॥९२
अथ सम्पृष्टमात्र स विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अतीव मुदितो हृष्टो बलवान् समजायत ॥९३
अथोच्चै शरभो नाद ननाद बलवद्दृढम् ।
आपूरितानि येनैतद्भुवनानि चतुर्दश ॥९४
ततस्तस्य वदनाच्छीकरा ये विनि सृता ।
ततो गणा समभवन् महाकाया महौजस ॥९५

यथा वराहनिश्वासान्नानारूपधरा गणा ।
वराहास्तादृशा एते ततोऽप्यतिवला. पुनः ॥६६
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायुगोमुखाः ।
ऋक्षमार्जारमातङ्गशिशुमारस्वरूपिणः ॥६७
सिंहव्याघ्रमुखाः केचित् केचित् सर्पाखुमूर्तयः ।
हयग्रीवा हयमुखा महिषाकृतय परे ॥६८

उस अवसर पर भर्ग को उनके द्वारा निपीड़ित देख कर उन गिरिश के समीप में भगवान् माधव आ गये थे। भगवान् विष्णु ने अपने कर कमल से गिरिश का स्पर्श किया था और फिर उनने अपना तेज पुन. उनमें निधापित कर दिया । ६२ । इसके अनन्तर प्रभा विष्णु भगवान् विष्णु के कर से स्पर्श होते हुये ही वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और बलवान् हो गये थे । ६३ । इसके अनन्तर शरभ ने बहुत ऊँचा—बलवान् और दृढनाद (गर्जन की ध्वनि) किया था जिससे ये चौदह भुवन भर गए थे अर्थात् चौदह भवनों में फैल कर पहुँच गया था ।६४। इस रीति से नाद करने वाले उसके मुख से जो भी सीकर अर्थात् जल के कण निकले थे उनसे महान् शरीरों के धारण करने वाले तथा विशाल ओज से समन्वित समुत्पन्न हो गये थे । ६५ । जिस प्रकार से वराह के नि.श्वास से नाना रूपों के धारण करने वाले गण हुए थे। ये वैसे ही वराह थे प्रत्युत उन से भी अधिक बल वाले थे । ६६ । श्वान, वराह उष्ट्र के रूप वाले—प्लव, गोमायु और श्रीके मुख से संयुत—रीछ, मातङ्ग, मार्जार और शिशु मार के स्वरूप वाले—कुछ सिंह और व्याघ्र के मुख वाले और कुछ सर्प और मूषक के समान मुख वाले थे—हय की सी ग्रीवा से युक्त और हय के समान मुख वाले तथा दूसरे महिष के समान आकृति वाले थे । ६७ । ६८ ।

अन्ये तु मनुजाकारा मृगमेषमुखाः पुन. ।
कवन्धा हीनपादाश्च विहस्ता बहुपाणय. ॥६६

केचित् शरभाकारा वृकलाममुखा परे।
मत्स्यवक्त्रा ग्राहवक्त्रा ह्रस्वा दीर्घास्तथा कृशा ॥१००
चतुष्पादाष्टपादाश्च त्रिपादा द्विपदा परे।
एकपादा भूरिहस्ता यक्षकिंपुरुषोपमा ॥१०१
पश्वाकारा पक्षयुक्ता लम्बोदरा महोदरा ।
दीर्घोदरा स्थूलकेशा बहुकर्णा विकर्णका ॥१०२
स्थूलाधरा दीर्घदन्ता दीर्घश्मश्रुधरा परे।
ये सन्ति प्राणिनो विप्रा भुवनेषु समन्तत ॥१०३
चतुर्दशसु ते तेषा रूपेण समता गता ।
नेहास्ति भुवने जन्तु स्थावरो वा जगत् पुन ॥१०४
यत्तुल्यरूपेण गणो न जात शङ्करस्य च।
ते भिन्दिपालैः खड्गैश्च परिघैस्तोमरैस्तथा ॥१०५

दूसरे मनुष्य के समान आकार वाले थे और फिर मृग तथा मेष के सदृश मुख से समन्वित थे। कुछ ऐसे भी थे जिनके मुख नही थे—कुछ बिना हाथों वाले और कुछ बहुत हाथों से युक्त थे। ९९। उनमें कुछ शरभ के सदृश आकार वाले थे और दूसरे कृकलास के जैसे मुख से संयुत थे। कुछ मत्स्य के सदृश मुख से युत थे और कुछ ग्राह के से मुख वाले थे—कुछ बहुत छोटे—कुछ बहुत बड़े कद वाले तथा कुछ कृश थे। १००। कुछ ऐसे थे जिनके चार पैर थे—कुछ आठ पैरों से युत और कुछ तीन एवं दो पैरों वाले थे। कुछ एक ही पैर वाले थे और कुछ बहुत अधिक हाथों से संयुत थे। कुछ यक्ष तथा किंपुरुषों के समान थे ॥१०१॥ कुछ पशुओं के समान आकार वाले थे तो कुछ पंखों से संयुत थे। कुछ लम्बे उदर वाले थे तो कुछ महान् उदर से संयुत थे। कुछ ऐसे थे जिनके उदर दीर्घ थे तथा कुछ स्थूल केशों से समन्वित एवं कुछ बहुत कानों वाले तथा कुछ बिना ही कानों वाले थे। १०२। कुछ उनमें ऐसे थे जिनके स्थूल अधर थे तो कुछ दीर्घ दाँतों से समन्वित थे और दूसरे बड़ी लम्बी दाढ़ी

थे जैसे रुद्रदेव ही होवें ।१०८।१०९। कुछ तो अपने सुन्दर रूप से तथा मोहने वाले स्वरूप से कामदेव के तुल्य थे जो वनिताओं के समुदाय के साथ रति करने में समुत्सुक थे । ११० । सभी आकाश में चरण करने वाले थे और सभी स्वतन्त्रता से गमन करने वाले थे । उनमें कुछ नील कमल के सदृश श्याम वर्ण वाले थे तो कुछ शुक्ल और लोहित थे ।१११। कुछ रक्त पीत तथा विचित्र वर्ण से संयुत और दूसरे हरित एवं कपिल थे । कुछ आधे पीत—अध रक्त—अध भाग में नील और दूसरे धवल थे । ११२ ।

> सकृष्णपीता शुक्लेन कृष्णेनाधन रञ्जिता ।
> एकवर्णा द्विवर्णाश्च त्रिवर्णाश्च तथापर ॥११३
> चतु पटपञ्चवर्णाश्च केचिद् दशगुणा द्विजा ।
> डिण्डिमान् पटहान शखान भेर्यानकसकाहलान् ॥११४
> मण्डूकान् भ्रमराश्चैव भ्रभ्ररांश्च समर्दला ।
> वीणास्तन्त्री पचतन्त्री शकटान् ददरास्तथा ॥११५
> गोमुखानानकान कुण्डान् सता नकरतालिकान ।
> वादयन्तो गणा सव हसन्तश्च मुहुर्मुहु ॥११६
> वराहाभिमुखा भूत्वा तस्थुस्ते हृष्टमानसा ।
> तान् सर्वानाह शरभो भगवान् वृषभध्वज ॥११७
> निघ्नतैतान् वराहस्य गणान् वै क्रूरकर्मभि ।
> क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धे क्रूरा भूत्वा महाबला ॥११८
> ततस्ते वै गणा सव नानाकार वरायुधा ।
> सार्धं वराहस्य गणर्युयुधु क्रूरदशना ॥११९

कुछ कृष्ण और पीत वर्ण से युक्त थे तथा कतिमध अर्ध कृष्ण और शुक्ल वर्ण से रञ्जित थे । कुछ एक ही वर्ण वाले—कतिपय दो वर्णों से संयुत तथा दूसरे तीन वर्णों से समन्वित थे । ११३ । कुछ , और छै वर्णों से युक्त थे और हे द्विजो ! कुछ दश गुणा वाले

थे। सभी गज वादन करने वाले थे जिन में कुछ डिण्डिम—पटह—शंख—भेरी—आनक—सल्लक—गोमुख—आन्क—मण्डूक—झर्झर—झर्झरी मरदल—वीणा—तन्त्री—पञ्च नन्दी—शवर और ददर—कुण्ड—मनाल कर तालिकाओं को वादन करते हुए सभी गण बार बार हँसने वाले थे। ११४—११६। वे सब वराह की ओर मुख वाले होते हुए स्थित हो गए थे। उन सब से वृषभध्वज भगवान् शरभ ने कहा। ११७। इन वराह के गणों का विहनन कर दो। ये निश्चय ही अपने क्रूर कर्मों के द्वारा—क्रूर दृष्टि से—क्रूर युद्धों के द्वारा क्रूर होकर महान बल वाले थे ॥११८॥ इसके अनन्तर वे सब गण अनेक आकार वाले और नाना श्रेष्ठ आयुधों से समन्वित थे। उन क्रूर दिखलाई देने वालों ने वराह के गणों के साथ युद्ध किया था ॥११९॥

आकाशचारिणः सर्वे जलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
ते परित्यज्य युयुधुर्वियत्येवोभये गणा ॥१२०
ततः क्षणाद् वराहास्य गणान् सर्वान् महाबलान् ।
हरस्य प्रमथा जघ्नुर्महावाता इवाम्बुदान् ॥१२१
हतेषु तेषु वीरेषु वाराहेषु गणेष्वथ ।
दध्यौ वराहः किमिति प्राक् पश्चाद्वृतमास्थितम् ॥१२२
अथ चिन्तयतस्तस्य स्वान्तं गत्वा जनार्दनः ।
तत् सर्वं ज्ञापयामास वराहवपुषो हितम् ॥१२३
ततो देह-परित्यागं कर्तुं समयतस्तदा ।
ततो दंष्ट्राग्रघातेन नरसिंहः महाबलः ॥१२४
शरभो भगवान् भर्गो द्विधा मध्ये चकार ह ।
नरसिंहे द्विधाभूते नरभागेण तस्य च ॥१२५
नर एव समुत्पन्नो दिव्यरूपो महानृषिः ।
तस्य तच्चास्यभागेन नारायण इतिश्रुतः ॥१२६

जहि मा त्व महादेव त्यक्ष्ये कायमसशयम् ।
हिताय सर्वलगता देवानामपि ऋत्विजाम् ॥१३२
मम देहस्रनीकोधैर्यज्ञ यूप प्रकल्प्य च ।
पृथक् पृथक् महाभागा मश्रमित्र श्रु वादिकम् ॥१३३

यह महान् तेज वाले महामुनि जनार्दन हो गये थे। नर और नारायण ये दोनो महती मति वाले इस सृष्टि के हेतु हो गये थे।१२७। इन दोनो का प्रभाव बहुत ही दुर्धर्ष था और शास्त्र म—वेद म और ... मे सब उनका प्रभाव सहन करने के योग्य नहीं था। मत्स्य मूर्ति ... के स्वरूप वाली नौका म उन दोनो को निम्रापित किया था और ... वाराह हरि देव शरण के समीप मे प्राप्त हुए थे। मुझे समस्त ... के हित के सम्पादन करने के लिए वपु का त्याग अवश्य ही ... चाहिए ॥ १२८—१२९ ॥ यह पूर्व म मैंने प्रतिज्ञा की थी इसी ... लिये यह समुद्यम किया जा रहा है। यह समुद्यम भगवान् हरि के ... —शम्भु के द्वारा और ब्रह्मा के द्वारा किया जा रहा है ॥ १३० ॥ ... भली भाँति चिन्तन करके उस समय म परमेश्वर शूकर ने शरभ ... बलवान् देव महादेव से कहा था। १३१। हे महादेव ! आप ... परित्याग कर दो। मैं बिना किसी सशय के इस शरीर का त्याग ... गा यह मेरे शरीर का त्याग समस्त जगतो के और देवो देवता ... त्विजों के हित के सम्पादन करने के ही लिये है। १३२। मेरे देह ... प्रतीको के समूहो से यज्ञ का यूप प्रकल्पित करके हे महाभाग ! पृथक्-पृथक् मासमित्र के सहित स्रुवा आदि की कल्पना की है। १३३।

ततस्ते तान् त्रिभि पुत्रैर्विदध्व जगता हिते ।
कनकेन सुवृत्तेन घोरेण च जगन्मयीम् ॥१३४
यज्ञाद् देवा प्रजाश्चैव यज्ञादन्नान् नियोगिना ।
सर्वं यज्ञान् सदा भावि सर्वं यज्ञमय जगत् ॥१३५
यमिम पृथिवीगर्भमाधत्त मलिनी पुन ।

समुत्पन्न स्वयं देवी चिर सगोपयिष्यति ।।१३६
प्राप्ते काले यदा देवी तदायुष्मान् सुभापते ।
वधस्तस्यातिमारार्ता तर्दैवं हनष्यथ ।।१३७
भारती पृथिवी मग्ना यदाधाः शतयोजनम् ।
शृ गिवराहरूपेण प्रोद्धरिप्ये तदा त्विमाम् ।।१३८
कृतकृत्य तु त काय त्याजयिष्यति ते सुत. ।
या भावी देवसेनानी रुद्रात् षाण्मातुराह्वय. ।।१३९
एव यज्ञवराहे तु भापमाणे महाबले ।
निसृत्य सुमहत्तेजो ज्वालामालासिदीपितम् ।।१४०

इसके अनन्तर तीन पुत्रो के द्वारा वे उनका जगतो के हित के लिये निवध करे । इस जगत् से परिपूर्ण को सुवृत्त—घोर और कनक से रक्षा करो । १३४ । यज्ञ से देव और प्रजा—यज्ञ से अन्य नियोगी यह सभी कुछ यज्ञ से ही सदा होने वाले हैं । यह सब जगत् यज्ञो से परिपूर्ण है । १३५ । यातिनी पृथिवी पुन जिसने इस गर्भ को धारण किया था वह देवी स्वय उस समुत्पन्न पुत्र का भली भाँति रक्षण करेगी । १३६ । जिस समय मे काल प्राप्त होता है उसी समय मे देवी आयुष्मान् बोलती है । उसके वध के विषय मे अब काम से अत्यन्त आर्त्त होती है तभी इसका वध करेगी । १३७ । जिस समय मे मग्न हुई भारती पृथिवी को नीचे की ओर सौ योजन भृङ्गी वराह के रूप से उसी समय मे इसका उद्धार करूंगा । १३८ । तब आपका पुत्र अपने आपके शरीर को कृतकृत्य अर्थात् सफल समझ कर उसका त्याग कर देगा । जो कि आगे होवे देवो की सेना का सेनानी षाण्मा तुरगम वाला रुद्रदेव से समुत्पन्न होगा । १३९ । इस प्रकार से यज्ञ वराह के कहे जाने पर जो कि बलवान् थे एव महान् तेज जो ज्वालाओ की महा मालाओ से दीप्त था निष्पल था । १४० ।

सूर्यकोटिप्रतीकाश वराहवपुपस्तदा ।

शरीर का भेदन करके उसे जल में गिरा दिया था। १४६। उसका प्रथम पतन करके उसी भाँति सुवृत्त—कनक और घोर को कण्ठ भाग म भेदन कर करके हनन कर दिया था। १४७।

त्यक्तप्राणास्तु ते सर्वे पेतुस्तोये महार्णवे।
जले शब्द वितन्वाना कालनलसमत्विष ॥१४८
पतितेषु वराहेषु ब्रह्माविष्णुहरस्तथा।
सृष्ट्यर्थं चिन्तयामासु पुनरेव समागता ॥१४९
हरस्य तु गणा सर्वे तदा भर्ग समागता।
उपनस्तुर्महाभागाश्चतुर्भागेन भाजिता ॥१५०
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि प्रमथा द्विजसत्तमा।
एकैकत्र सहस्राणि भागे षोडश संस्थिता ॥१५१
नानारूपधरा ये वै जटाचन्द्रार्धमण्डिता।
ते सर्वे सकलैश्वर्ययुक्ता ध्यानपरायणा ॥१५२
योगिनो मदमात्सर्यदम्भाहङ्कार वर्जिता।
क्षीणपापा महाभागा शम्भो प्रीतिकराः परा ॥१५३
न ते परिग्रह राग कांक्षन्ति स्म कदाचन।
ससार-विमुखा सर्वे यतयो योगतत्परा ॥१५४

प्राणो के परित्याग कर देने वाले वे सब महार्णव के जल में गिर गये थे। जल मे पात करने के अवसर में घोर ध्वनि का विस्तार करते हुए कालानल के समय कान्ति वाले हो गये थे ॥ १४८ ॥ वाराहों के पतित हो जाने पर ब्रह्मा—विष्णु तथा हर फिर समागत होकर सृष्टि की रचना करने के लिये चिन्तन लगे थे। १४९। उस अवसर पर हर के समस्त गण भर्ग के समीप म समागत हो गये थे। वे महाभाग चार भागों म विभाजित होकर उपस्थित हुए थे। १५०। हे द्विज सत्तमो! वे प्रथम छत्तीस सहस्र थे। वहाँ पर एक भाग मे सोलह सहस्र सस्थित हुए थे। १५१। जो निश्चित रूप से अनेक स्वरूपों के

व्रत वाले थे वे सोलह करोड कहे गये हैं । वे सब सिंह और व्याघ्र आदि के समान रूप वाले थे और अणिमा आदि सिद्धियों के द्वारा संयुत थे । १५७ । अन्य कामुक शम्भु के नर्मम चिव अर्थात् प्रणय विधान के मन्त्री थे जो कि ऐसे कहे गये थे । वे विचित्र स्वरूप वाले आभूषणों से विभूषित थे । १५८ । भगवान् हर के ही समान रूप से वे वृषभध्वज विशद हो रहे थे । तथा वे उमा देवी के तुल्य सुन्दर स्वरूप वाली प्रमदाओं से समागत थी । १५९ । विचित्र माल्यों के आभरणों से युक्त थी तथा हिम स्रक् की गन्ध से मण्डित थी उमा देवी की सहायता से सयत और क्रीडा करते हुए भगवान् शम्भु के पीछे भूषित होती हुई अनुगमन कर रही थी । १६० । शृङ्गार और वेल के आभरण वाले वे आठ करोड गण थे । उनमे अन्य अर्ध नारीश्वर थे जो अर्ध नारीश्वर हर के समीप थे । १६१ ।

ध्यानस्थं प्रविविशन्ते तुल्यरूपा हरस्य ये ।
उमासहायो हि यदा रमते ससुख हर ॥१६२
अर्धनारीशरीरास्तु द्वारपाला भवन्ति ते ।
आकाशमार्गे गच्छन्तमनुगच्छन्ति नित्यश ॥१६३
ध्यानस्थ परिचर्यन्ति सलिलादिभिरीश्वरम् ।
नानाशस्त्रधरा शम्भोर्गणास्ते प्रमथा स्मृता ॥१६४
प्रमथ्नन्ति च युद्धेषु युध्यमानान महाबलान् ।
ते वै महाबला शूरा सख्यया नव कोटय ॥१६५
अपरे गायनास्तालमृदगपणवादिभि ।
नृत्यन्ति वाद्य कुर्वन्ति गायन्ति मधुरस्वरम् ॥१६६
नानारूपधरास्ते वै सख्यया कोटयस्त्रय ।
सततं चानुगच्छन्ति विजरन्त महेश्वरम् ॥१६७
सर्वे मायाविन शूरा सर्वे शास्त्रार्थपारगा ।
सर्वे सर्वज्ञ सर्वज्ञा सर्वे सर्वगा सदा ॥१६८

वराहगणनाशार्थं हिताय जगतां तथा ।
शंकरस्याथ सेवार्थं समुत्पन्ना इमे गणा ॥१७४
वराहस्य गणान् दृष्ट्वा नरसिंह तथा हरिम् ।
स्वयं शरभरूपः सन् ध्यायन्नादं नदाकरोत् ॥१७५

वे सब मुहूर्त्त मात्र में सम्पूर्ण भुवन में जाकर फिर गति के द्वारा पुनः भव को प्राप्त हो जाया करते थे। वे सब महान् बल से युक्त थे तथा अणिमा महिमा आदि आठों प्रकार के ऐश्वर्यों से समन्वित थे। १६६। दूसरे रुद्र नामों वाले जरा और अर्ध चन्द्र से मण्डित थे। वे देवेन्द्र के आदेश से सदा ही स्वर्ग में रहा करते हैं। १७०। उनकी संख्या एक करोड थी और वे सब विशेष बलवान् थे। ये सदा ही हरके गण भगवान् शम्भु की सेवा किया करते हैं। १७१। वे जो महान् पापिष्ठ थे उनको धिम्मित किया करते हैं तथा जो धर्मिष्ठ हैं अर्थात् धर्म का समादर करने वाले हैं उनका पालन किया करते हैं। जो पाशुपत व्रत के धारण करने वाले हैं उनमे ऊपर निरन्तर अनुग्रह किया करते हैं। १७२। जो प्रयत आत्माओं वाले योगी जन हैं उनके विघ्नों का निरन्तर हनन किया करते हैं। ये भगवान् हर के गण जो कि समस्त थे संख्या में छत्तीस करोड थे। १७३। ये गण वाराह के गणों के नाश करने के लिये तथा समस्त जगतो के हित—सम्पादन करने के लिए और भगवान् शङ्कर की सेवा के लिये समुत्पन्न हुए थे। १७४। वराह के गणों को देखकर तथा नरसिंह हरि को अवलोकित करके स्वयं शरभ के स्वरूप वाला होता हुआ और ध्यान करते हुए उस समय में नाद किया था ॥१७५॥

तच्छीनवरादयतो जातास्तत्तेषां बहुरूपता ।
क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धं क्रूरकृत्यैरिमान् गणान् ।
वराहस्य घ्नतेत्येव यत् प्रोक्तं कपर्दिना ॥१७६
अतस्ते क्रूरकर्माणः प्रजाताश्च भयङ्कराः ।

न सदा क्रूरकर्माणि ते कुर्वन्ति महौजस ॥१७७
दृष्टिमात्रस्य ते क्रूरा क्रूरास्ते न तु कार्यत ।
फलं जलं तथा पुष्प पत्र मूल तथैव च ॥१७८
निवेदितानि च भुञ्जन्ति वनपर्वतसानुषु ।
आहृत्यापि च भुञ्जन्ति पत्र मूल पुष्पादिक च यत् ॥१७९
भवेद्भर्गस्य यद्भोग्य तद्भोगास्ते महौजस ।
आमिषाणि च नाश्नन्ति हित्वा चैत्रचतुर्दशीम् ॥१८०
तत्रामिषं हरो भक्ते चतुर्दश्या मधौ सदा ।
तत सर्वे गणास्तत्र भुजते पललान्यपि ॥१८१

उनके शीकरो मे (जल कणों मे) जो उत्पन्न हुए थे इसी कारण से उनके स्वरूप भी बहुत थे। क्रूर दृष्टि से—क्रूरगति से—क्रूर युद्धो से—क्रूर कृत्यों से वराह के इन गणों का हनन करने वाले थे क्योंकि भगवान् कपर्दी (शिव) ने कहा है। १७६। अतएव वे क्रूर कर्मों के करने वाले और भयङ्कर समुत्पन्न हुए थे। वे महान् ओज वाले सदा क्रूर कर्मों को नहीं किया करते हैं। १७७। दृष्टि मात्र से ही वे क्रूर हैं वे कार्यों से क्रूर नहीं थे। वे फल—पुष्प—जल—पत्र तथा मूल को भोग करते हैं। १७८। वनो—पर्वतों की शिखरों मे फलादि जो निवेदित किये जाते हैं उनका ग्रहण करते हैं और आहरण करके भी जो पत्र पुष्पादिक हैं उनका अशन किया करते हैं। १७९। भर्ग का जो भोग होता है उसी भोग वाले वे महान् ओज वाले भी थे। चैत्र की चतुर्दशी को छोड कर वे अमिषों का अशन नहीं किया करते हैं। १८०। वहाँ पर भगवान् हर मधु मे चतुर्दशी मे सदा अमिष (मांस) का अशन किया करते हैं। फिर सब गण भी वहाँ पर अमिषों का उपभोग किया करते है। १८१।

हते वराहस्य गणे भर्गमासाद्य ते गणाः ।
चतुर्भागा स्वय भूत्वा भूतकर्मति वे जगु ।

भूतत्वमभवत्तेषां चतुर्भागवतां तदा ॥१८२
वचनात् पद्मयोनेस्तु भूतग्रामस्ततो मत ।
यो लोकोविदित पूर्वं भूतग्रामश्चतुर्विध ।
यतस्तेभ्योऽधिको यत्तद्भूतग्राम स उच्यते ॥१८३
इति व कथित सर्वं भूता शम्भुगणा यथा ।
यदाहारा यदाकारा यत्कृत्यास्ते महौजस ॥१८४
य इद शृणुयान्नित्यमाख्यान महदद्भुतम् ।
स दीर्घायु सदोत्साही योगयुक्तश्च जायते ॥१८५

वराह के गणों के निहत हो जाने पर वे गण मार्ग के समीप में पहुँच कर स्वय चारो भागों वाले होकर भूत कर्म का गान करते थे। चार भाग वाले उनका भूतत्व उस समय में हो गया था। १८२। भगवान् पद्म योनि के वचन से फिर भूतग्राम माना गया था। जो पूर्व में लोक और वद मे विदित भूतग्राम चार प्रकार का था। क्योंकि यह उनसे भी अधिक था अतएव वह भूतग्राम कहा जाया करता है।१८३। यह सब आपको बतला दिया है जिस तरह म शम्भु के गण भूत हैं। वे जो भी आहार वाले है—जैसे आकार वाले हैं और जो कृत्य करने वाले हैं वे महान् ओज से युक्त हैं। ८४। जो इस महान् अद्भुत आख्यान का नित्य श्रवण किया करता है वह दीर्घ आयु वाला—सदा उत्साह से सम्पन्न और योग से युक्त होता है।१८५।



॥ वराहतनौ यज्ञोत्पत्ति वर्णन ॥

अथ यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
त्रेतात्वमगमन् पुत्रा वराहस्य त्रय त्रय ॥१
आकालिकोऽप्य प्रलय यस्माद् भगवता कृत ।

जनक्षयो महाघोरो वराहेण महात्मना ॥२
कथं वा मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।
कथ पुनरभूत सृष्टि केन चोर्वी समुद्धृता ॥३
ईश्वर शारभ काय त्यक्तवान वा कथ गुरो ।
कीदृक् प्रवृद्ध तद्देह तन्नो वद महामते ॥४
एतेषा द्विजशार्दूल भवान् प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
तन्नोऽद्य श्रोष्यमाणाना कथयस्व महामते ॥५
शृणुध्व द्विजशार्दूला यन्पृष्टोऽहमिहाद्भुतम् ।
शृण्वन्त्ववहिता सर्वे सर्ववेदफलप्रदम् ॥६
यज्ञेषु देवास्तुप्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजा ॥७

ऋषियो ने कहा—यज्ञ वराह का देह यज्ञत्व कैसे प्राप्त हुआ था । और वराह के तीन पुत्र होनात्व कैसे प्राप्त हुए थे ? ॥ १ ॥ यह आकालिक प्रलय भगवान् ने कैसे किया था और महात्मा वराह ने महान् घोर यह जनो का क्षय कैसे किया था ॥ २ ॥ जिस प्रकार से भगवान् शार्ङ्गधारी ने मत्स्य के स्वरूप के द्वारा वेदो का त्राण किया था अर्थात् वेदो की सुरक्षा करके उनको सुरक्षित रक्खा था ? फिर दुबारा यह सृष्टि की रचना कैसे हुई थी और इस भूमि को किसने समुद्धृत किया था ? ॥ ३ ॥ हे गुरुदेव ! ईश्वर ने शरभ का देह कैसे त्याग दिया था ? वह देह कैसे प्रवृत्त हुआ था—यह सब हे महामते ! हमको बतलाइये ॥ ४ ॥ हे द्विज शार्दूल ! इन सबका हाल आपने प्रत्यक्ष रूप से देखा था । हे महती मति वाले ! आज हम सब इसके श्रवण करने वाले हो रहे हैं । अतएव हमको आप बतलाने की कृपा कीजिए ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विज शार्दूलो ! जो मैं यहाँ पर एक अद्भुत सृजन किया था उसको सुनिए । आप सब परम सावधान हो जाइये और इस समस्त वेदो के फल को प्रदान करने वाले

को मुनिए ॥ ६ ॥ यज्ञों में देवगण सन्तुष्ट होते हैं। और यज्ञ में सभी कुछ प्रतिष्ठित है। यज्ञ के द्वारा ही पृथ्वी धारण की जाती है और यज्ञ ही प्रजा का वरण किया करता है ॥ ७ ॥

अन्नेन भूता जीवन्ति पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
पर्जन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमयं ततः ॥८
स यज्ञोऽभूद्वराहस्य कायाच्छम्भुविदारितात् ।
यथाह कथये तद्वः शृण्वन्त्ववहिता द्विजाः ॥९
विदारिते वराहस्य काये भर्गेण तत्क्षणात् ।
ब्रह्मविष्णुशिवा देवाः सर्वैश्च प्रमथैः सह ॥१०
निन्युर्जलात् समुद्धृत्य तच्छरीरं नभः प्रति ।
तद्भित्तु शरीरं तत् विष्णोश्चक्रेण खण्डशः ॥११
तस्यांगसन्धयो यज्ञा जाताश्च वै पृथक् पृथक् ।
यस्मादंगाच्च ये जातास्तच्छृण्वन्तु महर्षयः ॥१२
भ्रूनासामन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वरः ।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत ॥१३
चक्षुर्भ्रुवो सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो व्यजायत ।
जातः पौनर्भवष्टोमस्तस्य पोत्रौष्ठसन्धितः ॥१४

अन्न के द्वारा प्राणी जीवित रहा करते हैं और उस अन्न की उत्पत्ति मेघों के द्वारा होती है। वे मेघ यज्ञों से हुआ करते हैं। इसलिये यह सभी कुछ यज्ञ से ही परिपूर्ण है। ८। वह यज्ञ भगवान् शम्भु के द्वारा विदीर्ण किये हुये वराह के शरीर से ही हुआ था। हे द्विजो ! जैसा भी मैं आपको कहता हूँ उसको आप लोग परम सावधान होकर श्रवण कीजिए। ९। भर्ग के द्वारा वराह के शरीर के विदारित होने पर उसी क्षण में समस्त प्रमथों के सहित ब्रह्मा—विष्णु और शिव देवगण ने जल से समुद्धृत करके उस शरीर को वे आकाश के प्रति ले गये थे। उसके भेदन करने वाले भगवान् विष्णु ने चक्र के द्वारा वह शरीर

खण्ड-खण्ड कर दिया गया था। १०। ११। उनके अङ्ग की सन्धियाँ जो थीं वे यज्ञ पृथक्-पृथक् समुत्पन्न हुये थे। हे महर्षियो! जिस अङ्ग में जो समुत्पन्न हुये थे उनका अब आप लोग श्रवण कीजिये। १२। भ्रूमध्य अर्थात् भौंह और नासिका की सन्धि से महान् अध्वर अर्थात् यज्ञ ज्योतिष्टोम नाम वाला उत्पन्न हुआ था। ठोड़ी—कान की सन्धि से वह्निष्टोम नामक यज्ञ समुद्भूत हुआ था। १३। चक्षु और भौंहों की सन्धि के द्वारा व्रात्यष्टोम नाम वाला यज्ञ उत्पन्न हुआ था। उसके पोथ और ओंठों की सन्धि से पौनर्भवष्टोम नाम वाला यज्ञ समुत्पन्न हुआ था। १४।

वृद्धष्टोमबृहत्स्तोमौ जिह्वामूलादजायताम् ।
अतिरात्रं सर्वैराजमधोजिह्वान्तरादभूत् ॥१५
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥१६
स्नानं तर्पणपर्यंतं नित्ययज्ञाश्च सर्वशः ।
कण्ठमध्ये समुत्पन्ना जिह्वातो विषयस्तथा ॥१७
वाजिमेधं महामेधौ नरमेधस्तथैव च ।
प्राणिहिंसाकरा यज्ञ्ये ते जाता पादसन्धितः ॥१८
राजसूयोऽर्यकारी च वाजपेयस्तथैव च ।
पृष्ठमध्यो समुत्पन्ना ग्रहयज्ञास्तथैव च ॥१९
प्रतिष्ठोत्सर्गयज्ञाश्च दानश्राद्धादयस्तथा ।
हृत्सन्धितः समुत्पन्ना सावित्रीयज्ञ एव च ॥२०
सर्वे नास्कारिका यज्ञा प्रायश्चित्तकराश्च ये ।
ते मेढ्सन्धितो जाता यज्ञास्तस्य महात्मनः ॥२१

जिह्वा के मूल से वृद्धष्टोम और बृहत्स्तोम दो यज्ञ उत्पन्न हुये थे। नीचे जिह्वा के अन्तर्भाग से अतिरात्र और सर्वैराज नाम वाले यज्ञों ने जन्म ग्रहण किया था। १५। अध्यापन, ब्रह्म यज्ञ—पितृ यज्ञ—तर्पण—होम—दैव बलि—भौत—नृयज्ञ—अतिथि पूजन स्नान

और तर्पण पर्यन्त नित्य यज्ञ सर्व कण्ठ सन्धि मे समुत्पन्न हुए थे तथा समस्त विधियाँ जिह्वा मे उत्पन्न हुई थी । १६ । १७ । वाजिमेध—महामेध—तथा नरमेध ये तथा जो अन्य हिंसा के करने वाला यज्ञ हैं वे सब पादो की सन्धि से समुत्पन्न हुये थे । १८ । राज सूय यज्ञ अर्थ कारी तथा वाजपेय यज्ञ पृष्ठ की सन्धि म समुद्भूत हुय थे और उसी भाँति जा ग्रह यज्ञ थे वे भी उत्पन्न हुए थे । १९ । प्रतिष्ठा सर्ग यज्ञ तथा दान श्रद्धा आदि यज्ञ हृदय की सन्धि से पैदा हुये थे इसी तरह से सावित्री यज्ञ भी उत्पन्न हुआ था ॥ २० ॥ समस्त सासारिक अर्थात् सस्कार करने वाले अथवा सस्कारो से सम्बन्ध रखने वाला यज्ञ और जो यज्ञ प्रायश्चित करने वाले है (पापो की शुद्धि के लिये जो भी व्रत—दान—होमादि किये जाते है वे प्रायश्चित कहे जाते है) वे सब भेढ़ू की सन्धि से उत्पन्न हुये थे जो कि उन महात्मा के मेढ़ूकी सन्धि थी ।२१।

रक्ष सत्र सर्पसत्र सर्वचैवाभिचारिकम् ।
गोमेधो वृक्षयागश्च खुरेभ्यो ह्यभवन्निमे ॥२२
मायेष्टि परमेष्टिश्च गोष्पतिर्भोगसम्भव ।
लागुलसन्धौ सजाता अग्निष्टोमस्तथैव च ॥२३
नैमित्तिकाश्च ये यज्ञा सक्रान्त्यादौ प्रकीर्तिता ।
लागूलसन्धौ ते जातास्तथा द्वादशवार्षिकम् ॥२४
तीर्थ प्रयोगसामोज यज्ञ सङ्कर्षणस्तथा ।
आर्कमाथर्वणश्चैव नाडीसन्धे समुद्गता ॥२५
ऋचोत्कर्ष क्षेत्रयज्ञा पचसर्गातियोजन ।
लिगसस्यानहेम्वयज्ञा जाताश्च जानूनि ॥२६
एवमष्टाधिक जात सहस्र द्विजसत्तमा ।
यज्ञाना सतत लोका यैर्भाव्यन्तेऽधुनापि च ॥२७
स्रुगस्य पोत्रात् सजाता नासिकाया स्रुचोऽभवत् ।
अन्ये स्रुवस्रुवभेदा ये ते जाता पोत्रनासयो ॥२८

रक्ष सत्र अर्थात् राक्षस यज्ञ—सर्प सत्र—और सभी जो भी अभिचारिक यज्ञ हैं अर्थात् अन्य प्राणियों के मारणात्मक हैं तथा गोमेध एवं वृषयाग यह सभी उनके खुरों से हुए थे ॥ २२ ॥ मायाा—इष्टि, परमेष्टि—गोष्पति—भाग सम्भव तथा अग्निष्टोम यज्ञ लांगुल की सन्धि में समुद्भूत हुए थे ॥ २३ ॥ जो नैमित्तिक यज्ञ हैं जिनको कि सङ्क्रान्ति आदि पर्वों पर कीर्तित किया गया है व और द्वादश वार्षिक सभी लांगुल सन्धि में समुत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ चौथ प्रयोग सामो—सद्धपण यज्ञ—आर्क—प्राक्‍पण यज्ञ ये समस्त नाडियों की सन्धि में उत्पन्न हुए थे।२५। सूचोत्कर्ष—श्येन यज्ञ—पञ्चसर्गा तियोजन—लिङ्ग सस्थान हे रम्य यज्ञ—ये सब जानु में समुद्गत हुए थे ॥ २६ ॥ हे द्विज सत्तमो ! इस रीति से एक सहस्र आठ समुद्भूत हुए थे। निरन्तर यज्ञों के लोक जिनके द्वारा इस समय में भी विभावित किये जाते हैं उत्पन्न हुए थे। ॥ २७ ॥ इसके पोत्र से स्रुक् उत्पन्न हुई थी और नासिका से स्रुव हुआ था। अन्य जो भी स्रुक् और स्रुव के भेद प्रभेद हैं वे पोत्र और नासिका से समुद्भूत हुए थे ॥२८॥

ग्रीवाभागेण तस्याभूत् प्राग्वशो मुनिसत्तमाः ।
इष्टापूर्तिर्यजुर्धर्मो जाता श्रवणरन्ध्रतः ॥२९
दंष्ट्राभ्यां ह्यभवन् यूपाः कुशा रोमाणि चाभवन् ।
उद्गाता च तथाध्वर्यु होंता शामित्रमेव च ॥३०
अग्रदक्षिणवामाग पश्चात् पादेषु सगता ।
पुरोडाशाः सचरवो जाता मस्तिष्कसचयात् ॥३१
वसू नत्रद्वयाज्जाता यज्ञकेतुस्तथा खुरात् ।
मध्यभागोऽभवद्वेदी मेढ्रात् कुण्डमजायत ॥३२
रेतोभागात्तथैवाज्य स्वधामन्त्राः समुद्गताः ।
यज्ञालय पृष्ठभागाद्हृत्पद्माद्ययज्ञ एव च ।
तदात्मा यज्ञपुरुषो मु जा कथात्मभुद्गता ॥३३

एव यावन्ति यज्ञाना भाण्डानि च हवींषि च ।
तानि यज्ञवराहस्य शरीरादेव चाभवन् ॥३४
एव यज्ञवराहस्य शरीर यज्ञतामगात् ।
यज्ञरूपेण सकलमाप्यायितुमिद जगत् ॥३५

हे मुनि सत्तमा ! उसके ग्रीवा के भाग म प्राग्वश समुद्भव हुआ था। इष्टा पूर्त्ति—यजु धर्म श्रवण के छिद्र स उत्पन्न हुए थे। । २६ । दाढों से यूप—कुशा—और रोम समुत्पन्न हुये थे। उद्गाता—अध्वर्यु—होता—और शामित्र न जन्म ग्रहण किया था । ३० । ये अग्र—दक्षिण—वाम अङ्ग—पश्चात् पादो में सङ्गत हैं । पुरोडाश चरु के सहित मस्तिष्क क सञ्चय से समुद्गत हुए थे । ३१ । कर्मं दोनों नेत्रों से उत्पन्न हुई थी तथा खुर से यज्ञ केतु न जन्म ग्रहण किया था। मध्य भाग से वे ही हुई थी । और मेढ़्र से कुण्ड का उद्भव हुआ था। ।३२। रेतोभाग से आज्य और स्वधा मन्त्र समुद्गत हुए थे श्रय का आलय पृष्ठ भाग स और हृदय कमल से यज्ञ समुत्पन्न हुआ था। उसकी आत्मा यज्ञ पुरुष है—उसकी भुजायें वश से समुद्भूत हुई थी । ३३ । इसी प्रकार से जितने भी यज्ञों क भाण्ड हैं और हवियाँ है ये सभी यज्ञ वराह के ही शरीर से हुए थे। ३४। इस रीति से उन यज्ञ वाराह का शरीर यज्ञता को प्राप्त हुआ था। यज्ञ के स्वरूप से यह सम्पूर्ण जगत् को आप्यायित करने के लिये था ॥३५॥

एव विधाय यज्ञ तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
सुवृत्त कनक घोरमासेदुर्यत्नतत्परा ॥३६
ततस्तेषा शरीराणि पिण्डीकृत्य पृथक् पृथक् ।
त्रिदेवास्त्रिशरीराणि व्यधमन्मुखवायुभि ॥३७
सुवृत्तस्य शरीर तु व्यधमन्मुखवायुना ।
स्वयमेव जगत् स्रष्टा दक्षिणाग्निस्ततोऽभवत् ॥३८
कनकस्य शरीर तु ध्मापयामास केशव ।

ततोऽभूद्गार्हपत्याग्नि पञ्चवैतानभोजन ॥३९
धारस्य तु वपु शम्भुर्भ्रामयामास वै स्वयम् ।
तत आहवनीयाऽग्निस्तत समजायत ॥४०

ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ने इस प्रकार मे यज्ञ का ज्ञान व फिर मन्ना मे तत्पर होते हुए सुवृत्त—कनक और घोर के समीप मे प्राप्त हुए थे । ३६ । इसके अनन्तर उनके अंगारों का पिण्ड बनाकर पृथक् पृथक् तीनो देवो ने तीन शरीरो का मुख की वायु मे अर्थात् फूंक लगा कर विधिपूर्वक मे धमन किया था । स्वय ही जगत् के सृजन करने वाले फिर दक्षिणाग्नि हो गये थे । ३७ । ३८ । भगवान् केशव कनक के शरीर का धमन किया था । फिर पञ्च वैतान के भोजन करने वाला गार्हपत्याग्नि हुआ था । ३९ । घोर का शरीर था उसका भगवान् शम्भु ने स्वय ही धमन किया था । फिर आहवनीय अग्नि उसी क्षण मे समुज्ज्वल हो गया था । ४० ।

एतस्मिन्निभिजगद्व्याप्त त्रिमूल सकल जगत् ।
एतद् यत्र त्रय नित्य तिष्ठति द्विजसत्तमा ॥४१
समस्ता देवतास्तत्र वसन्त्यनुचरै सह ।
एतद्भद्रपद नित्यमेतदेव तथात्मकम् ॥४२
एतत्त्रयीविधिस्थानमेतत् पुण्यकर परम् ।
यस्मिन् जनपदे ह्येते हूयन्ते वह्नयस्त्रय ॥४३
तस्मिन् जनपदे नित्य चतुर्वर्गो विवर्धते ।
एतद्व कथित सर्वं यत् पृष्टोऽह द्विजोत्तमा ॥४४
यथा यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
यथा च तस्य पुत्राणा देहतो वह्नयोऽभवन् ॥४५

इन तीनो मे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया था और यह समस्त जगत् तीन मूलो वाला है । हे द्विज श्रेष्ठो ! जहाँ पर ये तीनो नित्य ही स्थित रहते हैं वहा पर समस्त देवगण अपने अनुचरो के साथ निवास

किया करते हैं। यह तीनो का स्वरूप नित्य ही कल्याण का स्थान है और यही तीनो का स्वरूप है ॥ ४१—४२ ॥ यह त्रयी की विधि का स्थान है और यह परम पुण्य का करने वाला है। जिस जनपद में ये तीनो वह्नियों का हवन किया जाता है। उस जनपद में नित्य ही चतुर्वर्ग विद्यमान रहा करता है चारो का वर्ग धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष होते हैं। हे द्विज श्रेष्ठो ! जो मुझसे आपने पूछा है वह मैंने सब ही आपको बतला दिया है जिस प्रकार से यज्ञ वाराह का देह यज्ञत्व को प्राप्त हुआ था और जिस तरह से उसके पुत्रों के देह से वह्नियाँ हुई थी। ४३—४५।

— × —

॥ मत्स्य रूप कथन ॥

आकालिकोऽय प्रलयो यतो भगवता कृत ।
तच्छृण्वन्तु महाभागा वाराह लोकसंश्रयम् ॥१
यथा वा मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।
तदह सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपाप प्रणाशनम् ॥२
पुरा महामुनि सिद्ध कपिलो विष्णुरीश्वर ।
साक्षात् स्वय हरिर्योऽसौ सिद्धानामुत्तमो मुनि ॥३
ध्यायत सिद्धमित्येव सर्वं जगदिद स्वत ।
यतो जातो हरे कायात् कपिलस्तेन स स्मृत. ॥४
स एकदा पुरा भूत्वा मनो स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
स्वायम्भुव मनु वाक्य मुनिवर्योऽब्रवीदिदम् ॥५
स्वायम्भुव मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मरूप महामते ।
मर्भवमीप्सितार्थं त्व देहि प्रार्थयतोऽधुना ॥६
जगत्सर्वं तवैवेद त्वया च परिपालितम् ।
त्वया सर्वं जगत् सृष्ट त्वमेव जगता पति ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जिस कारण से भगवान ने आकार लिए यह प्रलय किया था हे महाभागो ! उस वाराह लोक नक्षय को आप श्रवण कीजिए ॥ १ ॥ अथवा जिस तरह से भगवान् शार्ङ्गधारी ने मत्स्य के स्वरूप के द्वारा वेदों का नाम अर्थात् रक्षा की थी वह मैं सब पापों के विनाश करने वाला आख्यान आप लोगों को बतलाऊँगा ॥ २ ॥ प्राचीन समय में ईश्वर भगवान् विष्णु महामुनि सिद्ध कपिल हुए थे जो स्वयं साक्षात् हरि थे और सिद्धों में उत्तम मुनि हुए थे ॥ ३ ॥ इस प्रकार से सिद्ध का ध्यान करते हुए यह सम्पूर्ण जगत् स्वयं ही समुत्पन्न हुआ था क्योंकि यह भगवान हरि के शरीर से समुद्गत हुआ था इसी कारण से वह कपिल कहे गये हैं । ४ । वह एक बार स्वायम्भुव मनु के अन्तर में होकर मुनि श्रेष्ठ इनमें स्वायम्भुव मनु से यह वाक्य कहा था ॥ ५ ॥ कपिल देव ने कहा—हे स्वायम्भुव ! आप तो मुनियों में बहुत ही अधिक श्रेष्ठ हैं । हे महामते ! आप तो ब्रह्मा के ही रूप से समान हैं इस समय में आप प्रार्थना करने वाले मेरे ही अभीष्ट को मुझे प्रदान करिए ॥ ६ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपका ही है और आपके द्वारा ही परिपालित है । आपने ही इस सम्पूर्ण जगत् की रचना की है और आप ही इन जगतों के स्वामी हैं ।७।

स्वर्गे पृथिव्यां पाताले देवमानुषजन्तुषु ।
त्वं प्रभुर्वरदो गोप्ता त्वमेवैकः सनातनः ॥८
त्वं वै धाता विधाता च त्वं हि सर्वेश्वरेश्वरः ।
त्वयि प्रतिष्ठितं सर्वं सततं भुवनत्रयम् ॥९
तत्पश्यतो तवैसम प्रतिभास्यति सानुगम् ।
यायत्कारणतत्त्वौघ-मण्डितानि जगन्ति वै ॥१०
तन्मे देहि रह स्थानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
पुण्यं पापहरं रम्यं ज्ञानप्रभवमुत्तमम् ॥११
अहं हि सम्भूतानां भूत्वा प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
उद्धरिष्ये जगज्जातं निमायं ज्ञानदीपिकाम् ॥१२

अज्ञानसागरे मग्नमधुना सकलं जगत् ।
ज्ञानप्लव प्रदायाहं तारयिष्ये जगत्त्रयम् ॥१३
एतस्मिन्मां भवान् सम्यगुपपन्नमिहेच्छति ।
त्वन्नो नाथश्च पूज्यश्च पालकश्च जगत्प्रभो ॥१४
इत्येवमुक्त स मनु: कपिलेन महात्मना ।
प्रत्युवाच महात्मानं कपिलं संशितव्रतम् ॥१५

स्वर्ग में—पृथिवी में और पाताल में—देव—मनुष्य और जन्तुओं में आप ही स्वामी हैं—वरदान देने वाले हैं—रक्षा करने वाले हैं और आप ही एक सनातन है अर्थात् सर्वदा से चले आने वाले हैं ।८। आप ही धाता—विधाता है और आप ही सब ईश्वरों के ईश्वर हैं। आपमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है जो कि यह तीनों भुवन हैं वे निरन्तर आप ही में स्थित रहा करते हैं ॥ ९ ॥ तपश्चर्या करते हुए आपके सम यह अनुग के प्रति गमन करेगा । निश्चय ही जगत् कार्य-कारण के तत्वों के ओघों के सहित है ॥ १० ॥ इस कारण से आप कृपा करके एकान्त स्थान प्रदान करिए जो तीनों लोकों में महान् दुर्लभ होवे ॥ ११ ॥ मैं समस्त प्राणियों में होकर प्रत्यक्ष दर्शी हूँ । मैं ज्ञानरूपी दीपका का निर्माण करके इस जगद् जात का अर्थात् पूरे जगत् का उद्धार करूँगा ॥१२॥ इस समय में अज्ञान रूपी सागर में मग्न इस सम्पूर्ण जगत् को ज्ञानरूपी प्लव अर्थात् सन्तरण का साधन प्रदान करके मैं तीनों जगतों का तारण करूँगा ॥ १३ ॥ इसमें यहाँ पर आप मुझको सम्यक् उपपन्न चाहते हैं । हे प्रभो ! आप हमारे नाथ है—पूजा के योग्य हैं और जगत् के पालक हैं ॥१४॥ महात्मा कपिल के द्वारा इस रीति में कहे गये उन मनु ने फिर उन संशित व्रतों वाले महात्मा कपिल को उत्तर दिया था ॥१५॥

यदि त्वयाखिलजगद्धितार्थं ज्ञानदीपिकाम् ।
चिकीर्षुणा यतः कार्यं किं स्थानार्थनया तव ॥१६

हिरण्यगर्भ सुमहत् तपस्तेपे पुराद्भुतम् ।
स मे ययाचे तपसे स्थानं कस्मै न च द्विज ॥१७
शम्भु सम्भोगरहितो देवमानेन वत्सरान् ।
अयुतानि तपस्तेपे सोऽपि स्थानं न चैक्षत ॥१८
देवेन्द्रो वीतिहोत्रश्च शमनो रक्षसां पतिः ।
याद पतिर्मातरिश्वा धनाध्यक्षस्तथैव च ॥१९
एते तेपुस्तपस्तीव्रं दिक्पालत्वमभीप्सवः ।
स्थानं न मार्गयामासु किंचनापि महामुने ॥२०
देवागाराणि तीर्थानि क्षेत्राणि सरितस्तथा ।
बहूनि पुण्यभाञ्ज्यत्र तिष्ठन्ति कपिञ्जलिनो ॥२१
तेषामेकतमं त्वं वेदासाद्य कुरुष्व तपः ।
स्थानं ग्रहात्स्तप सिद्धिर्न भविष्यति तत्र किम् ॥२२
मत्तः स्थानार्थिना तावत् केवलं ते विकत्थनम् ।
अयं विकत्थनो धर्मो युज्यते न तपस्विनाम् ॥२३

मनु ने कहा—यदि आप समस्त जगत् की भलाई करने के लिए ज्ञान दीपिका के करने की इच्छा वाले हैं तो फिर आपको इस स्थान की प्रार्थना से क्या करना है ? ॥ १६ ॥ पहिले हिरण्य गर्भ ने सुमहान् अद्भुत तप का तपन किया था जो बहुत ही अद्भुत स्वरूप वाला था। हे द्विज ! उसने मुझसे किसी भी स्थान के लिये याचना नहीं की थी जहां पर तपश्चर्या की जावेगी ॥ १७ ॥ भगवान् शम्भु तो सम्भोग से सर्वथा शून्य हैं उन्होंने देवों के मान से वर्षों तक अर्थात् दश हजार वर्षों तक तपश्चर्या की थी किन्तु उनने भी स्थान की कभी इच्छा नहीं की था ॥ १८ ॥ देवेन्द्र—वीतिहोत्र—शमन—राक्षसों का स्वामी—यादवों के पति—मातरिश्वा तथा धनाध्यक्ष कुबेर इन सबने उग्र तीव्रतम तप किया था जो दिक्पाल के पद की इच्छा रखने वाले थे अर्थात् दिक्पालों के पद की प्राप्ति के ही लिये इन सबने तपस्या की थी। हे महामुने !

उन्होने भी किसी भी स्थान के अनुसन्धान करने की इच्छा नहीं की थी ॥ १६—२० ॥ हे कपिल ! देवों के आलय—तीर्थ स्थल—क्षेत्र तथा पवित्र सरिताएँ बहुत से पुण्य परिपूर्ण स्थान इस भूमि मे स्थित हैं। उनमें से आप किसी भी एक स्थान की प्राप्ति करके तपश्चर्या करते है। हे ब्रह्मन् ! क्या वहाँ पर तपश्चर्या की सिद्धि नही होगी फिर मुझ मे किसी भी स्थान की प्रार्थना करना केवल आपका विकत्थन ही है। यह ऐसा विकत्थन करना तपस्वियो का धर्म युक्त नहीं होता है। २१—२३।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मनो स्वायंभुवस्य तु ।
चकोप कपिल सिद्ध प्रोवाच च तदा मनुम् ॥२४
त्वयि विश्रम्भमाधाय तपस सिद्धतेऽचिरात ।
स्थान मया प्रार्थित ते नन्मा क्षिपसि हेतुभि ॥२५
अनेनात्युग्रवचसा तवैवाह न चक्षमे ।
स्वय त्रिभुवनाध्यक्ष इति ते गर्व ईदृश ॥२६
अक्षम्य ते वचो मेऽद्य प्रार्थनाया विकत्थनम् ।'
यत त्व वदसि तस्य त्व फलमेतदवाप्नुहि ॥२७
इद त्रिभुवन सर्व सदेवासुरमानुषम ।
हलप्रहतविध्वस्तमचिरेण भविष्यति ॥२८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—स्वयम्भुव मनु के इस वचन का श्रवण करके सिद्ध कपिल बहुत अधिक कुपित हो गये थे और उस समय उन्होंने मनु से कहा । २४ । कपिलदेव बोले—आप मे विश्वास करके तपस्या की थी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने के ही लिये मैंने आपसे स्थान की प्रार्थना की थी किन्तु आप तो बहुत से हेतुओ के द्वारा मेरे ही ऊपर आक्षेप कर रहे हैं ॥ २५ ॥ आपके इस अत्यन्त उग्र वचन को मैं सहन करने में असमर्थ हैं। आप स्वय तीनों भुवनो के अध्यक्ष हैं—यही आपका गर्व है ॥ २६ ॥ आज मुझे आपका यह वचन क्षमा करने के योग्य

नहीं है कि आप मेरी की हुई प्रार्थना का निकृत्य न कर रहे हैं। ऐसा जो आप कहते है उसका यह फल आप प्राप्त करिए ॥ २७ ॥ यह तीनो भुवन जिनमें देव-असुर और मानव निवास किया करते हैं हत-प्रहत और विध्वस्त बहुत ही शीघ्र हो जायगा ॥२८॥

येनेयमुद्धृता पृथ्वी येन वा स्थापिता पुन ।
यो वास्या अन्नकर्ता स्याद्यो वास्या परिरक्षक ॥२६
त एव सर्वे हिंसन्तु सकल सचराचरम् ।
नचिराद्द्रक्ष्यसि मनोजलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
हृतप्रहनविध्वस्त तव गर्वविशातनम् ॥३०
एवमुक्त्वा मुनीन्द्रऽसौ कपिलस्तपसा निधि ।
अन्तर्दधे जगामापि तदा ब्रह्मसदो मुनि ॥३१
कपिलस्य वच श्रुत्वा विवण्णवदनोमनु ।
भावीति प्रनिपद्याशु मनुर्नोवाच किंचन ॥३२
तत स्वायम्भुवो धीमान्तपसे धृतमानस ।
हिताय सर्वजगता दिद्दशुर्गरुडध्वजम् ॥३३
विशाला बदरी यानो गगाद्वारान्निक खलु ।
तत्र गत्वा अगद्धर्तो मनु स्वायम्भुव स्वयम् ।
ददर्श बदरी तत्र पुण्या पापप्रणाशिनीम् ॥३४
सदा फलवती नित्य मृदुशाद्वलमजरीम् ।
सुच्छाया मसृणा शीर्णशुष्कपत्रविवर्जिताम् ॥३५

जिसने इस पृथ्वी का उद्धार किया था अथवा जिसके द्वारा यह पुन स्थापित की गयी थी—जो इसका अन्नकर्त्ता है अथवा जो इसकी परिरक्षा करने वाला है व ही सब इस सम्पूर्ण चराचर की हिंसा करें हे मनुदेव ! आप शीघ्र ही इन तीनो भुवनो को जल से पूर्ण देखेंगे। आपके गर्व का विशातन यह सब हत—प्रहत और विध्वस्त हो जायगा। २६—३०। तपो की निधि मुनीन्द्र कपिलदेव ने यह वचन कह कर

वहीं अन्तर्धान होगये थे और फिर वे मुनि उसी समय ब्रह्माजी के स्थान को चले गये थे । ३१ । कपिलदेव के इस वचन को सुनकर मनु का मुख विषाद से युक्त हो गया था । यह होनहार है—ऐसा समझ कर उन मनु ने कुछ भी नहीं कहा था ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर परम बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनु ने तपस्या करने के लिये ही मन मे धारणा की थी । वे समस्त जगतो की भलाई के लिये भगवान् गरुडध्वज के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा वाले हुए थे । ३३ । वे गङ्गा द्वार के समीप मे परम विशाल बदरी को गमन कर गये थे । वहाँ पहुँच कर जगत् के धर्त्ता स्वायम्भुव मनु ने स्वय ही पापो के विनाश करने वाली पुण्यतया बदरी का वहाँ पर दर्शन किया था । ३४ । जो सदा फलो वाली थी और नित्य ही कोमल शाद्वल की मञ्जरी से समन्वित थी—जो सुन्दर छाया वाली—सवण और सूखे हुए स्कन्धो से रहित थी । ३५ ।

गगातोयौघसंसिक्त-शिखामूलान्तराखिलाम् ।
उपास्यमाना सतत नानामुनितपोधनैः ॥३६
तत्स्थान सर्वतो भद्र नानाश्रमगणान्वितम् ।
फल्लारविन्दसलिल रमणीय यशप्रदम् ॥३७
प्रविश्य तपसे सन्नमकरोल्लोकभावन ।
स भूत्वा नियताहार परमेण समाधिना ॥३८
आराधयामास हरि जगत्कारणकारणम् ।
सर्वेषां जगता नाथ नीलमेघाजनप्रभम् ॥३९
शंखचक्रगदापद्मधर कमललोचनम् ।
पीताम्बरधर देव गरुडोपरिसंस्थितम् ॥४०
जगत्स्रय सोमनाथ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ।
जगद्बीजं सत्त्वाप सत्त्वमिरम प्रभुम् ॥४१
सर्वस्थानिलमाधार नारायणमज विभुम् ।
स्थूलेनसूक्ष्म मन्त्र सर्ववेदमय मा ॥४२

वह गङ्गा के जल की राशि से सिक्त शिखा मूल और सम्पूर्ण मध्य भाग से समन्वित थी—जो निरन्तर अनेक मुनियों और तपस्वियों के द्वारा उपासना की गई थी ॥ ३६ ॥ वह स्थान सभी प्रकार से परम शुभ था और नाना मृगों के समुदाय से संयुत था जिसके जल में विकसित कमल थे—वह परमाधिक रमणीय और वृषप्रद था। ३७। उस स्थान में प्रवेश करके लोकों के भावन करने वाले मनि ने तपश्चर्या करने के लिये यत्न किया था। वे वहाँ पर नियत आहार वाले परम समाधि से संयुत हो गये थे ॥ ३८ ॥ वहाँ पर उन्होंने भगवान् हरि की समाराधना की थी जो जगत् के कारण के भी कारण हैं तथा समस्त जगतों के नाथ हैं और नीले मेघ तथा अञ्जन की प्रभा के समान प्रभा से युक्त थे। ३९। मनु ने जिस भगवान् के स्वरूप का ध्यान किया था उसी का वर्णन किया जाता है—वे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाले हैं—कमल के सदृश लोचनों से युक्त हैं—पीत वर्ण के वस्त्र के धारण करने वाले हैं और जो देव शय्या के ऊपर विराजमान हैं। । ४०। जो जगत् से परिपूर्ण हैं—लोकों के नाथ हैं तथा व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले हैं—जो इस जगत् के बीज हैं और सहस्र नेत्रों वाले तथा सहस्र शिरों से समन्वित प्रभु हैं—जो सब में व्यापी—सबके आधार—अज—विभु और नारायण हैं। मनु ने सर्व वेदों में परिपूर्ण इस परम मन्त्र का जाप किया था। ४१। ४२।

हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥४३
इति जप्य प्रजपतो मनो स्वायम्भुवस्य तु।
प्रससाद जगन्नाथः केशवो नचिरादथ ॥४४
ततः क्षुद्रझषो भूत्वा दूर्वादलसमप्रभः।
कर्पूरकलिकायुग्म-तुल्यनेत्रयुगोज्ज्वलः ॥४५
तपस्यन्तं महात्मानं मनुं स्वायम्भुवं मुनिम्।

आमसाद तदा क्षुद्रमत्स्यरूपी जनार्दनः ॥४६
उवाच त महात्मान मनु स्वायम्भुवं तदा ।
मुसन्त्रस्त स कारुण्ययुक्त भीतिसगद्गदम् ॥४७
तपोनिधे महाभाग भीत मा त्रातुमर्हसि ।
नित्यमुद्वेजित मत्स्यैर्विशालैर्भक्षितु प्रति ॥४८
प्रत्यह मा महाभाग मीना धावन्ति भक्षितुम् ।
समन्ततोऽधिकाहन्तु त्व नाथ गोपितु क्षम. ॥४९

उस मन्त्र का अर्थ यह है—हिरण्य गर्भ पुरुष—प्रधान अव्यक्त रूप वाले—शुद्ध ज्ञान के स्वरूप वाले भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है । ४३ । इस प्रकार के मन्त्र का जाप करने वाले स्वायम्भुव मनु के ऊपर जगत् के स्वामी भगवान् केशव शीघ्र ही प्रसन्न हो गए थे । ४४ । अब जिस रूप से भगवान् ने मनु को दर्शन दिया था उसका वर्णन किया जाता है—फिर एक क्षुद्र झप (मत्स्य) होकर वे सामने प्राप्त हुए थे जो दूर्वादल के समान प्रभा से युक्त थे—जो कर्पूर कलिका के जोड़े के तुल्य नेत्रों के युगल से परम उज्ज्वल थे । ४५ । उस समय मे एक बहुत छोटे मत्स्य के स्वरूप म युक्त भगवान् जनार्दन तपस्या करते हुए स्वायम्भुव मुनि मनु के सामने प्राप्त हुए थे जो मनु महान् आत्मा वाले थे । ४६ । वे प्रभु उस समय मे महान् आत्मा वाले—कारुण्य से युक्त—सुसन्त्रस्त अर्थात् भय युक्त—भीति (भय) से गद्गदता से समन्वित उन स्वायम्भुव मनु मे बोले । ४७ । हे तपो के निधि ! हे महाभाग ! आप डरे हुए मेरी रक्षा करने के योग्य होते हैं । विशाल मत्स्यो से मैं परम भीत (डरा हुआ) हूँ जो मुझे कहीं भक्षित न कर जावें इसी लिये मैं नित्य ही उद्वेग वाला रहता हूँ । ४८ । हे महाभाग ! प्रतिदिन ही बड़े-बड़े मत्स्य मुझे खाने के लिये मेरे पीछे दौड लगाया करते है । सभी ओर स अधिक संख्या मे बड़े मत्स्य मुझे खाने के लिए आया करते हैं. हे नाथ ! आप मेरी रक्षा करने के लिये समर्थ हैं ॥४९॥

इस अनेक वचन का श्रवण करके स्वायम्भुव मनु परमाधिक कृपा से समन्वित होकर उनसे बोले थे कि मैं आपकी रक्षा करने वाला हूँ। फिर करके तल मे जल लेकर उस उस मत्स्य को उसमे निधापित करके समक्ष मे उस परम क्षुद्र मत्स्य के विहार का अवलोकन करने लगे थे। । ५४। इसके अनन्तर परम दयालु मनु ने सुन्दर स्वरूप वाले उस मत्स्य को जल से पूर्ण विपुल योग वाले अलिञ्जर मे रख दिया था। । ५५। वह मत्स्य उस मणिक में दिन-दिन मे वढता हुआ वह मत्स्य सामान्य रोहित के शरीर वाला शीघ्र ही हो गया था। ५६। वह महात्मा प्रतिदिन दश घट जल से परिपूर्ण उस मणिक को वढाते रहे थे। और मत्स्य को वर्धित कर दिया था। अर्थात् वह मत्स्य वडा होता चला गया था। और वडे २ नेत्रो वाला वह बालक मत्स्य थोडे ही समय म उस मणिक के जल के मध्य म लोमो से पीन देह वाला हो गया था। ५७।



।। अकाल प्रलय कथन ।।

त तथा पीवरतनु दृष्ट्वा मत्स्य मनु स्वयम् ।
गृहीत्वा पाणिना फुल्लनालिनी सरसी ययौ ।।१
सत्भरस्तत्र विपुल पुण्ये नारायणाश्रमे ।
एकयोजनविस्तीर्णं सार्धयोजनमायतम् ।।२
नानामीनगणोपेत शीतामलजलोत्करम् ।
सदासाद्य सरो मत्स्य विनिधाय मनुस्तदा ।।३
पालयामास गुणवन् कृपया परया युत ।
सोऽपिस्वेनैव कालेन पीनो वैसारिणोऽभवत् ।।४
न ममौ तत्र सरसि वृद्धत्वात् द्विजसत्तमाः ।

स एकदा महामत्स्य पूर्वापरतटद्वये ॥५
शिरः पुच्छे निधायाशु तु गदेह समुच्छ्रित ।
स्वायम्भुव महात्मान चुक्रोश त्राहि मामिति ॥६
तं तथा च मनुर्ज्ञात्वा क्रोशन्त स्थूलपुच्छकम् ।
आससाद तदा मत्स्य जग्राह च करेण तम् ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—स्वायम्भुव मनु ने उस प्रकार से स्थूल शरीर वाले उस मत्स्य का अवलोकन स्वय करके उसको अपने हाथ मे ग्रहण करके वे विकसित कमलो से सयुत सरोवर को चले गये थे । १ । वह सरोवर वहाँ पर परम पुण्यमय नारायण के आश्रम मे बहुत विस्तृत था । वह एक योजन के विस्तार वाला तथा डेढ योजन आयत था । २ । उसमे अनेक मीन गण थे तथा ठण्डे—निर्मल जल के समुदाय भरता था उस सरोवर मे उस मत्स्य को ग्रहण करके उस समय मे मनु ने वहाँ पर निक्षिप्त कर दिया था । ३१ । उस मत्स्य का उन्होंने अपने पुत्र की ही भाँति परम अनुग्रह से युक्त होकर पालन किया था । वह मत्स्य बहुत ही थोड़े समय मे परमाधिक स्थूल और विसारी हो गया था । ४ । हे श्रेष्ठ द्विजो ! वह मत्स्य उस सरोवर मे भी समाया नहीं था । क्योंकि बहुत ही बड़ा हो गया था । वह मत्स्य एक बार पूर्व और अपर दोनो किनारा पर अपना शिर और पूँछ रख कर ऊँचे शरीर वाला समुच्छ्रित हो गया था अर्थात् अत्यन्त उच्च हो गया था । फिर वह स्वायम्भुव महात्मा से चिल्लाकर बोला—मेरी रक्षा करो । ५ । ६ । मनु ने उसको स्थूल पूँछ वाला तथा क्रोश ने वाला समझ कर वह उस समय मे उस महामत्स्य के समीप पहुँचे और अपने हाथ के द्वारा उसका उन्होंने ग्रहण किया था । ७ ।

न शक्नोम्यहमुद्धर्तुं पृथरोमाणमद्भुतम् ।
इति सचिन्तयन्नेव प्रोद्दधार करेण तम् ॥८
भगवानपि विश्वात्मा मत्स्यरूपी जनार्दनः ।

स्वायम्भुवकरं प्राप्य लघिमानमुपाश्रयत् ॥६
तत करान्यामुद्धत्य स्कन्धे कृत्वा द्रुत मनु ।
निनाय सागर तत्र तोये च निदधे तत ॥१०
यथेच्छमत्र वर्धस्व न कोऽपि त्वा वधिष्यति ।
अचिरेणैव सम्पूर्णदेह त्व समवाप्नुहि ॥११
इत्युक्त्वा स महाभाग सर्वप्राणभृता वर ।
लघुत्व चिन्तयस्तस्य विस्मय परम गत ॥१२
मत्स्योऽपि नचिरादेव पूर्णकायस्तदा महान् ।
सर्वत पूरयामास देहाभोगेन सागरम् ॥१३
त पूर्णकायमालोक्य व्यतीत्याम्भा. समच्छ्रितम् ।
शिलाभिनिचित स्फीत मानसाचलसंनिभम् ॥१४

मैं विपुल रोमों वाले अतीव अद्भुत आपका उद्धार करने के लिये समर्थ नहीं होता हूँ —ऐसा भली भाँति चिन्तन करते हुए ही उन्होंने हाथ में उसको धारण कर लिया था । ८ । विश्व के आत्मा भगवान् जनार्दन भी जिन्होंने मत्स्य का स्वरूप धारण कर रक्खा था स्वायम्भुव मनु के कर को प्राप्त करके फिर छोटे स्वरूप का उपाश्रय ग्रहण कर लिया था । ६ । फिर मनु ने करों से उसको उठाकर अपने कन्धे पर धारण किया था और शीघ्र ही उसे सागर में ले गये थे और फिर वहाँ जल में उसको रख दिया था । १० । उन्होंने उस मत्स्य से कहा था—आप अपनी इच्छा के अनुसार बढ़िए । यहाँ पर कोई भी आपका वध नहीं करेगा और आप शीघ्र ही सम्पूर्ण देह की प्राप्ति करिए । ११ । यह कहकर समस्त प्राणधारियों में परम श्रेष्ठ वह महान् भाग वाले ने उसकी लघुता (छोटेपन) का चिन्तन करते हुए ही परमाधिक विस्मय को प्राप्त हो गये थे । १२ । वह मत्स्य भी तुरन्त ही उस समय में महान् पूर्ण शरीर वाले हो गये थे और अपने देहाभोग द्वारा सभी ओर से उस महा सागर को उन्होंने भर दिया था ।

तात्पर्य यह है कि उनने इतना अधिक अपने शरीर को बढ़ा लिया था कि वह पूरा सागर उसमें भर गया था। १३। उस महा सागर के जल को भी अतिक्रमण करके अत्यन्त उन्नत पूर्ण शरीर वाले का अवलोकन करके जो कि शिराओं से घिर हुए—लम्बा चौड़ा मानसाचल के तुल्य था। १४।

रुन्धन्त सागरं सर्वं देहाभोगचलीकृतम्।
स्वायम्भुवो मनुर्धीमान मेने मत्स्य न त तदा ॥१५
तत पप्रच्छ तं साम्ना मत्स्य स्वायम्भुवो मनु।
विचिन्त्य लघिमानं च पश्यन् मूर्ति तदाद्भुतम्. ॥१६
न त्वा मत्स्यमहं मन्ये कस्त्व मे वद सत्तम।
महत्वं लघिमानं ते चिन्तयन् सुमहत्तर ॥१७
त्वं ब्रह्माह्यथवा विष्णु शम्भुर्वा मीनरूपधृक्।
न चेद्गुह्यं महाभाग तन्मे वद महामते ॥१८
आराध्योऽहं त्वयानित्य यो हरि सनातन।
तवेष्टकामसिद्ध्यर्थं प्रादुर्भूत समाहित ॥१९
यन् त्वमिच्छसि भूतेश मत्स्त्व मीनभूतित।
तत् करिष्येऽद्य ता मूर्तिमिमां विद्धि मनो मम ॥२०
इति तस्य वच श्रुत्वा विष्णोरमिततेजस।
ज्ञात्वा प्रत्यक्षतो विष्णु मनुस्तुष्टाव केशवम्. ॥२१

सम्पूर्ण सागर को रोकने वाले और अपने देह के विस्तार से चपल करके धीमान् स्वायम्भुव मनु ने उस समय में उनको मत्स्य नहीं माना था। १५। उस अवसर पर स्वायम्भुव मनु ने उन मत्स्य से फिर शान्ति पूर्वक पूछा था जब कि उनको अद्भुत मूर्त्ति का दर्शन किया था और उनके छोटेपन को देखा था। १६। मनु ने कहा—हे परम श्रेष्ठ ! मैं आपको केवल मत्स्य ही नहीं मानता हूँ। आप कौन हो—यह मुझे स्पष्ट बतलाने की कृपा करिये। हे सुमहत्तर ! मैं

महत्त्व को और छोटेपन का चिन्तन करते हुए ही आपको सामान्य मत्स्य ही नहीं मानता हूँ । १७। आप ब्रह्मा है अथवा विष्णु है या आप शम्भु है जिन्होंने यह मत्स्य का स्वरूप धारण किया है । यदि इसमें कुछ गोपनीयता न हो तो हे महा भाग ! हे महामते ! मुझे यह स्पष्ट बतलाने की कृपा कीजिए । १८ । मत्स्य भगवान् ने कहा—आपके द्वारा मेरी नित्य ही आराधना करनी चाहिए जो सनातन हरि भगवान् है वही मैं हूँ । इस समय में आपकी कामना की सिद्धि के ही लिए मैं समादित होकर प्रकट हुआ हूँ । १९ । हे मूना के स्वामिन् ! आप जो भी मुझ मीन की मूर्त्ति वाले से जो भी कुछ चाहते है वही आज करूँगा । मेरी इस मूर्त्ति को मन ही समझिए । २० । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—अपरिमित तेज का धारण करने वाले भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके और प्रत्यक्ष रूप में वेशर भगवान् विष्णु का ज्ञान प्राप्त करके मनु बहुत ही प्रसन्न हुए थे । २१ ।

नमस्ते जगदव्यक्तपरापरपते हरे ।
पावकादित्यशीतांशु नक्षत्रयधराव्यय ।।२२
जगत्कारण सवज्ञ जगद्धाम हरे पर ।
परापरात्मरूपात्मन् पारिणा पारकारण ।।२३
आत्मानमात्मना धृत्वा धरारूपधरो हर ।
बिभर्षि सकलान् लोकानाधारात्मस्त्रिविक्रम ।।२४
सयवदमयश्रेष्ठ धामधारणकारण ।
सुरौघपरमेशान नारायण सुरेश्वर ।।२५
अयोनिस्त्वं जगद्योनिरपादस्त्वं सदागतिः ।
त्वं तेजः स्पर्शहीनश्च सर्वशस्त्वमनीश्वर ।।२६
त्वमनादिः समस्तादिस्त्वं नित्यानन्तरोऽन्तर ।
यदेममण्डं जगतां बीजं ब्रह्माण्डसंज्ञितम् ।।२७
तद्बीजं भवगर्भेजस्त्वयोक्तं सन्निवेषु च ।

सर्वाधारो निराधारो निर्हेतु सर्वकारणम् ॥२८

स्वायम्भुव मनु ने कहा—हे हरे ! इस जगत् के पर और अपर के आप स्वामी हैं। आप अविनाशी हैं तथा अग्नि—सूर्य और चन्द्र इन को ही तीन नेत्रों को धारण करने वाले हैं। आपकी सेवा में मेरा प्रणिपात निवेदित है। २२। हे सर्वज्ञ ! आप जगत् के कारण हैं—जगत् के धाम हैं, हे हरे ! आप पर हैं। आप पर और अपर स्वरूप वाले हैं तथा जो पार जाने वाले हैं उनको पार पहुँचाने के कारण रूप हैं। । २३। अपनी आत्मा में ही आत्मा को धारण करके हे हर ! आप धरा का रूप धारण करने वाले हैं। हे त्रिविक्रम ! आप आधार स्वरूप वाले हैं और आप समस्त लोकों का भरण किया करते हैं। २४। हे सुरेश्वर ! आप समस्त वेदों से परिपूर्ण एवं श्रेष्ठ हैं। धाम के कारण के भी आप कारण हैं। आप देवों के समुदाय के परम ईशान हैं और नारायण हैं। २५। आप का कोई भी जन्म दाता नहीं है और आप इस जगत् की योनि अर्थात् उत्पादक है। आप पाद रहित है तो भी सदा गति वाले है। आप तज है और स्पर्श से रहित है। हे ईश्वर ! आप सभी के स्वामी है। २६ आपका कोई भी आदिकाल नहीं है और आप ही सबके आदि है। आप नित्य अनन्तर तथा अन्तर है जो हेम का अण्ड है और इन सब जगतों का बीज है और ब्रह्माण्ड की सत्ता से युक्त है। २७। उस ब्रह्माण्ड के बीज आपका ही तज होता है। उस जल में आपही ने कहा है। आप ही सबके आधार रूप है और आप स्वयं बिना आधार वाले है। आप स्वयं तो बिना हेतु वाले है किन्तु सबके कारण स्वरूप है। २८।

नमो नमस्ते विश्वेश लोकाना प्रभव प्रभो ।
सृष्टिस्थित्यन्तहेतुस्त्व विधिविष्णुहरात्मधृक् ॥२६
यस्य ते दशधा मूर्तिरूर्मिषट्कादिवर्जिता ।
ज्योति पतिस्त्वमम्भोधिस्तस्मै तुभ्य नमो नम ॥३०

कस्ते भावं वक्तुमीश परेश
स्थूलात्स्थूलो योऽणुरूपोऽर्थवर्गात् ।
तस्मै नित्यं मे नमोऽस्त्वद्य योऽभू-
दादित्यवर्ण तमसः परतास्त् ॥३१
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रपात्
सहस्रचक्षुः पृथिवीं समन्ततः ।
दशांगुलं यो हि समत्यतिष्ठत्
स मे प्रसीदत्विह विष्णुरुग्रः ॥३२
नमस्ते मीनमूर्ते हे नमस्ते भगवन् हरे ।
नमस्ते जगदानन्द नमस्ते भक्तवत्सल ॥३३
स्वायम्भुवेन मनुना सस्तुतो मत्स्यरूपधृक् ।
वासुदेवस्तदा प्राह मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥३४

हे विश्व के स्वामिन् ! हे प्रभो ! आप ही समस्त लोकों के प्रभव अर्थात् जन्म स्थान हैं अथवा जन्म देने वाले हैं। आप सृष्टि—स्थिति और संहार के हेतु हैं। आप विधाता—विष्णु और आत्मा के धारण करने वाले हैं। आपकी सेवा में बारम्बार नमस्कार है ॥ २९ ॥ आपकी मूर्त्ति दश प्रकार की है और वह मूर्त्ति ऊर्मि षट्क आदि से रहित है। आप ज्योति के स्वामी हैं, आप ही अम्भोधि अर्थात् सागर हैं उन आपके लिये बारम्बार प्रणाम समर्पित है ॥ ३० ॥ हे परेश ! कौन है जो आपके भाव का वर्णन करने में समर्थ हो अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है जो आप स्थूल से भी स्थूल हैं और अर्थ वर्ग से भी अणु रूप वाले हैं। जो तम से परे आदित्य के वर्ण वाले थे आज उनके ही लिए मेरा नित्य नमस्कार है। ३१। जो पुरुष सहस्र शीर्षों वाले हैं तथा सहस्र चरणों वाले हैं—सहस्र चक्षुओं से युक्त हैं और इस पृथ्वी के सभी ओर हैं—जो दश अंगुल के समान प्रमाण वाले स्थित थे वही उग्र भगवान् विष्णु यहाँ मेरे ऊपर प्रसन्न होवें। ३२। हे भगवन् ! आप

मीन की मूर्त्ति धारण करने वाले हैं। हे हरे ! आपको नमस्कार है ! हे जगत के आनन्द स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। हे भक्तों के ऊपर प्रेम करने वाले ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। । ३३। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—स्वायम्भुव मनु के द्वारा वे भगवान् मत्स्य के स्वरूप धारण करने वाले प्रभु की इस रीति से स्तुति भली भाँति की गई थी। उस अवसर पर भगवान् वासुदेव मेघों के सदृश परमगम्भीर ध्वनि से युत होकर बोले थे। ३४।

तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य भक्त्या चापि स्तुतो मुहुः ।
सपर्यया च दानेन वरं वरय सुव्रत ॥३५
इष्टार्थं सम्प्रदास्यामि तुभ्यं नात्र विचारणा ।
वरयस्वेप्सितान् कामान् लोकानां वा हितं च यत् ॥३६
यदि देयो वरोमेऽद्य लोकानां यो हितो भवेत् ।
तन्मे देहि वरं विष्णो तं वक्ष्यामि शृणुष्व मे ॥३७
शशाप कपिलः पूर्वं मदर्थं भुवनत्रयम् ।
हृतप्रहृतविध्वस्तं सकलं ते भवेदिति ॥३८
येनेयमुद्धृता पृथ्वी येनेयं प्रतिपालिता ।
संहरिष्यति यस्तेना तेऽद्युना प्रावयस्त्विमाम् ॥३९
ततोऽहं दीनहृदय स्त्वामेव शरणं गतः ।
न यथेदं त्रिभुवनं भविष्यति जलप्लुतम् ।
हृतप्रहृतविध्वस्ते तथा त्वं देहि मे वरम् ॥४०
न मत्तः कपिलो भिन्नस्तथा न कपिलादहम् ।
यदुक्तं तेन मुनिना मयोक्तं विद्धि तन्मनो ॥४१
तस्माद् यदुदितं तेन तत्सत्यं नान्यथा भवेत् ।
करिष्ये तत्र साहाय्यं स्वायम्भुव निबोध तत् ॥४२

श्री भगवान् ने कहा—आज मैं आपकी इस तपश्चर्या से परम प्रसन्न हूँ और आपके द्वारा बड़े ही भक्ति की भावना से वारम्वार मेरी स्तुति भी की गयी है। मुझे आपकी पूजा से और दान से भी

सन्तोष हुआ है। हे सुव्रत ! अब आप वरदान माँग लो। ३५। आपका जो भी अभीष्ट अर्थ होगा आपको उसको मैं दूँगा—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। आप अभीष्ट कामनाओं से वरदान प्राप्त कर लेवें और जो भी कुछ लोकों के हित की बात हो उसको भी प्राप्त कर लेवे। ३६। स्वायम्भुव मनु ने कहा—हे विष्णो! आज यदि मुझे कोई वरदान देना है जो कि लोकों की भलाई करने वाला हो तो आप मुझे वरदान देवें। उसको मैं बतलाऊँगा उसे आप मुझसे श्रवण कीजिए। ३७। पूर्व में कपिल मुनि ने मेरे लिये शाप दिया था कि सम्पूर्ण जगत् अर्थात् तीनों भुवन हत—प्रहृत और विध्वस्त हो जावेगा। ३८। जिसने इस पृथ्वी को उद्धृत किया है और जिसके द्वारा यह पृथ्वी प्रतिपालित की गयी है और जो इसका संहार करेंगे उन्हीं के द्वारा इसका इस समय में प्लावन होवे। ३९। इसके उपरान्त मैं दीन हृदय वाला आपकी ही शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ। जिस रीति से यह त्रिभुवन जल से प्लुत (डूबा हुआ) न होवे एवं हत—प्रहृत और विध्वस्त न होवे आप वही वरदान मुझे प्रदान कीजिए। ४०। श्री भगवान् ने कहा—हे मनुदेव ! मुझसे कपिल कोई भिन्न नहीं हैं और उसी भाँति मैं भी कपिल से भिन्न नहीं हूँ। जो भी उन मुनि ने कहा है उसको मेरे द्वारा ही कहा हुआ समझिये। ४१। इस कारण से उनने जो भी कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य ही है। इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। मैं आपकी सहायता करूँगा। हे स्वायम्भुव ! इसको आप समझ लीजिए। ४२।

हतप्रहृतविध्वस्ते तोयमग्ने जगत्त्रये।
श्यामलेनाथ शृंगेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ॥४३
यावज्जलप्लवस्तावद्यथा कार्यं त्वया मनो।
तन्मे निगदतः पथ्य शृणुष्वावहितोऽधुना ॥४४
सर्वयज्ञियकाष्ठोघैरेका नौका विधीयताम्।

तामहं द्रक्ष्यिष्यामि यथा नो भिद्यते जलै ॥४५
दशयोजनविस्तीर्णां त्रिंशद्योजनमायताम् ।
धारिणी सर्वबीजाना भुवनत्रयवर्द्धिनीम् ॥४६
सर्वयज्ञियवृक्षाणा भूरिवल्वलतन्तुभिः ।
नवयोजनदीर्घातु व्यामत्रयमुविस्तृताम् ॥४७
कुरुष्व त्वं मनो तूर्णं वृहतीमीरिका वठीम् ।
जगद्धात्री जगन्माया लोकमाता जगन्मयी ।
द्रक्ष्यिष्यति तु रज्जु न नुत्यति यथातथा ॥४८
सर्वाणि बीजान्यादाय सवेदान् सप्त वै ऋषीन ।
तस्या नावि निषण्णस्त्व वर्तमाने जलप्लवे ॥४६

इस तीनों भुवनो के हत—प्रहत और विध्वस्त होने पर एव जल मे निमग्न हो जाने पर मैं श्यामल भृङ्ग से समन्वित होऊंगा और आप उस समय मे मुझको जान लेंगे अर्थात् आपको मेरा ज्ञान प्राप्त हो जायगा । ४३ । हे मनुदेव ! जब तक यह जल का प्लावन रहे तभी तक जो भी कुछ आपको करना चाहिए वह अब मुझ कहने वाले से आप परम सावधान होकर श्रवण कीजिये जो कि परम पथ्य अर्थात् हितकर है वही मैं कह रहा हू । ४४ । सब यज्ञ सम्बन्धी काष्ठों के समूह के द्वारा एक नौका का निर्माण कराइये । उस नौका को मैं ऐसी परम सुदृढ बना दूंगा जिसमे कि जलो मे वह भिदी हुई न होवे । ४५ । वह नौका ऐसी होनी चाहिए कि वह दश योजनो के विस्तार से युक्त होवे और तीस योजन पर्यन्त आयत अर्थात् चौडी होवे—जो सम्पूर्ण बीजों के अर्थात् बीज के स्वरूप मे रहने वालों के धारण करने वाली हो और तीनों भुवनो के वर्धन करने वाली होवे । ४६ । समस्त यज्ञों मे सम्बन्ध रखने वाले वृक्षो की बहुत वल्वल तन्तुओ से निर्मित की जावे । जो नौ योजन तक दीर्घ होवे तथा व्याम त्रय तक विस्तृत होवे अर्थात् तीन व्यामो के विस्तार से युक्त होवे । ४७ । हे मनुदेव ! आप

शीघ्र ही वृहती ईरिका वटी को करिए जो जगत् की धात्री जगत् की माया—लोकों की माता और जगतों से परिपूर्ण वह उस रज्जु (रस्सी) को सुदृढ कर देगी जो जिस किस प्रकार से भी त्रुटित न होवे। ४८। इस वर्त्तमान जल के प्लवन होने के समय में उस नौका में सब बीजों को अर्थात् बीज स्वरूपों को रखकर तथा समस्त वेदों को और सात ऋषियों को बिठाकर आप भी उसमें निषण्ण हो जाइये। ४६।

दक्षेण सह सगम्य स्मरिष्यसि मनो मम।
स्मृतोऽहं तर्णमायास्ये भवतो निकट प्रति।
श्यामलेनाथ शृगेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ॥५०
यावन प्रहतविध्वस्त-हत स्याद्भुवनत्रयम्।
तावन पृष्ठेन ता नाव वोढाह नात्र सशय ॥५१
जहप्लते तु मत्पर्णे शृगे मम च तां तरीम्।
त्व तदा वटीरिकया सन्धानिष्यसि वै दृढम् ॥५२
वद्धायां नावि मे शृगे देवमानेन वत्सरान।
सहस्र प्रेरयिष्यामि ता नाव शोषयन जलम् ॥५३
तत शुष्केषु तोयेषु प्रोत्त गे शिखरे गिरे।
हिमाचलस्त वद्धवाह वस्मिन्नामह मनो ॥५४
अहमाराधितो येन जप्येन भवता मनो।
सर्वंसिद्धिर्भवेत्तस्य यस्तोषयति तेन माम् ॥५५

हे मनुदेव! आप दक्ष के साथ मिलकर मेरा स्मरण करेंगे उसी समय में स्मरण किया हुआ मैं आपके समीप में आ जाऊँगा। मैं श्यामल शृङ्ग से समन्वित होऊँगा। उसी समय में आपको मेरा ज्ञान प्राप्त हो जायगा। ५०। जिस समय पर्यन्त यह तीनों भुवन हत—प्रहत—विध्वस्त रहेंगे तभी तक मैं अपने पृष्ठ भाग के द्वारा उस नौका में वहन करने वाला रहूँगा इसमें लेश मात्र भी संशय का अवसर नहीं। ५१। मेरे शृङ्ग के जल में प्लुत हो जाने पर उस नौका को उस

वाले अन्तर्धान हो गये थे । ५६ । स्वायम्भुव मुनि भी भगवान् हरि के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान् हरि ने जैसा भी पूर्व में कहा था वैसी ही नौका और रज्जु का निर्माण कराया था । ५७ । उस समय में स्वायम्भुव मुनि ने समस्त यज्ञों में सम्बन्धित वृक्षों का छेदन कराकर उनको उद्घृत करके काष्ठादि के द्वारा इनसे नौका का निर्माण कराया था । ५८ । उन वृक्षों के वल्कल (छाल) से समुद्भूत सूत्रों के समूहों से पूर्व में कथित प्रमाण से मनु ने वरत्रिका की रचना कराई थी । ५९ । उसके अनन्तर बहुत अधिक काल में भगवान् यज्ञ वराह विष्णु का—शरभ का और हर का महान् अद्भुत युद्ध हुआ था । ६० । इसके उपरान्त जल में प्लावन होने पर तथा तीनों भुवनों के विध्वस्त हो जाने पर उसी समय में रज्जु से नौका को बाँध करके सम्पूर्ण बीजों का आदान करके मनु ने वेदों को और ऋषियों को जो सबके थे लाकर उस नौका में समाधान करके अर्थात् नाव में रख कर चराचर सबके जल में मग्न हो जाने पर उसी अवसर पर मनुदेव ने नाव में स्थित होते हुए मत्स्य मूर्ति भगवान् हरि का स्मरण किया था । इसके अनन्तर शिखर से मधुन पर्वत के ही सदृश जलों के ऊपर भगवान् मत्स्य समागत हो गये थे । ६१—६३ ।

उत्थितः सर्वशृङ्गेण विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ।
आगत्य तत्र नचिराद्ययावास्ते तरिणा मनुः ॥६४
तस्मिन्नाप्य विपुले तोयराशौ मयस्करे ।
मावच्चनायसं तोयं तावत् पृष्ठे तरिं न्यधात् ॥६५
अमे प्रकल्पितयन्त्रे शृङ्गे बध्वा वरोत्रिकाम् ।
तां नावं नोदयामास महत्स्वैवतमरान् ॥६६
यावन्नावमवष्टभ्य देधार परमेश्वरः ।
योगनिद्रा जगद्धात्री तथा नौर्दृढौत्रिकाम् ॥६७
तत्र हरिं शरीरार्धे जीवं गत्वा नि वै निरान् ।

पश्चिमं हिमवच्छृंगं सुमग्नं तोयमध्यतः ॥६८
द्वे सहस्रे योजनानामुच्छ्रितस्य हिमप्रभो ।
पञ्चाशत्तु सहस्राणि शृंगं तत्तस्य चोच्छ्रितम् ॥६९
तस्मिन् शृंगे ततो नावं बद्ध्वा मत्स्यात्मधृग् हरिः ।
जगाम शोषणायाशु जलानां जगतां पतिः ।
एवं हि मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ॥७०
कपिलस्य तु शापेन कृतः प्राकालिको लयः ।
अकालिकोऽयं प्रलयो यतो भगवता कृतः ।
इति वः कथितं सर्वं यथावद्द्विजसत्तमाः ॥७१

मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु एक शृङ्ग से समन्वित वहीं पर समागत हो गये थे और तनिक भी विलम्ब नहीं किया था जहाँ पर नाव से मनु देव सम्मिलित हो रहे थे ।६४। उस महान्, भयङ्कर और बहुत ही विस्तृत जल के समुदाय में नौका पर समारूढ़ होकर जब तक जल समाचल था तभी तक उस जल के पृष्ठ भाग पर नौका को निधापित कर दिया था । ६५ । जल के प्रकृति में समापन्न होने पर वटीरिका को शृङ्ग में बाँध कर एक सहस्र देवों के वर्षों तक उस नौका को सम्प्रेरित किया था । ६६ । परमेश्वर प्रभु ने अपनी नाव को अवष्टम्भ करके धारण किया था । जगत् की धात्री योग निद्रा उस वटीरिका में समासीन हो गयी थी । ६७ । फिर धीरे-धीरे चिरकाल में जल के शोषण हो जाने पर उस जल के मध्य से पश्चिम हिमालय पर्वत का शिखर सुमग्न हो गया था । ६८ । हिमालय प्रभु के जो दो सहस्र योजन ऊँचा था उसके पचास सहस्र उच्छ्रित (ऊँचा) शृङ्ग था ।६९। फिर उस शृङ्ग में उस नाव को बाँध कर मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले हरि जो जगतों के स्वामी थे उन जलों के शोषण करने के लिये तुरन्त ही गये थे । इसी रीति से भगवान् शार्ङ्गधारी विष्णु ने मत्स्य के स्वरूप के द्वारा वेदों की रक्षा की थी । ७० । मार्कण्डेय

महर्षि ने कहा—कपिल मुनि के शाप से यह अकालिक लय किया गया था। क्योंकि यह अकालिक लय भगवान् के द्वारा ही किया गया था। हे द्विज सत्तमो ! यह सब जैसा हुआ था वैसा ही हमने आपको वर्णन करके बतला दिया है ॥७१॥



॥ पुनः सृष्टि रचना कथन ॥

यथा पुनरभूत् सृष्टिरकालप्रलये गते ।
येन चैवोद्धृता पृथ्वी तच्छृणन्तु द्विजोत्तमा ॥१
व्यतीते प्रलये विष्णु कूर्मरूपी महाबल ।
पृष्ठे निधाय पृथ्वीमुद्धृत्याथ सपर्वताम् ।
समाश्चकार सकला पूर्ववत्परमेश्वर ॥२
शरभस्य वराहस्य तत्पुत्राणां पदक्रमैं ।
यत्र भूमिर्विशीर्णाभूत्ता ना समा कमठोऽकरोत् ॥३
कृत्वा समा ततो भूमि पूर्ववत् परमेश्वर ।
अनन्त धारयामास पृथिवीतलसंश्रितम् ॥४
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च हरश्च परमेश्वर ।
नावोदरस्थान सप्तमुनीन्मनु स्वायम्भुव सदा ।
नरनारायणौ चोभौदक्षश्चोचु समागता ॥५
शृण्वन्तु मुनय सर्वे नरनारायणौ तथा ।
दक्षस्वायम्भुवमनौ वय ब्रूमोऽधुना च यत् ॥६
सृष्टिर्नष्टा वराहस्य शरभस्य च सगरात् ।
अतोऽस्माक यथाकार्या सृष्टिरावणयन्तु तत् ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस अकाल प्रलय के होने के पश्चात् पुन जिस प्रकार से सृष्टि की रचना हुई थी। हे द्विजोत्तमो ! जिसने इस पृथ्वी का उद्धार किया था उसका अब आप लोग श्रवण कीजिए।

।१। उस प्रलय के व्यतीत हो जाने पर महान् बलवान् कूर्म के स्वरूप वाले विष्णु भगवान् ने पर्वतों के सहित पृथ्वी को उद्धृत करके अपने पृष्ठ भाग पर धारण कर लिया था। और परमेश्वर ने पूर्व की ही भाँति सम्पूर्ण पृथ्वी को समान कर दिया था।२। मत्स्य और वराह का और उनके पुत्रों से पद रूप में जो भी भूमि विशीर्ण हो गई थी कमठ देव ने उसको भी सम कर दिया था।३। परमेश्वर ने पूर्व की ही भाँति पृथ्वी को सम करके फिर पृथ्वी के तले में सन्थित अनन्त भगवान् को धारण किया था ।।४।। इसके अनन्तर ब्रह्मा—विष्णु और हर परमेश्वर ने वहाँ पर समागत होकर नौका के बीच में विराजमान सात मुनियों को—स्वायम्भव मनु को और दोनों नर नारायणों को और दक्ष को कहने लगे थे।५। समस्त मुनि गण—नर नारायण—दक्ष और स्वायम्भुव मनु आप सब लोग श्रवण करिये जो भी कुछ इस समय में हम बोलते हैं।६। वराह और शरभ के युद्ध में सम्पूर्ण सृष्टि विनष्ट हो गयी है। अतएव हमको जिस रीति से सृष्टि की रचना करनी चाहिए उसे आप लोग श्रवण करिए ।।७।।

नरनारायणावेतौ सष्ट्यर्थं समुपस्थितौ ।
संस्थापनाय देवानां परमं तप्यतां तपः ।।८
तप्यात्य तपसा चोभौ जनलोकगतान् सुरान् ।
आनयन्त्वदपराञ्छश्वत् समृजन्तु प्रजान् बहून् ।।९
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव तेषां स्थानानि वै मुने ।
एतयोस्तपसा यान्तु स्थिरतां पूर्ववन्मनो ।।१०
सूर्यस्य रथसंस्थानं तथा चन्द्ररथस्थितिम् ।
करोत्वय महाभाग स्वयमेव जनार्दन ।।११
पृथिव्यां सर्वबीजानि स्वायम्भुवमनो त्वया ।
उप्यन्तां सर्वतः शस्यपूर्णा भवतु मेदिनी ।।१२
प्ररोहयौषधीर्वृक्षान् लतावल्लीश्च सर्वतः ।

स्वायम्भुव महान्येतत् प्राप्तान्यृतुफलानि च ।।१३
दक्ष सप्तमुनीन्द्रैस्तु यज्ञेन यजता हरिम् ।
वराहपुत्रदेहोत्थमग्निश्रयमिद यजन ।।१४

ये दोनो नर और नारायण सृष्टि की रचना करने के ही लिये समुपस्थित हो गये है । देवो की सस्थापना करने के लिए परम तप का तपना करें ।।८।। जन लोक मे रहने वाले देवो को ये दोनो आप्यापित करके अपरो को यहाँ पर समानीत करें और निरन्तर बहुत से गणो का भली भाँति सृजन करे ।।६।। हे मुने ! हे मनो ! नक्षत्रो की—ग्रहों की और उनके स्थानो का सृजन करे। इन दोनो की तपश्चर्या मे पूर्व की ही भाँति स्थिरता को प्राप्त होवे ।१०। यह महाभाग जनार्दन प्रभु सूर्यके रथका सस्थान तथा चन्द्रमाके रथकी सस्थिति को स्वय ही यह करें।११। हे स्वायम्भुव मनु! आप पृथिवी मे सब बीजो का वपन करे और यह पृथ्वी सभी ओर शस्यो से परिपूर्ण हो जावे । १२ । समस्त ओषधिया वृक्ष—लता और वल्लियो का सभी ओर आप प्ररोहण करे । हे स्वयम्भुव ! यह महान ऋतु फलो को प्राप्त हो गय है ।। १३ ।। प्रजापति दक्ष सप्त मुनीन्द्रो के साथ यज्ञ के द्वारा भगवान् हरि का अभ्यर्चन करे । और वराह के पुत्रो मे समुत्थित इन तीनो अग्नियो का भी यजन करे । आहवनीय आदि तीन अग्निया होती है ।। १४ ।।

असौ यज्ञो वराहस्य देहाज्जातस्तु सृष्टये ।
अनेनैव तु यज्ञेन दक्ष सृष्टि तनोत्विमाम् ।।१५
नरनारायणाभ्यातु मुनिभि सप्तभिस्तथा ।
दक्षेण भवता चापि यज्ञैर्भिस्तथाग्निभि ।।
सम्पूर्यतामिय सृष्टि स्वर्गे भुवि रसातले ।।१६
वय च सृष्टिमाप्याय्य यथा सम्पद्यते त्वियम् ।
यतिष्यामस्तथा नित्य यूय कुरुत सर्जनम् ।।१७

तत सम्पद्यता सृष्टिर्यया पूर्वं यथैव च ।
प्रथम त्वन्तु बीजानि प्ररोहय मनोऽधुना ॥१८
इत्यादिश्य महाभागा विधिविष्णुवृषध्वजा ।
यथास्थान स्थापयितु पर्वतान् प्रययुस्तत ॥१९
मेरुमन्दरकैलासहिमवत्प्रभृतिष्वथ ।
पुराणि सर्वदेवाना ते वै चक्रु पृथक पृथक् ॥२०
परित्यज्य ततो नावमवधूय वसुन्धराम् ।
स्वायम्भुव क्षितौ बीजान्यवपत् सर्वसम्पदे ॥२१

यह यज्ञ सृष्टि की रचना के ही लिए वराह भगवान् के देह से समुद्भूत हुआ है । इसी यज्ञ के द्वारा दम इस सृष्टि की रचना का विस्तार करे ॥१५॥ नर और नारायण से तथा सात मुनियो से—दक्ष और आप से भी—यज्ञ से तथा तीनो अग्नियो से इस सृष्टि का स्वर्ग—पाताल और भूमि म सम्पूर्णता को प्राप्त होवे ।१६॥ और हम सृष्टि को आप्यायित करके जिस प्रकार से भी यह सुसम्पन्न हो जावे, यत्न उसी भाँति का करेगे । आप नित्य ही सृजन का कार्य करिए । १७ । इसके अनन्तर यह सृष्टि जैसी पहिले थी ठीक वैसी ही सुसम्पन्न हो जावे । हे मनुदेव ! सबसे प्रथम आप इस समय में बीजो का प्ररोहण करे । १८ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस रीति से महाभाग विधाता विष्णु और वृषभध्वज समस्त पर्वतो को यथा स्थान पर स्थापित करने के लिए यह आदेश देकर फिर चले गये थे ॥ १९ ॥ उन्होंने मेरु—मन्दर—कैलास और हिमवान् आदि पर्वतो म समस्त देवो के पुरो का पृथक्—पृथक् कर दिया था । ६० । इसके अनन्तर उस नौका का परित्याग करके और वसुन्धरा को अवधूत करके स्वायम्भुव मनु ने सम्पूर्ण सम्पदा के लाभ के लिए भूमि म बीजो का वपन किया था।२१।

ततो वृक्षलतावल्लीगुल्मानि च वनानि च ।
बालशस्यानि धान्यानि तथैवौषधय समा ॥२२

वीजकाण्डप्ररोहाश्च प्रताना जलजानि च ।
प्रफुल्लानि विकोशानि फलकन्ददलानि च ॥२३
वभुवुः शाद्वलान्येव सर्वेषां प्राणवृद्धये ।
पृथिवी शस्यसम्पन्ना वृक्षास्ते शाद्वलाः शुभाः ।
दृष्टाः पूर्वं यथा तस्मान्मनुनाचित्तहर्षिणा ॥२४
ततो नरो महायोगी तपस्तपे महत्तमम् ।
नारायणश्च देवानां भावनाय महामतिः ॥२५
नारायणो नरश्चोभौ परमावृषिसत्तमौ ।
तपसाराध्य परमं तेजोमयमनामयम् ॥२६
आनिन्याते जनगणान् देवान् देवर्षिसत्तमान् ।
ये मृता अमराः पूर्वं गणशस्तान् पृथक् पृथक् ।
तपोवलेन महता सर्जयामासतुर्मुनी ॥२७
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ दिक्पालाश्च तथा दश ।
जनार्दनः स्वयं चक्रे पातालतलवासिनः ॥२८

इसके अनन्तर वृक्ष—लता—वल्ली—गुल्म और वन—घास शस्य—धान्य उसी भाँति ओषधियाँ—वीजकाण्ड प्ररोह—प्रतान और जलज अर्थात् कमल—प्रफुल्ल अशोक और फल—कन्द तथा दल एवं सबके प्राणों की वृद्धि के लिये शाद्वल ही हुए थे। सम्पूर्ण पृथ्वी शस्यों में सम्पन्न थी वे वृक्ष और शुभ शाद्वल जिस प्रकार के पहिले देखे थे जो कि चित्त में हर्ष वाले मनु ने अवलोकन पहिले किया था ॥ २२—२४ ॥ इसके उपरान्त महायोगी नर ने महत्तम तप का तपन किया था और महामति वाले नारायण ने देवों के भावन के लिये तपश्चर्या की थी। २५। नारायण और नर ये दोनों ही परम ऋषियों के समान थे। इन्होंने अनामय अर्थात् आमय से रहित—तेज से परिपूर्ण परमेश की तप के द्वारा आराधना की थी। २६। वे जनगणों को—देवों को और देवर्षियों श्रेष्ठों को लाये थे जो पूर्व में मृत हुए अमर थे उनके गणों

था। कश्यप—अत्रि—वसिष्ठ—विश्वामित्र—गौतम—जमदग्नि और भरद्वाज ये अमल सात ऋषि थे ॥३०॥ ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति ने इन पर्वोक्त सप्त ऋषियों के द्वारा स्वयं द्वादश वर्ष पर्यन्त भद्रा यज्ञ करने का समाचरण किया था ॥३२॥ हे द्विजोत्तमो! वहाँ पर ही तीनों अग्नियों में बारम्बार हवन किये जाने पर और उस समय में द्विजों के द्वारा यज्ञ स्वरूप वाले वराह के अभ्यर्चन किये जाने पर उस यज्ञ से ही चार प्रकार की प्रजा समुत्पन्न हुई थी ॥३३॥ इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष के परम पुण्य स्वरूप तरह पुत्रियाँ समुत्पन्न हुई थी जो रूप लावण्य से सुसम्पन्न थी और सृष्टि की रचना करने के लिए अमित प्रजा वाली थी ॥३४॥ दक्ष ने उन तेरह पुत्रियों को महान् आत्मा वाले कश्यप मुनि के लिए प्रदान कर दिया था। उनसे बहुत सी सन्ततियाँ समुद्भूत हुई थी जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया था ॥३५॥

स सर्वासा प्रजाना तु कश्यपो जनको ह्यभूत् ।
निश्चित द्विजशार्दूला कश्यपात् सकल जगत् ॥३६
तासा नामानि तज्जाना प्रजा सर्वा. पृथक् पृथक् ।
शृण्वन्तु मुनय सर्वे सम्यक् कथयतो मम ॥३७
अदितिर्दितिर्दनु काला दनायू सिंहिका मुनि ।
क्रोधा प्रधा वरिष्ठा च विनता कपिला तथा ॥
कद्रूस्त्रयोदशसुता एता दक्षस्य कीर्तिता. ॥३८
सजातो दक्षिणाङ्गुष्ठान्मनसा ध्यायतो विधे ।
तेन देवमनुष्येषु दक्ष इत्येव कथ्यते ॥३९
ब्रह्मणो मानसा पुत्रा दश पूर्वं प्रकीर्तिता. ।
तेषा षट्सृष्टिकर्तारो व्यतीतेऽस्मिन् जनक्षये ॥४०
मरीचिरत्र्यगिरसौ पुलस्त्य. पुलह क्रतु ।
मरीचेस्तनयो जात कश्यपो लोकभावन ॥४१
अस्यैव दक्षकन्यास्य प्रजा जज्ञेऽथ भूरिश ।
अस्य जायाप्रजातानां नामतो विनिबोधत ॥४२

उन समस्त प्रजाओं का कश्यप मुनि ही जन्म प्रदान करने वाले जनक हुए थे। हे द्विज शार्दूलो ! यह निश्चित है कि कश्यप मुनि से ही यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ था ॥३६॥ उनके नाम और उनमें समुत्पन्न होकर पृथक्-पृथक् गत प्रजाओं को आप समस्त मुनिगण मेरे अब श्रवण कीजिए जिनको मैं भली भाँति कह रहा हूँ, मुझसे ही आप उनका ज्ञान प्राप्त करिये ॥३७॥ अब उन तेरहों कन्याओं के नामों को बतलाया जाता है अदिति—दिति—दनु—काला—दनायु—सिंहिका—मुनि—क्रोधा—प्रधा—वरिष्ठा—विनता—कपिला और कद्रू—ये दक्ष प्रजा पति की तेरह पुत्रियाँ कीर्त्तन की गयी थी ॥३८॥ ध्यान करने वाले विधाता के दक्षिण अंगुष्ठ से मनु से यह समुत्पन्न हुआ था इसी कारण से देवों और मनुष्यों में यह दक्ष—इस नाम से कहा जाता है। ॥३९॥ ब्रह्माजी के मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न हुए पुत्र दश पूर्व में ही वर्णित किये गये हैं। उनमें ही सृष्टि की रचना करने वाले हुए थे जबकि यह जनों का क्षय व्यतीत हो गया था ॥४०॥ उनके नाम ये हैं—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु। मरीचि का पुत्र लोक भावन कश्यप उत्पन्न हुआ था ॥४१॥ इसकी ही दक्ष की कन्याओं से बहुत—सी प्रजा उत्पन्न हुई थी। इसकी जाया से समुत्पन्न हुई प्रजाओं के अब आप नामों का ज्ञान प्राप्त कर लो ॥४२॥

धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुण. सोम एव च।
भर्गो विवस्वान् पूषा च सवितृत्वष्ट्विष्णवः ॥४३
अदितेर्द्वादशसुता आदित्यास्ते प्रकीर्तिताः।
एषा कनीयान् गुणवान् सदा मस्तपति प्रजा. ॥४४
स यं वशकरो मुख्यो गद्यते वो दिवाकर.।
एक एव दिते. पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥४५
चत्वारस्तस्य तनया हृष्टा मदबलान्विताः।
प्रह्लादो ह्यथ सरह्लादो वाष्कलः शिबिरेव च ॥४६

प्रह्लादस्य त्रय स्तास्तेषामाद्यो विरोचन ।
कुम्भो निकुम्भो बलवास्त्रय प्राह्लादय स्मृता ॥४७
विरोचनसुतो जातो दानशोण्डो बलिर्महान् ।
बलेश्च पुत्रो विदितो वाणो नाम महाबली ॥४८
शम्भोरनुचर श्रीमान् महाकालाह्वयश्च ■ ।
वाणस्य च शत पुत्रा कुसुम्भमकरादय ॥४६

धाता—मित्र—अयमा—शक्र—वरुण—सोम—भर्ग—विवस्वान्—पूषा—सविता—त्वष्टा—विष्णु हुए ॥ ४३ ॥ अदिति के ये द्वादश सुत हुए थे। जो आदित्य इस नाम से कीर्तित हुये थे इनम जो कमियान् अर्थात् छोटा था वह गुणवान् था जो सदा प्रजाओ को तप देता है ॥ ४४ ॥ वह ही आपका मुख्य वध के करने वाला कहा जाता है जो कि दिवाकर है। दिति का एक ही पुत्र था जो महान् बलवान् हिरण्य कशिपु नाम वाला हुआ था। ४५। उस हिरण्य कशिपु के चार पुत्र हुए थे जो परम हृष्ट और मद तथा बल से समन्वित थे। उनके नाम प्रह्लाद—सह्लाद—वाष्व और शिवि थे। ४६। प्रह्लाद के तीन पुत्र हुए थे उनमे जो सबसे आदि मे हुआ था उसका नाम विरोचन था। कुम्भ—निकुम्भ—बलवान् ये तीनो ही प्रह्लादि कहे गये थे। ४७। विरोचन के एक सुत समुद्भूत हुआ था जो दान देने मे परम श्रेष्ठ एव विख्यात था उस महान् का नाम बलि था। और जो बलि का पुत्र हुआ था वह महान् बल वाला बाण नाम से कहा गया था। ४८। वह श्रीमान् शम्भु का अनुचर हुआ था। और वह महाकाल नाम वाला था। उस बाण के एक सौ पुत्र हुए थे जो कुसुम्भ मकर आदि नाम वाले थे। ४६।

चत्वारिंशदद्ना पुत्रा विप्रचित्तिपुरसरा ।
शम्बरो नमुचिश्चव पुलोमा च तथैव च ॥५०
असिलोमा तथा केशो दुर्जयोऽय शिरास्तथा ।
अश्वशीर्षो क्षय शकुर्वियन्मूर्धा महाबल ॥५१

वेगवान् केतुमाश्चैव स्वय स्वर्भानुरेव च ।
अश्वो ह्यश्वपति कुण्डो वृषपर्वाजकस्तथा ॥५२
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुरुण्डुर्मोण्डलस्तथा ।
ऊर्ध्वबाहुश्चैकचक्रो विरूपाक्षो हराहरो ॥५३
नियन्त्रश्च निकुम्भश्च कूपटश्चपटुस्तथा ।
सरभ सुलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौतथा ॥५४
अन्यावेतौ दनो पुत्रौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
दिवाकर-निशानाथौ तावन्यौ देवपु गवौ ॥५५
एषा पुत्रैश्च पौत्रैश्च तत्पुत्रैश्चैव भूरिभि ।
जगद्व्याप्तमिद सर्वं बलवीर्यसमन्वितै ॥५६

दनु क चालीस पुत्र हुए थे जिनम विप्र चित्ति आगे होने वाले थे। उनके नाम बतलाये जाते हैं—शम्बर—नमुचि—प्रलोमा—असिलोमा—केशी—दुर्जय—अय—शिर—अश्वशीर्ष—अय—शकु—वियन्मूर्धा—महा बल—वेगवान्—के तुमान—स्वर्भानु—अश्व—अश्व पति—कुण्ड—वृष पर्वा-जक—अश्व ग्रीवा—सूक्ष्म—तरुण्डु—माण्डल—ऊर्ध्व बाहु—एक चक्र—विरु पाक्ष—हर—आहर—नियन्त्र—निकुम्भ—सूर्य—चन्द्रमा—अन्य य दोनो दनु क पुत्र थे तथा सूर्य और चन्द्रमा—दिवाकर निशानाथ—उतने दोनो देव पुङ्गव थे। उनके पुत्र और पौत्र तथा उनके पुत्र जो बहुत से थे। इन सबमे यह जगत व्याप्त हो रहा है जो कि ये सब बल और वीर्य से समन्वित थे ॥५०—५६॥

दनायूषोऽभवन पुत्राश्चत्वारो बलवत्तरा ।
वीरभद्रो विक्षरश्च बतसो वृत्तस्तथैव च ॥५७
एषा चतुर्णां वहव पुत्रा जाता द्विजोत्तमा ।
रूपसत्वबलोपेता एकैकस्य शतशतम् ॥५८
कालमास्तनया जाता कालेया इति विश्रुता ।
विख्यातास्ते महावीर्याश्चत्वारो दानवाधिपा ॥५६

विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहन्ता तथैव च ।
क्रोधशक्रस्तथा चैते कालापुत्रा प्रकीर्तिता ॥६०
सिंहिकाया सुतो जातो राहुश्चन्द्रार्कमर्दन ।
सुचन्द्रश्चन्द्रहन्ता च तथा चन्द्रविमर्दन ॥६१
वेगवान् केतुमान् चैव अय सुर्भानुरेव च ।
अश्वोधपति कृष्टुरष्टपर्वाजुरुस्तथा ॥६२
क्रोधायास्तनया जाता क्रूरकर्मकरास्तथा ।
सिंहिकाचैव क्रोधा च द्वे सुते क्रूरिके सदा ॥
ताभ्या च प्रभवो वशो ह्यत क्रूरतर स्मृत ॥६३

दनायु के विशेष बलवान् चार पुत्र हुए थे । उनके नाम ये हैं—वीर भद्र, विक्षर, वरस और वृत्त ॥५७॥ हे द्विजोत्तमो ! इन चारो मे बहुत से पुत्र समद्भूत हुए थे जो सब ही रूप एव बल से समन्वित थे और इन एक एक के सौ-सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥५८॥ काला के जो पुत्र पैदा हुए थे वे सब कालेय—इस नाम से प्रसिद्ध हुए । वे चारो दानवो के स्वामी महान् वीर्य—पराक्रम वाले और परम विख्यात हुए। ॥५९॥ विनाश—क्रोध—तथा क्रोध हन्ता और क्रोध शक्र ये काला के पुत्र बताये गय हैं ॥६०॥ सिंहिका का पुत्र राहु उत्पन्न हुआ था जो चन्द्र और सूर्य मर्दन करने वाला है। सुचन्द्र—चन्द्र हन्ता—चन्द्र विमर्दन—वेगवान्—केतुमान्—अय —सुर्भानु—अश्वोधपति—कृष्टु—अष्टपर्वा—जुर ये सब पुत्र हुये थे ॥६१॥६२॥ क्रोधा के जो पुत्र हुए थे वे क्रूर कर्मों के करने वाले थे। सिंहिका और क्रोधा ये दो पुत्रियाँ हुई थी जो सदा ही क्रूरिकाये थीं। उन दोनो से जो वश समुद्भूत हुआ था इसीलिए वह क्रूर तर कहा गया है ॥६३॥

एव एव मुने पुत्रो चात शुभ कविर्महान् ।
दैत्यदानवकालेयप्रभृतीनां सदा गुरु ॥६४
परवारस्तस्य तनया जाता अगुरयाजया ।

त्वष्टावरस्तथात्रिश्च सौकलश्चेति वाग्मिन ॥६५
तेजसा सूर्यसदृशा ब्रह्मलोक-प्रभावना ।
असुराणा सदैत्याना कालेयाना तथैव च ॥६६
क्रोधात्मजानाञ्च तथा सिंहिकातनयस्य च ।
सूतिसूतिभि सर्वं जगद्व्याप्त चराचरम् ॥६७
तेषा तु यान्यपत्यानि वर्धितानि क्रमाद्द्विजा ।
तेषा बहुत्वात् सख्यातु चिरेणापि न शक्यते ॥६८
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च अनूरुर्गरुडस्तथा ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव विनतातनया स्मृता ॥६९
शेषो वासुकिराजश्च तक्षक कुलिकस्तथा ।
कूर्मश्च सुमनाश्चेति काद्रवेया प्रकीर्तिता ॥७०

एक ही मुनि का पुत्र उत्पन्न हुआ था जो शुक्र नाम वाला था और महान् कवि हुआ था। यह दैत्य—दानव और कालेय आदि का वह सदा ही गुरु था ॥६४॥ उसके चार सुत समुत्पन्न हुए थे जो असुरों को यजन कराने वाले थे। उनके नाम त्वष्टावर—अत्रि—सौकल और वाग्मी थे ॥६५॥ ये तेज में सूर्य के ही सदृश हुए थे। ये असुरो के—दैत्यो के और कालेया के ब्रह्मलोक के प्रभावन हुए थे ॥६६॥ क्रोधात्मजो के तथा सिंहिका के पुत्र की सूति और प्रसूतियों के द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है। अर्थात् इनके पौत्र प्रपौत्र आदि इतने अधिक थे कि यह सब जगत् उनसे व्याप्त हो गया था।६७। हे द्विजो ! उनके जो सन्ततियाँ क्रम से बढ़ी थी उनकी अत्यधिक सख्या थी कि बहुत समय लगाकर भी उनकी गणना नहीं की जा सकती है ॥ ६८ ॥ विनिता के पुत्रतार्क्ष्यअरिष्ट नेमि—अनूरु—गरुड—आरुणि—वारुणि—ये सब समुत्पन्न हुये थे। जो विनिता के पुत्र कहे गये हैं ॥ ६९ ॥ शेष—वासुकिराज—तक्षक कुलिक—कूर्म—सुमना—ये सभी काद्रवेय नाम से कहे गये हैं ॥ ७० ॥

भीमसेनोग्रसेनश्च सुपर्णो गरुडस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च वीर्यवान ॥७१
अर्कस्पष्ट प्रयुक्तश्च विश्रुत सुश्रुतस्तथा ।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यात सर्वविद्वली ॥७२
शालिशीर्षश्च पर्जन्य कलिर्नारद एव च ।
इत्येते देव गन्धर्वा मुनिपुत्रा प्रकीर्तिता ॥७३
अनवद्या सानुरागा स वरा मार्गणा प्रियाम् ।
असूया सुभगा भीममिति कन्यामसूयत ॥७४
प्राधा सर्वगुणोत्थानान कश्यपात्तु तपोधनात् ।
विश्वावसु सुचन्द्रश्च सुपर्ण सिद्ध एव च ॥७५
बर्हि पूर्णश्च पूर्णांगो ब्रह्मचारी रतिप्रिय ।
भानुश्च दशमश्चैते प्राधापुत्रा प्रकीर्तिता ॥७६
इत्येते देवगन्धर्वा सन्मत पुण्यलक्षणा ।
प्राधामत महाभागा देवी देवर्षिसत्तमात ॥७७

भीमसेन—उग्रसेन—सुवर्ण—गरुड—गोपति—धृतराष्ट्र—सूर्यवर्चा—वीर्यवान्—अर्क स्पष्ट—प्रयुक्त—विश्रुत—सुश्रु—भीम—चित्ररथ—विख्यात—सर्वविद्—बली—शालिशीर्ष—पर्जन्य—कलि—नारद—ये सब देव—गन्धर्व और मुनि पुत्र कीर्तित किये गये हैं ॥७१॥ ॥७२॥७३॥ अनवद्या—सानुरागा—सवरा—मार्गणा—प्रिया—असूया—सुभगा और भीमा इन कन्याओं को प्रसूत किया था ॥७४॥ समस्त गुणों के समुत्थान स्वरूप तप के ही धन वाले कश्यप मुनि से प्राधा ने विश्वावसु—सुचन्द्र—सुपर्ण—सिद्ध—बर्हि—पूर्ण—पूर्णाङ्ग—ब्रह्मचारी—रतिप्रिय और भानु ये दश पुत्रों को जन्म दिया था जो कि प्राधापुत्र कहे गये हैं ॥७५॥७६॥ ये सब देव गन्धर्व थे जो निरन्तर पुण्य लक्षणों वाले थे । महा भागाप्राधाने देवर्षियों में परम श्रेष्ठ से देवी को प्रसव किया था ॥७७॥

अलम्बुषा मिश्रकेशी गामिनी च मनोरमा ।
विद्युत्पर्णानघारम्भा ह्यरणा रक्षितातुला ॥७८
सुबाहु सुरता चैव मुरजा सुप्रिया तथा ।
वपुस्तिलोत्तमा चेति मुख्या अप्सरस स्मृता ॥७९
अतिबाहुस्तुम्बुरुश्च हाहा हूहूस्तथैव च ।
गन्धर्वाणामिमे मुख्या देवतुल्या प्रकीर्तिता ॥८०
अमृत ब्राह्मणा गावो मुनयोऽप्सरसस्तथा ।
कपिलातनया प्रोक्ता महाभागा महोल्गवा ॥८१
इति दक्षसुताना ये कश्यपात्तनया स्मृता ।
तैरिद सकल व्याप्त जगत्स्थावरजगमम् ॥८२
एव यज्ञवराहस्य यज्ञरूपस्य पालनात् ।
निभ्योऽग्निभ्यो मनोस्तस्मात् स्वायम्भुव महात्मन ॥८३
मुनिभ्यश्चैव सप्तभ्य कश्यपादिभ्य एव च ।
नरनारायणाभ्यातु व्यतीतेऽकालिके लये ।
पुन प्रजा पुरा सृष्टा हरिणानेकरूपिणा ॥८४
एव पुनरभूत् सृष्टि सृष्टिस्थित्यन्तकारिण ।
हरेस्तस्य प्रसादेन नरनारायणात्मन ॥८५

अलम्बुषा—मिश्रकेशी—गामिनी—मनोरमा—विद्युत्पर्णा—अनघा-रम्भा—अरुणा--रक्षिता---अतुला---सुबाहु—सुरता---मुरजा----सुप्रिया--वपु--तिलोत्तमा ये सब प्रमुख अप्सरायें कही गयी है ॥७८॥ ॥ ७९ ॥ अति बाहु—तुम्बुरु—हा हा हू हू—ये सब गन्धर्वो म मुख्य हुए हैं जो देवो के ही तुल्य कीर्तित किये गये हैं ॥ ८० ॥ अमृत—ब्राह्मण—गौएं—मुनिगण—अप्सरायें ये कपिला तनय कहे गये हैं जो महान् भाग्य वाले और महान् उत्सवो वाले हैं। ॥ ८१ ॥ इस प्रकार से ये दक्ष प्रजापति की सुताओ के पुत्र कश्यप ऋषि से समुद्भूत हुए बताये गये हैं। उनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण स्थावर—

जङ्गम अर्थात जड़--चेतन जगत् व्याप्त हो रहा है ॥८२॥ इस प्रकार से यज्ञ के स्वरूप वाले यज्ञ वराह के पातन से तीन अग्नियों से उन महात्मा मनु का स्वायम्भुव हुए थे ॥८३॥ सात मुनियों ने और कश्यप आदि से नर-नारायण में अकालिक लय के व्यतीत हो जाने पर पुनः पहिले अनेक रूप वाले हरि के द्वारा प्रजा का सृजन किया गया था। ॥८४॥ उन नर-नारायण के स्वरूप वाले तथा सृष्टि-स्थिति और संहार के करने वाले भगवान् हरि के प्रसाद से पुनः यह सृष्टि हुई थी ॥८५॥



॥ शरभ काय-त्याग कथन ॥

ईश्वर शारभं कायं यथा तत्याज यत्नतः ।
तन्मे निगदतो भूयः शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१
हते यज्ञवराहे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच शरभं गत्वा सामयुक्तं जगद्धितम् ॥२
देहाभोगेन भवतः पूरितं भूरियोजनम् ।
उपसंहर तस्मात् त्वं कायं लोकभयंकरम् ॥३
तव युद्धेन सकलं प्रणष्टं भुवनत्रयम् ।
आकाशं गन्तुं त्वां दृष्ट्वा बिभेत्यद्य जनार्दनः ।
तस्मात् त्वमूर्ध्वलोकानां हिताय त्यज वै तनुम् ॥४
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा सुरज्येष्ठस्य शंकरः ।
तत्याज शारभं कायं तोयोपर्येव तत्क्षणात् ॥५
त्यक्तस्य तस्य देहस्य शंकरेण महात्मना ।
अष्टौ पादा अष्टमूर्तेस्तेषु चाष्टसु भेजिरे ॥६
आद्यन्तु दक्षिणं पादमाकाशमगमद्द्रुतम् ।
तद्वामं मिहिरं भेजे पश्चाद् दक्षिणजं विधो ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठो ! ईश्वर ने शारभ शरीर को यत्न पूर्वक जिस तरह से परित्याग किया था उसे कहने वाले मुझसे पुनः आप लोग श्रवण कीजिए ।१। यज्ञ वराह के निहत हो जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने शरभ के समीप में जाकर साम से युक्त अर्थात् परम शान्ति पूर्वक जगत् के हित की बातें कही थी ।२। ब्रह्माजी ने कहा था कि आपके देह के आभोग अर्थात् विस्तार से बहुत से योजन तक यह स्थल पूरित हो गया है। इस कारण से आप लोकों को भय देने वाले शरीर का उपसंहरण कीजिए ।३। आपके युद्ध से ही यह सम्पूर्ण तीनों भुवन नष्ट हो गये हैं। आप को आकाश में गमन करने के लिये उद्यत देखा। आज भगवान् जनार्दन भयभीत हो रहे हैं। इस कारण से आप ऊपर के लोकों की भलाई के लिये इस शरीर का परित्याग कर दीजिए ।४। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा---सुरों में सबसे बड़े ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने उसी क्षण में जल के ऊपर ही शारभ शरीर को त्याग दिया था ।५। महात्मा शङ्कर ने त्याग किये हुए उस देह के आठ पाद अष्ट मूर्ति के आठों में सेवित किए थे ।६। सबसे आदि में होने वाला दक्षिण पाद शीघ्र ही आकाश की मना गया था। उसने वाम पाद को मिहिर ने सेवित किया था और पीछे दक्षिणज दिशि में रहा था ।।७।।

वामन्तु ज्वलनं भेजे पृष्ठाग्र पद्गत क्षितिम् ।
पृष्ठाग्रवामं सलिलं तत्पश्चाद् दक्षिणं तथा ।।८
ययौ वामपद भेजे होतारं सर्वतोमुखम् ।
एवं तस्याष्टमूर्तेस्तु अष्टमूर्तिषु तत्क्षणात् ।
अष्टौ पादास्तथा भेजुः स्वं स्व तेजो ययुः पदम् ।।९
मध्यं तु शारभं कायं शंकरस्य महात्मनः ।
कपाली भैरवो भूतश्चण्डरूपी दुरासदः ।।१०
मस्तिष्कमेदसा युक्तं मांसं जुहवति ते शुचौ ।

ब्रह्मकपालपात्रस्थ सुराभिर्देवपूजनम् ॥११
बलिर्मनुष्यमासेन पान तु रुधिर सदा ।
सुरया पारण यज्ञे कपालोद्भटधारणम् ॥१२
व्याघ्रचमपरिधान समल त्रिवलीवृतम् ।
एव कुर्वन्ति सतत कपालव्रतधारिण ॥१३
कपाली भैरवस्तेषा देव पूज्यस्तु नित्यश ।
श्मशानभैरवो मोऽसौ यो महाभैरवाह्वय ॥१४

वाम पाद ने ज्वलन का सेवन किया था । पदगत पृष्ठाग्र ने क्षिति का सेवन किया था जो पृष्ठ का अग्र वाम था उसने सलिल का सेवन किया था । इसके पश्चात् दक्षिण को गया था । ८ । वामपाद ने सर्व तो मुख होता का सेवन किया था । इस प्रकार से उस अष्टमूर्तियो मे उसी क्षण मे आठ पादो ने उसी भाँति सेवन किया था और अपने-अपने तेज ने पद को प्राप्त किया था । ९ । मध्य जो शारभ काय का था वह महात्मा शङ्कर का चण्ड स्वरूप वाला परम दुरामद कपाली भैरव हो गया था । १० । वे अग्नि मे मस्तिष्क भेद से युक्त मास का हवन करते है । ब्रह्मक पाल के पात्र मे स्थित सुराओं से देव पूजन किया करते है । ११ । मनुष्य के मास से बलि देते है और सदा रुधिर का पान किया करते है । यज्ञ मे सुरा से पारण करते है तथा कपालोद्भट को धारण करते है । १२ । व्याघ्र चर्म का परिधान और त्रिवली वृत समल करते है । जो कपाल व्रत के धारण करने वाले हैं वे इसी भाति निरन्तर किया करते है । १३ उनका कपाली भैरव देव नित्य ही पूज्य हुआ करता है । जो यह श्मशान भैरव है और महा भैरव के नाम वाला है । १४ ।

बालसूर्यसमोद्योत सदाष्टादशबाहुभि ।
विभ्राजमानो रक्ताक्ष सर्वदा नायिकाव्रजे ॥१५
कालीप्रचण्डाप्रमुखं क्रीडमानस्तु नित्यश ।

सद्योदग्धनृमांसाशी गलल्लोललद्भुज ॥१६
लोहिताहारविषय प्रेतासनगत सदा ।
स्थूलवक्त्रोऽथ सप्योष्ठो ह्रस्वस्थलपदालय ।
विनोदी वादनो लोके साट्टहासस्तु भैरव ॥१७
एव स च महादेवो महाभैरवरूपधृक् ।
भस्यशारभकायेन कायं दध्रे महाभुज ॥१८
स जगाम ततो देवा हरस्य प्रमथान प्रति ।
गणै सार्धं तथाकाशे विक्रीडति स भैरव ॥१९

वह भैरव कैसे स्वरूप वाले हैं—यही बतलाते हैं—उनका बाल सूर्य के समान प्रकाश होता है—सदा अठारह बाहुओं से विभ्राजमान रहते हैं—उनके नेत्र रक्त वर्ण वाले हैं—वे सर्वदा नासिकाओं के समूहों के साथ नित्य क्रीडा किया करते हैं जिनके कानों और प्रचण्ड मुग्दर हैं—व तुरन्त ही दग्ध करके मास का अशन किया करते हैं और गल पर लोल अर्थात् चञ्चल भुजाओं से शोभित हैं । १५ । १६ । लोहित आहार करने वाले और सदा प्रेत के आसन पर विराजमान रहा करते हैं । उनका मुख स्थूल रहा करते हैं । उनका मुख स्थूल होता है तथा ओष्ठलम्ब हैं और ह्रस्व स्थल पद के आलय वाले हैं । वे परम विनोद करने वाले तथा लोक मे वादन वाले और अट्टहास से युक्त भैरव हुआ करते हैं । १७ । और वे महादेव इस प्रकार से भैरव के स्वरूप को धारण करने वाले हैं । महान भुजाओं वाले वे भस्म शारभ काय के द्वारा काम को धारण करते थे । १८ । वह देव फिर हर के प्रमथों की ओर गये थे । वह भैरव अपने गणों के साथ आकाश में क्रीडा किया करते हैं ॥१९॥

स महाभैरवो देव पूज्यमानो जगज्जनै ।
अद्यापि कुरुते नित्यमिष्टकामस्य साधनम् ॥२०
चैत्र-शुक्लचतुर्दश्या मद्यामवपय फलै ।

भासैर्मत्स्यै मरुधिरै सकृद्यो भैरव यजेत् ॥२१
स सर्वकामान् ससाध्य भोगान् भुक्त्वा यथेप्टत ।
प्रयाति शम्भुभवमारुह्य वृषभ वरम् ॥२२
एतद्व कथित सर्व यत्पृप्टोऽह द्विजोत्तमै ।
भवदिभर्यच्च वोऽन्यद वा रोचते पृच्छ मा तु तत् ॥२३

वह महा भैरवदेव जगत् के जनो के द्वारा पूज्यमान होता है और आज भी वह नित्य ही अभीप्ट कामनाओ की साधना किया करते हैं । ।२०। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि म मधु आसव पय और फलो के द्वारा जो भी कोई मास मत्स्य और रुधिरों से एक बार भी भैरव का यजन किया करता है वह अपनी समस्त कामनाओ की ससिद्धि प्राप्त करके और यथप्ट भोगो का उपभोग करके परम श्रेष्ठ वृषभ पर समारूढ होकर भगवान् शम्भु के भुवन मे प्रयाण किया करता है ।२१।२२। द्विजोत्तमा के द्वारा जो भी कुछ मुभसे पूछा गया था वह यह सब मैंन आपको कथन करके बतला दिया है और जो भी आप लोगो को मझसे पूछना हो या जो आपको रुचता हो उसे भी आप लोग मुझस पूछिय ॥२३॥



॥ धरा दु ख विमोचन कथन ॥

पथ वराहपुत्रोऽसौ नरको नाम वीर्यवान् ।
सजातो असुरसत्त्व स देवदेवीसुतोऽपि सन् ॥१
चिरजीवी कथ सोऽभूत् किमर्थमुदरे चिरम् ।
पृथिव्या न्यवसज्जात कुत्र वा स महाबल ॥२
मोऽसुराणा कथ राजा पुरं नस्य किमाह्वयम् ।
मलिनीरतिसजात ग श्रितो पोत्रिणस्तथा ॥३

श्रूयते मुनिशार्दूल कथं भूतस्तथाविध ।
एतत्सर्वमशेषेण पृच्छतां त्वं वदस्व न ॥४
त्वं नो गुरुश्च शास्ता च सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान ।
कथं लब्धवरो भूतो ब्रह्मणा प्रभविष्णुणा ॥५
शृण्वन्तु मुनय सर्वे यत् पृष्टोऽहं द्विजोत्तमा ।
यथा स नरको जातो धरासुतो महासुर ॥६
रजस्वलाया गोत्राया गर्भे वीर्येण पौत्रिण ।
यतो यातस्ततोभूतो देवपुत्रोऽपि सोऽसुर ॥७

ऋषियों ने कहा--वराह का पुत्र यह नरक नाम वाला कैसे बड़ा वीर्य वान् समुत्पन्न हुआ था । वह असुर सत्त्व वाला था और देव तथा देवी का पुत्र भी था । १ । वह बहुत समय पर्यन्त जीवित रहने वाला कैसे हुआ था ? और वह किस प्रयोजन के लिये बहुत समय तक उदर मे रहा था । वह महा बलवान् कहाँ पर समुत्पन्न हुआ था जो कि पृथ्वी पर निवास करता रहता था ? । २ । वह असुरो का राजा कैसे हो गया था और उसके पुर का क्या नाम था । वह मलिनी की रति से समुत्पन्न हुआ था तथा वह भूमि पर पौत्रिण था । ३ । हे मुनि शार्दूल ! वह कैसे उस प्रकार का भूत सुना जाता है ? इस सबको पूर्ण रूप से पूछने वाले हमारे सामने आप कृपा कर वर्णन कीजिए । आप हमारे गुरु हैं शास्ता हैं और आप सभी कुछ प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले हैं । । ४ । ५ । वह प्रभु विष्णु ब्रह्माजी के द्वारा वरदान प्राप्त करने वाला करने वाला कैसे हो गया था । ५ । मार्कण्डेय मुनि ने कहा---हे द्विजोत्तमो ! आप समस्त मुनिगण अब श्रवण करें जो भी आपने मुझसे पूछा है जिस प्रकार से वह धरा का पुत्र नरक महासुर समुत्पन्न हुआ था । ॥६॥ रजस्वला गोत्रा के गर्भ मे वीर्य के द्वारा क्योंकि वह गया था इसी से वह पौत्रिण देवपुत्र होता हुआ भी वह महासुर हो गया था । ७ ।

गर्भसत्य महावीर ज्ञात्वा ब्रह्मादय सुरा ।

वराहपुत्र दुर्धर्ष महाबलपराक्रमम् ॥८
गर्भ एव तदा देवा शक्त्या दध्रुश्चिर दृढम् ।
यथा कालेऽपि सम्प्राप्ते नो गर्भाज्जायते स च ॥९
ततस्त्यक्तशरीरस्तु वराहस्तनयं सह ।
अतीव शोकसन्तप्ता जगद्धात्र्यभवत् क्षिति ॥१०
शोकाकुला सा व्यलपच्चिरकाल मुहुर्मुहु ।
प्रकृतिस्था क्षितिर्भूता माधवेन प्रबोधिता ॥११
तत कालेऽपि सम्प्राप्ते दैवशक्त्या यदा धृत. ।
न गर्भ प्रसव याति तदाभूत् पीडिता क्षिति. ॥१२
कठोरगर्भा सा देवी गर्भभार न चाशक्त् ।
यदा वोढु तदा देव माधव शरण गता ॥१३
शरण्य शरण गत्वा माधव जगता पतिम् ।
प्रणम्य शिरसा देवी वाक्यमेतदुवाच ह ॥१४

उस महासुर का गर्भ में स्थित हुए को जान ब्रह्मा आदि सुरों ने ज्ञात करके कि वराह पुत्र महान् बलवान् तथा पराक्रमी और दुर्धर्ष है ॥ ८ ॥ तब तो देवों ने उसको दृढ़ता से बहुत काल पर्यन्त शक्ति से गर्भ में ही धारण करा दिया था । तात्पर्य है कि देवों ने ऐसा ही किया था कि वह अधिक समय तक गर्भ में ही बना रहे । प्रसव का समुचित समय प्राप्त हो जाने पर भी वह गर्भ से बाहिर जन्म लेकर नहीं आवे ॥ ९ ॥ फिर वराह के पुत्रों के साथ शरीर को त्याग करने वाली अत्यधिक शोक से सन्तप्त जगत् की धात्री क्षिति हो गई थी ॥१०॥ शोक से व्याकुल वह पृथ्वी बार-बार चिरकाल पर्यन्त विलाप कर रही थी। जब भगवान् माधव ने उसको प्रबोधित किया तो वह पृथ्वी प्रकृति में सस्थित हुई थी ॥११॥ फिर इसके अनन्तर समय के प्राप्त होने पर भी देवों की शक्ति से जो धारण किया गया था वह गर्भ प्रसव को प्राप्त होता है उस समय में वह पृथ्वी बहुत पीड़ित हो गई थी ॥१२॥

कठोर गर्भ वाली वहदेवी गर्भके भारको सहन न कर सकी थी। जब वहन करने में भूमि असमर्थ हो गई तो वह भगवान् माधव की शरणागति में प्राप्त हुई थी। १३। जो परम शरण्य हैं अर्थात् रक्षक हैं ऐसे जगतों के स्वामी माधव के समीप जाकर देवी ने शिर को झुका कर प्रणाम किया था और यह वाक्य बोली ॥ १४ ॥

नमस्ते जगदव्यक्तरूप कारणकारण ।
प्रधान पुरुषातीत स्थित्युत्पत्तिलयात्मक ॥१५
जगन्नियोजनपर स्वाहाभोगधरोत्तम ।
जगदानन्दनन्दात्मन् भगवन् जगदीश्वर ॥१६
नियोजको नियोज्यश्च विभ्राजन् विष्णुरव्यय ।
नमस्तुभ्य जगद्धातस्त्रिलोकालय विश्वकृन् ॥१७
यः पालयति नित्यानि स्थापयत्येव तत्परः ।
त्वं त्वा नियमरूपेण नमामि जगदीश्वर ॥१८
त्वं माधव. प्रवेकश्च कामः कामालयो लयः ।
प्रसूतिच्युतिहेत्वर्थ-त्राणकारणमीश्वर ॥१९
न यस्य ते क्लेदाय स्युरापो नोष्मा तयोष्मणे ।
नशीताय भवेच्छीत तस्मै तुभ्य नमोनमः ॥२०
न समुद्रः प्लवकरो न शोषाय दहात्मकः ।
न मृत्यवे यस्य यमस्तस्मै तुभ्य नमोनम. ॥२१
यच्चिद्धाये योगिभिः शान्तहेहै
रुन्मार्गाणां यात्यरिध्येयकृत्यम् ।
नित्य यद्रूपमार्गाविमक्त
स त्वं त्राहि त्राणमिच्छन् धरित्रीम् ॥२२

पृथिवी ने कहा—हे जगत् के अव्यक्त स्वरूप आप कारण के कारण हैं। आप प्रधान और पुरुष से परे हैं तथा उत्पत्ति स्थिति लय के स्वरूप वाले हैं आपको मेरा प्रणाम अर्पित है। १५

जगत् के नियोजन म पर—स्वाहा भोग धरा म उत्तम है आप जगत् के आनन्द के नन्दात्मा हैं। हे भगवन् ! आप जगत् के ईश्वर हैं।१६। आप नियोजक और नियोज्य है। आप विशेष रूप से भ्राजित है आप अव्यय विष्णु है। आप जगत् के धाता हैं—तीनों लोकों के आलय अर्थात् आधार हैं और आप विश्व की रचना करने वाले है आपके लिये मेरा नमस्कार है।१७। जो नित्या का पालन करते है और तत्पर होकर जो स्थापन किया करता है। आप ऐसे है उन आपको हे जगदीश्वर ! मैं प्रणाम करती हूँ।१८। आप माधव हैं और पवेक है—काम—कामालय और लय है। हे ईश्वर ! आप प्रसूति,च्युति और हेतु के लिये त्राण करने के कारण है।१९। आपको विल्लन करन म जल समथ नही है और उष्मा ओज को ऊष्ण बनाने की शक्ति रखती है—शीत आपको शीतल करने मे असमथ है एसे उन आपकी सेवा मे बार-बार नमस्कार अर्पित है।२०। महा सागर प्लवन करने वाला नही होता है और अग्नि शोषक नही है। यमराज जिसकी मृत्यु करने वाला नही है उन आपको बारम्बार प्रणाम है।२१। जो शान्त चित्त वाले योगियों के द्वारा चित् धारण करने के योग्य है—जो उन्मार्गी है उनके लिय अरियों को ध्येय क्रत्य को प्राप्त होते है—जो नित्य ही यद्रूप माग मे अवसक्त है वह आप त्राण की इच्छा करते हुए इस धरित्री की रक्षा कीजिए।।२२।।

इति स्तुतो हृषीकेशो जगद्धात्र्या तदा हरिः।
प्रादुर्भूतस्तदा प्राह धरित्रीं दीनमानसाम्।।२३
कथं दीनमना देवि धरित्रि परिदेवसे।
तव वा किं कृता पीडा वेत्तुमिच्छामि तामहम्।।२४
मुख से परिशुष्कं तु शरीरं कान्तिवर्जितम्।
आकुलं नयनद्वन्द्वं भ्रूविभ्रमविवर्जितम्।।२५
ईदृशं तव रूपं तु दृष्टपूर्वं कदापि न।

रूपस्य तु विपर्यासे दुःखबीजं च भाषये ॥२६
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य माधवस्य जगत्पते ।
विनयावनता देवी पृथ्वी प्राह सगद्गदम् ॥२७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस समय में जगत् की धात्री के द्वारा इस प्रकार से स्तवन किये गये भगवान् हृषीकेश प्रकट हो गये थे और प्राःदुर्भूत होकर उन्होंने परमाधिक दीन मन वाली धारिणी से कहा—श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! हे धरित्रि ! आप किस कारण से ऐसी दीन मन वाली होती हुई विलाप कर रही हैं अथवा आपको किनके द्वारा पीड़ा दी गयी है उसको मैं अब जानने की इच्छा करता हूँ।२४। आपका मुख एकदम सूखा हुआ है और आपके शरीर की कान्ति क्षीण हो गई है आपके दोनों नेत्र परम व्याकुल हैं जो कि भ्रूओं के विभ्रमों से रहित हैं।२५। आपका इस तरह का स्वरूप पहिले कभी भी नहीं देखा गया था। इस रूप के विपर्यास में कुछ न कुछ दुःख अवश्य ही प्रतीत होता है। वह दुःख का बीज क्या है इसे बतलाइये ॥२६॥ उन जगत् के पति माधव प्रभु के इस वचन का श्रवण करके विनय से अवनत होती हुई देवी पृथ्वी गद्गदता के साथ यह बोली।२७।

न गर्भभारं सवोढुं माधवाहं क्षमाधुना ।
भृशं नित्यं विषीदामि तस्मात् त्वं त्रातुमर्हसि ॥२८
त्वया वराहरूपेण मलिनी कामिता पुरा ।
तेन कामेन कुक्षौ मे यो गर्भोऽस्य त्वयाहितः ॥२९
काले प्राप्तेऽपि गर्भोऽस्य न प्रच्यवति माधव ।
कठोरगर्भा तेनाहं पीडितास्मि दिने दिने ॥३०
यदि न त्राहि मा देव गर्भदुःखाज्जगत्पते ।
न चिरादेव यास्यामि मृत्योर्वशमसंशयम् ॥३१
कदापि नेदृशो गर्भः पूर्वं माधव वै धृतः ।

योऽचला चालयति मा सरसीमिव कुञ्जरः ॥३२
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्या पृथिव्या पृथिवीपतिः ।
आह्लादयन् प्रत्युवाच हरिस्तप्ता लतामिव ॥३३
न धरे ते महद्दुःख चिरस्थायि भविष्यति ।
शृणु येन प्रकारेण चानुभूतमिद त्वया ॥३४
मलिन्या सहसगेन यो गर्भः सन्धृतस्त्वया ।
सोऽभूदसुरसत्वस्तु घृष्टे पुत्रोऽपि दारुणः ॥३५

पृथ्वी देवी ने कहा—हे माधव ! इस समय मैं गर्भ के सभार को वहन करने मे समर्थ नही हूँ । मैं नित्य ही अत्यधिक उत्पीड़ित हो रही हूँ । इस कारण से आप मेरी रक्षा करने के योग्य होते है । २८ । आपने वराह के रूप से पहिले मलिनी से काम वासना की थी उसी काम से मेरी कुक्षि मे जो यह गर्भ आपने आहित किया था । २९ । हे माधव ! प्रसव के काल के सम्प्राप्त होने पर भी यह गर्भ प्रच्यवन नही करता है । उसी से मैं परम कठोर गर्भ वाली हूँ और प्रतिदिन बहुत पीड़ित हो रही हूँ । ३० । हे जगत्पते ! यदि आप हे देव मेरी रक्षा नही करते हैं तो मैं शीघ्र ही विना किसी सशय के मृत्यु के वश मे चली जाऊँगी । ३१ । हे माधव ! पूर्व मे इस प्रकार का गर्भ किसी भी नारी ने धारण नही किया था जो कि गर्भ मुझ अचला का भी सरोवर को हाथी की ही भाँति चालित कर रहा है । ३२ । पृथिवी के स्वामी ने इस उस पृथिवी के वचन का श्रवण करके तपी हुई लता की ही भाँति उसको आह्लादित करते हुए भगवान् हरि ने उत्तर दिया था । । ३३ । श्री भगवान् ने कहा—हे धरे ! आपका यह महान् दुःख चिरकाल पर्यन्त नही ठहरेगा आप सुनो जिस प्रकार से आपने इस महा दुःख का अनुभव किया है । ३४ । मलिनी के साथ सङ्गम से जो गर्भ आपने धारण किया है वह घृष्टि का पुत्र भी महान् दारुण असुर सत्व गया है । ३५ ।

ज्ञात्वा तस्य च वृत्तान्तं गर्भस्थं द्रुहिणादय ।
देवैर्भि. शक्तिभिर्बद्धस्तव कुक्षौ तु तत् पुर: ॥३६
सर्गादौ यदि जायेत भवत्यास्तादृश: सुत ।
स जयेत् सकलान् लोकांस्त्रीनिमान् ससुरासुरान् ॥३७
अतस्तस्य बल वीर्यं ज्ञात्वा ब्रह्मादय सुरा ।
शापसृष्टिकाले ते गर्भं तथा धूर्जगज्जा कृत ॥३८
अष्टाविंशतितमे प्राप्ते आदिसर्गाच्चतुर्युगे ।
त्रेतायुगस्य मध्ये तु सुत त्व जनयिष्यसि ॥३९
यावत् सत्ययुगं याति त्रेताद्यं च वरानने ।
तावद् वह महागर्भं दत्त कालो मया तव ॥४०
न यावज्जायते धात्रि गर्भस्ते ह्यविदारण. ।
तावद् गर्भवती दु ख न त्व प्रप्स्यसि भामिनी ॥४१

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णु पृथिवी गर्भिणी तदा ।
नाभौ पस्पर्श दयितां शखाग्रेणातिपीडिताम् ॥४२

सा स्पृष्ठा विष्णुणा पृथ्वी शरीर लघु चासदत् ।
गर्भेऽपि लघिमान सा प्रापातीव सुखप्रदम् ॥४३

अगर्भा यादृशी नारी तादृशी माप्यजायत ।
धृतगर्भापि मुदिता सा बभूव जगत्प्रसू ॥४४
तत पुनरिद वाक्यमुक्त्वा स भगवान् क्षितिम् ।
पुन प्रसादयामास सामभिर्बहुभिश्च ताम् ॥४५
जगद्धात्रि महासत्वे त्व धृतिर्धारणात्मिका ।
सर्वेपा धारणाद्देवि त्व धात्रीति प्रगीयसे ॥४६
क्षमा यस्माज्जगद्धर्तुं शक्ता क्षान्तियुताश्र यत् ।
सर्व वसु त्वयि न्यस्त यस्माद्वसुमती तत ॥४७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भगवान् विष्णु ने उस समय में गर्भिणी पृथ्वी से यह कह कर उस अत्यन्त पीडित दयिता की नाभि मे अपने शख के अग्र भाग से स्पर्श किया था । ४२ । भगवान् विष्णु के द्वारा स्पर्श की गयी उस पृथ्वी ने अपने शरीर को हलका हुआ प्राप्त किया था । उसने गर्भमे भी हलकापन को प्राप्त किया था जो कि अतीव सुख प्रदान करने वाला था ।४३। जैसे कोई नारी बिना गर्भ वाली होवे वैसी ही वह भी होगई थी । गर्भके धारण करने वाली भी वह जगत् को प्रसव देन वाली परम प्रसन्न हो गई थी । ४४ । इसके अनन्तर उन भगवान् ने यह वाक्य पृथ्वी से कहकर फिर बहुत सान्त्वना देने वाले वचनों से उसको प्रसन्न कर दिया था । ४५ । हे जगद्धात्रि ? आप तो महान् सत्व वाली हैं और आप धारण करने के स्वरूप वाली धृति हैं। हे देवि ! आप सबके धारण करने ही से धात्री—इस नाम से गायी जाती हैं । ४६ । आप जो क्षान्ति से युक्त है इसीलिये इस जगत

॥ नरक जन्म कथन ॥

अथ काले वहुतिथे व्यतीते द्विजसत्तमा ।
विदेहविपये राजा जनको नाम वोर्यवान ॥१
सर्वराजगुणैर्युक्तो राजनीतिविर्वाधित ।
सत्यवाक् शीलवान दक्षो ब्रह्मण्य प्रयत शुचि ॥२
देवद्विजगुरूणा च पूजग्सु निरत सदा ।
बभूव सर्वलोकाना पितेव परिपालक ॥३
तस्य राज्ञ सुतो नाभूत् प्राप्ने कालेऽपि वै सदा ।
तदा स विमना भूत्वा चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ॥४
एकदा सोऽथ शुश्राव नारदस्य मुखान्नृप ।
अपुत्रो नृपतिर्वृद्धो नाम्ना दशरथो महान् ॥५
पुत्रान् लेभे महामरवास्ध्वरेण महामति ।
अयोध्याया नगर्या तु ऋष्यश्रृगपुरोगमं ॥६
मुनिभिर्विहितैर्यज्ञलंब्धवान् सभूप सुतान् ।
राम च भरत चैव शत्रुघ्न लक्ष्मण तथा ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे द्विज सत्तमो ! बहुत दिनो वाले काल के व्यतीत हो जाने पर विदेह देश मे बहुत ही वीर्य—पराक्रम वाला राजा जनक हुआ था ।१। वह राजा सभी सद्गुणो से सयुत और राजनीति म परम विख्यात था । वह राजा सत्य बोलने वाला—शील से युत—दक्ष—शरण्य—प्रयत और शुचि था ।२। वह राजा देवों और द्विजों एव गुरुओ की पूजा मे सदा निरत रहा करता था । वह सभी लोकों का एक पिता ही के समान परिपालन करने वाला था ।३। बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी उसके कोई पुत्र नही हुआ था । उस समय मे वह उदास होकर चिन्ता के ध्यान मे परायण हो गया था ।४। उस राजा ने एक बार देवर्षि नारदजी के मुख से श्रवण

किया था कि राजा दशरथ परम वृद्ध हो गया है फिर भी वह महान् राजा पुत्र से हीन ही है । ५। उस महती मति वाले राजा ने यज्ञ के द्वारा महान् सत्व वाले पुत्रो की प्राप्ति की थी । अयोध्या नगरी मे मुनियो के द्वारा जिन मे ऋष्य भृङ्ग प्रधान तथा नायक थे—किए हुए यज्ञो के द्वारा उस राजा ने पुत्रो की प्राप्ति की । उन पुत्रो के शुभ नाम थी राम—भरत—लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे ॥ ७॥

महासत्वान् महावीरान् देवगर्भोपमान्प्रभून् ।
तच्छ्रुत्वा जनको राजा प्रविश्यान्त पुर स्वकम् ।
भार्याभिर्मन्त्रयामास यज्ञार्थं पुत्रजन्मने ॥८
मन्त्रयित्वा तदा राजा महिषीप्रमुखं स्वकम् ।
चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत् ॥९
तत पुरोधस राजा गौतम मुनिसत्तमम् ।
तत् पुत्र च शतानन्द पुरोधायोवरोन्मन्त्रयत् ॥१०
द्वौ पुत्रौ तस्य सजातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ ।
एका च दुहिता साध्वी कन्यारत्नवरा शुभा ॥११
नारदस्योपदेशेन यज्ञभूमि ययौ नृप ।
[illegible] दारयामास यज्ञवाटाचधिक्वयम् ॥१२
तद्भूमिजाराजीताया शुभा कन्या समुत्थिताम् ।
सैषं राजा गृहे पुत्री सर्वलक्षणसंयुताम् ॥१३
सप्ता तु आत्माणाया पृथिव्यन्तर्हिता स्वयम् ।
उवाह सतत [illegible] गौतम [illegible] नृपत ॥१४

स्वयं अपनी चारों रानियों के साथ यज्ञ करने के लिये दीक्षित होगया था । ६ । इस के अनन्तर राजा ने मुनिश्रेष्ठ गौतम को पुरोहित बना कर और उनके पुत्र शतानन्द को आगे करके यज्ञ किया था । १० । उस यज्ञ भूमि मे परम मनोहर उसके दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । और एक परम साध्वी—शुभा और भूमि के अन्दर गयी हुई सुता उत्पन्न हुई थी । ११ । देवर्षि नारदजी के उपदेश से फिर राजा ने यज्ञ भूमि को हल के द्वारा दारित किया था जो भूमि यज्ञ वार की अवधि मे थी स्वयं ही राजा ने उसमे हल चलाया था । १२ । उस भूमि मे जात सीता मे परम शुभ समुत्थित कन्या को राजा ने प्राप्त किया था जो सभी शुभ लक्षणो से समन्वित थी । राजा बहुत ही प्रसन्न हो गया था । । १३ । उसके उत्पन्न होते ही वह स्वयं पृथिवी के अन्तर्हित थी पृथिवी ने यह वचन नृप—गौतम और नारद से कहा था । १४ ।

एषा सुता मया दत्ता तव राजन मनोहरा ।
एनां गृहाण सुभगां कुलद्वयशुभावहाम् ॥१५
अनया मे महाभारस्तत्क्षतो हेतुभूतया ।
क्षयं यास्यति भारार्ति मोचयिष्यामि दारुणाम् ॥१६
रावणाद्या महावीरा कुम्भकर्णादयोऽपरे ।
नाशं यास्यति दुर्घर्षा कृतेऽस्या राक्षसा परे ॥१७
त्वच मोदं दुराधर्षं दुहितृकृतिजं नृप ।
अवाप्स्यसि सुराणां च पितॄणामृणशोधनम् ॥१८
किन्त्वेकं समयं कार्यस्त्वया मम नरोत्तम ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि पुरो नारदगौतमौ ॥१९
निहते रावणे वीरे भारार्ति-रहिता सुखम् ।
सुपुत्रं जनयिष्यामि यज्ञभूमावहं तव ॥२०
तं पुत्रवत् पालयिता भवान् नृपतिसत्तम ।
यावद्व्यतीतबाल्यं सन् भविता तनयो मम ॥२१

व्यतीतबाल्य तमहं पालयिष्ये स्वयं नृप ।
तस्य स्यान्मानुषो भावो यथा त्वं तन्करिष्यसि ॥२२

पृथ्वी ने कहा—हे राजन् ! यह पुत्री मैंने आपको दी है जो बहुत ही मनोहर है । इसका ग्रहण आप करिए । यह परम सुभगा है और दोनों ही कुलों के शुभ का आवाहन करने वाली है ।१५। तात्त्विक रूप से हेतु भूता इसके द्वारा मेरा महान् भार क्षय को प्राप्त हो जायगा और मैं भार की पीड़ा का मोचन करूँगी जो कि इस समय में मुझे बहुत ही दारुण प्रतीत हो रही है ।१६। इसके लिये रावण आदि महान् वीर तथा दूसरे कुम्भ कर्णा आदि जो बहुत ही दुर्धर्ष है एवं अन्य भी राक्षस गण नाश को प्राप्त हो जाँयगे ।१७। आपकी दुहिता की वृत्ति (प्रयत्न) से समुद्भूत दुराधर्ष मोह को प्राप्त करेंगे और सुरों का तथा पितृगणों का ऋण का मोचन होगा । अर्थात् शोधन हो जायगा ।१८। हे नरोत्तम ! किन्तु आपको एक समय (प्रतिज्ञा) मुझसे करनी चाहिए । उसको मैं नारद और गौतम के आगे कहूँगी । ।१९। और रावण के निहत हो जाने पर मैं भार की पीड़ा से रहित होती हुई सुख पूर्वक आपकी इसी यज्ञ भूमि में मैं सुपुत्र को जन्म ग्रहण कराऊँगी ।२०। हे नृप श्रेष्ठ ! आप उसको पुत्र की ही भाँति परि-पालन करने वाले होंगे। व्यतीत बाल्य काल वाला होता हुआ मेरा तनय होगा । जब उसका बाल्य काल व्यतीत हो जायगा तो मैं उसका स्वयं ही परिपालन करूँगी । जिस प्रकार से उसका मानुष भाव हो वे वैसा ही आप करेंगे ।२१।२२।

इति पृथिव्या वचनं श्रुत्वा राजा तदा मुदा ।
प्रणम्य पृथिवीं प्राह साम्ना स जनकाह्वय. ॥२३
यत् त्वं ब्रूषे जगद्धात्रि करिष्ये तद्वचस्तव ।
ममापीष्टं प्रयच्छस्व प्रसीद परमेश्वरि ॥२४
देवि प्रत्यक्षतो रूपं द्रष्टुमिच्छाम्यहं तव ।

शक्तिस्त्वं लोकजननी त्वां नमामि प्रसीद मे ॥२५
इति तस्य वचः श्रुत्वा जनकस्य तदा क्षितिः ।
मुनीनां सन्निधौ रूपं दर्शयामास भूभृते ॥२६
नीलोत्पलदलश्यामामक्षमालाब्जधारिणीम् ।
बाहुयुग्मेन शुभ्रेण मृणालायतशोभिना ।
सुन्दरीं लोकधात्रीं तां दृष्ट्वा शश्वत् नृपोऽनमत् ॥२७
ततः सा पृथिवी देवी सीतां जातां नृपात्मजाम् ।
करेण शश्वन् संस्पृश्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥२८

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस पृथिवी के वचन का श्रवण करके उस अवसर पर राजा परम आनन्द से संयुत हुआ और वह जनक नामधारी राजा ने पृथिवी को प्रणाम करके बहुत ही मान पूर्वक कहा—हे जगत् की धात्रि ! जो भी आप कहती हैं उस आपके वचन को मैं करूँगा । हे परमेश्वरि ! आप प्रसन्न होइए और जो भी कुछ मेरा अभीष्ट होवे उसको प्रदान करिए ।२४। हे देवि ! मैं आपके प्रत्यक्ष स्वरूप के दर्शन करने की इच्छा रखता हूँ । आप लोकों की जनन करने वाली शक्ति हैं । मैं आप को प्रणाम करता हूँ । आप मुझ पर प्रसन्न होइए ।२५। उस समय में भूमि ने उस राजा जनक के इस वचन का श्रवण करके मुनियों की सन्निधि में उस राजा को अपना स्वरूप का अवलोकन कराया था ।२६। अब उस पृथ्वी के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह भूमि नील कमल के समान श्यामा थी और हाथों में वह अक्षमाला तथा कमल को धारण करने वाली थी । उसकी बाहुओं का जोड़ा परम शुभ्र और मृणाल के सदृश आयत और शोभा समन्वित था । उस परम सुन्दरी लोकों की धात्री उसका दर्शन करके राजा ने निरन्तर उसके लिए प्रणिपात किया था ।२७। इसके उपरान्त उस देवी पृथ्वी ने समुद्भूत हुई नृप की आत्मजा सीता को निरन्तर कर से स्पर्श करके फिर यह वचन कहा ।२८।

गमन करके एक परम वीर पुत्र को प्रसूत किया था जहाँ पर पहिले सीता हुई थी । ३२ । ३३ । उस समय में पुत्र के जन्म ग्रहण करने पर जगत की धात्री धरित्री देवी जगत् के प्रभु विष्णु का स्मरण किया था जो पहिले होने वाले समय का स्मरण कर रही थी । ३४ । उसी समय में केवल स्मरण करने से ही देव ने समय का प्रतिपालन किया था और जहाँ पर क्षिति का पुत्र उत्पन्न हुआ था वहाँ पर ही वे प्रादुर्भूत हो गये थे अर्थात् प्रकट हो गये थे ।३५। उस अवसर पर प्रादुर्भाव को प्राप्त हुए परमेश्वर देवी ने प्रणाम किया और बहुत ही वाणी से निरन्तर उनकी स्तुति करके जगत् के प्रभु से वह पृथ्वी यह बोली । ३६ ।

एष ते तनयोजात सुकुमारो महाप्रभ ।
तत्स्मरन् समय पूर्वं त्वमेन प्रतिपालय ।।३७
अय ते तनयो देवी महाबलपराक्रम ।
भविता मानुष भाव तन्वान सुचिर बुध ।।३८
यावन्मानुषभाव ते तनयो भावयिष्यति ।
तावत् कल्याणभागभ त्वा चिर राज्य करिष्यति ।।३९
त्यक्तमानुषभावस्तु यदा चाय विचेष्टते ।
तदा तु नास्य सुचिर जीवित सम्भविष्यति ।।४०
सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे राज्यमासादयिष्यति ।
धनरत्नगजैश्वर्यंयुक्तोऽय रथसचयै ।
आसाद्य महती नित्य श्रिय भोक्ष्यति वीर्यवान् ।।४१
यस्मिन् यस्मिन् युगे भावो यो वा भवति वै नृणाम् ।
त भाव तथैवाय करिष्यति तथा कुरु ।।४२

पृथ्वी ने कहा—यह बड़ी प्रभा से समन्वित एव सुकुमार यह पुत्र आपके हुआ है अर्थात् पुत्र ने जन्म ग्रहण किया है । अब आप पूर्व समय का सस्मरण करते हुए आप इसका प्रति पालन कीजिए । ३७ । ।।। भगवान् ने कहा—हे देवी ! यह आपका महान् बल और पराक्रम

वाला म न होगा। यह बुध बहुत अधिक समय पयन्त मानुष भाव का विस्तार करने वाला होगा। ३८। जिस समय पयन्त आपका पुत्र मानुष भाव को भावित करेगा तब तक कल्याण का भागी होकर चिर काल अर्थात् बहुत अधिक समय तक राज्य शासन करेगा। ३९। मानुष भाव का परित्याग करने वाला यह जिस समय में विरूप चेष्टा किया करता है उस समय में तो इसका जीवित मुचर काल तक नहीं सम्भव होगा। ४०। सोलहवें वर्ष के सम्प्राप्त होने पर यह राज्य को प्राप्त करेगा तब यह रथ के समूह से और धन—रत्न—वज्र आदि के ऐश्वर्यों से युक्त होगा। यह बायवान् नित्य ही बड़ी भारी अधिक श्री को प्राप्त करके उसका उपभोग करेगा। ४१। जिस जिस युग में अथवा जो भाव मनुष्यों का होता है उसी भाव यह उसी भाव को करेगा—वैसा ही करो ॥४२॥

एतस्य निभृत राज्य यत् प्राग्ज्योतिषसज्ञकम् ।
पुर तत्र चिर मास्ता राज्यमेष सुतस्तव ॥४३
इत्युक्त्वा पृथिवी विष्णु समामाप्य जगतपति ।
दृश्यमानस्तया क्षिप्र तत्रवान्तर्दधे प्रभु ॥४४
प्रसूय पृथिवी पुत्र मध्यरात्र महाद्युतिम् ।
जनक ज्ञापयामास रहस्य पूर्वमीरितम् ॥४५
विदेहराजो ज्ञात्वव पथिवीजनित सतम ।
मगव यज्ञवाट स रात्रावागात् वृतस्त्रिय ॥४६
गच्छन्त यज्ञवाट त दृष्ट्वा सर्वसहा तदा ।
नोक्त्वा किचन त शश्वदन्तर्धान गता नृपम् ॥४७
अथ गत्वा तदा तत्र विदेहाधिपति सुतम ।
धराया ददृशे कान्त्या चन्द्रार्कज्वलनोपमम ॥४८
रदन्त ददृश स्निग्ध चलदहस्तपदद्वयम् ।
वपुष्मन्त श्रियादीप्त कार्तिकयमिवापरम् ॥४९

इसका निभृत राज्य वही है जो प्राग् ज्योतिष संज्ञा वाला है। वहाँ पर पुर है—यह आपका पुत्र चिरकाल पर्यन्त राज्य का शासन करने वाला होगा। ४३। जगतो के स्वामी भगवान् विष्णु ने यह कह कर पृथ्वी के साथ सम्भाषण किया था। फिर उस भूमि के द्वारा दृश्यमान (दिखलाई देने वाले) होकर प्रभु शीघ्र ही वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे। ४४। पृथ्वी ने मध्य रात्रि मे महती द्युति वाले पुत्र का प्रसव करके राजा जनक से पूर्व मे समीरित रहस्य विज्ञापित किया था। ४५। विदेह राज ने पृथिवी के द्वारा जन्म दिये हुए सुत का ज्ञान प्राप्त करके ही वह राजा अपनी क्रियाओ का करने वाला होकर वही पर यज्ञ वाट मे रात्रि मे गया था। ४६। उस समय मे सबका सहन करने वाली पृथ्वी ने यज्ञ वाट मे उसको गमन करते हुए देखकर उस नृप से कुछ भी नही कहा था और शश्वत् अन्तर्धान को प्राप्त हो गई थी। ४७। इसके अनन्तर वहा पर विदेह के अधिपति ने गमन करके वहाँ कान्ति से चन्द्र—सूर्य और अग्नि के तुल्य पुत्र को धरा मे देखा था। ४८। वह बालक अत्यधिक रुदन कर रहा था—स्निग्ध था और अपने दोनो हाथ पैरो को हिला रहा था—वह वपुष्मान् था। श्री से देदीप्यमान था और दूसरे स्वामी कार्त्तिकेय के ही तुल्य था। ४९।

उद्गच्छन् स रुदन् बालो यज्ञभूमिं व्यतीत्य च।
कियद्दूरं जगामाशूत्तानशायी महाद्युतिः ॥५०
मनुष्यस्य शिरस्तत्र मृतस्य प्राप्य बालकः।
स्वशिरस्तत्र विन्यस्य रुदंस्तस्थौ क्षणं तदा ॥५१
ततो विदेहराजोऽपि मार्गमाणः क्षितेः सुतम्।
व्यतीत्य यज्ञभूमिं तमाससादाञ्जसा बहिः ॥५२
आसाद्य बालकं दीप्तं प्रदीप्तमिव पावकम्।
कान्त्या चन्द्रमसस्तुल्यं तेजोभिर्भास्करोपमम् ॥५३

शरमध्यगत पूर्व पावकि पावको यथा ।
स्वय जग्राह त राजा पृथिव्या समय स्मरन् ॥५४
उद्गृह्णन् तच्छिरोदेशे ददृशे मानुष शिर ।
शशंसचाश्चिर शीर्ष मानुष गौतमाय न ॥५५
अथ बाल समादाय प्रविश्यान्त पुर स्वकम् ।
महिष्यै कथयामास प्राप्त पुत्र गुहोपमम् ॥५६

वह शिशु ऊपर की ओर गमन करता हुआ और रुदन करता हुआ यज्ञ भूमि को व्यतीत करके कुछ दूर तक चला गया था और वह महती द्युति वाला शीघ्र ही उत्तानशायी हो गया था। ५० वहाँ पर उस बालक ने एक मृत शरीर का शिर प्राप्त करके अपने शरीर को उस पर रखकर उस समय में रोता हुआ एक क्षण पर्यन्त स्थित हो गया था। ५१। इसके अनन्तर विदेह राजा भी भूमि के पुत्र को जानता हुआ यज्ञ भूमि को व्यतीत करके शीघ्र ही बाहिर उसके समीप में प्राप्त हो गया था। ५२। उस देदीप्यमान और पावक की ही भाँति प्रदीप्त बालक के पास पहुँच कर जो कान्ति में चन्द्रमा के तुल्य था और तेज में सूर्य के समान था—शरो के मध्य में गत जिस तरह से पावक ने पावकि को ग्रहण किया था उसी भाँति राजा ने से पूर्व पृथिवी के समय का स्मरण करते हुए स्वय ही उसे ग्रहण कर लिया था। ५४। उसको ऊपर की ओर ग्रहण करते हुए उसके शिरोभाग में मनुष्य का शिर देखा था। उसने फिर गौतम के लिये तुरन्त ही मनुष्य के शिर के विषय में कहा था। ५५। इसके अनन्तर उस राजा ने बालक का समादान करके और अपने अन्त. पुर में प्रवेश करके उस गुह के तुल्य प्राप्त हुए पुत्र के विषय में अपनी महिषी से कहा था ॥५६॥

सा त दृष्ट्वा विशालाक्ष सिंहस्कन्ध महाभुजम् ।
विस्तीर्णहृदय कान्त नीलोत्पलदलच्छविम् ।

मुमोद पालनीयोऽयं मयेति न्यवदत् नृपम् ॥५७
ता राजापि तत प्राह पुत्रोऽयं मम सुन्दरि ।
यज्ञभूमौ समुत्पन्न स्वच्छन्द पाल्यतामयम् ॥५८
यत् पृथिव्या रह प्रोक्त न तद्देव्यै न्यवेदयत् ।
सत्यसन्धो नृपश्रेष्ठ प्रियाया अपि भाषितम् ॥५९
मम सुतसुतवशान पालयित्री धरेय-
मिति नरपतिवर्यो मोदवास्तद्दिने च ।
सुरतनयसमान पुत्रमासाद्य देवी ।
जितरिपुरतिधीमान् स्यादयञ्चेत्यमोदत् ॥६०

उस महिषी ने उस बड़े बड़े नेत्रों वाले—सिंह के समान स्कन्ध से संयुत—महान् भुजाओं वाले पुत्र को देखकर जो विशाल वक्ष स्थल वाला था—परम कान्त था तथा नीले कमल के दल के समान छवि वाला था। वह बहुत ही प्रसन्न हुई थी और उसने राजा से यह निवेदन किया था कि यह तो मेरे द्वारा पालन करने के ही योग्य है। तात्पर्य यह है कि मैं तो इसका प्रतिपालन करूँगी। ५७। राजा ने भी उससे कहा था कि हे सुन्दरि! यह तो मेरा ही पुत्र है। यह यज्ञ की भूमि मे समुद्भूत हुआ है इसका आप स्वतन्त्रता पूर्वक पालन कीजिए। ५८। जो पृथिवी के द्वारा रहस्य कहा गया था उसे उस देवी से निवेदन नहीं किया था। उस सत्य प्रतिज्ञा वाले राजा ने प्रिया के भाषित को भी नहीं कहा था। ५९। मेरे सुतों के सुतों के वश को भी यह धरित्री पालन करने वाली है। इसलिये उस दिन मे नृपति श्रेष्ठ परम हर्षित हुआ था। देवी भी देवा के पुत्र के समान सुत का समासादन करके यह शत्रुओं का जीतने वाला और अतीव बुद्धिमान होगा—इसलिये परम प्रसन्न हुई थी। ६०।

❀❀

॥ नरकाभिषेचन कथन ॥

अथ तस्य नृपश्रेष्ठो गौतमेन महर्षिणा ।
संस्कारं कारयामास विधिना मानुषस्य तु ॥१
नरस्य शीर्षे स्वशिरो निधाय स्थितवान यतः ।
तस्मात्तस्य मुनिश्रेष्ठो नरक नाम वै व्यधात् ॥२
अपगत वा नरसंस्कारात् क्षात्रेण विधिना मुनि ।
वेदशास्त्राविधि सचक्रे ग्रन्थेषु नामसन्नवं ॥३
ववृधे तस्य सदने नरको नाम भूसुत ।
दिनदिन धृताभ्यक्ता शरदीव निशाकर ॥४
स राजा त तदा भावमानुष्याज्जयत् स्वयम् ।
गौतमस्य सुतेनाथ शतानन्देन धीमता ।
ग्राहयामास तन्नित्य क्षात्र भाव च मानुषम ॥५
तथैव पृथिवी देवी धात्रीयत्व न मुनम् ।
नियत ग्राहयामास मानुष चरित शुभम् ॥६
यदेव पुत्र उत्पन्नस्तदेव पृथिवी स्वयम् ।
मायामानुषरूपेण नृपान्त पुरमाविशत् ॥७

योजित करता हुआ उसने गौतम मुनि के पुत्र बुद्धिमान शतानन्द के द्वारा उसको नित्य ही क्षात्र और मानुष भाव ग्रहण कराया था । ५ । उसी भाँति पृथिवी देवी ने धात्री (धाय) के वेष से उस पुत्र को नियत रूप से शुभ मानुष चरित को ग्रहण कराया था । ६ । जिस समय में ही यह पुत्र समुद्गत हुआ था उसी समय में पृथिवी स्वयं माया के द्वारा मनुष्य के स्वरूप को धारण करके वह उस नृप के अन्तःपुर के अन्दर प्रविष्ट हो गई थी ॥७॥

प्रविश्य तत्र सा देवी नृपस्यानुमतेऽभवत् ।
धात्री तस्य द्विजश्रेष्ठा कात्यायन्या ह्यवस्थया ॥८
यावत् षोडशवर्षाणि तस्य बालस्य भावीनि ।
तावत् स्वयं पालयन्ती ग्राहयामास सनयम् ॥९
स वर्धमानाऽनुदिनं नरकः पृथिवीसुतः ।
अत्यक्रामत् सुतान् सर्वान् जनकस्य महात्मनः ॥१०
शरीरेणाथ वीर्येण रूपेण बलवत्तथा ।
धनुषा गदया वीरो ह्यत्यक्रामन् नृपात्मजान् ॥११
शास्त्रवादकुशलो धनुर्वेदे च कोविदः ।
वर्षे षोडशभिर्भूतो वीर रत्यदु रासद ॥१२
विदेहाधिपतिर्दृष्ट्वा महाबलपराक्रमम् ।
ततो न्यूनान् स्वपुत्रांश्च नातिहृष्टमनाभवत् ॥१३
निरस्यासौ च मत्पुत्रान् मम राज्यं ग्रहीष्यति ।
काले प्राप्ते महावीरो मतिस्तस्याभवत् पुरा ॥१४

प्रवेश करके वह देवी राजा के अनुमत में हो गयी थी । हे द्विज श्रेष्ठो ! वह कात्यायनी अवस्था से उसकी धात्री (धाय) हो गई थी । । ८ । जब तक उस बालक के आगे होने वाले सोलह वर्ष थे तब तक स्वयं उसका पालन करती हुई उसे भली भाँति नय (नीति) अथवा विनय ग्रहण कराया था अर्थात् नय की शिक्षा दी थी । ९ । आय दिन

बड़ा होकर उस पृथिवी के पुत्र नरक ने महात्मा जनक के अन्य सभी पुत्रों का अतिक्रमण कर दिया था। अर्थात् वह सभी से बड़ा हो गया था। १०। समस्त नृप के पुत्रों को शरीर में—वीर्य से—रूप से—बलवत्ता में—धनुष से और यश के द्वारा वह वीर अतिक्रमण कर गया था। अर्थात् सभी बातों में वह अन्य नृप पुत्रों से बहुत अधिक बढ़ गया था। ११। वह शास्त्रों के पाठ में परम प्रवीण था और धनुर्वेद में भी महा पण्डित था। वह सोलह वर्षों में ही अन्य वीरों को दुरासह हो गया था। १२। विदेह के अधिपति ने उसके महा बल और पराक्रम को देख कर और अपने पुत्रों का उसमें न्यून अवलोकन करके वह राजा अत्यन्त प्रसन्न मन वाला नहीं हुआ था। १३। यह तो मेरे पुत्रों का तिरसन करके मेरे राज्य को ग्रहण कर लेगा जबकि वह काल प्राप्त होगा तो उस समय में यह महावीर ऐसा ही करेगा यहिले उसकी मति हुई थी। १४।

अन्तःपुरे यदा पुत्रान् सर्वान् रमयते नृपः।
तदा तु नरकं वीक्ष्य हर्षं प्राप्नोति नाधिकम् ॥१५
तस्य तद्वृत्तमे देवी नृपस्याथ वसुन्धरा।
महिषी विस्मयं चक्रे तस्मिन् भावे तु भूभृतः ॥१६
अथैकदा महादेवी जनकस्य महात्मनः।
पप्रच्छ नृपतिश्रेष्ठं विदेहाधिपतिं पतिम् ॥१७
नाथ पृच्छामि ते किञ्चिद्रहस्यं यदि नो तव।
तदा मां तद्वदस्व त्वं कृपा चेद्विद्यते मयि ॥१८
यदैव तनयाः सर्वे विहरन्ति पुरस्तव।
तदैव नरकं दृष्ट्वा विशीर्ण इव लक्ष्यसे ॥१९
तन्मे रात्रिन्दिवं वाढं विस्मयः प्रतिवर्धते।
महायक्ष भय चैव न जहाति च मां सदा ॥२०
रूपवान् वीर्यवानेष नये च विनये तथा।

कुशल प्रतिवृद्धश्च पुत्ररतव महाबल ॥२१
न सभाजयसे कस्मात् पुत्रमन्यैर्दुरासदम् ।
तदहं ज्ञातुमिच्छामि यदि तथ्य वदस्व मे ॥२२

जिस अवसर पर राजा अपने अन्तःपुर मे सब पुत्रो को रमण कराता है उस समय मे नरक को देखकर वह अधिक हृप को प्राप्त नहीं किया करता है । १५ । इसके अनन्तर यह हुआ कि वसुन्धरा देवी उस नृप के भाव को समझ गयी थी और महिषी राजा के उस प्रकार के भाव म विस्मय किया करती थी । १६ । इसके अनन्तर एक बार महात्मा जनक की महादेवी ने नृपतियो म परम श्रेष्ठ विदेह के अधिपति अपने पति से पूछा था । १७ । हे नाथ ! मैं आपसे पूछती हू यदि आप का इसमे कुछ रहस्य नहीं हो तो आप मुझे बतलाइए यदि आपकी मुझ पर परम कृपा है । १८ । जिस समय म ही ये सब पुत्र आपके आगे विहार—क्रीडा किया करते हैं उसी समय म आप नरक का अवलोकन करके विशीर्ण की ही भाँति दिखलाई दिया करते हैं । १६ । सो यह मुझे रात दिन विस्मय बहुत अधिक प्रतिबधित हुआ करता है । यह संशय और भय सदा ही मुझे होता रहता है और छटता नहीं है । २० । यह आप का पुत्र श्रेष्ठ माना है—वीर्य से सगुन है तथा नय और विनय म परम कुशल है । यह पुत्र प्रति वृद्ध और महान् बलवान् है फिर क्या कारण है कि अन्यो से दुरासद इसका आप समाजिन नहीं किया करते हैं है—यही मैं जानना चाहती हूँ यदि इसमे कुछ भी तथ्यांश हो तो आप मुझे बतलाने की कृपा करे । २१ । २२ ।

इति तस्य वच श्रुत्वा प्रियाय पृथिवीपति. ।
तूष्णीं भूत्वा क्षण देवीमिद वचनमब्रवीत् ॥२३
कथयिष्ये प्रिये तत्त्व यत् पृष्टोऽहं त्वयाधुना ।
मा गमये व्यतीते तु समय प्रतिपालय ॥२४
निगद रविदर्शाग्नि देवरय समयो मम ।

तेनाधुना न किंचित्ते कथयिष्यामि तद्वह ॥२५
राज्ञो ह्यय समायस्य सवादोऽभवदन्तिके ।
मानुषी पृथिवी धात्री त शुश्राव यदा तदा ॥२६
श्रुत्वा तयोस्तु सवाद महिषीभूपयो क्षिति ।
मासत्रयेण समय दत्त देव्यै धराभृता ॥२७
तत्काले विमनस्क च भूप नरकसज्ञया ।
निर्विमासैर्व्यतीतै स्यादस्य षोडशवत्सर ॥२८

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस पृथिवी पति ने अपनी प्रिया के इस वचन का श्रवण करके एक क्षण के लिये मौन रह कर फिर देवी से यह वचन कहा था। २३। राजा ने कहा—हे प्रिये! मैं तत्व को कहूँगा जो इस समय मे आपने मुझसे पूछा हैं। मास तीन के व्यतीत होने तक समय का प्रतिपालन करो। २४। यहाँ पर कोई देव का समय मेरे लिये निगूढ है। इसी से अब मैं आपको वह रहस्य कुछ भी नहीं कहूँगा। ८५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भार्या के स हत राजा का यह सम्वाद समीप मे होता था। जब तब मानुषी धात्री पृथिवी ने इस का श्रवण किया था। अर्थात् मनुष्य देह धारिणी धाय के रूप मे स्थित पृथ्वी ने सुना था। २६। क्षिति ने उन दोनो महिषी और राजा के सम्वाद को सुना था कि राजा ने देवी को तीन मास का समय दिया है। २७। उस समय मे नरक के नाम से विमनस्क अर्थात् उदास भूप है तीन मास व्यतीत हो जाने पर इसके सोलह वर्ष होंगे। २८।

ततो नृपो महिष्यास्तु कथयिष्यति तद्वह ।
ततो मम रहस्य तु विदित सम्भविष्यति ॥२६
चिन्तयित्वेति सा देवी जगद्धात्री सुत प्रति ।
निश्चित्येद तदा कृत्य प्रातस्तान्समचेष्टत ॥३०
ततो रहसि भूप त समासाद्य सगौतमम् ।
इदमाह जगद्धात्री स्वपुत्रार्थे यशस्विनी ॥३१

यो मया समयो दत्त पालित स त्वयानघ ।
पुत्रश्च पालितो मेऽय नरको विनयंयुतः ॥३२
सम्प्राप्तयौवन पुत्रो योजितश्च त्वया नये ।
तव प्रसादात पुत्रो मे सुखी वृद्धो गृहे तव ॥३३
तमहं पूर्वसमयान्नयिष्यामि स्वमात्मजम् ।
अनुजानीहि भद्र ते नरकस्य गति प्रति ॥३४
रक्षित व्यश्च भवता समय सपुरोधसा ।
छन्नमेव नयिष्यामि भपते मा कृथा व्यथाम् ॥३५

इसके उपरान्त ही नृप महिषी को यह रहस्य बतलाये गे फिर मेरा रहस्य भी विदित हो जायगा । २६ । उस देवी ने यह चिन्तन करके वह जगत् की धात्री सत के प्रति यह निश्चय करके उस समय में काल प्राप्त हो जाने वाले कृत्य की चेष्टा की थी । ३० । इसके उपरान्त एकान्त में उस राजा को गौतम मुनि के सन्निध प्राप्त करके यशस्विनी जगद्धात्री ने अपने पुत्र के लिये यह कहा था । ३१ । हे अनघ ! जो मैंने समय दिया था वह आपने पूर्ण रूप से पालित कर दिया है । और यह मेरा पुत्र भी आपने पालित किया है जो यह नरक विनय से समन्वित है । ३२ । यौवन को प्राप्त हो जाने वाला यह पुत्र आपने नय मे भी योजित कर दिया है । आपके प्रसाद से यह मेरा पुत्र बडा—सुखी आपके घर मे हो गया है । ३३ । अब उसको अपने पुत्र को पूर्व समय के अनुसार ले जाऊँगी । आपका परम मङ्गल हो—अब आप इस नरक को गमन करने के लिये अपना आदेश प्रदान कीजिए ।३४। आपको पुरोहितजी के सहित समय की रक्षा करनी चाहिए । हे भूपते ! मैं इसको छिपे हुये स्वरूप मे ही ले जाऊँगी—आप कुछ भी व्यथा न कीजिए । ३५ ।

इत्युक्त्वा जगतां धात्री विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तत्रैव पश्यता तेषामन्तर्धानमुपागमत् ॥३६

नृपोऽपि तस्यास्तद्वाक्यमङ्गीकृत्य क्षितिं प्रति ।
तस्याः प्रत्यक्षतः स्थानं जगाम सपुरोहितः ॥३७
अथैकदा धरा देवी मायामानुषरूपिणी ।
उपांशु नरकं प्राह धात्री तस्य महात्मनः ॥३८
त्वया समं महाबाहो गङ्गां यातुं मनो मम ।
यदि त्वं यासि यास्यामि रथेनाद्यैव पुत्रक ॥३९
न पितुर्वचनं यास्ये विना मातस्त्वया समम् ।
अनुज्ञाप्य रथेनाह यास्ये गंगां त्वया समम् ॥४१

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जगती की धात्री ने यह वचन विदेह के अधिपति नृप से कहकर वह वहीं पर ही उनके देखते हुए अन्तर्धान को प्राप्त हो गयी थी। ३६। राजा ने भी क्षिति के प्रति उसके उस वाक्य को अङ्गीकार करके प्रत्यक्ष रूप से उसके स्थान को पुरोहित के सहित गमन कर गये थे। ३७। इसके अनन्तर एक बार माया से मनुष्य के रूप वाली धरा देवी ने जो उस महात्मा की धात्री थी उपांशु नरक से बोली—। ३८। हे महाबाहो ! आपके साथ में मेरा मन गङ्गा पर गमन करने का होता है। यदि तुम जाते हो तो हे पुत्र ! आज ही रथ के द्वारा प्रयाण करूँगी। ३९। नरक ने कहा—हे माता ! पिता के वचन के बिना मैं तेरे साथ नहीं जाऊँगा। अनुज्ञा प्राप्त करके ही मैं रथ के द्वारा आपके साथ गमन करूँगा। ४१।

न ते पिनाय जनको य सर्वजगतां प्रभुः ।
स ते पिता तं गंगायां पश्य गत्वा मया सह ॥४२
अयं पिता पालकस्ते न राज्यं सम्प्रदास्यति ।
यस्ते वर्धयिता तात तमासाद्य पुत्रक ॥४३
अत्र यद्मद्रहस्यं तद् गंगायामेव पुत्रक ।
कथयिष्याम्यहं सर्वं रहोभूतस्ततोऽन्यथा ॥४४
जातसम्प्रत्ययो धात्र्या वचसा नरकस्तथा ।

विहाय यानं छन्देन पद्भ्यां गंगां ययौ तदा ॥४५
अथ गंगां समासाद्य सस्नाप्य विधिवत् सुतम् ।
आत्मानं दर्शयामास पृथिवी स्वसुताय वै ॥४६
मायामानुषमूर्ति तां विहाय जगतां प्रसूः ।
नीलोत्पलदलश्यामं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥४७
सर्वाङ्गसुन्दरं चारु नानालंकारभूषितम् ।
पुत्राय दर्शयामास नरकाय वसुन्धरा ॥४८
कथामेताञ्च पूर्वस्मिन्नुद्भूता पृथिवी तदा ।
कथयामास पुत्राय प्रतीनिर्णीयते यथा ॥४९

धात्री ने कहा—यह तेरे जन्म देने वाले पिता नहीं हैं। जो समस्त जगतों का प्रभु है वही आपके पिता हैं। उनको मेरे साथ जाकर गङ्गा में ही अवलोकित करो। ४२। यह आपके पालन करने वाले पिता ही है। यह तुमको राज्य नहीं देंगे। हे तात ! जो आपके दर्शन करने वाले है हे पुत्र ! उनकी ही अब प्राप्ति करो। ४३। इसमें जो भी कुछ रहस्य है हे पुत्र ! वह सब मैं गङ्गा में ही बतलाऊँगी। अन्यथा रहस्य का भङ्ग हो जायेगा। ४४। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—धात्री के वचन से सम्प्रत्यय समुत्पन्न हो जाने वाले नरक ने उस प्रकार से रथ के यान का परित्याग करके स्वतन्त्रता से उस समय में पैरों ही से गङ्गा को गमन किया था ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर गङ्गा पर पहुँच कर वहाँ विधि पूर्वक पुत्र को स्नान कराकर फिर पृथिवी ने अपने सुत के लिये अपने स्वरूप को दिखला दिया था। ४६। उस धरित्री ने माया से जो मनुष्य की मूर्ति थी उसका परित्याग करके उन जगत् के प्रसव करने वाली पृथ्वी ने अपना सुन्दर स्वरूप धारण किया था। नील कमल के समान श्याम—सभी सुलक्षणों से समन्वित—सभी अङ्गों से सुन्दर—चारु और अनेक अलङ्कारों से विभूषित रूप को वसुन्धरा ने पुत्र नरक को दिखलाया था ॥ ४७—४८ ॥ उस समय में पृथ्वी ने पूर्व

म समुद्भूत यथा दो पुत्र के लिये कष्ट दिया था जिससे उसे पूर्ण प्रतीति हो जावे । ४६ ।

मम गर्भे यथा पत्र वर्धसे त्व दिने दिने ।
ब्रह्मादयस्तदा देवा आलोक्य स्वयमेव ते ॥५०
मलिनीक्षितिसजात पत्रो विष्णोर्महात्मन ।
आसुर भावमास्थाय सर्वानस्मान् हनिष्यति ॥५१
इति चिन्तापरा देवा कुमन्त्र चक्रिरे तदा ।
अय नोत्पद्यता गर्भाद्गर्भे तिष्ठत्वय सदा ॥५२
ततो मम भवान् गर्भे सुबहूनि युगान्यथ ।
अवसद्दु खवान पत्र देवाना च कुमन्त्रत ॥५३
मृतकल्पाभवमह भवतो धारणात् सुत ।
ततोऽह शरण याता भगवन्त सनातनम् ॥५४
नारायणस्य वाक्यात तु भवानुत्पन्नवास्तत ।
इति सत्य मम वच पत्र जानीहि निश्चितम् ॥५५

पृथिवी ने कहा—हे पुत्र ! मेरे गर्भ मे जिस प्रकार मे तुम दिनो दिन वद्धित होत हो उस अवसर वे ब्रह्मा आदि देवगण स्वय ही अवलोकन करके कि यह महान् आत्मा वाले भगवान् विष्णु से मलिनी क्षिति से समुद्गत हुआ पुत्र आसुर भाव मे समास्थित होकर हम सबका हनन कर देगा ॥ ५०—५१ ॥ इसी चिन्ता मे तत्पर होते हुए देवो ने उस अवसर पर यह कुमन्त्रणा की थी कि यह गर्भ से उत्पन्न ही न होवे और सदा इसी गर्भ मे स्थित रहे । ५२ । इसीलिये आप मेरे गर्भ मे बहुत—से युगो पर्यन्त आपने हे पुत्र ! मेरे गर्भ मे ही निवास किया था और यह निवास देवो के ही कुमन्त्रणा के कारण ही हुआ था । । ५३ । हे सुत ! आपको गर्भ मे ही धारण किये हुए मैं मृत के ही समान हो गई थी । तब मैं सनातन भगवान् की शरणागति मे प्राप्त हुई थी । फिर भगवान् नारायण के वचन से ही आपने जन्म ग्रहण

किया था। यह मेरा वचन है पुत्र ! सर्वथा सत्य है यह निश्चित रूप से आप समझ लेवें ॥ ५४—५५ ॥

अथ यावन्नपत्रस्य विस्मय समपद्यत ।
तावदेव स्वय देवो प्रोचे पत्रमिद वच ॥५६
यथा विदेहराजस्य यज्ञभूमावसूयत ।
विदेहराजेन सम यादृश समयोऽभवत् ॥५७
यथा मानुपरूपेण धात्री सा समपद्यत ।
तत् सर्वं कथयामास नरकाय महात्मने ॥५८
अथ ता पृथिवी प्राह नरक पुनरेव हि ।
पृथिव्या वचन श्रुत्वा स्वल्पसशयसयुत ॥५६
यद्येव मे पिता विष्णुर्माता त्व पृथिवी शुभे ।
आगच्छतु जगन्नाथो ममैवाभ्युपपत्तये ॥६०
स एव सर्व लोकेशो यदि मा भापतेऽच्युत ।
पिताह ते त्विय माता श्रद्धधे नदह शुभे ॥६१
त्वया मानुपरूपेण धात्र्याह प्रतिपालित ।
तद्र प द्रष्टुमिच्छामि यदि तेरू पमीदृशम् ॥६२

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर जब तक अपुत्र अर्थात् पुत्र से रहित को विस्मय हुआ था तभी तक स्वय देवी ने यह वचन पुत्र से कहा था। ५६। जैसे विदेह राज की यज्ञ भूमि मे प्रसूत हुआ था विदेह राज के साथ जैसा समय हुआ था वह सब कुछ महात्मा नरक से कह दिया था। ५८। इसके अनन्तर नरक उस पृथ्वी से पुन बोला था क्योंकि पृथ्वी के इस वचन का श्रवण करके वह नरक थोडे सशय से सयुत हो गया था। ५६। नरक ने कहा—हे शुभे ! यदि यह भगवान् विष्णु मेरे पिता है और आप मेरी माता है तो वे जगत् के नाथ मेरी अभ्युत्पत्ति के लिये ही समागमन करे। ६०। वे ही सब लोकों के स्वामी हैं। यदि मुझसे वे अच्युत कहते है कि हे शुभे ! मैं तेरा पिता

है और यह तेरी माता है तो मैं प्रश्न करूँगा ॥६१॥ तुमने मनुष्य के स्वरूप से धात्रीके द्वारा मेरा प्रतिपालन किया है तो मैं अभी इसके दर्शन करने की इच्छा करता हूँ कि यदि यह ऐसा ही सच है ॥६२॥

अहं ते जननी तात मया जातोऽसि पुत्रक ।
पृथिव्यहं जगद्धात्री मद्रूपं मृन्मयं त्विदम् ॥६३
पिता तव महाबाहो प्रभुर्नारायणोऽव्ययः ।
अच्युतो जगतां धाता महात्मा शूकरात्मधृक् ॥६४
तेनाहितस्त्वं मद्गर्भे सुचिरं त्वं पुरातनः ।
सम्प्राप्ते समये जातः पालितश्चेह भूभृता ॥६५
इति तस्य वचः श्रुत्वा हर्षशोकाकुलस्तदा ।
नरकः पृथिवीं देवीमिदमाह धनुर्धरः ॥६६
न माता विदिता पूर्वं मातहमिति भाषसे ।
विष्णुः पितेति च वचो न पिता विदितो मम ॥६७
जानामि पितरं चाहं विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तस्य भार्यां सुमत्याख्यामहं जानामि मातरम् ॥६८
भ्रातरस्तत्सुताः सर्वे सीता मे भगिनी शुभा ।
सुमतिर्मम मातेति लोको जानाति सन्ततम् ॥६९
कात्यायनी च धात्री मे याधुनैव कृता त्वया ।
एतत् सर्वं त्वया मिथ्या शंसितं मम साम्प्रतम् ।
यथा तत्वाहं तनय सत्यमाख्याहि तन्मम ॥७०

पृथ्वी ने कहा—हे तात ! मैं तेरी जननी हूँ। हे पुत्र ! मेरे द्वारा आप जात हो। मैं पृथिवी इस जगत् की धात्री हूँ और यह मेरा स्वरूप मृत्तिका से परिपूर्ण है।६३। हे महा बाहो ! आपके पिता अविनाशी प्रभु नारायण हैं। वे अच्युत हैं—इस जगत् के धाता हैं और महात्मा सूकर की आत्मा अर्थात् स्वरूप को धारण करने वाले हैं।६४। उन्हीं के द्वारा आप को मेरे गर्भ में समाहित किया गया था

मेरे गर्भ में बहुत समय तक पहिले निवास किया था। समय के प्राप्त होने पर ही आपने जन्म ग्रहण किया था और यहाँ पर आपका परिपालन भूभृत् ने ही किया था। ६५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इस उनके वचन का श्रवण करके वह हर्ष और शोक से इस समय में समाकुल हो गया था। उस धनुर्धारी नरक ने उस पृथिवी देवी से यह कहा था। ६६। नरक ने कहा—पूर्व में माता का ज्ञान नहीं था और आप कहती हैं कि मैं माता हूँ। और पिता विष्णु भगवान् हैं—यह वचन भी कि मेरे पिता हैं मुझे विदित नहीं है। ६७। मैं तो विदेह के अधिपति को ही अपना पिता जानता हूं। उनकी भार्या सुमति नाम वाली को मैं अपनी माता जानता हूँ। ६८। उनके सब पुत्र मेरे भाई हैं और मेरी शुभा बहिन सीता है मेरी माता सुमति है—यही सम्पूर्ण लोक निरन्तर जानता है। ६९। और कात्यायनी मेरी धात्री है जो आप ने अब ही की है। यह सब कुछ आपने मिथ्या ही कहा है अब मुझे जैसा भी मैं तनय हूँ वह मुझे सत्य बतलाओ ॥७०॥

पुत्रस्य वचनं चेति श्रुत्वा सर्वंसहा तदा ।
सर्व तत्पूर्ववृत्तान्तं तनयाय न्यवेदयत् ॥७१
यथा मलिन्या सम्भोगो वराहस्याभवत् पुरा ।
यथा गर्भे धृतो देवैर्येन वा कारणेन स ॥७२
यथा च गर्भदुःखार्ता माधवं शरणं गता ।
यथा तेन प्रदत्तश्च समयो जनकं प्रति ॥७३
विमर्श समयो दत्तो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
निहते रावणे वीरे रामेण सुमहात्मना ॥७४
भविष्यति सुतस्ते वं तत्र न संशयो महान् ।
एतान् त्वं संशयान् छिन्धि गुरो शास्तासि नः सदा ॥७५
भारार्ता रावणादीनां पृथिवी मांसभोगिनाम् ।
अधोगता योजनानि पंच वै द्विजसत्तमाः ॥७६

अथ वराहवीर्येण जातो गर्भं क्षिते पुन. ।
असावपि महाराजो दशग्रीवो यथाभवत् ॥७७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—यह पुत्र के वचन का श्रवण करके उस समय मे सर्व सदा अर्थात् पृथ्वी ने वह सभी पूर्व वृत्तान्त पुत्र को निवेदित कर दिया था ।७१। पहिले जिस प्रकार से भक्तिको के साथ वराह का सम्भोग हुआ था और जैसे देवो के द्वारा गर्भ मे धारण किया था और वह जिस कारण से धारण किया गया था ।७२। जिस रीति से गर्भ के दुख मे अत्यन्त उत्पीडित होकर वह भगवान् माधव की शरणागति म गयी थी और जैसे उसने जनक के प्रति समय दिया था—यह सभी बतला दिया था । ७३। ऋषियो न कहा प्रभु विष्णु भगवान विष्णु न किस लिये समय दिया था ? वीर रावण के महान् आत्मा वाले श्री राम के द्वारा निहत हो जाने पर आपका सुत होगा—वहाँ पर हमको बडा ही संशय होता है। अब आप इस संशय का छेदन करने की कृपा करें। *आप तो सदा ही हमारे संशय करने वाले गुरु हैं ।७४।* ।७५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भार का भाग करने वाले रावण आदि के भार मे पृथ्वी आर्त्त हो गयी थी । हे द्विज श्रेष्ठो ! निश्चय ही यह पाँच योजन नीचे की ओर चली गयी ।७६। फिर यह वराह के वीर्य से क्षिति के गर्भ म जात हुआ था यह भी महाराज दशग्रीव जैसा हुआ था ॥७७॥

अधो यास्यति भारार्ता मातीव पृथिवी स्थिति ।
समयो दत्तवान् विष्णू रावणे निहते सति ।
धरायै भारविहृतिव्याजेन द्विजसत्तमा ॥७८
त्वत्पूर्वस्य हृष्टया वै वचनाच्च जगद्गुरो ।
जानन्द्भो महाभागे स्यान्यामि समये तव ॥७९
पुनस्य वचन श्रुत्वा पृथिवी प्रथम तदा ।
मायामानुषरूप तत् प्रतिगृह्य तत्पुर ॥८०

यथा कात्यायनीरूपं येन रूपेण पालित. ।
नरक सा तु तद्गृह्य तत्याज पथिवी तनुम् ॥८१

अथ दृष्टैव नरको धात्री कात्यायनी तदा ।
पप्रच्छ पूर्वं वृत्तान्त यद्वृत्त नपमन्दिरे ॥८२

सा तथा कथयामास यथा सम्प्रति पालितः ।
यद्वृत्त पूर्वतो गेहे नपस्य जनकस्य तु ॥८३

जातसम्प्रत्ययस्तत्र नरक. समपद्यत ।
पृथिवी च पुनर्देवीरूप स्व जगृहे तदा ॥८४

यह पृथिवी अतीव भार से पीडित होती हुई नीचे की ओर चली जायगी। रावण के निहत हो जाने पर भगवान् विष्णु ने समय दिया था। हे द्विज सत्तमो! भार के विहित के व्याज से ही धरा के लिए समय दिया गया था।७८। जगत् के गुरु के वचन से आपके पूर्व रूप का अवलोकन करके हे महाभागे! मुझे श्रद्धा समुत्पन्न हो गई है और अब तुम्हारे समय मे मैं स्थित रहूँगा।७९। पृथ्वी ने उस समय मे पुत्र के प्रथम वचन का श्रवण करके उसके आगे ही उस माया से मनुष्य के स्वरूप को ग्रहण कर लिया था।८०। जैसे का त्यायनी का रूप था जिससे (स्वरूप स) पालन किया था। अर्थात् नरक को पाला था। उसने उसका ग्रहण करके पृथ्वी ने अपने तनु का परित्याग कर दिया था।८१। इसके अनन्तर उस समय मे नरक ने कात्यायनी धात्री को देखकर उसने पूर्व मे होने वाला सब वृत्तान्त पूछा था जो भी कुछ नृप के मन्दिर म घटित हुआ था।८२। उसने उसी भाँति से सब कह दिया था जिस प्रकार अब पालित किया था। जो भी नृप जनक के घर मे पूर्व में घटित हुआ था।८३। उसमे नरक को पूर्ण विश्वास हो गया था और पृथ्वी ने उस समय मे पुनः अपना देवी का स्वरूप ग्रहण कर लिया था॥८४॥

अथ सस्मार पृथिवी जगन्नाथं हरिं प्रभुम् ।
समये पूर्वविहिते प्रणम्य शिरसा मुहुः ॥८५
स्मृतमात्रस्तदा क्षित्या माधवो गरुडध्वजः ।
प्रसन्नो जगतां नाथः प्रत्यक्षत्वं गतस्तदा ॥८६
॥ दृष्ट्वा पृथिवी देवी देवं गरुडवाहनम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम् ॥८७
पीताम्बरं जगन्नाथं श्रीवत्सोरस्कमव्ययम् ।
प्रणनाम महाभक्त्या पस्पर्श शिरसा महीम् ॥८८
परमेश जगन्नाथ जगत्कारणकारण ।
प्रसीदेति वचश्चापि तदा प्रोचे जगत्प्रसूः ॥८९
नरकस्तु हरिं दृष्ट्वा निमील्य नयनद्वयम् ।
तत्तेजसा चाभिभूतस्तदा भूमावुपाविशत् ॥९०
उपविष्टे तदा देवी तनये नरकाह्वये ।
प्रसादयामास तदा पुत्रार्थं वरवर्णिनी ॥९१

इसके अनन्तर पृथिवी ने जगन्नाथ प्रभु हरि का स्मरण किया था जो पूर्व विहित समय था । उसने पुनः शिर से प्रणाम किया था । ।८५। स्मरण करते ही मात्र से उस समय में जो क्षिति के द्वारा किया गया था गरुड ध्वज माधव जो समस्त जगतों के नाथ है परम प्रसन्न होते हुए प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो गये थे ।८६। उस पृथ्वी देवी ने गरुड वाहन देव का अवलोकन किया था। जिनका स्वरूप नील कमल के दल के सदृश श्याम था—शंख चक्र और गदा के धारण किये हुए थे ।८७। पीत उनका वस्त्र था—श्री वत्स को वक्षः स्थल में धारे हुये थे ऐसे जगन्नाथ को महती भक्ति से प्रणाम किया था और शिर से मही का स्पर्श किया था ।८८। उस समय जगत् के प्रसव देने वाली ने यह वचन कहा था—हे परमेश ! आप तो जगत् की रचना करने वाले कारण के भी कारण है—आप जगत् के स्वामी हैं, आप प्रसन्न होइए ।

।८६। नरक ने हरि भगवान् का स्पर्श करके अपने दाता नेत्र मीलित कर लिये थे। वह उनके तेज से पराभूत हो गया था और उसी समय में वह भूमि पर बैठ गया। ९०। नरक नाम वाले अपने पुत्र के उपविष्ट हो जाने पर उस समय में धर धरणि देवी ने अपने पुत्र के लिये उनको प्रसन्न किया था ॥९१॥

प्रसाद्यमानो धरया हरिर्नारायणोऽव्ययः ।
शखाग्रेण तदा पुत्रं पस्पर्श नरकाह्वयम् ॥९२
स्पृष्टमात्रोऽथ हरिणा नरकोऽभूत् सुदर्शनः ।
हृष्टश्चोत्साहवांश्चैव बलवान् समपद्यत ॥९३
तत उत्थाय नरको हरिं नारायणं प्रभुम् ।
भक्त्या प्रणम्य गोविन्दं सष्टाग च मुहुर्मुहुः ॥९४
ननाम पृथिवी वारो जातसम्प्रत्ययस्तदा ।
प्रणम्य च महाभागा भक्त्या परमया युतः ॥९५
प्राञ्जलिः परतस्तस्थौ नोक्त्वा किंचन वै भिया ।
ततस्तदर्थे पार्थिवी माधवं समयाचत ॥
प्रसीद देवदेवेश समयं प्रतिपालय ।
त्वयाह तनया दत्ता मम सर्वं जगत्पते ।
एतदर्थं प्रतिज्ञातं यद्दत्तं प्रतिपालय ॥९७

कहा जाता है। ६४। उस समय में परम विस्मय होते हुए उस वीर ने पृथ्वी को भी प्रणाम किया था। पर सात्विक भक्ति से समन्वित होकर महा बाबा को प्रणाम किया था। ६५। वह दोनों हाथों को जोड़ कर आगे खड़ा हो गया था और भय से उसने कुछ भी नहीं कहा था। इसके अनन्तर पृथिवी ने उसी के लिए भगवान् माधव से याचना की थी। ६६। हे देवों के भी देवेश्वर! आप प्रसन्न होइए और समय का प्रतिपालन कीजिए। हे जगत्पते! आपने ही मुझे तनय दिया है और मुझे सब कुछ दिया है आपने इसके लिए प्रतिज्ञा की थी जो भी भी दिया है अब उसका प्रतिपालन कीजिए। ६७।

भवती यत्सुपुत्रार्थं मामयाचत पुरा मया ।
तत् सर्वं तव ते दत्तं राज्यं दत्तं च त्वत्सुते ॥६८
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरादाय नरकाह्वयम् ।
सार्द्धं पृथिव्या गंगायां ममज्ज जगतां प्रभुः ॥६९
निमज्य क्षणमात्रेण प्राग्ज्योतिषपरं गतः ।
मध्यगं कामरूपस्य कामाख्या यत्र नायिका ॥१००
स च देशः स्वराज्यार्थं पूर्वं गुप्तश्च शम्भुना ।
किरातैर्बलिभिः कूरैर्जनैरपि च वासितः ॥१०१
स्वर्णस्तम्भनिभास्तत्र किरातान् ज्ञानवर्जितान् ।
अनघमुण्डितान् मद्यमांसाशनैस्तत्पुरान् ॥१०२
ददर्श विष्णुः कुपितान् विष्णुं दृष्ट्वा द्विजर्षभाः ।
तेषामधिपतिस्तत्र घटको नाम वीर्यवान् ।
स्वर्णस्तम्भनिभस्तत्र प्रदीप्त इव पावकः ॥१०३
स योधाश्चतुरंगेन वर्तेन महता युतः ।
आससाद जगन्नाथं नरकं च महाबलम् ॥१०४
आसाद्य शरवर्षेण ववर्ष प्रभुमव्ययम् ।
किरातैः सहितो राजा घटकाख्यः किरातराट् ॥१०५

श्री भगवान् ने कहा—आपने सुपुत्र के दान के लिए पहिले मुझसे याचना की थी। वह मैंने आपको सब दे दिया और ... पन

के लिये राज्य भी दे दिया हैं । ६८। यह इतना कह कर उस नरक नामक को लेकर जगती के प्रभु पृथिवी के साथ ही गङ्गा मे मज्जित हो गये थे और एक ही क्षण विमज्जन करके प्राग्ज्योतिष पुर को गमन कर गये थे। जहां पर मध्य मे काम रूप की कामाख्या नायिका है। ।१००। वह देश भगवान् शम्भु ने पूर्व में गुप्त ही अपने राज्य के लिए रक्खा था। वह स्थल बलवान किरातों के द्वारा तथा क्रूर और अज्ञ के द्वारा वासित था। अर्थात् ऐसे ही लोग वहाँ पर निवास किया करते थे। ।१०१। वहा पर सुवर्ण के स्तम्भों के तुल्य—ज्ञान से रहित—मद्य और मांस के अशन करने मे तत्पर—अनर्थ मुण्डित किरातों को जा कुपित हो रहे थ। भगवान् विष्णु ने देखा था हे द्विज श्रेष्ठो ! भगवान् विष्णु को देखकर वहा पर उनका अधिपति बहुत वीर्य—पराक्रम वाला सुवर्ण के खम्भ क सदृश घटक नाम वाला अग्नि के समान प्रदीप्त था। ।१०२।१०३। वह क्रोध से बहुत बड़ी चतुरङ्गिणी सेना से समन्वित होकर भगवान् जगन्नाथ और महान् बलवान नरक के समीप म आ गया था। १०४। उसने आकर उन अविनाशी प्रभु के ऊपर बाणों की वर्षा की थी। वह घटक नाम वाला किरातो स सयुत किरातो का राजा था ॥१०५॥

माधवोपि तदा पत्र नरकं वीर्यवत्तरम् ।
प्रेसयामास युद्धाय किरातनृपतेस्तदा ॥१०६
नरको धनुरादाय सह तैर्बलवत्तरैः ।
युयुधे सुचिर तत्र शस्त्रास्त्रैर्बहुधेरितैः ॥१०७
ततोऽग्नि भल्लमादाय योजयित्वा धनुर्गुणे ।
शिर किरातराजस्य चिच्छेद नरको बली ॥१०८
मुख्यान् मुख्यान् किरातांश्च बहून् सेनाधिपास्तया ।
जघान कुपिता वीर केशरीव मतगजान् ॥१०६
हतञ्य नृपतौ केचित् पलायनपरायणा ।
किराता केचन पनर्नरक शरण गता ॥११०
निहत्य युध्यमानास्तु नरकस्य शरणं गतान् ।
नरक पितर गत्वा प्रणम्याथ न्यवेदयत् ॥१११

हतस्तात किरातानामधिपो घटको मया ।
सेनाधिपाश्च तस्यान्ये किमन्यत् करवाण्यहम् ॥११२

उस अवसर पर भगवान् माधव ने भी अधिक बलवान् पुत्र नरक को किरातों के राजा से युद्ध करने के लिये भेज दिया । १०६ । उस नरक ने धनुष लेकर अधिक बल शाली उन किरातों के साथ बहुत अधिक समय तक बहुधा शस्त्र—अस्त्रों के द्वारा युद्ध किया था । १०७ । इसके अनन्तर इसने भाला लेकर धनुष के गुणों से योजित करके बलवान् नरक ने किरातों के राजा का शिर का छेदन कर दिया था अर्थात् शिर काट दिया था । १०८ । परमाधिक बुद्धि इस वीर ने मतङ्गजों का सिंह की ही भाँति मुख्य २ किरातों का और सेना के अधियों का हनन कर दिया था । १०६ । राजा के निहत हो जाने पर कुछ किरात तो वहाँ से भागने लग गये थे और कुछ पुन नरक की शरणागति में प्राप्त हो गये थे ।११०। जो युद्ध कर रहे थे उनका विहनन करके और शरण में आये हुए किरीतों का संरक्षण करके नरक ने पिता के समीप में पहुँच कर प्रणाम किया था और सब निवेदन कर दिया था ॥१११। नरक ने कहा—हे तात ! मैंने किरातों के राजा को मार गिराया है जिसका नाम घटक था और उसके अन्य जो सेना के अधिप थे उनको भी मार दिया है । अब मैं क्या करूँ । ११२ ।

किरातान जहि यावत्त्वं देवीं दिक्करवासिनीम् ।
पलायमानान विद्राव्य पालय शरण गतान् ॥११३
तत स नरको वीर समारुह्य सितं गजम् ।
चतुर्दन्त महाकाय किराताधिपवाहनम् ॥११४
ऐरावतसमं वीर्ये वेगेन गरुडोपमम् ।
किरातान् द्रावयामास यावद्दिक्करवासिनीम् ॥११५
पितरं पुनरागत्य वचन चेदमब्रवीत् ।
विद्राविता किरातास्ते सागरन्त समाश्रिता ॥११६
हतश्च घटकाख्यो हि किराताधिपतिर्महान् ।

वेगिन गजमारुह्य ऐरावतसम गुणं ।
यदन्यत् करणीय मे तदाज्ञापय सम्प्रति ॥११७
करतोया सदा गगा पूर्वभागावधिश्रया ।
यावल्ललितकान्तास्ति तावदेव पुर तव ॥११८
अत्र देवी महाभागा योगनिन्द्रा जगत् प्रसू ।
कामाख्यारूपमास्थाय सदा तिष्ठति शोभना ॥११९

श्री भगवान् ने कहा—तुम दिक्कर वासिनी देवी की ओर भागते हुये किरातों को विद्रावित करके किराता को छोड़ दो और जो तुम्हारे शरण में आये हैं उनकी रक्षा करो अर्थात् उनका पालन करो । ११३ । मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर वह वीर नरक सफेद हाथी पर समारूढ होकर चला था जो गज चार दाँतों वाला—विशाल शरीर से सम न्वन और किराता के राजा का वाहन था । वह बल—वीर्य में ऐरावत के समान था और वेग में गरुड के ही सदृश था । उस नरक ने किरातों को दिक्कर वासिनी तक भगा दिया था और फिर पिता के पास समासादित होकर यह वचन बोला था । नरक ने कहा— वे सभी किरात विद्रावित कर दिये गये हैं और वे सागर के अन्त में जाकर समाश्रित हो गये है । ११४—११६ । जो किरातों का महान् अधिपति घटक नाम वाला था उसको मार दिया है मैंने इस ऐरावत के समान गुणों वाले वेग से युक्त गज पर समारोहण करके ही यह सब किया है । अब अन्य जो कुछ भी मुझे करना है उसके लिए मुझे आप आज्ञा प्रदान कीजिए । ११७ । श्री भगवान् ने कहा पूर्व भाग की अवधि तक समाश्रय वाली करतोया गङ्गा सदा वहन करती है वह जब तक ललित कान्ता है वहाँ तक ही आपका पुर है । ११८ । यहाँ पर सम्पूर्ण जगत् को प्रसूत करने वाली महा भाग वाली योग निद्रा परम शोभन होकर कामाख्या के स्वरूप में समास्थित होकर सदा संस्थित रहा करती है ।११९।

अत्रास्ति नदराजोऽय लौहित्यो ब्रह्मण सुत ।
अत्रैव दशदिक्पाला स्वे स्वे पीठे व्यवस्थिता ॥१२०
अत्र स्वय महादेवो ब्रह्मा चाहं व्यवस्थित ।
चन्द्र सूर्यश्च सतत वसतोऽत्र च पुत्रक ॥१२१

द्विजातीन् वासयामास तत्र वर्णान् सनातनान् ॥१२८
वेदाध्ययनदानानि सतत वर्तंते यथा ।
तथा चकार भगवान् मुनिभिर्वासियन् विभु ॥१२९
वेदवादरता सर्वे दानधर्मपरायणा ।
नचिरादभद्देश कामरूपाह्वयस्तदा ॥१३०
ततो विदर्भराजस्य पुत्री मायाह्वया हरि ।
पत्रार्थे वरयामास नरकस्य समा गुणै ॥१३१
तामुद्वाह्य हृपीकेशस्तस्मिन् पुरवरे स्वयम् ।
तया सम स्वतनय राजत्वेनाभ्यपेचयत् ॥१३२
सुगुप्ता च परी चक्रे गिरिदुर्गेण माधव ।
जलदुर्ग सर्वतो भद्र देवैरपि दुरासदम् ॥१३३

इसके पश्चात् ललितकान्ता के देश का पुन अवधि बनाकर जहाँ तक करतोया नही है वहाँ कामाख्या का स्थान है ।१२७। उस स्थान मे वेदो और शास्त्रो के अतिक्रमण करने वाले बहुत—से किरातो को हटा कर वहाँ पर सनातन वर्णो वाले द्विजातियो को निवासित किया था ।१२८। विभु भगवान ने जिस प्रकार से वेदो का अध्ययन और दान निरन्तर होवें उसी प्रकार से मुनियो के साथ निवास कराते हुए किया था ।१२९। उस समय मे काम रूप नाम वाला देश शीघ्र ही ऐसा हो गया था कि उसम सब लोग वेदो के वाद मे रति रखने वाले और दान तथा धर्म म परायण हो गये थे ।१३०। इसके उपरान्त भगवान् हरि न विदर्भ देश के राजा की माया नाम वाली पुत्री को पुत्र के लिय वरण किया था जो गुण गणो से नरक के ही समान थी। ।१३१। उसके साथ उद्वाह करके भगवान् हृषीकेश स्वय उस श्रेष्ठ पुर मे उसी के साथ अपने पुत्र को राजा के स्वरूप से अभिषिक्त किया था।

१३२। माधव ने गिरि के दुर्ग म पुरी को परम गुप्त कर दिया था। जल का दुर्ग सबसे श्रेष्ठ और भला था जो देवो के द्वारा भी दुरासद अर्थात् दुष्प्राप्य था ॥१३३॥

तत किरातराजस्य चतुर्दन्ता सुदन्तिन ।
पर्याप्तसतिसाह्स्रा महामात्रैर्युता ॥१३४